

पदपाठसहिता
अथर्ववेदसंहिता

सायणाचार्यकृत-भाष्यसंवलिता
सैव
हिन्दीभाषानुवादसमन्विता

R
224.2
गौड- ३४

व्याख्याकारः - सम्पादकश्च

पं० रामस्वरूपशर्मा गौडः

R
284.2
गौड-अ

143432

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या:

R
224.2

आगत संख्या

143432

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित
30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए
अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

215.2.GOD-A



143432

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१८



सायणभाष्यसहिता

अथर्ववेदसंहिता

सैव

हिन्दीभाषानुवादसंवलित

भाग ६

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

पं० रामस्वरूपशर्मा गौड़ः

143432



215.2.GOD-A



143432

चौखम्बा विद्याभवन

वा रा ण सी

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

फोन : ४२०४०४

R
224.2
U
315-3A

पुनर्मुद्रित संस्करण २००३

१-८ भाग (सम्पूर्ण)

मूल्य : रु. ३०००.००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

फोन : ३३५२६३

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

दिल्ली ११०००७

फोन : ३९५६३९९

मुद्रक

फूल प्रिन्टर्स

वाराणसी

THE
VIDYABHAWAN PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA

18



ATHARVA-VEDA-SAMHITĀ

Along with

SĀYANABHĀṢYA

Volume 6

Edited with Hindi Translation

By

Pt. Ramswaroop Sharma Gaud



CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
VARANASI

© CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(*Oriental Publishers & Distributors*)
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
Telephone : 420404

Also can be had of
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001
Telephone : 335263

★

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 3956391

❀ श्रीहरिः ❀

❀ सभाष्य अथर्ववेदकी विषयसूची ❀

विषय

पृष्ठ

❀ द्वादश-काण्ड ❀

प्रथम अनुवाक-

प्रथमसूक्त । इसमें प्रायः पृथिवीके प्राकृतिक दृश्यका वर्णन है । कुछ पौराणिक कथाओंको लक्षित करके वर्णन है । इसमें ऋषिने अनेक बार पृथिवीसे वरोंकी प्रार्थना की है । सम्प्रदायके अनुसार इसका विनियोग अनेक प्रकारसे होता है । इस अनुवाकका वास्तोष्पत्यगणमें पाठ हैं, इसका विनियोग ३ । १२ में है । इसका आग्रहायणीकर्ममें, पुष्टिकर्म में, कृषिकर्ममें, पुत्रधनादिसर्वप्राप्तिकर्ममें, त्रीहियव आदिकी प्राप्तिमें, हिरण्य मणि आदिकी प्राप्तिमें, ग्राम नगर आदि की रक्षाके कर्ममें, भूकम्पके प्रायश्चित्तमें, सोमयज्ञमें और पार्थिवी महाशांतिमें प्रयोग किया जाता है । १

द्वितीय अनुवाक-

प्रथमसूक्त । यह सूक्त क्रव्याद् अग्निविषयक है । क्रव्याद् अग्निकी व्याख्या । क्रव्याद् अग्निकी भयंकरता, क्रव्यादग्निके उपासकोंका नाश । क्रव्याच्छमन । ३६

तृतीय अनुवाक-

प्रथमसूक्त । यह स्वर्गौदनविषयक है । स्वर्गौदनका माहात्म्य स्वर्गौदनसे मिलने वाले फल, स्वर्गौदनकी फल-प्राप्तिका समय, स्वर्गौदनकी रीति । इसका सवयज्ञविधिमें विनियोग होता है । ६५

विषय

पृष्ठ

चतुर्थ अनुवाक—

प्रथमसूक्त । यह वशाविषयक है ।

१००

पञ्चम अनुवाक—

प्रथम २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ सूक्त—यहसूक्त ब्राह्मणकी गौसे संबन्ध रखता है। क्षत्रियको ब्राह्मणकी गौ नहीं छीननी चाहिये। ब्राह्मणकी गौको छीननेसे मिलने वाली आपत्तियों। सम्प्रदायके अनुसार इसका विनियोग ५ । १८ में है । १२१

✽ त्रयोदश काण्ड ✽

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । यह रोहित देवताका सूक्त है । उदय होते ही सूर्यदेवका नाम रोहित है । इसमें रोहितदेवताके साथ मरुत् इन्द्र अज एकपाद अग्नि सविता मित्रावरुण अग्नि और सूर्य देवता का भी आवाहन किया है और उनका वर्णन किया है । राजाके राष्ट्रका भरण इन सबका प्रयोजन है । याज्ञिक पुरुष इसका धनाभिलाषीके सूर्योपस्थान में, अर्थोत्थापनकामके उपस्थानमें, वस्त्राभिमन्त्रणमें, भगदड़की शान्तिके वस्त्राभिमन्त्रणमें प्रयोग करते हैं । १३८

द्वितीय अनुवाक—

प्रथम सूक्त । यह सविता देवताका सूक्त है । इसका सलिलगणमें पाठ होनेसे इसका विनियोग १ । ५ में है । तथा इसका उपनयनके आयुर्वृद्धिके उपस्थानमें और साकमेधकी पित्र्येष्टिके सूर्योपस्थानमें विनियोग है । १६६

तृतीय अनुवाक—

यह सूक्त रोहित देवताका है । इसका आभिचारिक कर्ममें विनियोग होता है । १६१

[ग]

विषय

पृष्ठ

चतुर्थ अनुवाक—

१ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ सूक्त । यह भी रोहितदेवता का सूक्त है । विनियोग—मालामें कहा है, कि—स्वर्गको चाहने वाला इसका जप करे ।

२१२

* चतुर्दश काण्ड *

प्रथम द्वितीय अनुवाक—

यह काण्ड विवाहपरक है ।

२२४

* पञ्चदश काण्ड *

प्रथम द्वितीय अनुवाक—

व्रात्यकी महिमा ।

२६३

* षोडश काण्ड *

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इसमें शान्तिकर्मोंका विधान है ।

३५१

द्वितीय सूक्त । इससे अभिचारकर्मकी समाप्तिमें अपना अभिमर्शन किया जाता है । उपनयनकर्ममें आयुष्काम इससे अपना अभिमन्त्रण करता है । चक्षु आदि इन्द्रियों की दृढ़ता चाहनेवाला वनमें जा इस सूक्तसे सर्वौषधियों को अभिमन्त्रित करके अनुलोम लेप करे ।

३५४

तृतीय चतुर्थ सूक्त । इनसे बालक आयुकी वृद्धिके लिये उदय होते हुये सूर्यदेवका उपस्थान करे ।

३५७

द्वितीय अनुवाक—

प्रथमसूक्त । दुःस्वप्नदर्शनकी शान्तिमें इसका विनियोग

[घ]

विषय

पृष्ठ

होता है । परम घोर दुःस्वप्नको देखने पर इस सूक्तसे
मैश्रधान्य पुरोडाशकी आहुति दी जाती है । दुःस्वप्न
दीखने पर इस सूक्तको जप कर दूसरी करवटसे सोजावे ।
स्वप्नमें अन्नको देख कर इस सूक्तका पाठ करे । ३६१

२ । ३ । ४ । ५ सूक्त । इनका अभिचार कर्ममें प्रयोग
होता है । ३६४

* सप्तदशकाण्ड *

इसका सलिलगणमें पाठ है । उपनयन कर्ममें ब्रह्मचारी
के नाभिदेशका स्पर्श, ऋषिहस्तसे आचार्यके द्वारा उपन-
यनमें बालकका अभिमन्त्रण, आदित्योपस्थान, सूर्य वा
चन्द्रग्रहणकी शान्ति, अपूपदान आदिमें इसका पाठ किया
जाता है । ३८५

* अष्टादश काण्ड *

इस काण्डमें चार अनुवाक हैं । इस सारे काण्डका पितृ-
मेधमें शवदाहमें अग्नि देनेके अनन्तर सात नौ वा ग्यारह
आदि विषमसंख्यक ब्राह्मण पूर्वकी ओर मुख करके पाठ
करें । तहाँ ही कर्ममें सारस्वतहोमके अनन्तर सब बान्धव
इस काण्डसे प्रेतका उपस्थान करें ।

प्रथम अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ सूक्त । यमयमीसम्वाद, यम-
यमीकी उत्पत्ति । इन सबका काण्डप्रयुक्त विनियोग है ४५१

पञ्चमसूक्त । पितृमेधकर्ममें अग्निदाता कनिष्ठ पुत्र “सर-
स्वतीं देवयन्तः” आदि तीन ऋचाओंसे घृतसे सारस्वत

[६]

विषय

५४

होमोंको करता है। तहाँ ही “उदीरिताम्” ऋचासे काम्पील-
शाखासे चिह्न बनावे। पिण्डपितृयज्ञमें इस ऋचासे गड़हे
को खोदे। ४६ वीं ऋचासे गड़हेमें कुशा बिछावे। और
परेयिवांसम् आदि दो ऋचाओंसे याम्यहोमोंको करे। ५०४

छठा सूक्त। पिण्डपितृयज्ञमें “बर्हिषदः पितरः” ऋचासे
कुशाओंको बिछावे तहाँ ही कर्ममें ५२ वीं ऋचासे कुशाओं
पर तिल डाले जाते हैं। ५३ वीं से पितृमेधमें प्रेतकी
अस्थियोंको छींके पर रखे। ५४ वीं ऋचासे प्रेतको उठा
कर गाड़ीमें रखा जाता है। ५५ वींसे प्रेतदहन स्थानको
काम्पीलशाखासे संप्रोक्षित किया जाता है। ५६ वीं और
सत्तावनवींसे अग्निको प्रदीप्त किया जाता है। “अंगिरसो
नः” आदि सात ऋचाओंसे प्रेतके शरीरमें घृतकी आहुति
दीजाती है। साठवीं ऋचासे यमके लिये आहुति दीजाती
है। “इत एतद्” आदि चार ऋचाओंसे प्रेतको उठा कर
शकटमें रखा जाता है। ५१६

द्वितीय अनुवाक—

प्रथम सूक्त। इसका प्रेत शरीरके उपस्थान, अजबन्धन,
और अग्निप्रदीपनमें विनियोग होता है। ५३१

द्वितीय सूक्त। इसकी आठ ऋचाओंका प्रेतोपस्थानमें
विनियोग है। इनसे प्रेतशरीरका अनुमन्त्रण होता है और
इस सूक्तकी ऋचाओंसे अस्थियोंसे भरे हुए कलशको
गाढ़नेके स्थानमें लेजाना, मुमूर्षु यजमानको अग्निहोत्रशाला
में बिछे हुए कुशाओं पर लिटाना, प्रेतके शरीरका गाड़ी
से उतारना आदि कर्म किये जाते हैं। यममार्गके कुत्तोंका
वर्णन ५४३

[च]

विषय

पृष्ठ

तृतीय सूक्त । इससे कुशाओं पर तिल डालना आदि कर्म किये जाते हैं । पितरोंके डाँकू राक्षस आदि । पितरों से प्रार्थना । धेनुदानका माहात्म्य । ५५३

चतुर्थ सूक्त । इससे अग्निप्रदीपन आदि कर्म किये जाते हैं । यमकी प्रशंसा, अश्वावती नदी । अग्निसंस्कृत, अनग्निसंस्कृत, भूमिमें गाढ़े हुए आदि पितर । पुत्रोंके दिये हुए पिण्डोंसे पितरोंका स्वर्गमें आनन्द पाना । अग्नि का प्रेतको सुखपूर्वक भस्म करना, अधिक भस्म करनेके निषेधका कारण । ५६३

पञ्चम सूक्त । इसकी ऋचाओंका श्मशानके नाँपने, अनुमन्त्रण करने, प्रेतको उठा कर टिकटिकी आदिमें रखने श्मशानको चिनने आदिमें विनियोग होता है । अकाल मृत्युनिवारण की प्रार्थना । सन्तानरहित अद्वेष्टा पुरुषोंको श्रेष्ठ स्वर्गकी प्राप्ति । श्राद्धद्रव्य ही मृतपुरुषका जीवन है । ५७४

छठा सूक्त । इसकी ऋचाओंका प्रेतको वस्त्र उढ़ाने आदिमें विनियोग होता है । इष्टापूर्तके फलकी प्राप्ति । ५८२

तृतीय अनुवाक—

प्रथम सूक्त । प्रेतके साथ चितामें भार्याको बैठाना । सतीप्रथाका शिष्टानुमोदितत्व । सतीका माहात्म्य । सती न होकर पत्नीको प्रेतके पाससे उठाना । चौथे दिन अस्थियों का अवसेचन । इत्यादि ५९४

द्वितीयसूक्त । पिण्डपितृयज्ञमें कर्ताका हस्तप्रक्षालन । यमका प्रेतलोकको जाना । पितरोंका विसर्जन । जमदग्नि आदि शब्दोंका अर्थ । खाली घड़ेका फोड़ना । घृतसे पिण्डों का अभिघारण । धूमादिमार्गसे चन्द्रलोककी प्राप्ति । ६०८

[छ]

विषय

पृष्ठ

तृतीय सूक्त । इसकी ऋचाका प्रेतोपस्थानमें विनियोग है। श्मशानचयनकर्ममें घृतकी आहुति । भूमिदानका माहात्म्य ६२४

चतुर्थ सूक्त । इसकी ऋचाओंका घृतहोम और अभिमन्त्रणमें विनियोग है । ६३६

पञ्चम सूक्त । इसकी ऋचाओंसे पिण्डपितृयज्ञमें समिधाओंका रखना कुशाओंका बिछाना और श्मशानदेशका चुनाव होता है, देवताओंका अमरत्व और मनुष्योंका मरणधर्मित्व, बृहस्पतिका देवपुरोहित होना और बृहस्पतिका मरण, अग्निका पितरोंको कव्य पहुँचाना, अग्निष्वात्ता और बर्हिषद् पितरोंका भेद और पृथिवीकी प्रार्थना । ६४५

छठा सूक्त । इसके मन्त्रोंसे शवदाहके अनन्तर स्नान, सर्प आदिके काटे हुए अंगका अग्निमें भस्म करना, और अस्थियोंका सिञ्चन होता है । प्रेतके कुलकी स्त्रियोंके लिये अवैधव्य आदिकी प्रार्थना, सपिण्डीकरण, दाहको शान्त करने वाली औषधियाँ । ६५८

सप्तम सूक्त । इसके मन्त्रोंसे गोत्र वालोंके द्वारा प्रेतका उपस्थान, चौथे दिनकी आहुति, हुतशेषका प्राशन, स्वस्त्ययनार्थ जप, अस्थियों पर खीलें डालना, अस्थियोंका वृक्षसे उठाना, प्रेतशरीरमें अग्निप्रदीपन, मधु घृतसे चरुका अभिमन्त्रण और पिंडों पर घृतधारा पातन कर्म होते हैं । अभय और पुष्टिकी प्रार्थना, यमकी महिमा, अग्निकी महिमा प्रेतका वरुणदूतत्व और कुम्भदान । ६६६

चतुर्थ अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इसकी ऋचाओंसे अहिताग्नि प्रेतका उपस्थान, विदेशमें मरे हुए अहिताग्निकी दोनों अर-

विषय

पृष्ठ

णियोंका अग्निमें प्रतापन और प्रेतके अंगों पर रखे जाने वाले यज्ञपात्रोंका अनुमन्त्रण किया जाता है। सब कर्म अग्निसाध्य है, देवयान और पितृयान, आहिताग्निकी गति अंगिरा गोत्र वालोंका यज्ञसे स्वर्गको जाना, जुहू उपभृत् और ध्रुवा नामक यज्ञपात्रोंकी व्याख्या, योगभ्रष्टकी गति, सूचको बछड़ा कहनेका कारण, अग्निका प्रेतको स्वर्गमें लेजाना। पृष्टिरथका अर्थ। अग्निके सुखप्रद और असुखप्रद शरीर।

६८२

द्वितीय सूक्त। इसके मन्त्रोंसे अग्निका उपस्थान चितामें चित्त पड़े हुए प्रेतका अनुमन्त्रण और चरुस्थापन कर्म होते हैं। पितृमेधयज्ञसे स्वर्ग प्राप्ति, प्रेतके ऋत्विज।

७०१

तृतीय सूक्त। इसके मन्त्रोंसे चरुओंका अभिमन्त्रण, अग्निष्टोम आदिमें वैप्रपहोम और अस्थियोंका अवसिञ्चन होता है। सोमस्तुति।

७१२

चतुर्थ सूक्त। इसकी ऋचाओंसे प्रेतको ढकने वाले वस्त्र का अभिमन्त्रण, तिलमिश्रित खीलोंका देना, स्थालीपाककी आहुति, अस्थियोंका आसावन, गड़हेमें रखी हुई अस्थियों का अवलोकन, जलती हुई लकड़ीका धूलमें फेंकना, पिंड-पितृयज्ञमें पिण्डप्रदानके अनन्तर आचमन और अग्निका अवसेचन होता है। खीलों देनेका परिणाम, स्थालीपाकसे पितरोंकी तृप्ति, कुम्भकी प्रेत भूत आदिके द्वारा उपासना। आचमनसे मातृकुल और पितृकुलके पितरोंकी तृप्ति।

७२२

पञ्चमसूक्त। इसकी ऋचाओंसे समिधाओंका आधान, तिलमिश्रित खीलोंका बखेरना, भस्म करनेके लिये प्रेतको उठा कर शकटमें रखना, सारस्वतहोम, चरुस्थालीका

[भ]

विषय

पृष्ठ

लीपना, चौथे दिन दक्षिणाकी गौका अभिमन्त्रण और प्रेतवाहन वृषभोंका अनुमन्त्रण होता है। प्रेतको तृप्त करनेके लिये सक्तमन्थप्रदान, टिकटिकी, सरस्वती प्रार्थना, प्रेतको लेजाने वाले वृषभोंकी निन्दा । ७३३

छठा सूक्त । इसकी ऋचाओंसे चिताकाष्ठों पर कुशाको बिछाना, चिता पर प्रेतको चित्त लिटाना, श्मशानचयन-कर्ममें गड़हेमें कुशाओंका बिछाना, अस्थियोंका रखना चरुओंका पलाशपत्रोंसे ढकना, चरु और पात्रोंको पाषाण वा ईंटोंसे ढकना, चिने हुए श्मशानस्थलको कूटना, सुवर्ण का अभिघारण, मधुसहित घृतका अस्थियोंके समीपमें स्थापन, पिण्डपितृयज्ञमें पिण्डोंका घृतसे अभिघारण आदि होता है । प्रेतगृहका उन्नत बनाना, सुवर्णके अभिघारण का अर्थ, सोम और प्रेताग्निकी स्तुति ७४४

सप्तमसूक्त । इसकी ऋचाओंसे पिण्डोपस्थानके अनन्तर उत्तरपरिषेक, पिण्डदानके लिये बिछी हुई कुशाओं पर तिल डालना, पितरोंका विसर्जन, सांयवन तण्डुलोंका हवन, सर्वप्रणीत अग्निका प्रत्यानयन, श्मशानदेशका चयन, कुशा बिछाना, शवदाहके अनन्तर स्नान, पितृमेधमें दश दिन तक सायं प्रातः स्वस्तिपाठ होता है । पितरोंका आनन्दमें भर कर नाचना, प्रेतके अवयवका अग्निमें डालना, वरुणप्रार्थना । ७५७

अष्टमसूक्त । इसके मन्त्रोंसे पिण्डपितृयज्ञकी स्थालीपा-काहुति और पिण्डोंका स्थापन होता है । देवताओंको क्या कह कर हवि दी जाती है, पितरोंको क्या कह कर हवि

विषय पृष्ठ
 दी जाती है, तत शब्दका अर्थ, प्रजापतिका उपास्थान
 पितरोंके नामको न जानने वाला किस शब्दसे पितरोंको
 सम्बोधित करे । ७६८

नवमसूक्त । इसके मंत्रोंसे पिण्डोंमें आवाहित पितरोंका
 उपस्थान, समिदाधान और जलक्षय तथा जलभयके लिये
 वरुणदेवत्या शांति कीजाती है । त्रित ऋषिकी कथा । ७७४

— ० —

अथर्ववेदसंहिता

अथ श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीहरिः

अथर्ववेदसंहिता

द्वादश-काण्डम्



भाषानुवाद-सहित

पृथिवीसूक्तम् एतत् । अस्मिन् पृथिव्याः प्रभूतं निसर्गवर्णनम् ।
कतिचित्पौराणिकीः कथाश्चानुलक्ष्य वर्णनम् । बहुवारं च ऋषिः
पृथिवीं वरान् प्रार्थयते ॥

संपदायानुसारेण तु सूक्तं बहुविधं विनियुज्यते । तद्यथा “सत्यं
बृहत्” इत्यनुवाको वास्तोष्पत्यगणे पठितः । अस्य गणस्य विनि-
योगः “इहैव ध्रुवाम्” [३. १२] इति सूक्ते द्रष्टव्यः ॥

तथा आग्रहायणीकर्मणि रात्रौ अभ्यातानान्तं कृत्वा त्रयश्चरवः
श्रपयितव्याः । ततः अनेनानुवाकेन अग्नेः पश्चाद् गर्ते दर्भान्
आस्तीर्य एकं चरुं सकृत् सर्वहुतं जुहोति । द्वितीयं चरुम् अने-
नानुवाकेन संपात्याभिमन्त्र्य अश्नाति । तृतीयं चरुं “सत्यं बृहत्”
इति आद्याभिः सप्तभिर्ऋग्भिः “भूमे मातः” [६३] इत्यष्टम्या
ऋचा च त्रिर्जुहोति । अष्टानाम् ऋचाम् आष्टत्या होमत्रयं संपाद-
नीयम् इत्यर्थः । अग्नेः पश्चाद् दर्भेषु कशिपु तृणमयं प्रस्तरणम्
आस्तीर्य “विमृग्वरीम्” [२६] इत्यनयोपविशति । “यास्ते
शिवाः” [६. २. २५] इति संविशति । “यच्छयानः” [३४]
इति पर्यावर्तते । “सत्यं बृहत्” इति नवभिः शन्तिवा [५६]
इत्यृचा “उदायुषा” [३. ३१. १०, ११] इति द्वाभ्यां च प्रात-
रुत्तिष्ठते । “उद्वयम्” [७. ५५. ७] इति गच्छति । “उदीराणाः”

[२८] इत्यृचा प्राङ् वोदङ् वा बाह्यतो गच्छति । “यावत् ते”

[३३] इत्यृचा भुवम् ईक्षते ॥ इत्याग्रहायणीकर्म ॥

तथा पुष्टिकामः उन्नतं स्थलम् आरुह्य “यावत् ते” [३३]
इत्यृचा ईक्षते ॥

तथा अनेनानुवाकेन उदपात्रं संपात्य पुरस्ताद् अग्नेः सीरं युक्तं
संप्रोक्षति ॥

तथा अनेनानुवाकेन कृषिकर्म भवति ॥ तच्च “सीरा युञ्जन्ति”
इति [३. १७] सूक्ते विस्तरेणोक्तं द्रष्टव्यम् ॥

तथा पुत्रधनादिसर्वफलप्राप्त्यर्थं “यस्यां सदोहविधाने” [३८-४०]
इति तिसृभिराज्यं जुहोति ॥

तथा व्रीहियवाद्यन्नकामः “यस्यामन्नम्” [४२] इत्यृचा पृथि-
वीम् उपतिष्ठते ॥

तथा मणिहिरण्यादिकामः “निधिं बिभ्रती” [४४, ४५] इति
द्वाभ्यां पृथिवीम् उपतिष्ठते ॥

तथा प्राप्यापि मणिं हिरण्यं वा आभ्यामेवोपतिष्ठते ॥

तथा पुष्टिकामो वृष्टिकाले “यस्यां कृष्णम्” [५२] इत्यृचा
नवोदकम् अभिमन्त्र्य आचमनं स्नानं च करोति ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । “सत्यं बृहद् इत्याग्रहायण्याम् । पश्चाद्
अग्नेर्दर्भेषु खदायां सर्वहुतम् । द्वितीयं संपातवन्तम् अश्नाति ।
“तृतीयस्यादितः सप्तभिर्भूमे मातरिति त्रिर्जुहोति । पश्चाद् अग्ने-
र्दर्भेषु कशिष्वास्तीर्य विमृग्वरीम् इत्युपविशति । यास्ते शिवा इति
संविशति । यच्छयान इति पर्यावर्तते । नवभिः शन्तिवेति दशम्यो-
दायुषेत्युपोत्तिष्ठति । उद्वयम् इत्युत्क्रामति । उदीराणा इति त्रीणि
पदानि प्राङ् वोदङ् वा बाह्येनोपनिष्क्रम्य यावत् त इति वीक्षते ।
उन्नताच्च । पुरस्ताद् अग्नेः सीरं युक्तम् उदपात्रेण संपातवताव-
सिञ्चति । आयोजनानाम् अप्ययः । यस्यां सदोहविधाने इति

जुहोति वरो म आगमिष्यतीति । यस्यामन्नम् इत्युपतिष्ठते । निधिं बिभ्रतीति मणिं हिरण्यकामः । एवं विद्वान् । यस्यां कृष्णम् इति वार्षकृतस्याचामति । शिरस्यानयते” इति [कौ० ३. ७] ॥ वरो वरणीयोर्थो मम भवेद् इत्यर्थः ॥

तथा ग्रामपत्तनादिरक्षार्थम् अनेनानुवाकेन चतुरः पुरोडाशान् अश्मोत्तरान् कृत्वा ग्रामादिकोणेषु निखनति ॥

तथा ग्रामपत्तनादिरक्षार्थम् अनेनानुवाकेन एकैकस्य पुरोडाशस्य पाषाणम् उपरि कृत्वा उभयान् संपातवतः कृत्वा ग्रामादिकोणेषु निखनति । सर्वत्र प्रतिद्रव्यं सूक्तावृत्तिः ॥

तथा अग्नेरायतनस्य असंतापयुक्ते देशे शयानः एतम् अनुवाकं जपति । सर्वत्र कर्मणां विकल्पः ॥

तद् उक्तं कौशिकसूत्रे । “भौमस्य दृतिकर्माणि । पुरोडाशान् अश्मोत्तरान् अन्तः स्रक्तिषु निदधाति । उभयान्तसंपातवतः । सभाभागधानेषु च । असंतापे ज्योतिरायतनस्यैकतोऽन्यं शयानो भौमं जपति” इति [कौ० ५. २] ॥

तथा भूमिचलने अस्यानुवाकस्य होमे विनियोगः । “अथ यत्रैतद् भूमिचलो भवति” इत्युपक्रम्योक्तं कौशिकेन । “सत्यं बृहद् इत्येतेनानुवाकेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः” इति [कौ० १३. ६]

तथा सोमयज्ञे दीक्षितनियमेषु मूत्रपुरीषशुद्धयर्थं लोष्टादाने अस्य विनियोगः । तद् उक्तं वैताने । सत्यं बृहद् इति लोष्टम् आदाय” इति [वै० ३. २] ॥

तथा ‘पार्थिवीं भूमिकामस्य’ इति [न० क० १७] विहितायां पार्थिव्यां महाशान्तौ अस्यानुवाकस्य विनियोगः । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । “सत्यंबृहद् इत्यनुवाकः पार्थिव्याम्” इति [न० क० १८] ।

श्रीः ॥ यह पृथिवी सूक्त है । इसमें अधिकतर पृथिवीके निसर्ग का वर्णन है । और कुछ पौराणिक कथाओंको लक्षित करके

वर्णन किया गया है। अनेक स्थलोंमें ऋषिने पृथ्वीसे वरोंकी प्रार्थना की है।

सम्प्रदायके अनुसार इस सूक्तका अनेक प्रकारका विनियोग होता है। यथा—“सत्यं बृहत्” अनुवाकका वास्तोष्पत्यगणमें पाठ है। इस गणका विनियोग “इहैव ध्रुवाम्” इस तृतीय काण्डके बारहवें सूक्तमें देखना चाहिये।

तथा आग्रहायणी कर्ममें रात्रिके समय अभ्यातान तक करके तीन चरुओंको राँधे फिर इस अनुवाकसे अग्निके पीछे गड्ढेमें दभोंको बिछा कर एक चरुको एक बार कुछ अवशिष्ट न रख कर होम देय। फिर इस अनुवाकसे दूसरे चरुको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके प्राशन करे। तीसरे चरुको “सत्यं बृहत्” आदि पहिलीं सात ऋचाओंसे और “भूमे मातः” (६३) नामक आठवीं ऋचासे तीन बार आहुति देय। तात्पर्य यह है आठ ऋचाओंकी आहुति करके तीनबार होम करे। अग्निके पीछे दभों पर तृणमय फैली हुई चटाईको बिछा कर “विमृग्वरीम्” इस उन्तीसवीं ऋचासे उपवेशन करे। “यास्ते शिवाः” (६।२।२५) से संवेशन करे। “यच्छयानः” इस ३४ वीं ऋचासे पर्यावर्तन करे। “सत्यं बृहत्” आदि नौ ऋचाओंसे “शन्तिवा” इस उनसठवीं ऋचासे और “उदायुषा” आदि तीसरे काण्डके इकतीसवें सूक्तकी दशवीं और ग्यारहवीं ऋचासे प्रातःकालके समय उठे। “उद्वयम्” इस सातवें काण्डके पचपनवें सूक्तकी सातवीं ऋचासे चले। “उदीराणाः” इस अट्ठाईसवीं ऋचासे पूर्वउत्तर वा बाहर से जावे। “यावत् ते” इस तैंतीसवीं ऋचासे भूमिको देखे। यह आग्रहायणी कर्म हुआ।

तथा पुष्टिको चाहने वाला उन्नत स्थान पर चढ़ कर “यावत् ते” इस चौतीसवीं ऋचासे देखे।

तथा इस अनुवाकसे जलपूर्ण पात्रको सम्पातित करके अभिंके सामने युक्त सीरका प्रोक्षण करे ।

तथा इस अनुवाकसे कृषिकर्म होता है । इसका “सीरा युञ्जन्ति” इस तीसरे काण्डके सत्रहवें सूक्तमें विस्तृत वर्णन है । तहाँ ही देखना चाहिये ।

तथा पुत्र धन आदि सब फलोंकी प्राप्तिके लिये “यस्यां सदो हविर्धाने” आदि अड़तीसवीं, उन्तालीसवीं, और चालीसवीं-इन तीन ऋचाओंसे घृतकी आहुति देय ।

तथा व्रीहि यव आदि अन्नकी कामना रखने वाला “यस्या-मन्नम्” इस बयालीसवीं ऋचासे पृथिवीका उपस्थान करे ।

तथा मणि सुवर्ण आदिको चाहने वाला “निधिं बिभ्रतीम्” इन चौबालीसवीं और पैंतालीसवीं ऋचाओंसे पृथिवीका उपस्थान करे ।

तथा मणि वा सुवर्णको पाकर भी इन दोनों ऋचाओंसे उपस्थान करे ।

तथा पुष्टिको चाहने वाला वृष्टिके समयमें “यस्यां कृष्णम्” इस बावनवीं ऋचासे नवीन जलको अभिमन्त्रित करके आचमन और स्नान करे ।

इसी बातको कौशिकने कहा है, कि—“सत्यं ब्रह्म इत्याग्रहा-यण्याम् । पश्चाद् अग्नेर्गर्भेषु खदायां सर्वहुतम् । द्वितीयं सम्पात-वन्तं अश्नाति तृतीयस्यादितः सप्तभिर्भूमे मातरिति त्रिर्जुहोति । पश्चाद् अग्नेर्दर्भेषु कशिष्वास्तीर्य विमृग्वरीम् इत्युपविशति । यास्ते शिवा इति संविशति । यच्छयान इति पर्यावर्तते । नवभिः शन्ति-वेति दशम्योदायुषेत्युपोत्तिष्ठति । उद्वयम् इत्युत्क्रामति । उदीराणा इति त्रीणि पदानि प्राङ् द्यौर् वा बाह्येनोपनिष्क्रम्य यावत् त इति वीक्षते । उन्नताच्च । पुरस्ताद् अग्नेः सीरं युक्तं उदपात्रेण

सम्पातवताऽवसिञ्चति । आयोजनायां अप्ययः । यस्यां सदो हवि-
र्धाने इति जुहोति वरो म आगमिष्यतीति । यस्यामन्नमुपतिष्ठते ।
निधिं बिभ्रतीति मणिं हिरण्यकामः । एवं विद्वान् यस्यां कृष्णम्
इति वार्षकृतस्याचमति । शिरस्यानयते” इति (कौशिकसूत्र ३।७)
वरो वरणीयो मम भवेदित्यर्थः ।

तथा ग्राम नगर आदिकी रक्षाके लिये इस अनुवाकसे चार
पुरोडाशोंको अश्मोत्तर कर ग्राम आदिके कोनोंमें गाढ़ देवे ।

तथा ग्राम नगर आदिकी रक्षा करनेके लिये एक एक पुरो-
डाशके पाषाणको ऊपर करके दोनोंको संपात वाले करे फिर
ग्राम आदिके कानोंमें गाढ़देय । सर्वत्र प्रत्येक् द्रव्य पर सूक्तकी
आवृत्ति करनी चाहिये ।

तथा अग्निभवनके सन्तापरहित स्थानमें लेट कर इस अनु-
वाकको जपे । सर्वत्र कर्मोंका विकल्प है ।

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—“भौमस्य दृतिकर्माणि ।
पुरोडाशान् अश्मोत्तरान् अन्तः सत्तिषु निदधाति । उभयान्तसम्पा-
तवतः । सभाभागधानेषु च । असन्तापे ज्योतिरायतनस्यैकतोऽ-
न्यं शयानो भौमं जपति” इति (कौशिकसूत्र ५ । २) ॥

तथा भूकम्प होने पर इस अनुवाकका होममें विनियोग होता
है । “अथ यतैतद् भूमिचलो भवति ।—जहाँ पर यह भूकम्प होता
है” इस बातका आरम्भ करके कौशिकने कहा है, कि—“सत्यं
बृहद् इत्येतेनानुवाकेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः ।—सत्यं बृहद्
इस अनुवाकसे आहुति देय, यही उसका प्रायश्चित्त है” । (कौशिक-
सूत्र १३ । ६) ॥

तथा सोमयज्ञके दीक्षित नियमोंमें मूत्र वा पुरीषकी शुद्धिके
लिये लोष्टदानमें इसका विनियोग होता है । इसी बातको वैतान-
सूत्रमें कहा है, कि—“सत्यं बृहद् इति लोष्टं आदाय” । इति (वैतान-
सूत्र ३ । २) ॥

[अ० १ सू० १] ४६१

द्वादशं काण्डम्

७

तथा “पार्थिवीं भूमिकामस्य ।—भूमिकी कामना वालेके लिये पार्थिवी शान्तिको करे” इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित पार्थिवी महाशान्तिमें इस अनुवाकका विनियोग होता है । इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि—सत्यं बृहत् इत्यनुवाकः पार्थिव्याम्” इति (नक्षत्रकल्प १८) ॥

सत्यं बृहद्दत्तमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु

सत्यम् । बृहत् । ऋतम् । उग्रम् । दीक्षा । तपः । ब्रह्म । यज्ञः ।

पृथिवीम् । धारयन्ति ।

सा । नः । भूतस्य । भव्यस्य । पत्नी । उरुम् । लोकम् । पृथिवी ।

नः । कृणोतु ॥ १ ॥

सत्य, बृहत् जल, दीक्षा, उग्र तप, ब्रह्म और यज्ञ ये पृथिवी को धारण करते हैं अर्थात् इनके आधार पर पृथिवी टिकी रहती है, ऐसी यह उत्पन्न हुए और उत्पन्न होने वाले प्राणियोंका पालन करने वाली पृथ्वी देवी हमको विस्तीर्ण स्थान दें ॥ १ ॥

असंवाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्धतः प्रवतः समं बहु
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां

राध्यतां नः ॥ २ ॥

असम्वाधम् । मध्यतः । मानवानाम् । यस्याः । उद्धतः । प्रवतः ।

समम् । बहु ।

८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

नानाऽवीर्याः । ओषधीः । या । बिभर्ति । पृथिवी । नः । प्रथताम् ।

राध्यताम् । नः ॥ २ ॥

जिस पृथिवीके मनुष्योंके मध्यमें असम्बाधरूपसे बहुतसे नीचे को ढलकाव वाले ऊपरको चढ़ाई वाले और सम इस प्रकारके बहुतसे स्थान हैं और जो पृथिवी अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न ओषधियोंको धारण करती है वह पृथिवी हमारे लिये विस्तीर्ण मात्रामें प्राप्त हो और हमारे कृषि आदि मनोरथोंको सिद्ध करे ॥ २ ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपथे

दधातु ॥ ३ ॥

यस्याम् । समुद्रः । उत । सिन्धुः । आपः । यस्याम् । अन्नम् ।

कृष्टयः । सम्बभूवुः ।

यस्याम् । इदम् । जिन्वति । प्राणत् । एजत् । सा । नः । भूमिः ।

पूर्वपेये । दधातु ॥ ३ ॥

जिस पृथिवीमें समुद्र है, नदियें हैं, जल है, और जिसमें खेती तथा अन्न होता है और जिसमें यह चेष्टाशील प्राण वाला जगत् वृत्त होता है वह पृथ्वी हमको जिस स्थलमें फलरूपी रसका पहिले पान होसकता है उस स्थलमें स्थापित करे ॥ ३ ॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः
संबभूवुः ।

या विभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने
दधातु ॥ ४ ॥

यस्याः । चतस्रः । प्रदिशः । पृथिव्याः । यस्याम् । अन्नम् ।
कृष्टयः । सम्भवूयुः ।

या । विभर्ति । बहुधा । प्राणत् । एजत् । सा । नः । भूमिः ।
गोषु । अपि । अन्ने । दधातु ॥ ४ ॥

जिस पृथिवीमें पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिणरूप चार श्रेष्ठ दिशाये
हैं और जिसमें खेती और अन्न होता है और जो चेष्टाशील
प्राणवाले जगत्को अनेक प्रकारसे धारण करती है वह भूमि देवी
हमको गौ और अन्नमें स्थापित करे ॥ ४ ॥

यस्यां पूर्वं पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्य-
वर्तयन् ।

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु
यस्याम् । पूर्वं । पूर्वजनाः । विचक्रिरे । यस्याम् । देवाः । असु-
रान् । अभिऽअवर्तयन् ।

गवाम् । अश्वानाम् । वयसः । च । विस्था । भगम् । वर्चः ।
पृथिवी । नः । दधातु ॥ ५ ॥

जिस पृथ्वीमें परम प्राचीन पूर्वपुरुषोंने अनेक प्रकारके कर्म
किये हैं और जिसमें देवताओंने असुरोंके सन्मुख युद्ध किया है
जो पृथिवी गौ अश्व और पक्षियोंके अनेक प्रकारसे रहनेका

(१०)

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

का स्थान है अर्थात् जिसमें गौ अश्व और पक्षी अनेक रीतिसे रहते हैं, वह पृथिवी हमको धन और तेज देवे ॥ ५ ॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवत्ता जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु

विश्वम्भरा । वसुधानी । प्रतिस्था । हिरण्यवत्ताः । जगतः ।

निवेशनी ।

वैश्वानरम् । बिभ्रती । भूमिः । अग्निम् । इन्द्रऋषभा । द्रविणे ।

नः । दधातु ।

विश्व भरका भरण करने वाली, धनको धारण करने वाली प्राणियोंकी स्थितिकी हेतु है, सुवर्णको (खानरूपमें) वत्तःस्थल में धारण करने वाली है, जगत्को बसाने वाली है, वैश्वानर अग्निको धारण करने वाली है ऐसी वृषभरूप इन्द्रको धारण करने वाली पृथ्वी हमको धन प्रदान करे ॥ ६ ॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्तु वर्चसा ॥ ७ ॥

याम् । रक्षन्ति । अस्वप्नाः । विश्वदानीम् । देवाः । भूमिम् ।

पृथिवीम् । अप्रमादम् ।

सा । नः । मधु । प्रियम् । दुहाम् । अथो इति । उक्तु । वर्चसा ७

शयन न करने वाले देवता जिस पृथ्वीकी सावधानीसे सदा

रक्षा करते हैं, वह हमको मधुर और प्रिय (अन्नादि) को देवे
फिर वर्चः से सम्पन्न करे ॥ ७ ॥

या॒र्णवे॒धिं स॒लिल॒मग्र॒ आसीद् यां मा॒याभि॒रन्व॒चरन्
मनी॒षिणः ।

यस्या॒ हृद॑यं पर॒मे व्यो॑मन्त्स॒त्येना॒वृत॑म॒मृतं॑ पृथि॒व्याः ।

सा नो भूमि॒स्त्विषिं॑ बलं॒ राष्ट्र॑ द॒धातु॑त्तमे ॥ ८ ॥

या । अ॒र्णवे । अ॒धि । स॒लिल॒म् । अ॒ग्रे । आसीत् । याम् । मा॒याभिः ।

अ॒नुऽअ॒चरन् । मनी॒षिणः ।

यस्याः । हृद॑यम् । पर॒मे । वि॒ऽओमन् । स॒त्येन॑ । आ॒वृत॑म् । अ॒मृ-

तम् । पृथि॒व्याः ।

सा । नः । भूमिः । त्विषिम् । बलम् । राष्ट्र॑ । द॒धातु॑ । उत्त॑मे ८

जो पहिले समुद्रमें थी और विद्वान् पुरुष शक्तियोंसे जिस पर
विचरण करते हैं और जिस पृथिवीका अमृतमय हृदय परमव्योम
में प्रतिष्ठित है, वह भूमि हमको उत्तम राष्ट्रमें स्थापित करे तथा
दीप्ति और बल प्रदान करे ॥ ८ ॥

यस्या॒मापः॑ परि॒चराः॑ स॒मानी॑र॒होरा॒त्रे अप्र॑मादं चरन्ति ।

सा नो भूमि॒र्भूरि॑धारा॒ पयो॑ दु॒हाम॒थो उ॒क्षतु॑र्वर्चसा ६

यस्याम् । आपः । परि॒ऽचराः । स॒मानीः । अ॒होरा॒त्रे इति॑ । अप्र॑-

मादम् । चरन्ति ।

सा । नः । भूमिः । भूरिऽधारा । पयः । दुहाम् । अथो इति । उ॒त्त॒तु ।

वर्चसा ॥ ६ ॥

जिसमें चारों ओर विचरण करने वाले जल दिन रातमें एक सी रीतिसे सावधानतापूर्वक बहते रहते हैं, ऐसी भूरिधारा भूमि हमको दुग्धकी समान सारभूत फलको देवे और हमको वर्चसे सम्पन्न करे ॥ ६ ॥

याम॒श्वि॒ना॒वमि॒मातां॑ वि॒ष्णुर्यस्यां॑ वि॒च॒क्रमे॑ ।

इन्द्रो॑ यां च॒क्र आ॒त्मने॑नमि॒त्रां श॒ची॒पतिः॑ ।

सा नो॑ भूमि॒र्वि सृ॒जतां॑ मा॒ता पु॒त्राय॑ मे॒ पयः॑ । १० ।

याम् । अ॒श्विनौ । अ॒मि॒माताम् । वि॒ष्णुः । यस्याम् । वि॒च॒क्रमे॑ ।

इन्द्रः । याम् । च॒क्रे । आ॒त्मने॑ । अ॒नमि॒त्राम् । श॒ची॒पतिः॑ ।

सा । नः । भूमिः । वि । सृ॒जताम् । मा॒ता । पु॒त्राय॑ । मे । पयः १०

अश्विनीकुमारोंने जिसका निर्माण किया है और विष्णुने जिस पर विक्रमण किया है और इन्द्रने जिसको शत्रुरहित करके अपने दशमें किया था ऐसी भूमि, माता जैसे पुत्रको दूध पिलाती है इस प्रकार मेरे लिये दुग्धकी समान सारभूत फलको देवे १० (१)

गिर॑य॒स्ते पर्व॑ता हि॒मव॒न्तो रण्यं॑ ते पृथि॒वि स्यो॒नमस्तु॑ ।

बभुं॑ कृ॒ष्णां रोहि॑णीं वि॒श्वरू॑पां ध्रु॒वां भूमिं॑ पृथि॒वी-

मिन्द्र॑गुप्ताम् ।

अजी॒तो॒हतो॑ अ॒क्षतो॑ध्य॒क्षां पृथि॒वीम॒हम् ॥ ११ ॥

गिरयः । ते । पर्वताः । हिमऽवन्तः । अरण्यम् । ते । पृथिवि ।
स्योनम् । अस्तु ।

बभ्रुम् । कृष्णाम् । रोहिणीम् । विश्वऽरूपाम् । ध्रुवाम् । भूमिम् ।
पृथिवीम् । इन्द्रऽगुप्ताम् ।

अजीतः । अहतः । अक्षतः । अधि । अस्थाम् । पृथिवीम् ।
अहम् ॥ ११ ॥

हे पृथिवी देवि ! तेरे पर्वत, छोटे २ पर्वत, हिमाचलके स्थान,
और वन हमारे लिये सुखदायक हों, मैं बभ्रु कृष्ण, लाल
(आदि) अनेक रूपों वाली, इन्द्रगुप्ता ध्रुवा भूमि पर, अक्षत
अजित और अहत रहता हुआ अधिष्ठित रहूँ ॥ ११ ॥

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः
संबभूवुः ।

तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं
पृथिव्याः ।

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥ १२ ॥

यत् । ते । मध्यम् । पृथिवि । यत् । च । नभ्यम् । याः । ते ।
ऊर्जः । तन्वः । सम्बभूवुः ।

तासु । नः । धेहि । अभि । नः । पवस्व । माता । भूमिः । पुत्रः ।
अहम् । पृथिव्याः ।

प॒र्जन्यः । पि॒ता । सः । ऊं इति । नः । पि॒प॒र्तु ॥ १२ ॥

हे पृथिवि ! जो तेरा मध्यभाग है जो तेरा नाभिभाग है और तेरे शरीरसे जो पुष्टिप्रद पदार्थ प्रकट होते हैं, तुम उसमें मुझको स्थापित करो, हमको पवित्र करो, भूमि माता है और मैं उसका पुत्र हूँ और पर्जन्य-मेघ-मेरा पिता है, वह हमारा पालन करे १२
यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्व-
कर्माणः ।

यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः
पुरस्तात् ।

सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥

यस्याम् । वेदिम् । परिगृह्णन्ति । भूम्याम् । यस्याम् । यज्ञम् ।
तन्वते । विश्वऽकर्माणः ।

यस्याम् । मीयन्ते । स्वरवः । पृथिव्याम् । ऊर्ध्वाः । शुक्राः ।
आहुत्याः । पुरस्तात् ।

सा । नः । भूमिः । वर्धयत् । वर्धमाना ॥ १३ ॥

जिस भूमिमें वेदिको बनाते हैं और संपूर्ण प्रकारके कर्मोंको करने वाले जिसमें यज्ञको करते हैं और आहुति देनेसे पहिले जिस भूमि पर दमकते हुए यज्ञस्तम्भ खड़े किये जाते हैं ऐसी बढ़ती हुई भूमि हमको बढ़ावे ॥ १३ ॥

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽभिदासान्मनसा
यो वधेन ।

तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

यः । नः । द्वेषत् । पृथिवि । यः । पृतन्यात् । यः । अभिदासात् ।
मनसा । यः । वधेन ।

तम् । नः । भूमे । रन्धय । पूर्वकृत्वरि ॥ १४ ॥

हे पृथिवी देवि ! जो हमसे द्वेष करे, जो हमारे लिये सेनाको
एकत्रित करे, जो मनमें हमारा वध करनेका विचार कर हमको
क्षीण करना चाहे, हे पूर्वकृत्वरि भूमे ! उसको आप हमारे लिये
मार डालिये ॥ १४ ॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं विभर्षि द्विपदस्त्वं
चतुष्पदः ।

तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिगतनोति ॥ १५ ॥

त्वत् । जाताः । त्वयि । चरन्ति । मर्त्याः । त्वम् । विभर्षि ।
द्विपदः । त्वम् । चतुःस्पदः ।

तव । इमे । पृथिवि । पञ्च । मानवाः । येभ्यः । ज्योतिः । अमृतम् ।
मर्त्येभ्यः । उद्यन् । सूर्यः । रश्मिभिः । आगतनोति ॥ १५ ॥

हे पृथिवी देवि ! आपके ऊपर उत्पन्न हुए मनुष्य आप पर

ही विचरण करते हैं, तुमको दो पैर वाले मनुष्य आदिका और चार पैर वाले घोड़े आदिका भरण करती हो जिनके लिये उदय होते हुए सूर्यदेव अपनी किरणोंसे ज्योति और आमरणसाधन पदार्थसमूहोंको देते हैं वे पाँच जन भी आपके ही हैं ॥ १५ ॥

तानः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि
मह्यम् ॥ १६ ॥

ताः । नः । प्रजाः । सम् । दुहताम् । सम्अग्राः । वाचः ।
मधु । पृथिवि । धेहि । मह्यम् ॥ १६ ॥

सूर्यकी किरणें हमारे लिये प्रजाओंको, सब प्रकारकी वाणियों को दुहें और हे पृथिवी ! आप मुझको मधुमय पदार्थ दीजिये १६
विश्वस्वमातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा
धृताम् ।

शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥ १७ ॥

विश्वस्वम् । मातरम् । ओषधीनाम् । ध्रुवाम् । भूमिम् । पृथिवीम् ।
धर्मणा । धृताम् ।

शिवाम् । स्योनाम् । अनु । चरेम । विश्वहा ॥ १७ ॥

हम विश्वकी धनरूप, औषधियोंकी उत्पादिका, धर्मसे धृत, ध्रुवा शिवा सुखदायिनी पृथ्वी पर सर्वत्र गमन करते हुए विचरण करें ॥ १७ ॥

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।

सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संहृशि मा नो
द्विज्जत कश्चन ॥ १८ ॥

महत् । सधऽस्थम् । महती । बभूविथ । महान् । वेगः । एजथुः ।
वेपथुः । ते ।

महान् । त्वा । इन्द्रः । रज्जति । अपऽमादम् ।

सा । नः । भूमे । प्र । रोचय । हिरण्यस्यऽइव । सम्ऽहृशि ।
मा । नः । द्विज्जत । कः । चन ॥ १८ ॥

हे भूमे ! तू बड़ी भारी आवासभूमि है, तेरा वेग और कम्पन महान् है, और महान् (पूजनीय) इन्द्र सावधानीसे तेरी रक्षा करते हैं ऐसी हे पृथिवि ! तू हमको इस प्रकार सबका रुचि-कर बना जिस प्रकार सुवर्ण सब दृष्टिमें रोचक होता है, कोई हमसे द्वेष न करे ॥ १८ ॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।

अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ १९ ॥

अग्निः । भूम्याम् । ओषधीषु । अग्निम् । आपः । बिभ्रति । अग्निः ।
अश्मसु ।

अग्निः । अन्तः । पुरुषेषु । गोषु । अश्वेषु । अग्नयः ॥ १९ ॥

(वाष्परूप) अग्नि भूमिमें है, जल (विजलीकेरूपमें) अग्नि को धारण करता है और पत्थरोंमें अग्नि है, पुरुषोंके भीतर (जठराग्निरूपमें) अग्नि है, तथा गौ और घोड़ोंके भीतर भी अग्निये हैं ॥ १९ ॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्विशन्तरिक्षम् ।

अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम् ॥ २० ॥

अग्निः । दिवः । आ । तपति । अग्नेः । देवस्य । उरु । अन्तरिक्षम्

अग्निम् । मर्तासः । इन्धते । हव्यवाहम् । घृतप्रियम् ॥ २० ॥

अग्निदेव (सूर्यरूपमें) स्वर्गमें तपते हैं, यह विशाल अन्तरिक्ष भी अग्नि देवता वाला है, मरणधर्मी प्राणी घृतप्रिय हव्यवाह अग्निको ही प्रज्वलित किया करते हैं ॥ २० ॥ (२)

अग्निवासाः पृथिव्यसितनूस्त्वषामन्तं संशितं मा
कृणोतु ॥ २१ ॥

अग्निवासाः । पृथिवी । असितनूः । त्वषामन्तम् । समुशितम् ।
मा । कृणोतु ॥ २१ ॥

अग्निका जिसमें वास है ऐसी असित (धूम) को जानने वाली पृथिवी मुझको दीप्ति वाला और तीक्ष्ण करे ॥ २१ ॥

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम् ।

भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयान्नेन मर्त्याः ।

सा नो भूमिः प्राणमायुर्दधातु जरदष्टिं मा पृथिवी
कृणोतु ॥ २२ ॥

भूम्याम् । देवेभ्यः । ददति । यज्ञम् । हव्यम् । अरमंकृतम् ।

भूम्याम् । मनुष्याः । जीवन्ति । स्वधया । अन्नेन । मर्त्याः ।

सा । नः । भूमिः । प्राणम् । आयुः । दधातु । जरत् अष्टिम् ।

मा । पृथिवी । कृणोतु ॥ २२ ॥

मनुष्य भूमि पर अलंकृत यज्ञमें देवताओंके निमित्त हव्य दिया करते हैं, और भूमिमें ही मरणधर्मी प्राणी अन्न और जलसे जीवित रहा करते हैं, ऐसी यह भूमि हमको प्राण और आयु देय और यह पृथिवी देवी मुझको बुढ़ापे तक रहने वाला करे २२ यस्ते गन्धः पृथिवि संबभूव यं विभ्रत्योषधयो यमापः । यं गन्धर्वा अप्सरसश्च भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विच्छत कश्चन ॥ २३ ॥

यः । ते । गन्धः । पृथिवि । सम्बभूव । यम् । विभ्रति । ओषधयः । यम् । आपः ।

यम् । गन्धर्वाः । अप्सरसः । च । भेजिरे । तेन । मा । सुरभिम् । कृणु । मा । नः । द्विच्छत । कः । चन ॥ २३ ॥

हे पृथिवि ! जो तेरा गन्ध है, जिस गंधको औषधि और जल धारण करते हैं गंधर्व और अप्सरायें भी तेरे उसी गंधका सेवन करते हैं, उससे तू मुझको सुगन्धित कर, मुझसे कोई द्वेष न करे २३ यस्ते गन्धः पुष्करमाविवेश यं संजभुः सूर्याया विवाहे । अमर्त्याः पृथिवि गन्धमग्रे तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विच्छत कश्चन ॥ २४ ॥

(२०) अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

यः । ते । गन्धः । पुष्करम् । आऽविवेश । यम् । सम्ऽजभ्रुः ।

सूर्यायाः । विऽवाहे ।

अमर्त्याः । पृथिवि । गन्धम् । अग्ने । तेन । मा । सुरभिम् । कृणु ।

मा । नः । द्विजत । कः । चन ॥ २४ ॥

हे पृथिवि ! तुम्हारा जो गन्ध कमलमें प्रविष्ट है, और जिस गन्धको पहिले मरणधर्मी प्राणियोंने सूर्याके विवाहमें धारण किया था, उस गन्धसे हे पृथिवि ! तुम मुझको सुगन्धित करो, कोई मुझसे द्वेष न करे ॥ २४ ॥

यस्ते गन्धः पुरुषेषु स्त्रीषु पुंसु भगो रुचिः ।

यो अश्वेषु वीरेषु यो मृगेषूत हस्तिषु ।

कन्यायां वर्चो यद् भूमे तेनास्माँ अपि सं सृज मा

नो द्विजत कश्चन ॥ २५ ॥

यः । ते । गन्धः । पुरुषेषु । स्त्रीषु । पुम्ऽसु । भगः । रुचिः ।

यः । अश्वेषु वीरेषु । यः । मृगेषु । उत । हस्तिषु ।

कन्यायाम् । वर्चः । यत् । भूमे । तेन । अस्मान् । अपि । सम् ।

सृज । मा । नः । द्विजत । कः । चन ॥ २५ ॥

हे पृथिवी देवि ! तुम्हारा जो गन्ध, भग और रुचि पुरुष और स्त्रियोंमें है, अश्वोंमें है, वीरोंमें हैं, मृगमें है, हाथियोंमें है और कन्यामें जो वर्च है, हे भूमि ! उन सबसे आप मुझको संपृक्त करिये, कोई मुझसे द्वेष न करे ॥ २५ ॥

शि॒ला भू॒मिर॒श्मां पा॒ंसुः सा भू॒मिः सं॒धृता धृ॒ता ।

तस्यै॒ हिर॑ण्यव॒क्षसे॑ पृथि॒व्या अ॒करं॑ नमः ॥ २६ ॥

शि॒ला । भू॒मिः । अ॒श्मा । पा॒ंसुः । सा । भू॒मिः । सम्॒धृता । धृ॒ता ।

तस्यै॒ । हिर॑ण्यव॒क्षसे॑ । पृथि॒व्यै । अ॒करम् । नमः ॥ २६ ॥

शिला भूमि पत्थर और धूल इनके रूपोंको पृथ्वी धारण करती है, इस प्रकार ऐसे रूपोंमें भली प्रकार परिणत हुईसुवर्ण को (खानरूप) वक्षःस्थलमें धारण करने वाली पृथिवीके लिये मैं प्रणाम करता हूँ ॥ २६ ॥

यस्यां॑ वृ॒क्षा वा॒नस्प॒त्या ध्रु॒वास्तिष्ठ॑न्ति वि॒श्वहा॑ ।

पृथि॒वीं वि॒श्वधा॑यसं धृ॒ताम॒च्छाव॑दामसि ॥ २७ ॥

यस्याम् । वृ॒क्षाः । वा॒नस्प॒त्याः । ध्रु॒वाः । तिष्ठ॑न्ति । वि॒श्वहा॑ ।

पृथि॒वीम् । वि॒श्वऽधा॑यसम् । धृ॒ताम् । अ॒च्छाव॑दामसि ॥ २७ ॥

जिस पर वनस्पतिको उत्पन्न करने वाले वृक्ष ध्रुवतासे खड़े रहते हैं ये वृक्ष औषधि आदिके रूपमें सबके पास जाते हैं । वृक्षों को धारण करने वाली धर्मसे धृता ऐसी सबका पोषण करने वाली पृथिवीकी हम अभिमुख होकर स्तुति करते हैं ॥ २७ ॥

उदी॒राणा॑ उ॒तासी॑नास्तिष्ठन्तः प्र॒क्राम॑न्तः ।

प॒द्भ्यां दक्षि॑णस॒व्याभ्यां॑ मा व्यथि॑ष्महि भू॒म्याम् २८

उत्॒ईरा॑णाः । उ॒त । आ॒सी॒ना । तिष्ठ॑न्तः । प्र॒क्राम॑न्तः ।

प॒द्भ्याम् । दक्षि॑ण॒ऽस॒व्याभ्याम् । मा । व्यथि॑ष्महि । भू॒म्याम् २८

हम दायें वायें पैरसे भूमिमें चलते हुए बैठते हुए खड़े होते हुए वा कदम उठाते हुए व्यथा न पावें ॥ २८ ॥

वि॒मृ॒ग्व॒रीं पृ॒थि॒वी॒मा व॒दामि॒ क्ष॒मां भू॒मिं ब्र॒ह्म॒णा वा॒वृ॒धाना॒म् ।

ऊ॒र्ज पु॒ष्टं बि॒भ्र॒तीम॒न्नभा॒गं घृ॒तं त्वा॒भि नि॒ षी॒देम॒ भूमे॒
वि॒मृ॒ग्व॒रीम् । पृ॒थि॒वीम् । आ । व॒दामि॒ । क्ष॒माम् । भू॒मिम् । ब्र॒ह्म॒णा ।
व॒वृ॒धाना॒म् ।

ऊ॒र्जम् । पु॒ष्टम् । बि॒भ्र॒तीम् । अ॒न्नऽभा॒गम् । घृ॒तम् । त्वा । अ॒भि ।
नि । षी॒देम॒ । भू॒मे ॥ २९ ॥

मैं परम पवित्र, मन्त्रशक्तिसे वृद्धि को प्राप्त होती हुई क्षमा भूमि की स्तुति करता हूँ, हे भूमे ! पुष्टिप्रद अन्नरस और बलको धारण करने वाली तुझ पर हम घृतकी आहुति देते हैं ॥ २९ ॥

शु॒द्धा न॒ आप॑स्त॒न्वे च॒रन्तु॒ यो नः॒ सेदु॑रि॒प्रिये॒ तं नि॒
द॒ध्मः ।

प॒वि॒त्रेण॑ पृ॒थि॒वि मा॑म् पु॒नामि॒ ॥ ३० ॥

शु॒द्धाः । नः । आपः । त॒न्वे । च॒रन्तु॒ । यः । नः । सेदुः । अ॒प्रिये ।
तम् । नि । द॒ध्मः ।

प॒वि॒त्रेण॑ । पृ॒थि॒वि । मा । उ॒त् । पु॒ना॒मि ॥ ३० ॥

जो पवित्र जल हैं वे हमारे शरीर पर पड़ें, जो जल हमारे शरीरसे उतर कर चले गए हैं उनको हम शत्रुके लिये देते हैं, हे पृथिवि ! मैं पवित्रसे अपनेको पवित्र करता हूँ ॥ ३० ॥

यास्ते प्राचीं प्रादिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्
याश्च पश्चात् ।

स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पप्तं भुवने शिश्रि-
याणः ॥ ३१ ॥

याः । ते । प्राचीः । प्रादिशः । याः । उदीचीः । याः । ते । भूम ।
अधरात् । याः । च । पश्चात् ।

स्योनाः । ताः । मह्यम् । चरते । भवन्तु । मा । नि । पप्तम् ।
भुवने । शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

हे पृथिवि ! आपकी जो पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ये श्रेष्ठ
दिशाएँ हैं, वे मुझे विचरण करते समय सुख देवें, भुवनमें रहता
हुआ मैं गिरूँ नहीं ॥ ३१ ॥

मा नः पश्चान्मा पुरस्तान्नुदिष्टा मोत्तरादधरादुत ।
स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो वरीयो
यावया वधम् ॥ ३२ ॥

मा । नः । पश्चात् । मा । पुरस्तात् । नुदिष्टाः । मा । उत्तरात् ।
अधरात् उत ।

स्वस्ति । भूमे । नः । भव । मा । विदन् । परिपन्थिनः । वरीयः ।
यावय । वधम् ॥ ३२ ॥

हे भूमि ! तू मेरे पश्चिमकी ओर खड़ी रह, तू मेरे पूर्वकी ओर

खड़ी रह, तू मेरे उत्तरकी ओर खड़ी रह, तू मेरे दक्षिणकी ओर
खड़ी रह अर्थात् मुझको चारों ओर दीवार वाला भवन मिले,
हे भूमे ! तू मुझे कन्याएँ देने वाली हो डॉकूँ मुझको न पा सकें
और विकट वधको मुझसे पृथक् रख ॥ ३२ ॥

यावत् तेभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।

तावन्मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥

यावत् । ते । अभि । विऽपश्यामि । भूमे । सूर्येण । मेदिना ।

तावत् । मे । चक्षुः । मा । मेष्टु । उत्तराम्ऽउत्तराम् । समाम् ३३

जब तक मैं स्नेही सूर्यदेवके सामने तुझको देखता रहूँ तबतक
अगले अगले वर्षोंमें मेरा नेत्र क्षीण न हो ॥ ३३ ॥

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।

उत्तानास्त्वा प्रतीची यत् पृष्ठीभिरधिशेमहे ।

मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ॥ ३४ ॥

यत् । शयानः । परिऽआवर्ते । दक्षिणम् । सव्यम् । अभि । भूमे ।
पार्श्वम् ।

उत्तानाः । त्वा । प्रतीचीम् । यत् । पृष्ठीभिः । अधिऽशेमहे ।

मा । हिंसीः । तत्र । नः । भूमे । सर्वस्य । प्रतिऽशीवरि ॥ ३४ ॥

हे भूमे ! मैं जो शयन करता हुआ जो दाईं बाईं करवट बदलूँ
और उत्तान होकर जो पश्चिमकी ओर पसलियोंसे शयन करूँ हे
सबकी प्रतिशीवरि पृथ्वि ! उस समय तू हमारा संहार न कर ३४

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु ।

मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम् ॥ ३५ ॥

यत् । ते । भूमे । विखनामि । क्षिप्रम् । तत् । अपि । रोहतु ।

मा । ते । मर्म । विमृग्वरि । मा । ते । हृदयम् । अर्पिपम् ॥ ३५ ॥

हे भूमे ! मैं तेरे जिस भागको खोदूँ वह शीघ्र ही भर जावे
हे विमृग्वरि ! मैंने तेरे मर्मस्थानको वा हृदयको पूरण नहीं किया है ३५

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।

ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्

ग्रीष्मः । ते । भूमे । वर्षाणि । शरत् । हेमन्तः । शिशिरः । वसन्तः ।

ऋतवः । ते । विहिताः । हायनीः । अहोरात्रे इति । पृथिवि ।

नः । दुहाताम् ॥ ३६ ॥

हे भूमे ! ग्रीष्म वर्षा शरद् हेमन्त शिशिर और वसन्त ऋतु
तथा दिन रात और वर्ष ये सब तुम्हारे लिये विहित हैं ये हमको
(फल) दें ॥ ३६ ॥

यापं सर्पं विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नमयो ये
अप्स्वन्तः ।

परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम्
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥

या । अप । सर्पम् । विजमाना । विऽमृग्वरी । यस्याम् । आसन् ।

अमयः । ये । अप्ऽसु । अन्तः ।

परा । दस्युन् । ददती । देवऽपीयून् । इन्द्रम् । वृणाना । पृथिवी ।
न । वृत्रम् ।

शक्राय । दध्रे । वृषभाय । वृष्णे ॥ ३७ ॥

जो पवित्रशीला पृथ्वी सर्पके हिलने पर काँपा करती है, जो अग्नि वैद्युतरूपमें जलमें प्रविष्ट है वही अग्नि जिसमें रहता है जो पृथिवी देवहिंसक डाँकुओंको फल नहीं देती है जिसने इन्द्रका वरण किया था वृत्रासुरका वरण नहीं किया था, जो पृथिवी वर्षक धर्मात्मा समर्थ पुरुषके वशमें रहती है ॥ ३७ ॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते ।

ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भि साम्ना यजुर्विदः ।

युज्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे ॥ ३८ ॥

यस्याम् । सदोहविर्धाने इति सदऽहविर्धाने । यूपः । यस्याम् ।
निऽमीयते ।

ब्रह्माणः । यस्याम् । अर्चन्ति । ऋक्ऽभिः । साम्ना । यजुऽविदः ।

युज्यन्ते । यस्याम् । ऋत्विजः । सोमम् । इन्द्राय । पातवे । ॥ ३८ ॥

जिस भूमि पर हवि देनेके लिये यज्ञमण्डप बनाया जाता है, जिसमें यूप खड़े किये जाते हैं, जिस भूमि पर ब्राह्मण ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदके मन्त्रोंसे पूजा करते हैं और जिसमें ऋत्विज इन्द्रको सोम पिलानेके कार्यमें लगते हैं ॥ ३८ ॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः ।

सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३६ ॥

यस्याम् । पूर्वे । भूतकृतः । ऋषयः । गाः । उद् । आनृचुः ।

सप्त । सत्रेण । वेधसः । यज्ञेन । तपसा । सह ॥ ३६ ॥

जिस भूमि पर परमप्राचीन भूतोंकी रचना करने वाले ऋषियों ने सप्तसत्र ब्रह्मयज्ञ और तपके साथ स्तुतिकी वाणियोंका उच्चारण करके पूजाकी थी ॥ ३६ ॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे ।

भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

सा । नः । भूमिः । आ । दिशतु । यत् । धनम् । कामयामहे ।

भगः । अनुप्रयुङ्क्ताम् । इन्द्रः । एतु । पुरःगवः ॥ ४० ॥

वह भूमि हमको उस धनको देवे, कि-जिसकी हम कामना कर रहे हैं । भाग्य हमको प्रेरणा करे इन्द्र आगे २ चलें ॥ ४० ॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।

युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।

सा नो भूमिः प्र एततां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी

कृणोतु ॥ ४१ ॥

यस्याम् । गायन्ति । नृत्यन्ति । भूम्याम् । मर्त्याः । विऽऐलबाः ।

युध्यन्ते । यस्याम् । आऽक्रन्दः । यस्याम् । वदति । दुन्दुभिः ।

सा । नः । भूमिः । प्र । एतताम् । सपत्नान् । असपत्नम् । मा ।

पृथिवी । कृणोतु ॥ ४१ ॥

जिस भूमि पर नेत्ररोगरहित मनुष्य गाते हैं और नाचते हैं और जिस पर युद्ध करते हैं, जिस पर रोवा पिटाई मचती है और जिस पर दुन्दुभि बजती है, वह पृथ्वी मेरे शत्रुओंको खदेड़ देय इस प्रकार यह पृथिवी मुझको शत्रुरहित कर देय ॥ ४१ ॥

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः ।

भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोस्तु वर्षमेदसे ॥ ४२ ॥

यस्याम् । अन्नम् । व्रीहिऽयवौ । यस्याः । इमाः । पञ्च । कृष्टयः ।

भूम्यै । पर्जन्यऽपत्न्यै । नमः । अस्तु । वर्षऽमेदसे ॥ ४२ ॥

जिस पृथ्वीमें धान और जौ होते हैं, ये पाँच खेतियें जिसकी हैं, उस वर्षारूपी मेद वाली पर्जन्यके द्वारा फालिता पृथ्वीके लिये प्रणाम है ॥ ४२ ॥

यस्याः पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या विकुर्वते ।

प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भामाशामाशां रण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥

यस्याः । पुरः । देवऽकृताः । क्षेत्रे । यस्याः । विऽकुर्वते ।

प्रजाऽपतिः । पृथिवीम् । विश्वऽगर्भाम् । आशाम् । आशाम् । रण्याम् । नः । कृणोतु ॥ ४३ ॥

जिस पृथिवीके सामने क्षेत्रमें देवताओंके निर्मित हिंसक पशु अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करते रहते हैं, प्रजापति देवता, उस समस्त विश्वको अपने भीतर धारण करने वाली पृथ्वीकी प्रत्येक दिशा को हमारे लिये रमणीय बनावें ॥ ४३ ॥

निधिं विभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी
ददातु मे ।

वसूनि ना वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना
निधिम् । विभ्रती । बहुधा । गुहा । वसु । मणिम् । हिरण्यम् ।
पृथिवी । ददातु । मे ।

वसूनि । नः । वसुदा । रासमाना । देवी । दधातु । सुमनस्य-
माना ॥ ४४ ॥

अनेक स्थलोंमें परम गुप्त भावसे निधियोंको धारण करने वाली,
पृथिवी देवी मुझको वसु मणि और सुवर्ण देवे । धनदात्री पृथिवी
देवी मनमें हम पर प्रसन्न होकर वरदान देती हुई हमको वसु
मणि और सुवर्ण देवे ॥ ४४ ॥

जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी
यथौकसम् ।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती
जनम् । विभ्रती । बहुधा । विवाचसम् । नानाधर्माणम् । पृथिवी ।
यथाऽओकसम् ।

सहस्रम् । धाराः । द्रविणस्य । मे । दुहाम् । ध्रुवाऽव । धेनुः ।
अनपस्फुरन्ती ॥ ४५ ॥

स्थानके अनुसार अनेक प्रकारके धर्म वाले और अनेक प्रकार
की भाषा बोलने वाले मनुष्योंको धारण करने वाली पृथिवी

३० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

देवी, न हिलने वाली धेनुकी समान मेरे निमित्त धनकी सहस्रों धाराओंको दुहे ॥ ४५ ॥

यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंशमा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये ।

क्रिमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नः सर्प-
न्मोप सृपद् यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४६ ॥

यः । ते । सर्पः । वृश्चिकः । तृष्टदंशमा । हेमन्तजब्धः । भृमलः ।
गुहा । शये ।

क्रिमिः । जिन्वत् । पृथिवि । यत्स्यत् । एजति । प्रावृषि । तत् ।
नः । सर्पत् । मा । उप । सृपत् । यत् । शिवम् । तेन । नः । मृड ४६

हे पृथिवी देवि ! जो तुममें सर्प हैं और जिनका दंशन तृषा लगाने वाला है ऐसे प्राणी हैं, तथा विच्छू हैं और जो भृमल हेमन्त ऋतुमें डंकको नमा कर गुहामें पड़ा रहता है ये सब वर्षा ऋतुमें प्रसन्नतापूर्वक घूमते हुए प्राणी तथा जो रेंगने वाले (विषैले प्राणी हैं) वे मेरे पास न आवें, जो कल्याण करने वाला प्राणि-समूह है वह मेरे पास आवे उससे आप मुझको सुख दीजिये ४६
ये ते पन्थानो बहवो जनायना रथस्य वर्तमानसश्च
यातवे ।

यैः संचरन्त्युभये भद्रपापास्तं पन्थानं जयेमानमित्र-
मतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥ ४७ ॥

ये । ते । पन्थानः । बहवः । जनऽअयनाः । रथस्य । वर्त्म ।

अनसा । च । यातवे ।

यैः । सम्स्चरन्ति । उभये । भद्रऽपापाः । तम् । पन्थानम् । जयेम् ।

अनमित्रम् । अतस्करम् । यत् । शिवम् । तेन । नः । मृड ॥४७॥

हे पृथिवी देवि ! मनुष्योंके आने जानेके जो तेरे मार्ग हैं, रथ और गाड़ियोंके चलनेका जो तेरा मार्ग है, पुण्यात्मा और पापी ये दोनों जिन मार्गोंसे विचरण करते हैं, जो कल्याणप्रदमार्ग है उस चोररहित और शत्रुरहित मार्गको हम प्राप्त करें, उस मार्गसे आप हमको सुख दीजिये ॥ ४७ ॥

मल्वं विभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।

वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय

मल्वम् । विभ्रती । गुरुभृत् । भद्रपापस्य । निधनम् । तितिक्षुः ।

वराहेण । पृथिवी । सम्स्विदाना । सूकराय । वि । जिहीते । मृगाय

शत्रुको भी धारण करने वाली, पुण्य और पाप करने वालेके शवको सहने वाली, बड़े २ पदार्थोंको धारण करने वाली और वराह जिसको ढूँढ रहे थे वह पृथिवी वराहको ही प्राप्त हुई थी ४८
ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः सिंहा व्याघ्राः

पुरुषादश्चरन्ति ।

उलं वृकं पृथिवि दुच्छुनामित ऋक्षीकां रक्षो अप

बाधयास्मत् ॥ ४६ ॥

ये । ते । आ॒र॒ण्याः । प॒श॒वः । मृ॒गाः । व॒ने । हि॒ताः । सि॒हाः ।

व्याघ्राः । पु॒रुष॑ऽअ॒दः । च॒र॒न्ति ।

उ॒लम् । वृ॒कम् । पृ॒थि॒वि । दु॒च्छु॒नाम् । इ॒तः । ऋ॒क्षी॒काम् । र॒क्षः ।

अप । बा॒ध॒य । अ॒स्मत् ॥ ४६ ॥

जो जङ्गली पशु पुरुषभक्तक सिंह व्याघ्र आदि वनमें विचरण करते हैं उनको उल नामक पशुको, भेड़ियेको ऋक्षीकाको और राक्षसोंको यहाँ हमारे पाससे दूर करके बाधित करिये ॥ ४६ ॥

ये गन्ध॒र्वा अप्स॒रसो॑ ये चा॒रायाः॑ कि॒मी॒दिनः॑ ।

पि॒शा॒चान्त्स॒र्वा र॒क्षांसि॑ तान्॒स्मद् भू॒मे याव॑य ५०

ये । गन्ध॒र्वाः । अप्स॒रसः॑ । ये । च । अ॒रायाः॑ । कि॒मी॒दिनः॑ ।

पि॒शा॒चान् । स॒र्वा । र॒क्षांसि॑ । तान् । अ॒स्मत् । भू॒मे । या॒व॒य ५०

हे भूमे ! जो गंधर्व और अप्सरायें हैं और जो दानप्रतिबंधक राक्षस हैं, उनको और सकल पिशाच तथा राक्षसोंको हमसे अलग कर ॥ ५० ॥

यां द्वि॒पादः॑ प॒क्षिणः॑ संप॒त॒न्ति हं॒साः सु॒पर्णाः॑ शकु॒ना
वयांसि॑ ।

यस्यां वा॒तो मा॒तरि॒श्वेय॑ते र॒क्षांसि॑ कृण्वंश्च्यावयंश्च

वृ॒क्षान् ।

वा॒तस्य॑ प्र॒वामु॑प॒वाम॑नु वा॒त्यर्चिः॑ ॥ ५१ ॥

याम् । द्वि॒ष्पादः । प॒क्षिणः । स॒म्स्प॑तन्ति । हं॒साः । सु॒स्प॑र्णाः ।

श॒कु॒नाः । व॒यांसि॑ ।

यस्या॑म् । वा॒तः । मा॒तरि॑श्वाः । ई॒य॒ते । रजा॑ंसि । कृ॒ए॒वन् । च्य॒व॒यन् ।

च । वृ॒क्षान् ।

वा॒तस्य॑ । प्र॒श्वाम् । उ॒प॒श्वाम् । अ॒नु । वा॒ति । अ॒र्चिः ॥ ५१ ॥

जिस पृथ्वी पर दो पैर वाले हंस गीध कौए आदि पक्षी विचरण करते हैं जिस पर मातरिश्वा वायु धूल उड़ाता हुआ और वृक्षोंको गिराता हुआ चलता है और वायुके श्रेष्ठतासे चलने पर वा समीपमें चलने पर अग्निदेव चलते हैं ॥ ५१ ॥

यस्यां॑ कृ॒ष्णम॑रु॒णं च॒ संहि॑ते अ॒हो॒रा॒त्रे वि॒हि॒ते भू॒म्या॑मधि॒
व॒र्षेण॑ भू॒मिः पृ॒थि॒वी वृ॒ता वृ॒ता सा नो॑ दधातु भ॒द्रया॑ प्रि॒ये

धा॒म॒नि॒धा॒मनि॑ ॥ ५२ ॥

यस्या॑म् । कृ॒ष्णम् । अ॒रु॒णम् । च । संहि॑ते इति॒ सम्॒संहि॑ते ।

अ॒हो॒रा॒त्रे इति॑ । वि॒हि॒ते इति॑ वि॒संहि॑ते । भू॒म्या॑म् । अधि॑ ।

व॒र्षेण॑ । भू॒मिः । पृ॒थि॒वी । वृ॒ता । आ॒वृ॒ता । सा । नः । द॒धातु॑ ।

भ॒द्रया॑ । प्रि॒ये । धा॒म॒नि॒धा॒मनि॑ ॥ ५२ ॥

जिस पृथ्वीके ऊपर काले और प्रातःकालके समय लाल दिन रात्रि मिले हुए स्थित रहते हैं। और जो पृथिवी वर्षासे व्याप्त होती रहती है, वह पृथिवी हमको अपनी कल्याणमयी चित्तवृत्तिसे प्रिय-धाममें स्थापित करे ॥ ५२ ॥

द्यौश्च॑ म॒ इदं॑ पृ॒थि॒वी चान्तरि॑क्षं च मे व्यचः॑ ।

अ॒ग्निः सूर्य॑ आपो॑ मे॒धां वि॒श्वे दे॒वाश्च॑ सं ददुः ५३

द्यौः । च । मे । इदम् । पृथिवी । च । अन्तरिक्षम् । च । मे ।

व्यचः ।

अग्निः । सूर्यः । आपः । मेधाम् । विश्वे । देवाः । च । सम् । ददुः

द्यौने पृथिवीने अन्तरिक्षने अग्निने सूर्यने जलने मेधाने तथा
समस्त देवताओंने मुझको अनेक प्रकारसे चलनेकी शक्ति दी है ५३

अ॒हम॑स्मि॒ सह॑मान॒ उत्त॑रो नाम॒ भूम्या॑म् ।

अ॒भीषा॑डस्मि॒ विश्वा॑षाडाशा॒माशां॑ वि॒षास॑हिः ॥ ५४ ॥

अहम् । अस्मि । सहमानः । उत्तरः । नाम । भूम्याम् ।

अभीषाट् । अस्मि । विश्वाषाट् । आशाम्ऽआशाम् । विऽससहिः

मैं शत्रुओंको तिरस्कृत करने वाला पृथ्वीमें उत्तम रूपमें प्रसिद्ध
हूँ, मैं अभिमुख जाकर शत्रुओंका तिरस्कार करने वाला होऊँ,
सब प्रकारसे तिरस्कार करने वाला होऊँ, मैं प्रत्येक दिशाके शत्रु
को भली प्रकार दबा दूँ ॥ ५४ ॥

अ॒दो यद् दे॒वि प्रथ॑माना पु॒रस्ता॑द् दे॒वेरु॒क्ता व्यस॑र्पो
म॒हित्व॑म् ।

आ त्वां सु॒भूतम॑विशत् त॒दानी॑मकल्पयथाः प्र॒दिश॑-
श्चत॑स्रः ॥ ५५ ॥

अदः । यत् । देवि । प्रथमाना । पुरस्तात् । देवैः । उक्ता ।

विऽअसर्पः । महिऽत्वम् ।

आ । त्वा । सुऽभूतम् । अविशत् । तदानीम् । अकल्पयथाः ।

प्रऽदिशः । चतस्रः ॥ ५५ ॥

हे देवि ! पहिले विस्तृत होते समय देवताओंने तुमसे कहा था, कि—हे महि ! तुम विस्तृत होओ, उस समय तुममें सुन्दर भूत-समूहने प्रवेश किया था और उसी समय तुमने चार श्रेष्ठ दिशाओं की कल्पनाकी थी ॥ ५५ ॥

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्याम् ।

ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥

ये । ग्रामाः । यत् । अरण्यम् । याः । सभाः । अधि । भूम्याम् ।

ये । समूऽग्रामाः । समूऽइतयः । तेषु । चारु । वदेम । ते ॥ ५६ ॥

जो भूमि पर ग्राम हैं, जो वन हैं, और जो सभाएँ हैं, जो संग्राम होते हैं, जो युद्धमन्त्रणाएँ होती हैं, उन सबमें हे पृथिव ! हम सुन्दरतापूर्वक तेरी स्तुति करते हैं ॥ ५६ ॥

अश्वं इव रजो दुधुवे वि तान् जनान् य आक्षिपन्
पृथिवीं यादजायत ।

मन्द्राग्रेत्वंरी भुवनस्य गोपा वनस्पतीनां गृभिरोष-
धीनाम् ॥ ५७ ॥

अश्वः॥ इव । रजः दुधुवे । वि । तान् । जनान् । ये । आऽअक्षियन् ।

पृथिवीम् । यात् । अजायत ।

मन्द्रा । अग्रऽइत्वरि । भुवनस्य । गोपाः । वनस्पतीनाम् । गृभिः ।

ओषधीनाम् ॥ ५७ ॥

जो पदार्थ पृथ्वीमें उत्पन्न हुए हैं वे पदार्थ जो पृथ्वी पर निवास करते हैं उन पर घोड़ेकी समान धूल उड़ाते हैं, यह पृथिवी मंद्रा है, इत्वरि है, ओषधि और वनस्पतियोंके (रोगनिवारक अभय-प्रद) वचनोंसे भुवनका पालन करती है ॥ ५७ ॥

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि यदीक्षे तद् वनन्ति मा
त्विषीमानस्मि जूतिमानवान्यान् हन्मि दोधतः ५८

यत् । वदामि । मधुमत् । तत् । वदामि । यत् । ईक्षे । तत् ।
वनन्ति । मा ।

त्विषीमान् । अस्मि । जूतिमान् । अव । अन्यान् । हन्मि ।

दोधतः ॥ ५८ ॥

मैं जो कुछ उच्चारण करूँ वह मधुरतासे भरा हुआ हो, जिसको मैं देखूँ वह मेरा सेवन करने लगे । मैं दीप्ति वाला रहूँ, वेग वाला रहूँ दूसरोंकी रक्षा करूँ और जो मुझको कँपावें उनको मैं मार डालूँ शान्तिवा सुरभिः स्योना कीलालोद्धनी पयस्वती ।

भूमिरधि ब्रवीतु मे पृथिवी पयसा सह ॥ ५९ ॥

शान्तिऽवा । सुरभिः । स्योना । कीलास्तऽउद्धनी । पयस्वती ।

भूमिः । अधि । ब्रवीतु । मे । पृथिवी । पयसा । सह ॥ ५६ ॥

शान्तिपथी सुखदायिनी अन्नके ऐन वाली पयस्वती पृथिवी
अपने दुग्धकी समान सार पदार्थके साथ मेरे विषयमें पक्षपात
भरा वचन कहे ॥ ५६ ॥

यामन्वैच्छच्छविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविभोगे अभवन्मातृ-
मद्भयः ॥ ६० ॥

याम् । अनुऽऐच्छत् । हविषा । विश्वऽकर्मा । अन्तः । अर्णवे ।
रजसि । प्रऽविष्टाम् ।

भुजिष्यम् । पात्रम् । निऽहितम् । गुहा । यत् । आविः । भोगे ।
अभवत् । मातृमत्ऽभयः ॥ ६० ॥

जलके भीतर प्रविष्ट हो रजोगुणी राक्षसोंके चकरमें पड़ी हुई
जिस पृथिवीको सकल कर्म करने वाले विश्वकर्मा-परमात्माने हवि
से प्राप्त करनेकी इच्छा की थी जो भुजिष्य पात्र गुप्त रहता है वह
माता वालोंके लिये भोगके समय प्रकट होता है ॥ ६० ॥

त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना ।
यत् तं ऊनं तत् त आ पूरयाति प्रजापतिः प्रथमजा
ऋतस्य ॥ ६१ ॥

त्वम् । असि । आऽवपनी । जनानाम् । अदितिः । कामऽदुघा ।
पप्रथाना ।

यत् । ते । ऊनम् । तत् । ते । आ । पूरयाति । प्रजाऽपतिः ।

प्रथमऽजाः । ऋतस्य ॥ ६१ ॥

तू इस संसारकी क्षेत्ररूप है, अदीना है, मनोरथोंको पूर्ण करने वाली है, विस्तृत है, हे पृथिवि ! तेरा जो भाग कम होजाता है उसको ब्रह्मसे प्रथम प्रकट हुए प्रजापति पूर्ण कर देते हैं ॥ ६१ ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि

प्रसूताः ।

दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम

उपस्थाः । ते । अनमीवाः । अयक्ष्मा । अस्मभ्यम् । सन्तु । पृथिवि ।

प्रसूताः ।

दीर्घम् । नः । आयुः । प्रतिबुध्यमानाः । वयम् । तुभ्यम् । बलिऽहृतः ।

स्याम ॥ ६२ ॥

तेरे क्रोडरूप प्रकट हुए द्वीप हमारे लिये रोगरहित और विशेषतः यक्ष्मारोगसे रहित रहें, हम अपनी दीर्घ आयुको समझते हुए तेरे लिये बलि देने वाले बनें रहें ॥ ६२ ॥

भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ।

संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ६३

भूमे । मातः । नि । धेहि । मा । भद्रया । सुऽप्रतिस्थितम् ।

सम्विदाना । दिवा । कवे । श्रियाम् । मा । धेहि । भूत्याम् ६३

प्रथमेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

हे मातः भूमि ! मुझको कल्याणकारिणी प्रतिष्ठासे सुप्रतिष्ठित करके स्थापित करिये, हे कवे ! मुझे स्वर्ग प्राप्त कराइये तथा मुझको लक्ष्मी और विभूतिमें स्थापित करिये ॥ ६३ ॥ (६)

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त और प्रथम अनुवाक समाप्त (४२१)

क्रव्याद् नाम योऽग्निस्तद्विषयं सूक्तम् एतत् । त्रयोऽग्नयो भवन्ति । आमात्क्रव्याद्धव्यवाह इति । आमम् अपक्वम् अचीति आमाद् लौकिकोऽग्निः “येनेदं मनुष्याः पक्त्वाश्नन्ति” इति शतपथे [१. २. १. ४] । क्रव्यं शवदाहे मांसम् अचीति क्रव्याद् घोरस्वरूपश्चिताग्निः पित्र्यः “येन पुरुषं दहन्ति स क्रव्याद्” इति तत्रैव । हव्यं पक्वं देवयजन आहुतम् अन्नम् अचीति वा देवान् प्रति तदन्नं वहतीति वा समिद्धो हव्यवाट् यागयोग्योऽग्निः । आमात्क्रव्यादौ यागयोग्यौ न भवतः । अत्र क्रव्यादं घोरस्वरूपम् अग्निम् अनुलक्ष्य सूक्तं प्रवर्तते । न केवलं क्रव्याच्छवदाहे शवमांसम् अग्निं अपि तु घोरत्वाद् यक्ष्मादीन् बहून् रोगान् मृत्युं च बहुविधम् आवहति । तथैव नानापत्कारको भवति । तास्ता आपदस्तास्तान् रोगांस्तं च मृत्युं सूक्तकर्ता प्रार्थनया परिहारयति । अपि च क्रव्यादो यद् घोरं रूपं तेन स शत्रून् मारयित्विति प्रार्थयते । सर्वाणि पापानि क्रव्याद् अपहरत्वित्याशास्ते । तथैव क्रव्यादो नाशाय गार्हपत्यस्याग्नेः प्रार्थना । क्रव्यादोग्नेर्ये पयुर्पासकास्ते नाशमाप्नुवन्तीत्याह ॥

सांप्रदायिकाः क्रव्याच्छमने विनियुज्यते । क्रव्यादं शमयिष्यन् क्रव्यं च्छमनकामः कौशिकेनोक्तप्रकारेण कर्म करोति । तत् सर्वं “पित्र्यमग्निं शमयिष्यन् ज्येष्ठस्य चाविभक्तिनः” इत्यादि नवमेध्याये चतुर्थकण्डिकां यावत् प्रपञ्चितं द्रष्टव्यम् ॥

यह सूक्त क्रव्याद् नामक अग्निपरक है । आमाद् क्रव्याद् और हव्यवाट् भेदसे अग्निके तीन भेद हैं । जो अपक्व वस्तुका भक्षण करता है वह लौकिक-अग्नि आमाद् कहलाता है । शत-

पथब्राह्मण १ । २ । १ । ४ में भी कहा है, कि—“येनेदं मनुष्याः पक्त्वाश्नन्ति ।—जिससे पकाकर पुरुष भक्षण करते हैं (वह आमाद् अग्निकहलाता है)” ॥ शवदाहमें मांस क्रव्यादा भक्षण करने वाला वह घोररूप चिताकी अग्नि क्रव्याद् कहलाता है ॥ इसी बात को शतपथब्राह्मणमें तहाँ ही कहा है, कि—“येन पुरुषं दहन्ति स क्रव्याद् ॥” हव्य पक्व देवयजनमें अधुत अन्नका भक्षण करने वाला वा देवताओंको उस हव्यको पहुँचाने वाला अग्नि हव्यवाट् कहलाता है यह हव्यवाट् अग्नि यागके योग्य होता है । आत्मात् और क्रव्याद् अग्नि यागके योग्य नहीं होते हैं । यहाँ घोरस्वरूप क्रव्याद् अग्निको लक्ष्यमें रख कर सूक्त प्रवर्तित होता है । क्रव्याद् अग्नि शवदाहके समय मांसका ही भक्षण नहीं करता है, किन्तु घोर होनेसे यक्ष्मा आदि बहुतसे रोगोंको और अनेक प्रकारसे मृत्युको भी देता है तथा अनेक प्रकारकी आपत्तियोंको देता है । उन आपत्ति रोग और मृत्युको सूक्तकर्ता प्रार्थनाके द्वारा दूर कराता है । और यह प्रार्थना करता है, कि—“क्रव्याद्का जो घोररूप है वह शत्रुओंका संहार करे” और यह आशीर्वाद माँगता है, कि—क्रव्याद् सब पापोंको दूर करे” तथा क्रव्याद्का नाश करनेके लिये गार्हपत्य अग्निकी प्रार्थना की है । और यह कहा है, कि—जो क्रव्याद् अग्निके उपासक हैं वे नाशको प्राप्त होजाते हैं ।

साम्प्रदायिक पुरुष इसका क्रव्याच्छमनमें विनियोग करते हैं । क्रव्याद् अग्निको शमन करना चाहने वाला क्रव्याद् अग्निको शान्त करना चाहने वाला कौशिककी कही हुई रीतिके अनुसार काम करे । इस सबका नवम अध्यायकी चतुर्थकण्डिकामें “पित्र्यमग्निं शमयिष्यन् ज्येष्ठस्य चाविभक्तिनः” में वर्णन है ।

नडमा रोह न ते अत्र लोक इदं सीसं भागधेयं त एहि ।

यो गोषु यक्ष्मः पुरुषेषु यक्ष्मस्तेन त्वं साकमधराङ्
परोहि ॥ १ ॥

नडम् । आ । रोह । न । ते । अत्र । लोकः । इदम् । सीसम् ।
भागऽधेयम् । ते । आ । इहि ।

यः । गोषु । यक्ष्मः । पुरुषेषु । यक्ष्मः । तेन । त्वम् । साकम् ।
अधराङ् । परा । इहि ॥ १ ॥

हे क्रव्याद् अग्ने ! तू चटाई बनानेकी घास नड पर चढ़, यहाँ
तेरा स्थान नहीं है, यह सीसा तेरा भाग है तू यहाँ आ । जो
यक्ष्मा रोग गौओंमें है, जो यक्ष्मा रोग पुरुषोंमें है, उसके साथ
तू निकल कर दूर चला जा ॥ १ ॥

अघशंसदुःशंसाभ्यां करेणानुकरेण च ।

यक्ष्मं च सर्वं तेनेतो मृत्युं च निरजामसि ॥ २ ॥

अघशंसदुःशंसाभ्याम् । करेण । अनुऽकरेण । च ।

यक्ष्मम् । च । सर्वम् । तेन । इतः । मृत्युम् । च । निः । अजामसि २

मैं पापोंको नष्ट करने वाले और दुर्भावोंको नष्ट करने वाले
कर और अनुकरसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ और उसके द्वारा
मृत्युको भी दूर फेंकता हूँ ॥ २ ॥

निरितो मृत्युं निर्ऋतिं निररातिमजामसि ।

यो नो द्देष्टि तमच्छमे अक्रव्याद् यमुं द्विष्मस्तमु ते
प्र सुवामसि ॥ ३ ॥

निः । इतः । मृत्युम् । निःऽऋतिम् । निः । अरातिम् । अजामसि ।

यः । नः । द्वेष्टि । तम् । अद्धि । अग्ने । अक्रव्यऽअत् । यम् ।

ऊं इति । द्विष्मः । तम् । ऊं इति । ते । प्र । सुवामसि ॥ ३ ॥

हे अक्रव्याद् अग्ने ! हम यहाँसे मृत्युको दूर करते हैं पापदेवता निऋतिको दूर भगाते हैं, शत्रुको दूर भगाते हैं, हे अग्ने ! जो हमसे द्वेष करता है उसका तू भक्षण कर हम जिससे द्वेष करते हैं उसको हम तेरे लिये प्रेरणा करते हैं ॥ ३ ॥

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशा-
न्योकाः ।

तं माषाज्यं कृत्वा प्र हिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदो-
प्यग्नीन् ॥ ४ ॥

यदि । अग्निः । क्रव्यऽअत् । यदि । वा । व्याघ्रः । इमम् । गोऽ-
स्थम् । प्रऽविवेश । अनिऽओकाः ।

तम् । माषऽआज्यम् । कृत्वा । प्र । हिणोमि । दूरम् । सः ।

गच्छतु । अप्सुऽसदः । अपि । अग्नीन् ॥ ४ ॥

यदि क्रव्याद् अग्निने वा कच्चे मांसका भक्षण करने वाले व्याघ्रने कहीं और स्थान न पानेसे यहाँ गोष्ठमें प्रवेश किया है, तो मैं उसको माषाज्य करके दूर फेंकता हूँ, वह जलमें रहने वाली अग्नियोंको प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

यत् त्वा क्रुद्धाः प्रचकुर्मन्युना पुरुषे मृते ।

सुकल्पमग्ने तत् त्वया पुनस्त्वोद्दीपयामसि ॥ ५ ॥

यत् । त्वा । क्रुद्धाः । प्रऽचक्रुः । मन्युना । पुरुषे । मृते ।

सुऽकल्पम् । अग्ने । तत् । त्वया । पुनः । त्वा । उत् । दीपयामसि ५

पुरुषके मरने पर क्रोधमें भरे प्राणियोंने दीनतामें भर कर जो तुझको किया था, वह काम भली भाँति पूर्ण होगया सो हम अब फिर तुझको तुझसे ही उद्दीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्ने ।

पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद् दीर्घायुत्वाय शतशारदाय

पुनः । त्वा । आदित्याः । रुद्राः । वसवः । पुनः । ब्रह्मा । वसुऽ-
नीतिः । अग्ने ।

पुनः । त्वा । ब्रह्मणः । पतिः । आ । अथात् । दीर्घायुऽत्वाय । शतऽ-
शारदाय ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! आदित्य रुद्र वसु ब्रह्मा, वसुनीति और ब्रह्मण-
स्पतिने तुझको सौ वर्षकी दीर्घायु पानेके लिये फिर स्थापित
किया था ॥ ६ ॥

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश नो गृहमिमं पश्यन्नितरं
जातेवेदसम् ।

तं हरामि पितृयज्ञाय दूरं स घर्ममिन्धां परमे सधस्थे

यः । अग्निः । क्रव्यऽअत् । प्रऽविवेश । नः । गृहम् । इमम् ।

पश्यन् । इतरम् । जातऽवेदसम् ।

तम्। ह॒रामि॑ । पि॒तृ॒ऽय॒ज्ञाय॑ दूरम् । सः । घ॒र्मम् । इ॒न्धाम् । प॒रमे॑ । स॒धऽ-
स्थे॑ ॥ ७ ॥

यदि क्रव्याद् अग्निने दूसरे अग्निके देखनेके लिये हमारे इस घरमें प्रवेश किया है तो मैं उसको पितृयज्ञ करनेके लिये दूर निकालता हूँ, वह एक साथ रहनेके स्थान परमव्योममें घर्मको प्रदीप्त करे ॥ ७ ॥

क्र॒व्याद॑म॒ग्निं प्र॑ हि॒णोमि॑ दूरं॒ यमरा॑ज्ञो गच्छतु रिप्र॒वाहः॑ ।
इ॒हाय॑मितरो जा॒तवे॑द दे॒वो दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यं वह॑तु प्र॒जानन्

क्र॒व्यऽअ॑दम् । अ॒ग्निम् । प्र । हि॒णोमि॑ । दूरम् । य॒मऽरा॑ज्ञः ।
ग॒च्छतु॑ । रिप्र॒वाहः॑ ।

इ॒ह । अ॒यम् । इ॒तरः॑ । जा॒तऽवे॑दाः । दे॒वः । दे॒वेभ्यः॑ । ह॒व्यम् ।
व॒हतु॑ । प्र॒जानन्॑ ॥ ८ ॥

मैं क्रव्याद् अग्निको दूर भगाता हूँ, वह पापको लेकर यमराजके पास चला जाये, और यहाँ पर यह दूसरे जातवेदा अग्नि-देव देवताओंके लिये हविको पहुँचावें ॥ ८ ॥

क्र॒व्याद॑म॒ग्निमि॑षितो ह॒रामि॑ जना॒न् दृ॒हन्तं॑ वज्रेण मृ॒त्युम्
नि तं शा॑स्मि गार्ह॒पत्येन॑ वि॒द्वान् पि॒तॄणां॑ लो॒केपि॑
भा॒गो अ॑स्तु ॥ ९ ॥

क्र॒व्यऽअ॑दम् । अ॒ग्निम् । इ॒षितः॑ । ह॒रामि॑ । जना॒न् । दृ॒हन्तम्॑ ।
वज्रे॑ण । मृ॒त्युम् ।

नि । तम् । शास्मि । गार्हपत्येन । विद्वान् । पितॄणाम् । लोके ।

अपि । भागः । अस्तु ॥ ९ ॥

मनुष्योंकी मृत्युको दृढ़ करते हुए क्रव्याद् अग्निको मैं मन्त्र-शक्तिसे प्रेरित होकर मन्त्र-वज्रके द्वारा भगाता हूँ, मैं विद्वान् पुरुष गार्हपत्यके द्वारा इस अग्निका शासन करता हूँ, यह लोक मैं पितरोंका भाग होवे ॥ ९ ॥

क्रव्यादमग्निं शशमानमुक्थ्यं प्र हिणोमि पथिभिः
पितृयाणैः ।

मा देवयानैः पुनरा गा अत्रैवैधि पितृषु जागृहि
त्वम् ॥ १० ॥

क्रव्यऽअदम् । अग्निम् । शशमानम् । उक्थ्यम् । प्र । हिणोमि ।
पथिभिः । पितृयानैः ।

मा । देवयानैः । पुनः । आ । गाः । अत्र । एव । एधि ।

पितृषु । जागृहि । त्वम् ॥ १० ॥

उक्थ्यकी प्रशंसा करने वाले क्रव्याद् अग्निको मैं पितरोंके जानेके मार्गमें प्रेरित करता हूँ, तू देवयानोंसे फिर न आना तू तहाँ ही पितरोंमें बड़ और पितरोंमें ही जागता रह ॥ १० ॥ (७)

समिन्धते संकसुकं स्वस्तये शुद्धा भवन्तः शुचयः
पावकाः ।

जहाति रिप्रमत्येन एति समिद्धो अग्निः सुपुना
पुनाति ॥ ११ ॥

सम् । इन्धते । सम्स्कसुकम् । स्वस्तये । शुद्धाः । भवन्तः । शुचयः ।
पावकाः ।

जहाति । रिप्रम् । अति । एनः । एति । सम्स्कसुद्धः । अग्निः ।
सुपुना । पुनाति ॥ ११ ॥

दमकते हुए पवित्र करने वाले अग्नि शुद्ध होनेके समय स्वस्ति
के लिये शवभक्षक अग्निको दीप्त करते हैं तब यह पापको छोड़
देता है, पापका उल्लंघन कर जाता है इस दशामें प्रज्वलित होता
हुआ यह पावक अग्नि पवित्र करता है ॥ ११ ॥

देवो अग्निः संकसुको दिवस्पृष्ठान्यारुहत् ।

मुच्यमानो निरेणसोमोगस्माँ अशस्त्याः ॥ १२ ॥

देवः । अग्निः । अम्स्कसुकः । दिवः । पृष्ठानि । आ । अरुहत् ।

मुच्यमानः । निः । एनसः । अमोक् । अस्मान् । अशस्त्याः १२

शवभक्षक अग्निदेव स्वयं पापसे छूटते हुए और हमको
अकल्याणसे बचाते हुए स्वर्ग पर आरोहण करते हैं ॥ १२ ॥

अस्मिन् वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।

अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ए आयूंषि तारिषत् १३

अस्मिन् । वयम् । सम्स्कसुके । अग्नौ । रिप्राणि । मृज्महे ।

अ॒भूम॑ । य॒ज्ञियाः॑ । शु॒द्धाः॑ । प्र । नः॑ । आ॒यू॒षि॑ । ता॒रि॒षत् १३

हम इस शवभक्षक अग्निमें अपने पापोंको शुद्ध कर देते हैं हम यज्ञिय पुरुष शुद्ध होगए हैं, यह अग्निदेव हमारी आयुको पूर्ण करें संकसुको विकसुको निऋथो यश्च निस्वरः ।

ते ते य॒क्ष्मं स॒वे॒दसो॑ दू॒राद् दू॒रम॑नी॒नशन् ॥ १४ ॥

सम्क॑सु॒कः । वि॒क॑सु॒कः । निः॒ऋ॒थः । यः । च । नि॒ऽस्वरः॑ ।

ते । ते । य॒क्ष्मम् । स॒वे॒दसः॑ । दू॒रात् । दू॒रम् । अ॒नी॒न॒शन् १४

जो संकसुक विकसुक निऋथ और निस्वर अग्नि थे वे यक्ष्मा को जानने वाले यक्ष्माके साथ ही दूरसे दूर पर जाकर नष्ट हो गए हैं ॥ १४ ॥

यो नो अ॒श्वेषु॑ वी॒रेषु॑ यो नो गो॒ष्वजा॑विषु ।

क्र॒व्यादं॑ नि॒णु॒दाम॑सि॒ यो अ॒ग्निर्ज॑न॒योप॑नः ॥ १५ ॥

यः । नः॑ । अ॒श्वेषु॑ । वी॒रेषु॑ । यः । नः॑ । गो॒षु । अ॒ज॒ऽअ॒विषु॑ ।

क्र॒व्य॒ऽअ॒दम् । निः॑ । नु॒दाम॑सि॒ यः । अ॒ग्निः । ज॒न॒ऽयो॑पनः १५

मनुष्योंको मोहमें डालने वाला जो क्रव्याद् अग्नि हमारे घोड़ों में, वीर्यसे उत्पन्न होने वाले पुत्र पौत्र आदि वीरोंमें, गौओंमें और भेड़ बकरियोंमें घुस गया हो उसको हम दूर खदेड़ते हैं ॥ १५ ॥

अ॒न्येभ्य॑स्त्वा पु॒रुषे॑भ्यो गो॒भ्यो अ॒श्वेभ्य॑स्त्वा ।

निः क्र॒व्यादं॑ नु॒दाम॑सि॒ यो अ॒ग्निर्जी॑वि॒त॒योप॑नः १६

अ॒न्येभ्यः॑ । त्वा । पु॒रुषे॑भ्यः । गो॒भ्यः । अ॒श्वेभ्यः॑ । त्वा ।

निः । क्रव्यऽअदम् । नुदामसि । यः । अग्निः । जीवितऽयोपनः १६

जीवनको गड़वड़ीमें डालने वाला जो अग्नि है उसको हम मंत्र-शक्तिसे खदेड़ते हैं । हे क्रव्याद् ! हम तुझको अन्य पुरुषोंसे गौओं से और घोड़ोंसे निकालते हैं ॥ १६ ॥

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत ।

तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ १७ ॥

यस्मिन् । देवाः । अमृजत । यस्मिन् । मनुष्याः । उत ।

तस्मिन् । घृतऽस्तावः । मृष्ट्वा । आ । त्वम् । अग्ने । दिवम् । रुह १७

जिसमें देवता और मनुष्य शुद्ध होते हैं, उसमें हे घृतस्ताव अग्ने ! तू शुद्ध होकर स्वर्ग पर चढ़ ॥ १७ ॥

समिद्धो अग्न आहुत स नो माभ्यपक्रमीः ।

अत्रैव दीदिहि द्यवि ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ १८ ॥

सम्ऽइद्धः । अग्ने । आऽहुत । सः । नः । मा । अभिऽअपक्रमीः ।

अत्र । एव । दीदिहि । द्यवि । ज्योक् । च । सूर्यम् । दृशे ॥ १८ ॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! तू भली प्रकार दीप्त हो रहा है, तुझमें भली भाँति आहुति दी जा रही है तू हमको न छोड़, यहाँ दीप्त हो और अन्तरिक्षके सूर्यको चिरकाल तक दिखानेके लिये दीप्त रह ॥ १८ ॥

सीसे मृद्द्वं नडे मृद्द्वमग्नौ संकसुके च यत् ।

अथो अव्यां रामायां शीर्षक्तिमुपबर्हणे ॥ १९ ॥

सीसे । मृद्द्वम् । नडे । मृद्द्वम् । अग्नौ । सम्ऽकसुके । च । यत् ।

अथो॑ इति॑ । अव्या॑म् । रा॒माया॑म् । शी॒र्ष॒क्तिम् । उप॒ऽब॒र्हणे॑ ॥१६॥

हे पुरुषों ! तुम शिरके रोगको सीसेमें शुद्ध करो नड नामक घासमें दूर करो, संकसुक अग्निमें शुद्ध करो भेड़में स्त्रीमें और तक्रियेमें शुद्ध करो ॥ १६ ॥

सी॒से म॒लं सा॒दयि॒त्वा शी॒र्ष॒क्तिमु॒प॒ब॒र्हणे॑ ।

अव्या॑मसि॒कन्या॑ं मृ॒ष्ट्वा शु॒द्धा भव॑त य॒ज्ञियाः॑ ॥२०॥

सी॒से । म॒लम् । सा॒द॒यि॒त्वा । शी॒र्ष॒क्तिम् । उप॒ऽब॒र्हणे॑ ।

अव्या॑म् । असि॒कन्या॑म् । मृ॒ष्ट्वा । शु॒द्धाः । भव॑त । य॒ज्ञियाः॑ २०

हे यज्ञियपुरुषों ! तुम मलको सीसेमें और शिरोरोगको तक्रिये में स्थापित करके और काली भेड़में शुद्ध करके शुद्ध होओ २० परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्त एष इतरो देवयानात् ।

चक्षु॑ष्मते शृण॒वते॑ ते ब्रवी॑मी॒हमे॑ वी॒रा ब॒हवो॑ भवन्तु २१

परम् । मृ॒त्यो इति॑ । अनु॑ । परा॑ । इ॒हि । पन्था॑म् । यः । ते ।

एषः । इत॑रः । दे॒व॒ज्याना॑त् ।

चक्षु॑ष्मते । शृण॒वते॑ । ते । ब्रवी॑मि । इ॒ह । इ॒मे । वी॒राः । ब॒हवः॑ ।

भवन्तु॑ ॥ २१ ॥

हे मृत्यो ! देवयानके अतिरिक्त जो दूरका मार्ग है उस मार्गमें तू जा, तुझ नेत्र और कर्णसम्पन्नसे मैं कहता हूँ, कि-यहाँ पर हमारे यह बहुतसे पुत्र पौत्र आदि रहेंगे ॥ २१ ॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।

प्राञ्चो॑ अ॒गाम॑ नृ॒तये॑ ह॒साय॑ सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॒मा
वदे॑म ॥ २२ ॥

इ॒मे । जी॒वाः । वि॒ । मृ॒तैः । आ । अ॒ववृ॒त्रन् । अ॒भूत् । भ॒द्रा ।

दे॒वऽहू॑तिः । नः । अ॒द्य ।

प्राञ्चः॑ । अ॒गाम॑ । नृ॒तये॑ । ह॒साय॑ । सु॒वीरा॑सः । वि॒दथ॑म् ।

आ । वदे॑म ॥ २२ ॥

देवताओंके निमित्त आहुति देना आज हमारे लिये कल्याण-
कारी हुआ है यह जीव मृत्युको दूर करने वाली शक्तियोंसे
सम्पन्न होगए हैं, हम पूजनीयपुरुष सुन्दर पुत्रपौत्र आदि वीरों
से सम्पन्न होकर नाचने और हँसनेके लिये आगए हैं हग यज्ञ
की प्रशंसा करते हैं ॥ २२ ॥

इ॒मं जी॒वेभ्यः॑ पा॒रिधिं॑ द॒धामि॑ मै॒षां नु॑ गा॒दप॑रो अ॒र्थमे॒तम्
श॒तं जी॒वन्त॑ श॒रदः॑ पु॒रूची॑स्ति॒रो मृ॒त्युं द॑ध॒तां प॑र्व॒तेन॑ ॥

इ॒मम् । जी॒वेभ्यः॑ । पा॒रिधि॑म् । द॒धामि॑ । मा । ए॒षाम् । नु॑ । गा॒त् ।

अ॒परः । अ॒र्थम् । ए॒तम् ।

श॒तम् । जी॒वन्तः॑ । श॒रदः॑ । पु॒रूचीः॑ । ति॒रः । मृ॒त्युम् । द॑ध॒ताम् ।

प॑र्व॒तेन॑ ॥ २३ ॥

हे मनुष्यों ! तुम सौ वर्ष तक जीवित रहते हुए अनेक प्रकार
के सत्कारोंको पाओ और पत्थरसे मृत्युको दबादो, मैं तुमको
यह मंत्ररूपा परिधि देता हूँ, इन मनुष्योंके अतिरिक्त और कोई
दूसरा प्राणी इस अर्थको न पासके ॥ २३ ॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।
तान् वस्त्वष्टा सुजनिमा सजोषाः सर्वमायुर्नयतु
जीवनाय ॥ २४ ॥

आ । रोह॑त॒ । आ॒युः । ज॒र॒स॒म् । वृ॒ण॒नाः । अ॒नु॒ऽपूर्व॑म् । य॒त॒-
मा॒नाः । य॒ति॒ । स्त॒थ॒ ।
ता॒न् । वः । त्व॒ष्टा । सु॒ज॒नि॒मा । स॒जो॒षाः । स॒र्व॒म् । आ॒युः । न॒य॒तु॒ ।
जी॒व॒ना॒य ॥ २४ ॥

हे मनुष्यों ! तुम बुढ़ापे तककी आयुका वरण करते हुए और
तैसी चेष्टा रखते हुए बुढ़ापे तककी आयुको पाओ, सुन्दर जन्म
वाले, समान प्रीति वाले तुमको त्वष्टा देवता जीवनके लिये पूर्णायु
देवें ॥ २४ ॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूषि कल्पयैषाम्
यथा । अ॒हानि॑ । अ॒नु॒ऽपूर्व॑म् । भ॒व॒न्ति॑ । य॒था । ऋ॒त॒वः । ऋ॒तु॒ऽ-
भिः॑ । य॒न्ति॑ । सा॒क॒म् ।

य॒था । न॒ । पूर्॒व॒म् । अ॒प॒रः॑ । ज॒हा॒ति॑ । ए॒व । धा॒तः॑ । आ॒यू॑षि ।
क॒ल्प॒य॒ । ए॒षा॒म् ॥ २५ ॥

जैसे दिन एकके पीछे दूसरे चलते हैं, जैसे ऋतुएँ दूसरी
ऋतुओंके साथ चली जाती हैं, जैसे पहिलेको नवीन नहीं त्याग
देता है ऐसे ही हे धातः ! आप इनकी आयुको करिये ॥ २५ ॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वं वीरयध्वं प्र तरता सखायः
अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभि
वाजान् ॥ २६ ॥

अश्मन्वती । रीयते । सम् । रभध्वम् । वीरयध्वम् । प्र ।
तरत । सखायः ।

अत्र । जहीत । ये । असन् । दुःएवाः । अनमीवान् । उत् ।
तरेम । अभि । वाजान् ॥ २६ ॥

हे मित्रों ! यह पत्थर वाली नदी सुनाई आरही है, तुम वीरता
करो और इसको तर जाओ, तुममें जो पाप हों उनको इसमें
त्याग दो, फिर हम आरोग्यताप्रदायक वेगोंको तरें ॥ २६ ॥

उत्तिष्ठता प्र तरता सखायोश्मन्वती नदी स्यन्दत इयम्
अत्रा जहीत ये असन्नशिवाः शिवान्त्स्योनानुत्तरेमाभि
वाजान् ॥ २७ ॥

उत् । तिष्ठत । प्र । तरत । सखायः । अश्मन्वती । नदी ।
स्यन्दते । इयम् ।

अत्र । जहीत । ये । असन् । अशिवाः । शिवान् । स्योनान् ।
उत् । तरेम । अभि । वाजान् ॥ २७ ॥

हे मित्रों ! उठो तैरो ! यह पत्थर वाली नदी शब्द कर रही है,
तुम्हारे जो पाप हों उनको इसमें बहा दो, आओ ! हम कल्याण-
कारक सुखप्रद वेगोंको तरें ॥ २७ ॥

वैश्वदेवीं वर्चस आ रभध्वं शुद्धा भवन्तः शुचयः

पावकाः ।

अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि शतं हिमा सर्ववीरा

मदेम ॥ २८ ॥

वैश्वदेवीम् । वर्चसे । आ । रभध्वम् । शुद्धाः । भवन्तः । शुचयः ।

पावकाः ।

अतिऽक्रामन्तः । दुःऽइता । पदानि । शतम् । हिमाः । सर्वऽवीराः ।

मदेम ॥ २८ ॥

हे पवित्र करने वाले पावकों ! तुम पवित्र होनेके समय सम्पूर्ण देवताओंकी स्तुतिका आरंभ करो, हमपापोंका ऋक्पदोंसे अतिक्रमण करते हुए सौ हेमन्त ऋतुओं तक पुत्र पौत्र आदि सब वीरोंके साथ आनन्द पावें ॥ २८ ॥

उदीचीनैः पथिभिर्वायुमद्भिरतिक्रामन्तोवरान् परेभिः

त्रिः सप्त कृत्व ऋषयः परेता मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन

उदीचीनैः । पथिऽभिः । वायुमत्ऽभिः । अतिऽक्रामन्तः । अवरान् ।

परेभिः ।

त्रिः । सप्त । कृत्वः । ऋषयः । पराऽइतः । मृत्युम् । प्रति । औहन् ।

पदऽयोपनेन ॥ २९ ॥

परलोकमें जाते हुए वायुसे भरे उत्तरायणमार्गमें गमन करते

हुए और निकृष्ट पुरुषोंका श्रेष्ठ तपके कारण उल्लंघन करते हुए
 ऋषियोंने पदयोपनके द्वारा इसीस वार मृत्युको लाँघा था २६
 मृत्योः पदं योपयन्त एत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः
 आसीना मृत्युं नुदता सधस्थेथ जीवासो विदथमा
 वदेम ॥ ३० ॥

मृत्योः । पदम् । योपयन्तः । आ । इत् । द्राघीयः । आयुः । प्र॒त्तरम् ।
 दधानाः ।

आसीनाः । मृत्युम् । नुदत । सध॒स्थे । अथ । जी॒वासः । वि॒दथम् ।
 आ । वदेम ॥ ३० ॥

ये मृत्युके लक्ष्यको मोहमें डालने वाले ऋषि प्रकृष्टतासे पूर्ण
 होने वाली दीर्घायुको धारण करके बैठे हुए हैं, तुम भी मृत्युको
 खदेड़ो फिर हम सब एक साथ स्थित होनेके स्थान जीवलोकमें
 यज्ञकी वा घरकी वा ज्ञानकी प्रशंसा करें ॥ ३० ॥ (६)

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं स्पृशन्ताम्
 अनश्रवो अनमीवाः सुरता आ रोहन्तु जनयो योनि-
 मग्रे ॥ ३१ ॥

इमाः । नारीः । अ॒वि॒ध॒वाः । सु॒प॒त्नीः । आ॒ञ्ज॒नेन । सर्पि॒षा ।
 सम् । स्पृ॒श॒न्ताम् ।

अ॒न॒श्र॒वः । अ॒न॒मी॒वाः । सु॒र॒ताः । आ । रो॒ह॒न्तु । ज॒न॒यः ।
 यो॒निम् । अ॒ग्रे ॥ ३१ ॥

ये स्त्रिये विधवा न होवें, शोभन पतिसे सम्पन्न रहें, और कान्ति देने वाले घीसे सम्पन्न रहें, आँसुओंसे रहित रहें, रोग-रहित रहें, शोभन आभूषणोंको धारण किये रहें और अपत्यजनन के लिये मनुष्ययोनिमें स्थित रहें ॥ ३१ ॥

व्याकरोमि हविषाहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्य१ हं कल्पयामि
स्वधां पितृभ्यो अजरं कृणोमि दीर्घेणायुषा समि-
मान्सृजामि ॥ ३२ ॥

वि॒ऽआ॒करोमि । ह॒विषा । अ॒हम् । ए॒तौ । तौ । ब्र॒ह्मणा । वि ।
अ॒हम् । क॒ल्प॒या॒मि ।

स्व॒धाम् । पि॒तृ॒भ्यः । अ॒जराम् । कृ॒णोमि । दी॒र्घेण । आ॒युषा ।
सम् । इ॒मान् । सृ॒जामि ॥ ३२ ॥

मैं हविके द्वारा इन दोनों (पति पत्नियों) को मृत्युलोकमें प्रकट रखता हूँ और मंत्रशक्तिसे इनको भली प्रकार समर्थ करता हूँ और पितरोंकी (इनके द्वारा दी जाने वाली) स्वधाको अजर करता हूँ और इनको दीर्घायुसे संपन्न करता हूँ ॥ ३२ ॥

यो नो अग्निः पितरो हृत्स्व१न्तराविवेशामृता मर्त्येषु ।
मय्यहं तं परि गृह्णामि देवं मा सो अस्मान् द्विक्षत
मा वयं तम् ॥ ३३ ॥

यः । नः । अ॒ग्निः । पि॒तरः । हृ॒त्सु । अ॒न्तः । आ॒वि॒वेश ।
अ॒मृतः । म॒र्त्येषु ।

मयि । अहम् । तम् । परि । गृह्णामि । देवम् । मा । सः । अस्मान् ।

द्विचत । मा । वयम् । तम् ॥ ३३ ॥

हे पितरो ! जो अविनाशी फलको देने वाला अग्नि हमारे हृदयमें प्रविष्ट है उस अग्निको मैं ग्रहण करता हूँ वह हमसे द्वेष न करे और हम भी उससे द्वेष न करें ॥ ३३ ॥

अपावृत्य गार्हपत्यात् क्रव्यादा प्रेत दक्षिणा ।

प्रियं पितृभ्य आत्मने ब्रह्मभ्यः कृणुता प्रियम् । ३४ ।

अपऽआवृत्य । गार्हऽपत्यात् । क्रव्यऽअदा । प्र । इत् । दक्षिणा ।

प्रियम् । पितृऽभ्यः । आत्मने । ब्रह्मऽभ्यः । कृणुत । प्रियम् ३४

हे प्राणियों ! तुम मंत्रोंसे गार्हपत्य अग्निसे हट कर क्रव्याद् अग्निके द्वारा दक्षिण दिशामें जाओ तहाँ अपने लिये और अपने पितरोंके लिये प्रिय कार्यको करते रहो ॥ ३४ ॥

द्विभागधनमादाय प्र क्षिणात्यवर्त्या ।

अग्निः पुत्रस्य ज्येष्ठस्य यः क्रव्यादनिराहितः । ३५ ।

द्विभागऽधनम् । आऽदाय । प्र । क्षिणाति । अवर्त्या ।

अग्निः । पुत्रस्य । ज्येष्ठस्य । यः । क्रव्यऽअत् । अग्निऽआहितः ३५

जो पुरुष क्रव्याद् अग्निका भली प्रकार त्याग नहीं करता है वह अपने बड़े पुत्रके और अपने इस प्रकार दोनोंके धनको लेकर वृत्ति न पाता हुआ क्षीण होजाता है ॥ ३५ ॥

यत् कृषते यद् वनुते यच्च वस्नेन विन्दते ।

सर्वं मर्त्यस्य तन्नास्ति क्रव्याच्चेदनिराहितः ॥३६॥

यत् । कृषते । यत् । वनुते । यत् । च । वस्त्रेण । विन्दते ।

सर्वम् । मर्त्यस्य । तत् । न । अस्ति । क्रव्यऽअत् । च । इत् ।

अभिःऽआहितः ॥ ३६ ॥

वह जो खेती करता है, जिस वस्तुका सेवन करता है और मूल्य देकर जिस वस्तुको प्राप्त करता है, यदि मनुष्य क्रव्याद् अग्निका सेवन करना न छोड़े तो पुरुषके ये सब नहींके बराबर होजाते हैं ॥ ३६ ॥

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे ।

छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ॥३७॥

अयज्ञियः । हतऽवर्चाः । भवति । न । एनेन । हविः । अत्तवे ।

छिनत्ति । कृष्याः । गोः । धनात् । यम् । क्रव्यऽअत् । अनुऽवर्तते

क्रव्याद् अग्निका सेवन करने वाला पुरुष यज्ञ करनेका पात्र नहीं रहता है, उसका तेज जाता रहता है और इसके द्वारा (बुलाये हुए देवता) हविका प्राशन करनेके लिये इसके समीप (नहीं आते हैं) जिस पुरुषका क्रव्याद् अनुवर्तन करता है उसको खेती से गौसे और धनसे छिन्न भिन्न कर डालता है ॥ ३७ ॥

मुहुर्गृध्वैः प्र वदत्यार्तिं मर्त्यो नीत्य ।

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावन्ति ३८

मुहुः । गृध्वैः । प्र । वदति । आर्तिम् । मर्त्यः । निऽइत्य ।

क्रव्यऽअत् । यान् । अग्निः । अन्तिकात् । अनुऽविद्वान् । विस्तावति

अनुविद्वान् क्रव्याद् अग्नि जिनके समीपमें रह कर तपाता रहता है वह पुरुष परम व्यथाको पाकर बारम्बार स्पृहणीय वस्तुओंके लिये दीनता भरी वाणी बोलता रहता है ॥ ३८ ॥

ग्राह्या गृहाः सं सृज्यन्ते स्त्रिया यन्म्रियते पतिः ।

ब्रह्मैव विद्वानेष्ट्यो ३ य क्रव्यादं निरादधत् ॥ ३९ ॥

ग्राह्या । गृहाः । सम् । सृज्यन्ते । स्त्रियाः । यत् । म्रियते । पतिः ।

ब्रह्मा । एव । विद्वान् । एष्ट्यः । यः । क्रव्यऽअदम् । निऽआदधत्

जो क्रव्याद् अग्निको निःशेषरूपसे पूर्णरूपसे-ग्रहण करता है तो उसके निमित्त कैदमें डालने वाले घर बनते हैं और स्त्रीका पति मर जाता है, (उस समय आपत्तिको दूर करनेके लिये) वेदवेत्ता विद्वान्की इच्छा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥

यद् रिप्रं शमलं चकृम यच्च दुष्कृतम् ।

आपो मा तस्माच्छुम्भन्त्वग्नेः संकसुकाच्च यत् ४०

यत् । रिप्रम् । शमलम् । चकृम । यत् । च । दुःऽकृतम् ।

आपः । मा । तस्मात् । शुम्भन्तु । अग्नेः । सम्ऽकसुकात् । च ।

यत् ॥ ४० ॥

हम जिस पापको, जिस मलिन पापको और दुःखदायक फल वाले पापको कर चुके हैं उन पापोंसे और शवभक्षक अग्निस्पर्श के दोषसे जल मुझको शुद्ध करें ॥ ४० ॥

ता अधरादुदीचीराववृत्रन् प्रजानतीः पथिभिर्देवयानैः

पर्वतस्य वृषभस्याधि पृष्ठे नवाश्चरन्ति सरितः पुराणीः

ताः । अधरात् । उदीचीः । आ । अववृत्रन् । प्रजानतीः । पथिऽ

भिः । देवस्यानैः ।

पर्वतस्य । वृषभस्य । अधि । पृष्ठे । नवाः । चरन्ति । सरितः ।

पुराणीः ॥ ४१ ॥

जो प्रकृष्टरूपसे होने वाले जल देवयानमार्गोंके द्वारा दक्षिणसे उत्तरके स्थानोंको घेर लेते हैं, फिर वे ही प्राचीन जल नवीन होकर वर्षक पर्वतके शिखर पर नदीरूपमें विचरण करते हैं ४१

अग्ने अक्रव्यान्निः क्रव्यादं नुदा देवयजनं वह ४२

अग्ने । अक्रव्यऽअत् । निः । क्रव्यऽअदम् । नुद । आ । देवऽयज-

नम् । वह ॥ ४२ ॥

हे क्रव्याद्भिन्न अक्रव्याद् गार्हपत्य अग्ने ! आप क्रव्याद् अग्निको दूर करिये और देवताओंकी पूजाकी सामग्रीको देवताओंके पास पहुँचाइये ॥ ४२ ॥

इमं क्रव्यादा विवेशायं क्रव्यादमन्वगात् ।

व्याघ्रौ कृत्वा नानानं तं हरामि शिवापरम् ॥ ४३ ॥

इमम् । क्रव्यऽअत् । आ । विवेश । अयम् । क्रव्यऽअदम् । अनु ।

अगात् ।

व्याघ्रौ । कृत्वा । नानानम् । तम् । हरामि । शिवऽअपरम् ४३

इस पुरुषमें क्रव्याद्ने प्रवेश कर लिया है, यह क्रव्याद्का अनु-

वर्तन करने लगा है मैं इन दोनोंको व्याघ्र करता हूँ अर्थात् व्याघ्र की समान दूरसे त्यागने योग्य समझता हूँ और इस शिव (कन्याण) से अपर अमङ्गलरूप अनेकोंको लेजाने वाली क्रव्याद् अग्निको दूर करता हूँ ॥ ४३ ॥

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणा-

मग्निर्गार्हपत्य उभयानन्तरा श्रितः ॥ ४४ ॥

अन्तःऽधिः । देवानाम् । परिऽधिः । मनुष्याणाम् ।

अग्निः । गार्हपत्यः । उभयान् । अन्तरा । श्रितः ॥ ४४ ॥

यह देवताओंकी अन्तर्धि और मनुष्योंकी परिधि गार्हपत्य अग्नि दोनोंके मध्यमें स्थित है ॥ ४४ ॥

जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने पितॄणां लोकमपि
गच्छन्तु ये मृताः ।

सुगार्हपत्यो वि॒त॒प॒न्न॒रा॒ति॒मु॒षामु॒षां श्रेय॑सीं धे॒ह्य॒स्मै ४५

जीवानाम् । आयुः । प्र । तिर । त्वम् । अग्ने । पितॄणाम् । लोकम् ।

अपि । गच्छन्तु । ये । मृताः ।

सु॒गार्ह॒पत्यः । वि॒त॒प॒न् । अ॒रा॒तिम् । उ॒षाम् उ॒षाम् । श्रेय॑सीम् ।

धेहि । अस्मै ॥ ४५ ॥

हे अग्ने ! आप जीवोंकी आयुको बढ़ाइये और जो मर गए हैं वे पितरोंके लोकको चले जावें, गार्हपत्य अग्नि शत्रुओंको तपाता रहे हे गार्हपत्य अग्ने ! आप हमको कन्याणकारिणी उषाको हममें स्थापित करिये ॥ ४५ ॥

सर्वानग्ने सहमानः सपत्नानैषामूर्जं रयिमस्मासु धेहि
सर्वान् । अग्ने । सहमानः । सऽपत्नान् । आ । एषाम् । ऊर्जम् ।

रयिम् । अस्मासु । धेहि ॥ ४६ ॥

हे अग्ने ! आप सब शत्रुओंका तिरस्कार करते हुए इनके बल
और धनको हममें स्थापित करिये ॥ ४६ ॥

इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारंभध्वं स वो निर्वृत्तद्
दुरितादवद्यात् ।

तेनाप हत शरुमापतन्तं तेन रुद्रस्य परि पाता-
स्ताम् ॥ ४७ ॥

इमम् । इन्द्रम् । वह्निम् । पप्रिम् । अनुऽआरंभध्वम् । सः । वः ।
निः । वृत्तत् । दुःऽइतात् । अवद्यात् ।

तेन । अप । हत । शरुम् । आऽपतन्तम् । तेन । रुद्रस्य । परि ।
पात । अस्ताम् ॥ ४७ ॥

इन समर्थ ऐश्वर्यसम्पन्न वह्निकी स्तुतिका तुम आरंभ करो
यह तुमको अवद्य पापसे दूर करें, उससे आप रुद्रदेवके गिरते हुए
बाणको दूर करिये और रुद्रके प्रक्षेपसे अपनी रक्षा करिये ॥ ४७ ॥

अनद्वाहं प्लवमन्वारंभध्वं स वो निर्वृत्तद् दुरि-
तादवद्यात् ।

आ रोहत सवितुर्नावमेतां पद्भिरुर्वीभिर्मतिं तरेम ४८

अ॒न॒ड्वा॒हम् । प्ल॒वम् । अ॒नु॒ऽआ॒र॒भ॒ध्वम् । सः । वः । निः ।
व॒क्ष॒त् । दुः॒ऽइ॒तात् । अ॒व॒द्यात् ।

आ । रो॒हत । स॒वि॒तुः । ना॒वम् । ए॒ताम् । प॒ट्भिः । उ॒र्वीभिः ।
अ॒म॒तिम् । त॒रेम ॥ ४८ ॥

तुम हविरूप भारवहनकी गाड़ीका बहन करने वाले, नौका-
रूप वह्निदेवकी स्तुति करो वह तुमको अवद्य पापसे बचावे तुम
इस सवितादेवताकी नौका पर चढ़ो हम छः उर्वियोंसे अमतिको
तर जावें ॥ ४८ ॥

अ॒हो॒रा॒त्रे अ॒न्वे॒षि बिभ्र॑त् क्षे॒म्यस्तिष्ठ॑न् प्र॒त॒रणः सु॒वीरः ।
अ॒ना॒तु॒रा॒न्त॒सु॒म॒न॒स॒स्त॒ल्प बिभ्र॑ज्ज्यो॒गेव नः पुरु॑ष-
ग॒न्धिरे॒धि ॥ ४९ ॥

अ॒हो॒रा॒त्रे इति । अ॒नु । ए॒षि । बिभ्र॑त् । क्षे॒म्यः । तिष्ठ॑न् ।
प्र॒त॒रणः । सु॒वीरः ।

अ॒ना॒तु॒रा॒न् । सु॒म॒न॒सः । त॒ल्प । बिभ्र॑त् । ज्यो॒क् । ए॒व । नः । पुरु॑ष-
ग॒न्धिः । ए॒धि ॥ ४९ ॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम दिन रातको धारण करते हुए आते हो,
स्थित रहकर कल्याण देते हो, सुन्दर पुत्र पौत्र आदिसे सम्पन्न
रखते हो, पुरुष सुगमतासे आपकी उपासना कर सकते हैं आप
पुरुषगंधि हैं आप हमको नीरोग और प्रसन्न मनसे पर्यंक पर
धारण करते हुए चिरकाल तक प्रदीप्त होकर बढ़ते रहिये ॥ ४९ ॥
ते दे॒वेभ्य॑ आ वृ॒श्च॒न्ते पा॒पं जी॒वन्ति॑ सर्व॒दा ।

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादश्वं इवानुवपते नडम् ५०

ते । देवेभ्यः । आ । वृश्चन्ते । पापम् । जीवन्ति । सर्वदा ।

क्रव्यऽअत् । यान् । अग्निः । अन्तिकात् । अश्वःऽइव । अनुऽवपते ।

नडम् ॥ ५० ॥

वह देवताओंके निमित्त होने वाले यज्ञ आदिका विनाश करते हैं और सदा पापसे जीविका चलाते हैं, कि—जिनके समीपमें आकर घाड़ेके नड घासको कुचलनेके समान क्रव्याद् अग्नि कुचलता है ॥ ५० ॥ (११)

ये श्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते ।

ते वा अन्येषां कुम्भीं पर्यादधति सर्वदा ॥ ५१ ॥

ये । अश्रद्धाः । धनऽकाम्या । क्रव्यऽअदा । सम्ऽआसते ।

ते । वै । अन्येषाम् । कुम्भीम् । परिऽआदधति । सर्वदा ।

जो धनकी कामना वाले अश्रद्धालु पुरुष क्रव्याद् अग्निकी उपासना करते हैं वे सदा दूसरोंके घड़े ही उठाते रहते हैं ॥ ५१ ॥

प्रेवं पिपतिपति मनसा मुहुरा वर्तते पुनः ।

क्रव्याद् यानग्निरन्तिकादनुविद्वान् वितावति ॥ ५२ ॥

प्रऽइव । पिपतिपति । मनसा । मुहुः । आ । वर्तते । पुनः ।

क्रव्यऽअत् । यान् । अग्निः । अन्तिकात् । अनुऽविद्वान् । वितावति

अनुविद्वान् क्रव्याद् अग्नि जिसके पास आकर तपता है, वह

पुरुष बारम्बार जन्म मरणके चक्रमें पड़ता रहता है और अधो-
गतिको ही पाना चाहता है ॥ ५२ ॥

अविः कृष्णा भागधेयं पशूनां सीसं क्रव्यादपि चन्द्रं
त आहुः ।

माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यमरणयान्या गह्वरं सचस्व

अविः । कृष्णा । भागऽधेयम् । पशूनाम् । सीसम् । क्रव्यऽअत् ।

अपि । चन्द्रम् । ते । आहुः ।

माषाः । पिष्टाः । भागऽधेयम् । ते । हव्यम् । अरणयान्याः । गह्व-
रम् । सचस्व ॥ ५३ ॥

हे क्रव्याद् अग्ने ! विद्वान् पुरुष कहते हैं, कि-पशुओंमें काली
भेड़, सासा और चन्द्रमा तेरा भाग है और पिसे हुए उड़द तेरा
हव्य है, इसलिये तू महावनके गह्वरस्थानमें जापड़ ॥ ५३ ॥

इषीकां जरतीमिष्टा तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम् ।

तमिन्द्र इध्मं कृत्वा यमस्याग्निं निरादधौ ॥ ५४ ॥

इषीकाम् । जरतीम् । इष्टा । तिल्पिञ्जम् । दण्डनम् । नडम् ।

तम् । इन्द्रः । इध्मम् । कृत्वा । यमस्य । अग्निम् । निःऽआदधौ ५४

इन्द्रदेवने पुरानी सीक, तिल्पिञ्ज, दण्डन और नटको ईधन
बनाकर यमाग्निको दूर कर दिया था ॥ ५४ ॥

प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा प्रविद्वान् पन्थां विह्या विवेश ।

पराभीषामसून् दिदेश दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि

प्रत्यञ्चम् । अर्कम् । प्रतिऽअर्पयित्वा । प्रऽविद्वान् । पन्थाम् । वि ।
हि । आऽविवेश ।

परा । अमीषाम् । असून् । दिदेश । दीर्घेण । आयुषा । सम् ।
इमान् । सृजामि ॥ ५५ ॥

द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

प्रत्येक पुरुषके पूजनीय सूर्यको अर्पण करके विद्वान् गार्हपत्य
अग्निने देवयानमार्गमें प्रवेश किया है और इनके प्राणोंको दिया
है, मैं इन यजमानोंको दीर्घायुसे सम्पन्न करता हूँ ॥ ५५॥ (१२)

द्वितीय अनुवाकमे प्रथम सूक्त समाप्त (४९३) ॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त

“पुमान् पुंसोधि तिष्ठ चर्म” इति स्वर्गौदनविषयकं सूक्तम् । ऋषिः
क्वचिद् ओदनं क्वचिद् दंपती संबोधयति । पक्वस्य स्वर्गौदनस्य
प्रतापं तथा तेन प्रापणीयानि फलानि चिन्तयित्वाह । स्वर्गेऽने-
नौदनेन पुत्रादिभिः समागमो भविष्यतीत्यभिप्रायं दर्शयति ।
स्वर्गौदनात् क्रव्यादं रक्तं पिशाचं च परिहरति । आदित्याश्च
अङ्गिरसश्च एतं क्रव्यादादिभ्यः पालयन्त्वित्याशास्ते । यः स्वर्गौ-
दनः स षष्टिवर्षानन्तरं फलप्रदो भवतीति तथा पक्तुर्निधिषा इवेति
वर्ण्यते । तं च प्राच्यादिसर्वाभ्यो दिग्भ्यः संरक्षणार्थं परिदक्षस्ता
एतम् अस्मदर्थे परिरक्षन्तु स चास्मान् जरापूर्वकं मृत्युं यावद् भाग-
धेयम् आनयत्वित्याशास्य सूक्तम् उपसंहरति ॥

सांप्रदायिका यत् सवयज्ञविधौ विनियुञ्जते सूक्तं सम्यक् तत् ।
तच्च “अग्नीन् आधास्यमानः सवान् वा दास्यन्” इति प्रक्रम्य
“यथासवम् अन्यान् पृथग्वेति प्रकृतिः” इत्यन्ते कौशिकसूत्रे

[कौ० ८. १-४] द्रष्टव्यम् ॥ अयं यः सौत्रिको विनियोगस्तेन कतिपयमन्त्राणां तात्पर्यं समीचीनम् आविर्भवतीत्यसंशयम् ॥

“पुमान् पुंसोऽधितिष्ठ चर्म” यह स्वर्गौदनविषयकसूक्त है। ऋषि ने कहीं ओदनको और कहीं दम्पतीको सम्बोधित किया है और विचार करके स्वर्गौदनके प्रताप और उससे प्राप्त होने वाले फलों का वर्णन किया है और स्वर्गौदनसे पुत्र आदिके साथ समागम होनेका वर्णन किया है और स्वर्गौदनसे राज्ञस पिशाच और क्रव्यादका परिहरण किया है और यह प्रार्थनाकी है, कि—आदित्य यथा अंगिरागोत्री ऋषि क्रव्याद् आदिसे हमारी रक्षा करें। और यह भी वर्णन किया है, कि—यह स्वर्गौदन साठ वर्ष पीछे फल देता है तथा पाचककी निधिका रक्षक रहता है। उसको हम प्राची आदि सब दिशाओंकी रक्षाके लिये देते हैं वह इसकी हमारे लिये रक्षा करें और यह भी हमारे लिये जरापूर्वक मृत्यु आने तक भागको देता रहे इस बातकी आशा रखकर सूक्तका उपसंहार किया गया है ॥

साम्प्रदायिक सवयज्ञविधिमें जिसका विनियोग करते हैं वह यही है। इस विषयमें कौशिकसूत्र ८ । १ । ४ देखना चाहिये। यथा—“यथासवं अन्यान् पृथग्वेति प्रकृतिः” यह जो सौत्रिक विनियोग है इससे कुछ मंत्रोंका समीचीन तात्पर्य प्रकाशित होता है।
पुमान् पुंसोऽधि तिष्ठ चर्मैहि तत्र ह्यस्व यतमा प्रिया ते
यावन्तावग्रे प्रथमं समेयथुस्तद् वां वयो यमराज्ये
समानम् ॥ १ ॥

पुमान् । पुंसः । अधि । तिष्ठ । चर्म । इहि । तत्र । ह्यस्व ।
यतमा । प्रिया । ते ।

यावन्तौ । अग्रे । प्रथमम् । सम्ऽप्यथुः । तत् । वाम् । वयः ।

यमऽराज्ये । समानम् ॥ १ ॥

हे पुंस्त्वगुणविशिष्ट ! तू इस नरपशुके चर्म पर स्थित हो और जो तेरे प्रिय हों उनको बुलाले, जितने दम्पती इसको पहिले कर गए हैं उनका और तुम दोनों दम्पतीकी फलरूपमें प्राप्त होने वाला अन्न एकसा हो ॥ १ ॥

तावद् वां चक्षुस्तति वीर्याणि तावत् तेजस्ततिधा
वाजिनानि ।

अग्निः शरीरं सचते यदैधोधा पक्वान्मिथुना सं भवाथः

तावत् । वाम् । चक्षुः । तति । वीर्याणि । तावत् । तेजः ।

ततिऽधा । वाजिनानि ।

अग्निः । शरीरम् । सचते । यदा । एधः । अध । पक्वात् ।

मिथुना । सम् । भवाथः ॥ २ ॥

जब यह अग्नि स्वर्गमें तुम्हारे शरीरोंको बनावेगा तब तुम दोनों इस ईंधनसे पके हुए ओदनके प्रभावसे स्वर्गमें इसी रूपमें प्रकट होओगे तुममें इस जन्मकीसी दृष्टिशक्ति रहेगी, ऐसा ही तेज रहेगा, और शब्दसे जानने योग्य यज्ञ आदिको भी तुम इसी प्रकार कर सकोगे ॥ २ ॥

समस्मिन्ल्लोके समु देवयाने सं स्मां समेतं यमराज्येषु
पूतौ पवित्रैरुप तद्ध्वयेथां यद्यद् रेतो अधि वां संबभूव

६८

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

सम् । अस्मिन् । लोके । सम् । ऊँ इति । देव॒ऽयाने॑ । सम् ।

स्म । सम्॒ऽएत॑म् । यम॒ऽराज्ये॑षु ।

पू॒ती । प॒वित्रैः॑ । उप । तत् । ह॒येथा॑म् । यत्॒ऽयत् । रेतः॑ । अधि ।

वाम् । सम्॒ऽबभू॑व ॥ ३ ॥

तुम दोनों इस ओदनके प्रतापसे इस लोकमें एकत्रित रहो, देवयानमार्गमें एकत्रित रहो और यमराज्यमें एक साथ मिले रहो, तुम इन पवित्र यज्ञोंसे पवित्र होगए हो अतः जिस २ पुण्यकर्मके लिये तुमने जल गिराया है उस २ पुण्य कर्मके फलका आह्वान करो

आप॑स्पु॒त्रासो॑ अभि॒ सं विश॑ध्वमि॒मं जी॒वं जी॒वध॑न्याः
समे॒त्य ।

तासां॑ भज॒ध्वम॒मृत॑ यमा॒हु॒र्यमो॑दनं प॒चति॑ वां जनि॒त्री
आपः॑ । पु॒त्रासः॑ । अभि । सम् । विश॒ध्वम् । इ॒मम् । जी॒वम् ।

जी॒व॒ऽध॒न्याः । सम्॒ऽएत्य॑ ।

तासाम् । भज॒ध्वम् । अ॒मृत॑म् । यम् । आ॒हुः । यम् । ओ॒दन॑म् ।

प॒चति॑ । वाम् । जनि॒त्री ॥ ४ ॥

हे दम्पती समूहो ! तुम परिणाममें वीर्यरूपको प्राप्त हुए जलके ही पुत्र हो तुम जीवोंमें धन्य बनते हुए इस जीवलोकमें प्रवेश करो, तुमको उत्पन्न करने वाला जल ओदनको राँधता है ऐसे जलका जो अमृतमयभाग है उसका तुम सेवन करो ॥ ४ ॥

यं वां पिता पचति यं च माता रिप्रान्निर्मुक्त्यै शम-
लाच्च वाचः ।

स ओदनः शतधारः स्वर्ग उभे व्यापि नभसी महित्वा
यम् । वाम् । पिता । पचति । यम् । च । माता । रिप्रात् ।

निःस्मुक्त्यै । शमलात् । च । वाचः ।

सः । ओदनः । शतऽधारः । स्वऽगः । उभे इति । वि । आप ।

नभसी इति । महिऽत्वा ॥ ५ ॥

पापसे और बाणीके पापसे छूटनेके लिये यदि ओदनको माता
वा पिता पकाते हैं तो वह ओदन अपनी महिमासे स्वर्गमें और
द्यावापृथिवीमें सहस्र प्रकारसे व्याप्त होजाता है—उनको मिलता है

उभे नभसी उभयांश्च लोकान् ये यज्वनामभिजिताः
स्वर्गाः ।

तेषां ज्योतिष्मान् मधुमान् यो अग्रे तस्मिन् पुत्रैर्जरसि
सं श्रयेथाम् ॥ ६ ॥

उभे इति । नभसी इति । उभयान् । च । लोकान् । ये ।

यज्वनाम् । अभिऽजिताः । स्वऽगाः ।

तेषाम् । ज्योतिष्मान् । मधुऽमान् । यः । अग्रे । तस्मिन् । पुत्रैः ।

जरसि । सम् । श्रयेथाम् ॥ ६ ॥

हे दम्पती ! दोनों आवापृथिवीमें और यजमान जिन लोकोंको जीत लेते हैं उन स्वर्ग लोकोंमें जो प्रकाशमय और मधुरता भरे लोक हैं उस लोकमें इस प्रकार स्वर्गमें और भूलोक रूप दोनों लोकों में तुम बुढ़ापे तक पुत्रोंसे समृद्ध रहो ॥ ६ ॥

प्राचीं प्राचीं प्रदिशमा रभेथामेतं लोकं श्रद्धधानाः

सचन्ते ।

यद् वां पक्वं परिविष्टमग्नौ तस्य गुप्तये दंपती सं श्रयेथाम्

प्राचीम् प्राचीम् । प्रदिशम् । आ । रभेथाम् । एतम् । लोकम् ।

श्रत्स्द्धधानाः । सचन्ते ।

यत् । वां । पक्वम् । परिऽविष्टम् । अग्नौ । तस्य । गुप्तये ।

दंपती इति दम्पती । सम् । श्रयेथाम् ॥ ७ ॥

हे दम्पती ! तुम पूर्व दिशाकी ओर बढ़ना आरंभ करो, इस स्वर्गलोकमें श्रद्धालु पुरुष बढ़ते हैं तुमने जो परिपक्व ओदनको अग्निमें परोसा है उसकी रक्षाके लिये तुम दोनों भली प्रकार इसकी सेवा करो ॥ ७ ॥

दक्षिणां दिशमभि नक्षमाणौ पर्यावर्तेथामभि पात्रमेतत्

तस्मिन् वां यमः पितृभिः संविदानः पक्वाय शर्म

बहुलं नि यच्छात् ॥ ८ ॥

दक्षिणाम् । दिशम् । अभि । नक्षमाणौ । परिऽआवर्तेथाम् । अभि ।

पात्रम् । एतत् ।

तस्मिन् । वाम् । यमः । पितृभिः । सम्ऽविदानः । पक्वाय ।

शर्म । बहुलम् । नि । यच्छात् ॥ ८ ॥

हे दम्पती ! तुम दक्षिण दिशाकी ओर जाकर इस पात्रकी ओर प्रदक्षिणा करते हुए लौटो, उस समय पितरोंसे एकप्रति रखकर यम उस पात्रमें तुम्हारे पक्व ओदनके लिये अनेक प्रकारके कन्याण देय ॥ ८ ॥

प्रतीचीं दिशामियमिद् वरं यस्यां सोमो अधिपा

मृडिता च ।

तस्यां श्रयेथां सुकृतः सचेथामथा पक्वान्मिथुना सं

भवाथः ॥ ९ ॥

प्रतीची । दिशाम् । इयम् । इत् । वरम् । यस्याम् । सोमः । अधिऽपाः ।

मृडिता । च ।

तस्याम् । श्रयेथाम् । सुऽकृतः । सचेथाम् । अध । पक्वात् । मिथुना ।

सम् । भवाथः ॥ ९ ॥

यह पश्चिमकी दिशा श्रेष्ठ है, क्योंकि—इसमें अधिप और सुख-दाता सोम हैं उसमें तुम दोनों पक्वओदनको रखो पुण्यकर्मोंका सेवन करो, फिर इस पक्व ओदनके प्रभावसे तुम दोनों भूलोक में और स्वर्गमें प्रकट होना ॥ ९ ॥

उत्तरं राष्ट्रं प्रजयोत्तरावद् दिशामुदीची कृणवन्नो अग्रम्

पाङ्क्तं छन्दः पुरुषो बभूव विश्वैर्विश्वाङ्गैः सह सं

भवेम ॥ १० ॥

उत्तरम् । राष्ट्रम् । प्रजया । उत्तरऽवत् । दिशाम् । उदीची । कृण-
वत् । नः । अग्रम् ।

पाङ्गम् । छन्दः । पुरुषः । बभूव । विश्वैः । विश्वऽअङ्गैः । सह ।
सम् । भवेम ॥ १० ॥

यह उत्तरका राष्ट्र प्रजासे श्रेष्ठतासम्पन्न है, ऐसी यह दिशाओंमें
श्रेष्ठ उत्तर दिशा हमको श्रेष्ठ करे । पांक्त छन्द पुरुषार्थसम्पन्न
ओदनके रूपमें प्रकट हुआ है हम भी अपने सब अङ्गों सहित
भूलोक और स्वर्गमें प्रादुर्भूत हों ॥ १० ॥

ध्रुवेयं विराणनमो अस्त्वस्यै शिवा पुत्रेभ्य उत मह्यमस्तु ।
सा नो देव्यदिते विश्ववार इर्य इव गोपा अभिरत्न
पक्वम् ॥ ११ ॥

ध्रुवा । इयम् । विराट् । नमः । अस्तु । अस्यै । शिवा । पुत्रेभ्यः ।
उत । मह्यम् । अस्तु ।

सा । नः । देवि । अदिते । विश्वऽवारे । इर्यऽइव । गोपाः ।
अभि । रत्न । पक्वम् ॥ ११ ॥

हे सर्वोंसे वरणीय विश्ववारे अदिति-अखण्डनीया-पृथिवी
देवि ! यह पृथिवी ध्रुवा है विराट् है यह हमारे पुत्रोंका कल्याण
करने वाली हो हमारे लिये सुखदायिनी हो और प्रेरित किये हुए
रत्नककी समान इस पक्व ओदनकी रक्षा करे ॥ ११ ॥

पितेव पुत्रानभि सं रवजस्व नः शिवा नो वाता इह
वान्तु भूमौ ।

यमो॑दनं पच॑तो दे॒वते॑ इ॒ह तं न॒स्तप॑ उ॒त स॒त्यं च॑ वे॒त्तु

पि॒ताऽइ॒व । पु॒त्रान् । अ॒भि । स॒म् । स्व॒ज॒स्व । नः । शि॒वाः । नः ।

वा॒ताः । इ॒ह । वा॒न्तु । भू॒मौ ।

य॒म् । ओ॒दन॒म् । पच॑तः । दे॒वते॑ इति । इ॒ह । त॒म् । नः । तपः ।

उ॒त । स॒त्यम् । च । वे॒त्तु ॥ १२ ॥

हे पृथिवीदेवते ! तुम पिताके पुत्रोंको आलिंगन करनेकी समान इस ओदनका आलिंगन करो । इस भूमिमें हमको कल्याण देने वाला वायु चले, हम दोनों जिस ओदनको पका रहे हैं उसको आप तपाइये और आप हमारे सत्यसंकल्पको जानें ॥ १२ ॥

यद्यत् कृ॒ष्णः श॑कु॒न ए॒ह ग॒त्वा त्स॑रन् वि॒षक्तं॑ वि॒ल
आ॒स॒साद॑ ।

यद्वा दा॒स्याऽर्द्र॑ह॒स्ता स॒मङ्क्त॑ उ॒लूख॑लं मु॒सलं॑ शु॒म्भता॑पः

यत्स्य॑त् । कृ॒ष्णः । श॒कु॒नः । आ । इ॒ह । ग॒त्वा । त्स॑रन् । वि॒ऽ

स॒क्तम् । वि॒ले । आ॒ऽस॒साद॑ ।

यत् । वा । दा॒सी । आ॒र्द्र॑ह॒स्ता । स॒म्ऽअ॒ङ्क्ते । उ॒लूख॑लम् । मु॒स-

लम् । शु॒म्भ॒त । आपः॑ ॥ १३ ॥

यदि कौएने कपटगतिसे आकर जो इसमें विल बना दिया हो वा दासीने गीले हाथसे ओखली मूसलको छू दिया हो तो यह ताप कल्याणकारी हो ॥ १३ ॥

अ॒यं ग्रा॒वा पृ॒थुबु॑ध्नो व॒योधाः॑ पू॒तः प॒वित्रै॑रप॑ ह॒न्तु र॒क्षः॑

आ रोह शर्म महि यच्छ मा दंपती पौत्रमघं नि गाताम्

अयम् । ग्रावा । पृथुऽबुध्नः । वयऽधाः । पूतः । पवित्रैः । अप ।

हन्तु । रक्तः ।

आ । रोह । चर्म । महि । शर्म । यच्छ । मा । दंपती इति दम्पती ।

पौत्रम् । अघम् । नि । गाताम् ॥ १४ ॥

यह दृढ़ जड़ वाता पत्थर हविरूप अन्नका धारण करने वाला है पवित्रोंसे पूत हुआ यह राक्षसोंका संहार करे, हे ओदन ! तू चर्म पर आ और महाकल्याण प्रदान कर, इन दम्पतीको और इनके पौत्रको पाप स्पर्श न कर सके ॥ १४ ॥

वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्तः पिशाचाँ अपबाध-
मानः ।

स उच्छ्रयातै प्रवदाति वाचं तेन लोकाँ अभि सर्वान्
जयेम ॥ १५ ॥

वनस्पतिः । सह । देवैः । नः । आ । अगन् । रक्तः । पिशाचान् ।
अपऽबाधमानः ।

सः । उत् । श्रयातै । प्र । वदाति । वाचम् । तेन । लोकान् ।
अभि । सर्वान् । जयेम ॥ १५ ॥

राक्षस और पिशाचोंको बाधा देता हुआ वनस्पति देवताओं सहित हमारे पास आगया वह ऊँचे स्वरसे वाणीका उच्चारण करता है उस शब्द करने वालेसे हम सब लोकोंको जीत लें १५

सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन् य एषां ज्योतिष्मां उत
यश्चकर्श ।

त्रयस्त्रिंशद् देवतास्तान्सचन्ते स नः स्वर्गमभि नेष
लोकम् ॥ १६ ॥

सप्त । मेधान् । पशवः । परि । अगृह्णन् । यः । एषाम् । ज्योति-
ष्मान् । उत । यः । चकर्श ।

त्रयःऽत्रिंशत् । देवताः । तान् । सचन्ते । सः । नः । स्वःऽगम् ।
अभि । नेष । लोकम् ॥ १६ ॥

जो इन धान्योंमें ज्योतिष्मान् और कृश है ऐसे सात चावलों
को पवित्ररूपमें पशु (अज्ञानी जीवों) ने ग्रहण किया है इनका
तैंतीस देवता सेवन करते हैं ऐसा यह ओदन हमको स्वर्गलोकमें
ले जावे ॥ १६ ॥

स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः
स्याम ।

गृह्णामि हस्तमनु मैत्वत्र मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो
अरातिः ॥ १७ ॥

स्वःऽगम् । लोकम् । अभि । नः । नयासि । सम् । जायया ।
सह । पुत्रैः । स्याम ।

गृह्णामि । हस्तम् । अनु । मा । आ । एतु । अत्र । मा । नः ।
तारीत् । निःऽऋतिः । मो इति । अरातिः ॥ १७ ॥

हे ओदन ! तू हमको स्वर्गलोकमें लेजारहा है, तहाँ हम स्त्री और पुत्रोंसहित प्रादुर्भूत होवें, मैं तेरे हाथको पकड़ता हूँ तू मेरे पीछे २ तहाँ स्वर्गमें आ, पापदेवता निःश्रुति और शत्रु मुझको न दबा सकें ॥ १७ ॥

ग्राहिं पाप्मानमतितां अयामतमो व्यस्य प्र वदासि
वल्गु ।

वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीर्मा तण्डुलं वि शरीर्देव-
यन्तम् ॥ १८ ॥

ग्राहिम् । पाप्मानम् । अति । तात् । अयाम् । तमः । वि । अस्य ।
प्र । वदासि । वल्गु ।

वानस्पत्यः । उत्स्यतः । मा । जिहिंसीः । मा । तण्डुलम् । वि ।
शरीः । देवयन्तम् ॥ १८ ॥

हम ग्रहण करने वाले पापको लाँघ जायँ, हे वानस्पत्य ! तू पापके कारण होसकने वाले शोकरूप अन्धकारको दूर करता हुआ मीठी वाणी बोलता है, वानस्पत्य उद्यत होकर मेरी हिंसा न करे और मुझको देवमार्गमें पहुँचाने वाले तण्डुलकी भी हिंसा न करे ॥ १८ ॥

विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्तस्योनिर्लोकमुप याह्येतम्
वर्षवृद्धमुप यच्छ शूर्पं तुषं पलावानप तद् विनक्तु १९

विश्वव्यचा । घृतपृष्ठः । भविष्यन् । स्योनिः । लोकम् । उप ।
याहि । एतम् ।

वर्षऽष्टद्वम् । उप । यच्छ । शूर्पम् । तुषम् । पलावान् । अप ।
तत् । विनक्तु ॥ १६ ॥

सब जिसका अनेक प्रकारसे सत्कार करते हैं ऐसे हे ओदन !
तू घृतपृष्ठ होता हुआ और परलोकमें हमारे साथ प्रादुर्भूत होनेके
लिये इसलोकमें हमारे पास आ फिर वर्षा ऋतुमें जिसके उप-
करण बढ़ते हैं उस छाजको प्राप्त हो वह पलावान् भूसीको तुझ
से अलग करे ॥ १६ ॥

त्रयो लोकाः संमिता ब्राह्मणेन द्यौरेवासौ पृथिव्यं-
न्तरिक्षम् ।

अंशून् गृभीत्वान्वारभेथामा प्यायन्तां पुनरा यन्तु
शूर्पम् ॥ २० ॥

त्रयः । लोकाः । सम्मिताः । ब्राह्मणेन । द्यौः । एव । असौ ।

पृथिवी । अन्तरिक्षम् ।

अंशून् । गृभीत्वा । अनुऽआरभेथाम् । आ । प्यायन्ताम् । पुनः ।

आ । यन्तु । शूर्पम् ॥ २० ॥

द्यौ अन्तरिक्ष और यह पृथिवी यह तीनों लोक ब्राह्मणके
द्वारा प्राप्त होसकते हैं, हे दम्पती ! तुम चावलको ग्रहण करके
फटकना आरम्भ करो और ये धान भी बढ़ें (उछलें) और
छाजमें आवें ॥ २० ॥ (१४)

पृथग्रूपाणि बहुधा पशूनामेकरूपो भवसि सं समृद्धया

ए॒तां त्वचं॑ लोहि॒नीं तां नु॑दस्व॒ ग्रावा॑ शु॒म्भाति॑ म॒लग
इ॒व व॒स्त्रा ॥ २१ ॥

पृ॒थक् । रू॒पाणि॑ । ब॒हुऽधा॑ । प॒शूनाम्॑ । ए॒कऽरूपः॑ । भ॒व॒सि॒ ।

सम् । सम्ऽऋद्ध्या॑ ।

ए॒ताम् । त्वच॑म् । लोहि॒नीम् । ता॑म् । नु॒दस्व॑ । ग्रा॒वा । शु॒म्भाति॑ ।

म॒लगः॑ऽइ॒व । व॒स्त्रा ॥ २१ ॥

(जोतते समय) पशुओंके अनेकप्रकारके अलग २ रूप होते हैं और तू समृद्धिके साथ एक ही रूप वाला प्रकट होता है अब तू पत्थरके द्वारा वस्तुसे मलगकी समान लोहिनी त्वचा (भूसी) को त्याग ॥ २१ ॥

पृ॒थि॒वीं त्वा॑ पृ॒थि॒व्यामा॑ वे॒शयामि॑ त॒नूः स॑मा॒नी
वि॒कृ॒ता त॑ ए॒षा ।

यद्य॑द् द्यु॒त्तं लि॑खितम॒र्पणे॑न॒ तेन॒ मा सु॒स्रोर्ब्रह्म॑णापि॒
तद् व॑पामि ॥ २२ ॥

पृ॒थि॒वीम् । त्वा॑ । पृ॒थि॒व्याम् । आ॑ । वे॒श॒यामि॑ । त॒नूः । स॒मा॒नी ।

वि॒ऽकृ॒ता । ते॒ । ए॒षा ।

यत्स्य॑त् । द्यु॒त्तम् । लि॒खित॑म् । अ॒र्पणे॑न । तेन॑ । मा । सु॒स्रोः॑ ।

ब्रह्म॑णा । अपि॑ । तत् । व॒पामि॑ ॥ २२ ॥

हे पत्थरके बने मूसल ! तू पृथिवीका बना होनेसे पृथिवी ही है

अतः मैं पृथिवीको पृथिवीमें ही मारता हूँ पृथिवीका और तेरा शरीर एकसा है यह मूसल तो विकृत भूमि ही है । हे ओदन ! मूसलके अर्पण करनेसे जो तेरा अंग दाहयुक्त-पीड़ायुक्त होरहा है उससे तू धानसे अलग हो ऐसे तुझको मैं मन्त्रसे अग्निमें आहुत करता हूँ ॥ २२ ॥

जनित्रीव प्रति ह॒र्यासि॑ सूनुं सं त्वा॑ तदामि॒ पृथि॒वीं
पृथि॒व्या ।

उ॒खा कु॒म्भी वे॒द्यां मा व्य॑थि॒ष्ठा य॒ज्ञायु॒धैराज्ये॒नाति॑षक्ता
जनि॑त्रीऽइ॒व । प्र॒ति । ह॒र्या॒सि । सू॒नुम् । सम् । त्वा॒ । द॒धामि॒ ।
पृथि॒वीम् । पृथि॒व्या ।

उ॒खा । कु॒म्भी । वे॒द्याम् । मा । व्य॑थि॒ष्ठाः । य॒ज्ञा॒यु॒धैः ।
आ॒ज्येन॑ । अ॒तिऽस॑क्ता ॥ २३ ॥

जैसे माता अपने पुत्रके पासको जाती है इसी प्रकार मैं तुझ पत्थररूप पृथिवीको ओखलीरूप पृथ्वीसे संयुक्त करता हूँ वेदीमें ओखली ही कुम्भी है सो तू व्यथाको प्राप्त मत हो, क्योंकि-यज्ञ-युधोंके द्वारा तू घृतसे सक्त होगई है ॥ २३ ॥

अ॒ग्निः प॒चन् र॒क्षतु॑ त्वा पु॒रस्ता॒दिन्द्रो॑ र॒क्षतु॑ दक्षि॒णतो॑
म॒ल्वान् ।

वरु॑णस्त्वा दं॒हाद्ध॒रुणे॑ प्र॒तीच्या॑ उत्त॒रात् त्वा॒ सोमः॒ सं
द॒दातै॑ ॥ २४ ॥

अग्निः । पचन् । र॒क्षतु । त्वा । पुरस्तात् । इन्द्रः । र॒क्षतु ।

दक्षिणतः । मरुत्वान् ।

वरुणः । त्वा । दृ॒हात् । धरुणे । प्रतीच्याः । उत्तरात् । त्वा । सोमः ।

सम् । द॒दातै ॥ २४ ॥

पचाते हुए अग्निदेव तेरी रक्षा करें, इन्द्र पूर्व दिशाकी ओरसे तेरी रक्षा करें और मरुत्वान् दक्षिण दिशाकी ओरसे तेरी रक्षा करें और वरुणदेव धरुणमें पश्चिमकी ओरसे वर्धनशील कर्मसे तेरी रक्षा करें और उत्तरकी ओरसे सोम तुम्हको खिलावें २४

पू॒ताः प॒वित्रैः पवन्ते अ॒भ्राद् दि॒वं च॒ यन्ति॑ पृथि॒वीं
च॒ लो॒कान् ।

ता जी॒व॒ला जी॒व॒ध॒न्याः प्र॒ति॒ष्ठाः पा॒त्र आ॒सि॒क्ताः प॒र्य॒-
मि॒रि॒न्धाम् ॥ २५ ॥

पू॒ताः । प॒वित्रैः । प॒वन्ते । अ॒भ्रात् । दि॒वम् । च॒ । यन्ति॑ ।
पृथि॒वीम् । च॒ । लो॒कान् ।

ताः । जी॒व॒लाः । जी॒व॒ध॒न्याः । प्र॒ति॒ष्ठाः । पा॒त्रे । आ॒सि॒क्ताः ।

परि । अ॒ग्निः । इ॒न्धाम् ॥ २५ ॥

पवित्र कर्मोंसे पवित्र हुए जल पवित्र करते हैं, मेघसे स्वर्गमें जाते हैं और पृथिवीमें मनुष्योंको प्राप्त होते हैं, ये जीवनको देने वाले जीवको धन्य करने वाले पात्रमें प्रतिष्ठित हैं यह आसिक्त होरहे हैं अग्नि इनको चारों ओरसे दीप्त करे ॥ २५ ॥

आ यन्ति दिवः पृथिवीं सचन्ते भूम्याः सचन्ते अन्तरिक्षम् ।

शुद्धाः सतीस्ता उ शुम्भन्त एव ता नः स्वर्गमभि लोकं
नयन्तु ॥ २६ ॥

आ । यन्ति । दिवः । पृथिवीम् । सचन्ते । भूम्याः । सचन्ते ।
अधि । अन्तरिक्षम् ।

शुद्धाः । सतीः । ताः । ऊं इति । शुम्भन्ते । एव । ताः । नः ।
स्वःऽगम् । अभि । लोकम् । नयन्तु ॥ २६ ॥

यह स्वर्गसे आते हैं और पृथिवीका सेवन करते हैं और भूमि
परसे अन्तरिक्षका आश्रय लेते हैं ये पवित्र होते हुए जल पवित्र
ही करते हैं ये (यज्ञिय चावलोंमें मिले हुए) जल हमें स्वर्ग-
लोकमें ले जावें ॥ २६ ॥

उतेव प्रभ्वीरुन संमितास उत शुक्राः शुचयश्चामृतासः ।
ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टा आपः शिक्तन्तीः पचता
सुनाथाः ॥ २७ ॥

उतऽइव । प्रऽभ्वीः । उत । समऽमितासः । उत । शुक्राः । शुचयः ।
च । अमृतासः ।

ताः । ओदनम् । दंपतिऽभ्याम् । प्रऽशिष्टाः । आपः । शिक्तन्तीः ।
पचत । सुऽनाथाः ॥ २७ ॥

ये जल प्रभु हैं और सम्मित हैं, श्वेत वर्ण वाले हैं दमकते

८२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हुए हैं और अमृत हैं ऐसे हे जलों ! आप दम्पतीसे छोड़े जाने पर सुनाथ होकर इस ओदनको शिजा देते हुए पकाओ ॥ २७ ॥

संख्याता स्तोकाः पृथिवीं सचन्ते प्राणापानैः संमिता

ओषधीभिः ।

असंख्याता ओप्यमानाः सुवर्णाः सर्वं व्यापुः शुचयः

शुचित्वम् ॥ २८ ॥

सम्ख्याताः । स्तोकाः । पृथिवीम् । सचन्ते । प्राणापानैः ।

सम्मिताः । ओषधीभिः ।

असम्ख्याताः । आउप्यमानाः । सुवर्णाः । सर्वम् । वि ।

आपुः । शुचयः । शुचित्वम् ॥ २८ ॥

प्राण अपानकी समान थोड़ेसे जल औषधियोंके साथ पृथिवी का सेवन करते हैं और सुन्दर वर्ण वाले प्राणियोंमें डाले हुए असंख्यात पवित्र जल शुचित्वको प्रदान करते हुए सबमें व्याप्त होगए हैं ॥ २८ ॥

उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः फेनमस्यन्ति बहुलांश्च

बिन्दून् ।

योषेव दृष्ट्वा पतिमृत्विषयायैतैस्तण्डुलैर्भवता समापः २६

उत् । योधन्ति । अभि । वल्गन्ति । तप्ताः । फेनम् । अस्यन्ति ।

बहुलान् । च । बिन्दून् ।

योषाऽइव । दृष्ट्वा । पतिम् । ऋत्विष्याय । एतैः । तण्डुलैः । भवत ।
सम् । आपः ॥ २६ ॥

ये जल तपने पर युद्धसा करते हैं, शब्द करते हैं, फेनको उड़ाते हैं और बहुतसी बिन्दुओंको भी उड़ाते हैं, हे जलों ! तुम ऋतुमें होने वाले यज्ञके लिये पतिको देखने पर स्त्रीकी समान इन चावलों से मिल जाओ ॥ २६ ॥

उत्थापय सीदतो बुध्न एनानञ्जिरात्मानमभि सं
स्पृशन्ताम् ।

अमासि पात्रैरुदकं यदेतन्मितास्तण्डुलाः प्रदिशो
यदीमाः ॥ ३० ॥

उत् । स्थापय । सीदतः । बुध्ने । एनान् । अत्ऽभिः । आत्मानम् ।
अभि । सम् । स्पृशन्ताम् ।

अमासि । पात्रैः । उदकम् । यत् । एतत् । मिताः । तण्डुलाः ।
प्रऽदिशः । यदि । इमाः ॥ ३० ॥

हे ओदनकी अधिष्ठात्री देवते ! इन मूसलकी जड़में दुःख पाते हुए इन चावलोंको आप उठाइये ये जलसे अपना स्पर्श करें हे यजमान ! जो तू पात्रोंसे जलको नाप रहा है तो ये तण्डुल भी नप गए हैं अतः इनको जलमें डालनेकी आज्ञा दे ॥ ३० ॥ (१५०)
प्र यच्छ पर्शु त्वरया हरोषमहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन् ।
यासां सोमः परि राज्यं बभूवामन्युता नो वीरुधो
भवन्तु ॥ ३१ ॥

८४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

प्र । यच्छ । पशुम् । त्वरय । आ । हर । ओषम् । अहिंसन्तः ।

ओषधीः । दान्तु । पर्वन् ।

यासाम् । सोमः । परि । राज्यम् । बभूव । अमन्युताः । नः ।

वीरुधः । भवन्तु ॥ ३१ ॥

आप फरसेको चलाइये और इनमें जो पक गए हैं इनको ले लीजिये ये प्रत्येक पर्वमें किसीकी हिंसा न करते हुए अपने औषधिरूप फलको देवें सोम जिनका राज्य है ऐसी लतारूप औषधियें क्रोधरहित रहें ॥ ३१ ॥

नवं बहिरोदनाय स्तृणीत प्रियं हृदश्चक्षुषो वल्ग्वस्तु ।

तस्मिन् देवाः सह दैवीर्विशन्तिवमं प्राशन्तवृतुभिर्निषद्य

नवम् । बहिः । ओदनाय । स्तृणीत । प्रियम् । हृदः । चक्षुषः ।

वल्गु । अस्तु ।

तस्मिन् । देवाः । सह । दैवीः । विशन्तु । इमम् । प्र । अशन्तु ।

ऋतुभिः । निऽसद्य ॥ ३२ ॥

नवीन कुशाओंको ओदनके निमित्त बिछाओ, वह कुशासन हृदयको और नेत्रोंको प्रिय लगने वाला मञ्जुल हो । उसमें देवता अपनी दैवी शक्तियोंके साथ बैठें और बैठ कर ऋतुके पदार्थोंके साथ २ इस ओदनका भक्षण करें ॥ ३२ ॥

वनस्पते स्तीणर्मा सीद बहिरग्निष्टोमैः संमितो देवताभिः

त्वष्ट्रेव रूपं सुकृतं स्वधित्यैना एहाः परिपात्रे ददृशाम्

वनस्पते । स्तीर्णम् । आ । सीद । बर्हिः । अग्निस्तोमैः । सम्पितः ।

देवताभिः ।

त्वष्टाऽइव । रूपम् । सुऽकृतम् । स्वधित्या । एना । एहाः । परि ।

पात्रे । ददृशाम् ॥ ३३ ॥

हे वनस्पते ! कुशा फैला दी गई हैं अतः आप बैठिये देवताओं ने आपको अग्निष्टोमके समान माना है त्वष्टाकी समान स्वधिति ने इसका रूप अच्छा बना दिया है वह अब पात्रमें दीख रहा है ३३ पृथ्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात् स्वः पक्वेनाभ्य-
श्रवातै ।

उपैनं जीवान् पितरश्च पुत्रा एतं स्वर्गं गमयान्तमग्नेः
पृष्ठचाम् । शरत्सु । निधिपाः । अभि । इच्छात् । स्वः । पक्वेन ।
अभि । अश्रवातै ।

उप । एनम् । जीवान् । पितरः । च । पुत्राः । एतम् । स्वः । गम् ।
गमय । अन्तम् । अग्नेः ॥ ३४ ॥

इस निधिकी रक्षा करने वाला यजमान इस अग्निसे पक्व ओदन के खानेसे स्वर्गमें साठ वर्षके अनन्तर फल पाना चाहे, हे यज्ञाभिमानि देव ! इस यजमानको आप स्वर्गमें भेजिये और इसके पुत्र पिता आदि जीवोंको भी इसके पासमें रखिये ॥ ३४ ॥
धर्ता ध्रियस्व धरुणे पृथिव्या अन्युतं त्वा देवता-

श्चयावयन्तु ।

तं त्वा दंपती जीवन्तौ जीवपुत्रावुद् वासयातः पर्यग्नि-
धानात् ॥ ३५ ॥

धर्ता । ध्रियस्व । धरुणे । पृथिव्याः । अच्युतम् । त्वा । देवताः ।
च्यवयन्तु ।

तम् । त्वा । दंपती इति दम्पती । जीवन्ती । जीवऽपुत्रौ । उत् ।

वासयातः । परि । अग्निऽधानात् ॥ ३५ ॥

हे ओदन ! तू धर्ता है अतः पृथिवीके धारक स्थानमें स्थित
हो तुझ अच्युतको देवता च्यवित करें । और तुझको जीवित
पुत्र वाले जीवित दम्पती अग्निधानसे बसावें ॥ ३५ ॥

सर्वान्तसमागा अभिजित्य लोकान् यावन्तः कामाः
समंतीतृस्तान् ।

वि गाहेथामायवनं च दर्विरेकस्मिन् पात्रे अध्येद्धरैनम्
सर्वान् । सम्ऽआगाः । अभिऽजित्य । लोकान् । यावन्तः । कामाः ।
सम् । अतीतृपः । तान् ।

वि । गाहेथाम् । आऽयवनम् । च । दर्विः । एकस्मिन् । पात्रे ।
अधि । उत् । हर । एनम् ॥ ३६ ॥

तू सम्पूर्ण लोकोंको जीतता हुआ प्राप्त हो जितनी इच्छाएँ हों
उन सबको भली प्रकार तृप्त कर दम्पती आयवनको और कर-
दनीको घुमावें फिर उनमेंसे एक इस ओदनको पात्रमें निकाल
कर रखे ॥ ३६ ॥

उप॑ स्तृणी॑हि प्रथ॑य पुरस्ताद् घृ॒तेन॑ पात्र॑मभि॑ घार॑यैत्
वा॒श्रवो॒स्रा तरु॑णं स्तन॑स्युमि॒मं दे॒वासो॑ अभि॒हिङ्कृ॑णोत

उप॑ । स्तृ॒णी॑हि । प्र॒थय॑ । पु॒रस्ता॑त् । घृ॒तेन॑ । पात्र॑म् । अ॒भि ।
घा॒रय॑ । ए॒तत् ।

वा॒श्राऽइ॒व । उ॒स्रा । तरु॑णम् । स्तन॑स्युम् । इ॒मम् । दे॒वा॒सः ।

अ॒भि॒हिङ्कृ॑णोत ॥ ३७ ॥

आप इसको परोसिये फैलाइये फिर इसको घृतसे अभिधारित करिये, और हे देवताओं ! जैसे दूध देने वाली गौएँ दूध पीने वाले बछड़ेकी ओर शब्द करती है, इसी प्रकार पूर्णरूपसे तयार हुए ओदनकी ओर आप शब्द करिये ॥ ३७ ॥

उपा॑स्तरी॒रकरो॑ लो॒कमे॒तमु॑रुः प्रथ॑ताम॒समः॑ स्वर्गः॑ ।

तस्मि॑ं छ्रया॑तैः म॒हिषः॑ सु॒पर्णो॑ दे॒वा ए॒नं दे॒वता॑भ्यः प्र
यच्छा॑न् ॥ ३८ ॥

उप॑ । अ॒स्तरीः॑ । अ॒करः॑ । लो॒कम् । ए॒तम् । उ॒रुः । प्र॒थता॑म् ।

अ॒समः॑ । स्वऽगः॑ ।

तस्मि॑न् । श्र॒या॒तैः । म॒हिषः॑ । सु॒ऽपर्णः॑ । दे॒वाः । ए॒नम् । दे॒वता॑भ्यः ।

प्र । यच्छा॑न् ॥ ३८ ॥

हे यजमान ! तूने इस लोकमें ओदन परोस कर इस लोकको सफल कर लिया है, इस ओदनके प्रभावसे यह ओदन स्वर्गमें इससे भी अधिक विस्तृतरूपमें मिले । हे दम्पती ! सुन्दर गमन

वाला महिमामय ओदन उस स्वर्गमें आपको टिकावे, देवता इस यजमानको देवताओंके अर्पण करें ॥ ३८ ॥

यद्यज्जाया पचति त्वत् परःपरः पतिर्वा जाये त्वत् तिरः
सं तत् सृजेथा सह वां तदस्तु संपादयन्तौ सह लोक-
मेकम् ॥ ३९ ॥

यत्स्यत् । जाया । पचति । त्वत् । परःपरः । पतिः । वा । जाये ।
त्वत् । तिरः ।

सम् । तत् । सृजेथाम् । सह । वाम् । तत् । अस्तु । सम्पाद-
यन्तौ । सह । लोकम् । एकम् ॥ ३९ ॥

जो जाया इसका पाक करती है, ऐसी हे जाये ! तेरा पति तुझसे बादको जावे या तू पतिसे पहिले जावे तो तहाँ स्वर्गमें तुम एकत्रित होजाना तहाँ यह ओदन तुम्हारे साथ रहे और तहाँ तुम एक ही लोकको सम्पादित करो ॥ ३९ ॥

यावन्तो अस्याः पृथिवीं सचन्ते अस्मत् पुत्राः परि
ये संबभूवुः ।

सर्वास्ताँ उप पात्रे ह्वयेथां नाभिं जानानाः शिशवाः
समायान् ॥ ४० ॥

यावन्तः । अस्याः । पृथिवीम् । सचन्ते । अस्मत् । पुत्राः । परि ।
ये । सम्बभूवुः ।

सर्वान् । तान् । उप । पात्रे । ह्वयेथाम् । नाभिम् । जानानाः ।
शिशवः । सम्मायान् ॥ ४० ॥

इस स्त्रीके जितने पुत्र पृथिवीका सेवन करते हैं, कि—जो पहिले हमारे पुत्र थे, उन सबको इस पात्रके समीप बुलाओ अपनी नाभि को जानते हुए वे शिशु यहाँ पर आजावें ॥ ४० ॥

वसो॒र्या धा॒रा मधु॒नाः प्र॒पी॒ना घृ॒तेन॑ मि॒श्रा अ॒मृत॑स्य
नाभ॑यः ।

सर्वा॑स्ता अव॒ रुन्धे॑ स्व॒र्गः ष॒ष्ट्यां श॒रत्सु॑ निधि॒पा अ॒भी॒-
च्छा॑त् ॥ ४१ ॥

वसोः । याः । धाराः । मधुना । प्र॒पी॒नाः । घृ॒तेन॑ । मि॒श्राः । अ॒मृ॒-
तस्य॑ । नाभयः ।

सर्वाः । ताः । अव । रुन्धे । स्वः॒ऽगः । ष॒ष्ट्याम् । श॒रत्सु॑ ।
निधि॒ऽपाः । अ॒भि । इच्छा॑त् ॥ ४१ ॥

वासक ओदनकी जो मधुसे मोटी हुई धारें हैं वे घृतसे मिली हुई हैं और अमृतकी बंधिका हैं स्वर्ग उन सबको रोके रखता है, साथ वर्षोंके अनन्तर निधिपा उसकी इच्छा करे ॥ ४१ ॥

निधिं॑ निधि॒पा अ॒भ्ये॒नमि॑च्छादनी॒श्वरा॑ अ॒भितः॑ सन्तु
ये॒॑न्ये ।

अ॒स्माभि॑र्दत्तो निहि॒तः स्व॒र्गस्त्रि॒भिः काण्डै॒स्त्रीन्स्व॒र्गा॒-
नरु॑क्षत् ॥ ४२ ॥

नि॒ऽधिम् । निधि॒ऽपाः । अ॒भि । ए॒नम् । इच्छा॑त् । अनी॒श्वराः । अ॒भितः॑
सन्तु॑ । ये । अ॒न्ये ।

अस्माभिः । दत्तः । निऽहितः । स्वऽङ्गः । त्रिऽभिः । काण्डैः ।

त्रीन् । स्वऽङ्गान् । अरुक्षत् ॥ ४२ ॥

निधिपा यजमान इस निधिकी इच्छा करे और जो दूसरे हैं वे अनीश्वर ही रहेंगे, हमारा दिया हुआ और थातीके रूपमें स्थित स्वर्गको जाने वाला ओदन अपने तीनों काण्डोंके साथ स्वर्ग पर चढ़े ॥ ४२ ॥

अग्नी रक्षस्तपतु यद् विदेवं क्रव्यात् पिशाच इह मा
प्र पास्त ।

नुदाम एनम्प रुध्मो अस्मदादित्या एनमङ्गिरसः
सचन्ताम् ॥ ४३ ॥

अग्निः । रक्षः । तपतु । यत् । विऽदेवम् । क्रव्यऽअत् । पिशाचः ।
इह । मा । प्र । पास्त ।

नुदामः । एनम् । अप । रुध्मः । अस्मत् । आदित्याः । एनम् । अङ्गि-
रसः । सचन्ताम् ॥ ४३ ॥

मैंने जो कुव्यवहार किया हो तो उसके फलसे बाधित करने वाले राक्षसोंको अग्निदेव संताप दें क्रव्यात् और पिशाच यहाँ हमारा शोषण न कर सकें, हम इस राक्षसको खदेड़ते हैं और अपने पास आनेसे रोकते हैं अङ्गिरस और आदित्य इसका सेवन करें ॥ ४३ ॥

आदित्येभ्यो अङ्गिरोभ्यो मध्विदं घृतेन मिश्रं एति
वेदयामि ।

शुद्धहस्तौ ब्राह्मणस्यानिहत्यैतं स्वर्गं सुकृतावपीतम्
आदित्येभ्यः । अङ्गिरःभ्यः । मधु । इदम् । घृतेन । मिश्रम् । प्रति ।
वेदयामि ।

शुद्धहस्तौ । ब्राह्मणस्य । अनिहत्य । एतम् । स्वःऽगम् । सु-
कृतौ । अपि । इतम् ॥ ४४ ॥

मैं आदित्योंके लिये और अंगिराओंके लिये घृत मिले इस
मधुको निवेदित करता हूँ । ब्राह्मणके पुण्यमय शुद्ध हाथ इस स्वर्ग
में फलरूपसे जाने वालेके फलको नष्ट किये बिना इसको स्वर्गमें
लेजावें ॥ ४४ ॥

इदं प्रापमुत्तमं काण्डमस्य यस्माल्लोकात् परमेष्ठी
समाप ।

आ सिञ्च सर्पिर्घृतवत् समङ्ग्धयेष भागो अङ्गिरसो नो
अत्र ॥ ४५ ॥

इदम् । प्र । आपम् । उत्तमम् । काण्डम् । अस्य । यस्मात् ।
लोकात् । परमेऽस्थी । सम्ऽआप ।

आ । सिञ्च । सर्पिः । घृतवत् । सम् । अङ्ग्धि । एषः । भागः ।
अङ्गिरसः । नः । अत्र ॥ ४५ ॥

जिस दर्शनीय काण्डसे परमेष्ठीने भली भाँति फल पाया था
उसके उत्तम काण्डको मैंने प्राप्त कर लिया है इसको घृतसे सावित
करो यह घृतसुत भाग इस यज्ञमें हम अंगिराओंका है ॥ ४५ ॥

सत्याय च तपसे देवताभ्यो निधिं शेवधिं परि दद्व
एतम् ।

मा नो दूतेव गान्मा समित्यां मा स्मान्यस्मा उत्सृ-
जता पुरा मत् ॥ ४६ ॥

सत्याय । च । तपसे । देवताभ्यः । निऽधिम् । शेवऽधिम् । परि ।
दद्वः । एतम् ।

मा । नः । दूते । अव । गात् । मा । सम्ऽइत्याम् । मा । स्म ।

अन्यस्मै । उत् । सृजत । पुरा । मत् ॥ ४६ ॥

हम सत्यके लिये देवताओंके लिये और तपके लिये इस ओदन-
रूप खजानेको थातीके रूपमें अर्पण करते हैं, यह परस्पर कर्मफल
को लेने देनेरूप द्यूनमें हमसे अलग न हो और समितिमें भी यह
दूर न हो मुझसे इसको दूसरे पुरुषोंके लिये मत उत्सर्जन करो
अर्थात् युद्ध आदिमें पलायन करनेसे मेरे यज्ञका फल नष्ट होकर
दूसरोंको प्राप्त न होवे ॥ ४६ ॥

अहं पचाम्यहं ददामि ममेदु कर्मन् करुणेधि जाया ।
कौमारो लोको अजनिष्ट पुत्रोऽन्वारभेथां वय उत्तरावत्
अहम् । पचामि । अहम् । ददामि । मम । इत् । ऊं इति ।

कर्मन् । करुणे । अधि । जाया ।

कौमारः । लोकः । अजनिष्ट । पुत्रः । अनुऽआरभेथाम् । वयः ।

उत्तरऽवत् ॥ ४७ ॥

मैं ही पाकक्रिया कर रहा हूँ और मैं ही इसको दान आदि रूपोंमें दे रहा हूँ, क्योंकि हे यज्ञात्मक कर्मन् ! इस कर्ममें मेरी ही जाया लग रही है, हमारे यहाँ दर्शनीय कुमारावस्थासे सम्पन्न पुत्र प्रकट है अब हम श्रेष्ठतासम्पन्न यज्ञान्नका पाक दान आदि आरंभ करते हैं ॥ ४७ ॥

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः समममान
एति ।

अनूनं पात्रं निहितं न एतत् पक्तां पक्वः पुनरा
विशाति ॥ ४८ ॥

न । किल्बिषम् । अत्र । न । आऽधारः । अस्ति । न । यत् ।

मित्रैः । सम्ऽअममानः । एति ।

अनूनम् । पात्रम् । निऽहितम् । नः । एतत् । पक्ताम् । पक्वः ।

पुनः । आ । विशाति ॥ ४८ ॥

इस कर्ममें कोई किल्बिष नहीं है, न इसका कोई अन्य आधार है और न यह अपने मित्रोंके साथ नापता हुआ आता है, यह जो न्यूनतारहित पूर्णपात्र रक्खा जाता है यही पक्ताको फिर प्राप्त होजाता है ॥ ४८ ॥

प्रियं प्रियाणां कृण्वाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विपन्ति
धेनुरनृवान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु
प्रियम् । प्रियाणाम् । कृण्वाम । तमः । ते । यन्तु । यतमे । द्विपन्ति ।

धेनुः । अनङ्वान् । वयःऽवय । आऽयत् । एव । पौरुषेयम् ।

अप । मृत्युम् । नुदन्तु ॥ ४६ ॥

हे यजमान ! जो प्रियोंमें भी परम प्रिय होसकता है ऐसे फल को देने वाले कर्मको हम तेरे लिये करते हैं और जितने पुरुष तुझसे द्वेष करते हैं वे नरकरूप अन्धकारको प्राप्त होवें, धेनु, बैल, अन्न, अवस्था और पुरुषार्थ ये आवें ही और अपमृत्युको दूर करें ४६ समग्रयो विदुरन्यो अन्यं य ओषधीः सचते यश्च

सिन्धून् ।

यावन्तो देवा दिव्यास्तपन्ति हिरण्यं ज्योतिः पचतो

बभूव ॥ ५० ॥

सम् । अग्रयः । विदुः । अन्यः । अन्यम् । यः । ओषधीः ।

सचते । यः । च । सिन्धून् ।

यावन्तः । देवाः । दिवि । आस्तपन्ति । हिरण्यम् । ज्योतिः ।

पचतः । बभूव ॥ ५० ॥

जो अग्नि ओषधियोंका सेवन करता है और जो अग्नि जलों का सेवन करता है इस प्रकार दूसरा दूसरेको जानता है यह तथा अन्य अग्नियों भी इस कर्मको भलीभाँति जानती हैं, जितने दिव्य देवता तप करते हैं और जो सुवर्ण तथा ज्योतिर्मयपदार्थ हैं ये सब पाक करने वालेको प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥ (१७)

एषा त्वचां पुरुषे सं बभूवानग्नाः सर्वे पशवो ये अन्ये ।

क्षत्रेणात्मानं परिधापयाथोमोतं वासो मुखमोदनस्य

ए॒षा । त्व॒चाम् । पु॒रुषे । स॒म् । व॒भूव॒ । अ॒न॒ग्राः । स॒र्वे । प॒शवः ।
ये । अ॒न्ये ।

क्ष॒त्रेण । आ॒त्मा॒नम् । परि । धा॒प॒याथः । अ॒ग्राऽउ॒तम् । वा॒सः ।
मु॒खम् । ओ॒दन॒स्य ॥ ५१ ॥

ये जो पशु नग्नतासे रहित चर्मसे ढके हुए दीखते हैं इनकी त्वचा पहिले पुरुषमें थी, हे दम्पती ! तुम क्षत्रशक्तिसे अपनेको आच्छादित करो और साथ ही इस ओदनके मुखको वस्त्रसे आच्छादित करो ॥ ५१ ॥

यद॒क्षे॒षु व॒दा यत् स॒मित्यां य॒द्रा व॒दा अ॒नृतं वित्त॒काम्या
स॒मानं तन्तु॒मभि सं॒वसानौ तस्मिन्त्सर्वं श॒मलं
सा॒द॒याथः ॥ ५२ ॥

यत् । अ॒क्षे॒षु । व॒दाः । यत् । स॒म्ऽइ॒त्याम् । यत् । वा । व॒दाः ।
अ॒नृतम् । वि॒त्तऽका॒म्या ।

स॒मा॒नम् । तन्तु॒म् । अ॒भि । स॒म्ऽव॒सानौ । तस्मिन् । स॒र्वम् ।
श॒मलम् । सा॒द॒याथः ॥ ५२ ॥

जो तुमने धनकी कामनासे, द्यूतमें वा युद्धमें झूठ बोला है, तुम समानरूपसे तन्तुओंसे बने हुए वस्त्रको ढककर उसमें अपने कश्मलको स्थापित करो ॥ ५२ ॥

व॒र्ष व॒नुष्वापि गच्छ दे॒वांस्त्व॒चो धूमं पर्यु॒त्पात॑यासि ।
वि॒श्वव्य॑चा घृ॒तपृ॑ष्ठो भविष्यन्त्स॒योनि॑लोकमुप॒याह्ये॑तम्

वर्षम् । वनुष्व । अपि । गच्छ । देवान् । त्वचः । धूमम् । परि ।
उत् । पातयासि ।

विश्वऽव्यचः । घृतऽपृष्ठः । भविष्यन् । सऽयोनिः । लोकम् ।
उप । याहि । एतम् ॥ ५३ ॥

तू फलवर्षत्वका सेवन कर, और देवताओंके पास जा और अपनी त्वचाको धूमरूपसे उछाल और अनेक प्रकारकी पूजाको पाता हुआ और घृतपृष्ठ होता हुआ, स्वर्गलोकमें समान उत्पत्तिकारण वाला होकर इस पुरुषको प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

तन्वं स्वर्गो बहुधा वि चक्रे यथा विद आत्मन्न-
न्यवर्णाम् ।

अपाजैत् कृष्णां रुशतीं पुनानो या लोहिनी तां ते
अग्नौ जुहोमि ॥ ५४ ॥

तन्वम् । स्वऽगः । बहुऽधा । वि । चक्रे । यथा । विदे । आत्मन् ।
अन्यऽवर्णाम् ।

अप । अजैत् । कृष्णाम् । रुशतीम् । पुनानः । या । लोहिनी ।
ताम् । ते । अग्नौ । जुहोमि ॥ ५४ ॥

यह स्वर्गमें प्राप्त होनेवाला ओदन अपने शरीरको अनेक आकार का बना लेता है, जैसे ज्ञानीके लिये आत्मा अन्यवर्ण वाली प्रकृति को अनेक आकारका बना लेता है और कृष्णा रुशतीको पवित्र करता हुआ चला जाता है, इसी प्रकार मैं तेरे लालवर्णको अग्नि में होमता हूँ ॥ ५४ ॥

प्राच्यै त्वा दिशेऽग्नयेधिपतयेसिताय रक्षित्र आदि-
त्यायेषुमते ।

एतं परि दद्वस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।

दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो
ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ५५ ॥

प्राच्यै । त्वा । दिशे । अग्नये । अधिपतये । असिताय । रक्षित्रे ।
आदित्याय । इषुऽमते ।

एतम् । परि । दद्वः । तम् । नः । गोपायत । आ । अस्माकम् ।
आऽएतोः ।

दिष्टम् । नः । अत्र । जरसे । नि । नेषत् । जरा । मृत्यवे ।
परि । नः । ददातु । अथ । पक्वेन । सह । सम् । भवेम ५५

हम तुम्हे पूर्वदिशाके लिये अधिपति अग्निके लिये रक्षक असित
सर्पके लिये और बाणधारी आदित्यके लिये देते हैं सो आप
इसकी हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे
प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इस
को मृत्यु अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्ग) में
आनन्द पावें ॥ ५५ ॥

दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये
रक्षित्रे यमायेषुमते ।

एतं ०।० ॥ ५६ ॥

६८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसंहिता

दक्षिणायै । त्वा । दिशे । इन्द्राय । अधिपतये । तिरश्चिराजये ।

रक्षित्रे । यमाय । इषुमते ॥०॥ ५६ ॥

हम तुम्हे दक्षिणदिशाके लिये, अधिपति इन्द्रके लिये तिरश्चिराजि रक्षक सर्पके लिये और बाणधारी यमके लिये देते हैं सो आप इसको हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये हमारे और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ५६ ॥

प्रतीच्यै त्वा दिशे वरुणाय अधिपतये पृदाकवे रक्षित्रे-
न्नायेषुमते ।

एतं०॥०॥ ५७ ॥

प्रतीच्यै । त्वा । दिशे । वरुणाय । अधिपतये । पृदाकवे । रक्षित्रे ।

अन्नाः । इषुमते ॥०॥ ५७ ॥

हम तुम्हे पश्चिम दिशाके लिये, उसके अधिपति वरुणके लिये, उसके नाग पृदाकुके लिये और बाणरूप अन्नके लिये देते हैं सो आप इसकी हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ५७ ॥

उदीच्यै त्वा दिशे सोमाय अधिपतये स्वजाय रक्षित्रे-
शन्या इषुमत्यै ।

एतं०।० ॥ ५८ ॥

उदी॑च्यै । त्वा । दि॒शे । सोमा॑य । अधि॑स्पतये । स्व॒जाय॑ ।

र॒क्षि॒त्रे । अ॒श॒न्यै । इ॒षु॑स्पत्यै ॥० ॥ ५८ ॥

हम तुम्हको उत्तर दिशाके लिये, उस दिशाके अधिपति सोम के लिये, स्वज नामक रक्षक सर्पके लिये और बाणरूपा अशनिके लिये देते हैं सो आप इसको हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ५८ ॥

ध्रु॒वायै॑ त्वा दि॒शे वि॒ष्णवे॑धि॒पतये॑ क॒ल्माष॑ग्री॒वाय॑ र॒क्षि॒त्र

ओष॑धी॒भ्य इ॒षु॑मती॒भ्यः । एतं०।० ॥ ५९ ॥

ध्रु॒वायै॑ । त्वा । दि॒शे । वि॒ष्णवे॑ । अधि॑स्पतये । क॒ल्माष॑ग्री॒वाय॑ ।

र॒क्षि॒त्रे । ओष॑धी॒भ्यः । इ॒षु॑मती॒भ्यः ॥० ॥ ५९ ॥

हम तुम्हको ध्रुव दिशाके लिये, उसके अधिपति विष्णुके लिये और रक्षक कल्माष ग्रीव (सर्प) के लिये और इषुमती औषधियोंके लिये देते हैं सो आप इसकी हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ५९ ॥

ऊ॒र्ध्वायै॑ त्वा दि॒शे बृ॒हस्प॑तयेधि॒पतये॑ शि॒वत्रा॑य र॒क्षि॒त्रे

व॒र्षाये॑षु॒मते॑ ।

एतं परि दद्वस्तं नो गोपायतास्माकमैतोः ।
 दिष्टं नो अत्र जरसे नि नेषज्जरा मृत्यवे परि णो
 ददात्वथ पक्वेन सह सं भवेम ॥ ६० ॥

ऊर्ध्वार्यै । त्वा । दिशे । बृहस्पतये । अधिस्पतये । शिवत्राय ।
 रक्षित्रे । वर्षार्यै । इषुस्पते ।

एतम् । परि । दद्वः । तम् । नः । गोपायत । आ । अस्माकम् ।
 आऽएतोः ।

दिष्टम् । नः । अत्र । जरसे । नि । नेषत् । जरा । मृत्यवे । परि ।

नः । ददातु । अथ । पक्वेन । सह । सम् । भवेम ॥ ६० ॥

तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति तृतीयोनुवाकः ॥

हम तुभको ऊर्ध्व दिशाके लिये, उसके अधिपति बृहस्पतिके लिये, रक्षक शिवत्रके लिये और इषुमान् वर्षके लिये देते हैं सो आप इसकी हमारे यहाँसे पयान करने तक रक्षा करिये, इसको हमारे प्रारब्धके रूपमें बुढ़ापे तक प्राप्त कराइये और हमारी जरा इसको मृत्युके अर्पण करे फिर इस पक्व ओदनके साथ हम (स्वर्गमें) आनन्द पावें ॥ ६० ॥ (१८)

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४९३)

तृतीय अनुवाक समाप्त

वशाविषयकं सूक्तम् एतत् । वशा गौर्या गर्भं न गृह्णातीति दारिलः (कौ० ५. ८ , । वशा बन्ध्या गौरिति सायणः (ऋ० २.७.५) । वशा स्वभावबन्ध्या गौरिति स एव (ऋ० १०.६१.१४)

यस्य गृहे वशा जाता तस्य गृहे 'अज्ञातगदा सती' अर्थाद् अज्ञातवशात्वरूपवैकल्या सती आ वर्षत्रयाद् रक्षितव्या । तदनन्तरम् असंग्राह्या भवति । वशा गौर्देवानां विशेषेण प्रियं हविर्भवति । तस्माद्देवानामर्थे तां याचद्भ्यो ब्राह्मणेभ्यस्तत्पतिर्दद्याद्देव । तथा कृते प्रजादिवृद्धिर्भवति नच कृते बहुच आपदः संजायन्ते । तदेव आपद्भ्यसनं तस्या अदत्तायाः कस्मादङ्गात् कीदृशं भवतीत्याह । अन्यापि कथं विपत्तिर्भवतीति च । याचद्भ्यो ब्राह्मणेभ्योऽदत्ता वशा ब्रह्मोपद्रवादि पापं जनयति । यदा वशां ब्राह्मणा याचन्ते देवा एव तद् याचन्तीति मन्तव्यम् वशा हि देवानां भागो भवति । वशा दत्ता सती सर्वान् दातुः कामान् दुग्धे । यो वशां वेहतं मन्यमानः स्वयमेव हत्वा पचेत्तस्य हानिर्भवति । वशा हि ब्राह्मणेभ्य आत्मानं दीयमानां तैश्च हता सती देवेभ्यो हवीरूपेण अर्प्यमाणाम् इच्छति । तस्माद् यदि हुतां वा अहुतां वा यो वशापतिस्तां स्वगृह एव पचते सोधःपातम् आप्य नरकं गच्छतीत्याह ॥

वशाशमनप्रकारः कौशिके [५. ८, ९] प्रपञ्चितः ॥

वशादानस्य प्रकारस्तु "ददामीति वशाम् उदपात्रेण संपातवता संप्रोक्ष्याभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद् दाता वाच्यमानः" इति कौशिके [८. ७] दर्शितः ॥

यह सूक्त वशाविषयक है । कौशिकसूत्र ५ । ८ में दारिल्लने कहा है, कि—जो गौ गर्भको धारण नहीं करती वह वशा कहलाती है । सायणाचार्यजीने ऋग्वेदसंहिता २ । ७ । ५ में कहा है, कि—बन्ध्या गौ वशा कहलाती है । और सायणाचार्यने ही ऋग्वेदसंहिता १० । ११ । १४ में कहा है, कि—स्वभावबन्ध्या गौ वशा कहलाती है ।

जिसके घरमें वशा प्रकट हो तो अज्ञातवशात्वरूपवैकल्य वाली उस वशाकी तीन वर्ष तक रक्षा करनी चाहिये, तदनन्तर वह

१०२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

असंग्राह्य होजाती है । वशा गौ देवताओंकी विशेषप्रिय हवि होती है । इसलिये उसके पालकको चाहिये, कि-देवताओंके लिये याचना करने वाले ब्राह्मणोंको दे ही देय । ऐसा करने पर प्रजा आदि की वृद्धि होती है और न करने पर बहुतसी आपत्तियाँ भोगनी पड़ती हैं । उस गौके न देने पर ऐसा आपद्भव्यसन उस के किस २ अंगसे कैसा २ होता है इसका वर्णन किया है और होने वाली अन्य विपत्तियोंका भी वर्णन किया है । याचना करने वाले ब्राह्मणोंको न दी हुई वशा ब्रह्मोपद्रव आदि पापोंको करती है । वशा देवताओंका भाग होता है अतः जब ब्राह्मण याचना करें उस समय यह समझना चाहिये, कि-देवता ही याचना कर रहे हैं । दान करने पर वशा दाताके लिये सब कामनाओंको दुहती है ।

जो पुरुष वशाको गर्भघातिनी मानता हुआ स्वयमेव उसका हनन करके भक्षण करता है उसको हानि भोगनी पड़ती है । वशा यह चाहती है, कि-मैं ब्राह्मणोंको दी जाऊँ और उनसे हनन होने पर देवताओंको हवीरूपसे अर्पित होऊँ । इस लिये कहा है, कि-जो हुता वा अहुता वशाको अपने आप ही पचन करता है वह गृहपति अधःपातको प्राप्त होकर नरकमें पड़ता है ।

कौशिकने वशाशमनका प्रकार (५ । ८, ९) में कहा है ।

कौशिकने ८ । ७ में वशाशमनका प्रकार कहा है, कि-“ददामीति वशां उदपात्रेण सम्पातवता सम्प्रोक्ष्याभिमन्त्र्याभिनिगद्य दद्याद् दाता वाच्यमानः । सम्पातयुक्त जलपूर्ण पात्रको दाता देता हूँ कह सम्प्रोक्षित और अभिमन्त्रित करके स्वस्तिवाचन कराता हुआ देदेय” ॥

ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।

वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत् प्रजावदपत्यवत् ॥ १ ॥

ददामि । इति । एव । ब्रूयात् । अनु । च । एनाम् । अभुत्सत ।
वशाम् । ब्रह्मभ्यः । याचत्भ्यः । तत् । प्रजावत् । अपत्यवत् ?

याचना करने वाले ब्राह्मणोंसे देता हूँ यही कहे, तदनन्तर वह ब्राह्मण अबबोधन करते हैं, कि यह कर्म यजमानको प्रजा और अपत्यसे सम्पन्न करने वाला होवे ॥ १ ॥

प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति २

प्रजया । सः । वि । क्रीणीते । पशुभिः । च । उप । दस्यति ।

यः । आर्षेयेभ्यः । याचत्भ्यः । देवानाम् । गाम् । न । दित्सति २

जो पुरुष ऋषि (गोत्र) आदि वाले याचना करते हुए ब्राह्मणों को देवताओंकी गौको नहीं देना चाहता है वह अपनी प्रजाको बेचने लगता है और पशुओंसे क्षीण होजाता है ॥ २ ॥

कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोण्या काटमर्दति ।

बण्डया दह्यन्ते गृहाः काण्या दीयते स्वम् ॥ ३ ॥

कूटया । अस्य । सम् । शीर्यन्ते । श्लोण्या । काटम् । अर्दति ।

बण्डया । दह्यन्ते । गृहाः । काण्या । दीयते । स्वम् ॥ ३ ॥

इस वशाके कूटा नामक अंगसे इस अप्रदाताके पदार्थ शीर्ण होजाते हैं, श्लोणासे अप्रदाता काटको पीड़ित करता है, बण्डा नामक अंगसे इसके घर जल जाते हैं और काणा नामक अंगसे धन देदिया जाता है ॥ ३ ॥

१०४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्रो विन्दति गोपतिम् ।

तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ ४ ॥

विऽलोहितः । अधिऽस्थानात् । शक्रः । विन्दति । गोऽपतिम् ।

तथा । वशायाः । सम्ऽविद्यम् । दुरदभ्ना । हि । उच्यसे ॥ ४ ॥

वशाके अधिष्ठानसे विलोहित शक्र और सम्बिद्य गोपतिको प्राप्त होता है, क्योंकि—हे वशे ! तू दुरदभ्ना कहलाती है ॥ ४ ॥

पदोरस्या अधिष्ठानाद् विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।

अनामनात् सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ ५ ॥

पदोः । अस्याः । अधिऽस्थानात् । विऽक्लिन्दुः । नाम । विन्दति ।

अनामनात् । सम् । शीर्यन्ते । याः । मुखेन । उपऽजिघ्रति ॥ ५ ॥

इसके पैरोंके अधिष्ठानसे विक्लिन्दु नामक आपत्ति गोपतिको प्राप्त होती है, और जो मुखसे सूँघता है तो बिना प्रसिद्धि पाये हुए ही इसके पदार्थ शीर्ण होजाते हैं ॥ ५ ॥

यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्था स देवेषु वृश्चते ।

लक्ष्मं कुर्वे इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ ६ ॥

यः । अस्याः । कर्णौ । आऽस्कुनोति । आ । सः । देवेषु । वृश्चते ।

लक्ष्मं । कुर्वे । इति । मन्यते । कनीयः । कृणुते । स्वम् ॥ ६ ॥

जो इसके कानोंका आप्रवण करता है वह देवताओंमें काटा जाता है और जो मैं लक्ष्म करता हूँ ऐसा मानता है वह अपनेको कनिष्ठ कर लेता है ॥ ६ ॥

यदस्याः कस्मै चिद् भोगाय बालान् कश्चित् प्रकृन्तति ।

ततः किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥७॥

यत् । अस्याः । कस्मै । चित् । भोगाय । बालान् । कः । चित् ।
प्रकृन्तति ।

ततः । किशोराः । म्रियन्ते । वत्सान् । च । घातुकः । वृकः ७

यदि किसी भोगके लिये इसके बालोंको काटता है तो इसके किशोर पुत्र मर जाते हैं और भेड़िया बछड़ोंको मार डालता है ७

यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।

ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥८॥

यत् । अस्याः । गोपतौ । सत्याः । लोम । ध्वाङ्क्षः । अजीहिडत् ।

ततः । कुमाराः । म्रियन्ते । यक्ष्मः । विन्दति । अनामनात् ८

यदि गोपतिकी उपस्थितिमें ऐसी गौके लोमका कौआ अपमान करता है तो इसके कुमार मर जाते हैं और अनामनसे यक्ष्म रोग आजाता है ॥ ८ ॥

यदस्याः पल्पूलनं शकृद् दासी समस्यति ।

ततोपरूपं जायते तस्मादव्येष्ट्यदेनसः ॥ ९ ॥

यत् । अस्याः । पल्पूलनम् । शकृत् । दासी । सम्प्रस्यति ।

ततः । अपरूपम् । जायते । तस्मात् । अविष्ट्यत् । एनसः ९

यदि इसके पल्पूलन गोबरको दासी फेंकती है तो उस पापसे न छूटता हुआ पुरुष अपरूप होजाता है ॥ ९ ॥

जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान् वशा ।

तस्माद् ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् १०

जायमाना । अभि । जायते । देवान् । सऽब्राह्मणान् । वशा ।

तस्मात् । ब्रह्मऽभ्यः । देया । एषा । तत् । आहुः । स्वस्य । गोपनम् १०

उत्पन्न होती हुई वशा देवता और ब्राह्मणोंके लिये ही प्रकट होती है, इस लिये इसको ब्राह्मणोंको देना चाहिये यही अपना रक्षण करना है ऐसा सत्पुरुष कहते हैं ॥ १० ॥ (१९)

य एनां वनिमायन्ति तेषां देवकृता वशा ।

ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन् य एनां निप्रियायते ॥ ११ ॥

ये । एनाम् । वनिम् । आऽयन्ति । तेषाम् । देवऽकृता । वशा ।

ब्रह्मऽज्येयम् । तत् । अब्रुवन् । यः । एनाम् । निऽप्रियायते ॥ ११ ॥

जो इसकी सेवा करते हैं और इसको परम प्रिय समझते हैं उनके लिये यह ब्रह्मज्या होजाती है ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं ११

य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ।

आ स देवेषु वृश्चते ब्राह्मणानां च मन्यवे ॥ १२ ॥

यः । आर्षेयेभ्यः । याचत्ऽभ्यः । देवानाम् । गाम् । न । दित्सति ।

आ । सः । देवेषु । वृश्चते । ब्राह्मणानाम् । च । मन्यवे ॥ १२ ॥

जो पुरुष ऋषि प्रवरसे अभिज्ञ आर्षेय याचकोंको देवताओं की गौको नहीं देना चाहता है वह देवताओंके द्वारा और ब्राह्मणों के कोषके द्वारा छिन्न भिन्न होजाता है ॥ १२ ॥

यो अस्य स्याद् वशाभोगो अन्यामिच्छेत तर्हि सः ।
हिंस्ते अदत्ता पुरुषं याचितां च न दित्सति ॥ १३ ॥

यः । अस्य । स्यात् । वशाऽभोगः । अन्याम् । इच्छेत । तर्हि । सः ।
हिंस्ते । अदत्ता । पुरुषम् । याचिताम् । च । न । दित्सति १३

यदि वशा इसका भोग हो तो यह दूसरीकी इच्छा करे जो पुरुष माँगी हुई वशाको नहीं देना चाहता है तो यह न दी हुई वशा पुरुषका संहार करती है ॥ १३ ॥

यथा शेषधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ।
तामेतदच्छायन्ति यस्मिन् कस्मिंश्च जायते ॥ १४ ॥

यथा । शेषऽधिः । निऽहितः । ब्राह्मणानाम् । तथा । वशा ।
ताम् । एतत् । अच्छऽआयन्ति । यस्मिन् । कस्मिन् । च । जायते

जैसी थाती रक्खी जाती है तैसी ही वशा ब्राह्मणोंकी होती है, यह वशा चाहें किसीके घर प्रकट होजाती है और यह ब्राह्मण उसके अभिमुख होकर याचना करते हैं ॥ १४ ॥

स्वमेतदच्छायन्ति यद् वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्यां निरोधनम् १५

स्वम् । एतत् । अच्छऽआयन्ति । यत् । वशाम् । ब्राह्मणाः । अभि ।
यथा । एनान् । अन्यस्मिन् । जिनीयात् । एव । अस्याः । निऽरोध-
नम् ॥ १५ ॥

जो ब्राह्मण वशाके अभिमुख होकर आते हैं वह अपने धनकी ओर ही आते हैं, इसको रोकना दूसरोंके द्वारा अपनेको हानि पहुँचाना है ॥ १५ ॥

चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।

वशा च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥

चरेत् । एव । आ । त्रैहायनात् । अविज्ञातगदा । सती ।

वशाम् । च । विद्यात् । नारद । ब्राह्मणाः । तर्हि । एष्याः ॥ १६ ॥

हे नारद ! यह गौ अविज्ञातगदारूपमें तीन वर्ष तक भक्षण ही करती रहे तदनन्तर इसको वशा जाने और ब्राह्मणोंको दूँहे १६ य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।

उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १७ ॥

यः । एनाम् । अवशाम् । आह । देवानाम् । निऽहितम् । निऽधिम् ।

उभौ । तस्मै । भवाशर्वौ । परिऽक्रम्य । इषुम् । अस्यतः ॥ १७ ॥

जो इस देवताओंकी थातीरूप वशा-निधिको अवशा कहता है तो भव और शर्व ये दोनों देवता उस पर पराक्रम करके बाण फेंकते हैं ॥ १७ ॥

यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।

उभयेनैवासमै दुहे दातुं चेदशकद् वशाम् ॥ १८ ॥

यः । अस्याः । ऊधः । न । वेद । अथो इति । अस्याः । स्तनान् ।

उत ।

उभयेन । एव । अस्मै । दुहे । दातुम् । च । इत् । अशक्त् । वशाम् १८

जो पुरुष इसके स्तनोंको और ऐनोंको नहीं जानता है और वशाका दान कर देता है तो यह वशा गौ उसको दोनोंसे फल देती है ॥ १८ ॥

दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति ।

नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति १९

दुरदभ्ना । एनम् । आ । शये । याचिताम् । च । न । दित्सति ।

न । अस्मै । कामाः । सम् । अर्ध्यन्ते । याम् । अदत्त्वा । चिकीर्षति ॥ १९ ॥

जो पुरुष इसकी याचना होने पर नहीं देता है तो दुरदुभन् दशा इसको घेर लेती है जो इसको न देकर इसको अपने यहाँ ही रखना चाहता है उसके काम (इच्छाएँ) पूर्ण नहीं होते हैं १९

देवा वशामयाचन् मुखं कृत्वा ब्राह्मणम् ।

तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ २० ॥

देवाः । वशाम् । अयाचन् । मुखम् । कृत्वा । ब्राह्मणम् ।

तेषाम् । सर्वेषाम् । अददत् । हेडम् । नि । एति । मानुषः ॥ २० ॥

देवता ब्राह्मणको मुख बनाकर याचना करते हैं, मनुष्य न देनेसे उन सबके क्रोधका पात्र होता है ॥ २० ॥ (२०)

हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योददद् वशाम् ।

देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥ २१ ॥

११०

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

हेडम् । पशूनाम् । नि । एति । ब्राह्मणेभ्यः । अददत् । वशाम् ।
देवानाम् । निऽहितम् । भागम् । मर्त्यः । च । इत् । निऽप्रिययते

देवताओंके थाती रूपमें रखे हुए भागको जो पुरुष परम प्रिय समझता है वह ब्राह्मणोंको वशा न देने पर पशुओंके क्रोध का पात्र होता है ॥ २१ ॥

यदन्यै शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम् ।

अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ २२ ॥

यत् । अन्ये । शतम् । याचेयुः । ब्राह्मणाः । गोऽपतिम् । वशाम् ।

अथ । एनाम् । देवाः । अब्रुवन् । एवम् । ह । विदुषः । वशा ॥

चाहे दूसरे सैकड़ों ब्राह्मण गोपतिसे वशाकी याचना करें, परन्तु देवता यह कहते हैं, कि-वशा विद्वान्की ही होती है २२

य एवं विदुषेदत्त्वाथान्येभ्यो ददद् वशाम् ।

दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ २३ ॥

यः । एवम् । विदुषे । अदत्त्वा । अथ । अन्येभ्यः । ददत् । वशाम् ।

दुग्गाः । तस्मै । अधिऽस्थाने । पृथिवी । सहऽदेवता ॥ २३ ॥

जो पुरुष ऐसे विद्वान्को वशा न देकर दूसरेको वशा देता है, उसके अधिष्ठानमें देवताओं सहित पृथिवी दुर्गम होजाती है २३

देवा वशामयाचन् यस्मिन्नग्रे अजायत ।

तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ २४ ॥

दे॒वाः । व॒शाम् । अ॒याच॒न् । यस्मिन् । अ॒ग्रे । अजा॑यत ।

ताम् । ए॒ताम् । वि॒द्यात् । ना॒रदः । स॒ह । दे॒वैः । उ॒त् । आ॒ज॒त

वशा जिसके सामने प्रकट होती है उससे देवता वशाकी याचना करते हैं, नारद उसको जानकर देवताओं सहित तहाँ पहुँच गए थे २४

अ॒न॒प॒त्य॒म॒ल्प॒प॒शुं व॒शा कृ॒णोति॑ पू॒रुषम् ।

ब्रा॒ह्म॒णैश्च॑ या॒चि॒तामै॒थ॒नां नि॒प्रि॒याय॑ते ॥ २५ ॥

अ॒न॒प॒त्यम् । अ॒ल्प॒प॒शुम् । व॒शा । कृ॒णोति॑ । पू॒रुषम् ।

ब्रा॒ह्म॒णैः । च । या॒चि॒ताम् । अ॒थ । ए॒नाम् । नि॒प्रि॒याय॑ते ॥ २५ ॥

जो पुरुष ब्राह्मणोंके द्वारा याचनाकी गई वशाको परम प्रिय समझ कर नहीं देता है तो वशा उस पुरुषको अल्प पशुओं वाला और सन्तानरहित कर डालती है ॥ २५ ॥

अ॒ग्नी॒षो॒मा॒भ्यां का॒माय॑ मि॒त्राय॑ व॒रु॒णाय॑ च ।

ते॒भ्यो या॒च॒न्ति ब्रा॒ह्म॒णास्ते॒ष्ववा वृ॒श्च॒ते॒द॒दत् ॥ २६ ॥

अ॒ग्नी॒षो॒मा॒भ्याम् । का॒माय॑ । मि॒त्राय॑ । व॒रु॒णाय॑ । च ।

ते॒भ्यः । या॒च॒न्ति । ब्रा॒ह्म॒णाः । ते॒षु । आ । वृ॒श्च॒ते । अ॒द॒दत् ॥ २६ ॥

ब्राह्मण अग्निदेवताके लिये, सोम देवताके लिये काम देवता के लिये, मित्र देवताके लिये और वरुण देवताके लिये याचना करते हैं अतः वशाको न देने पर पुरुष उनका ही काट (अपमान) करता है ॥ २६ ॥

याव॑द॒स्या गो॒प॒ति॒र्नो॒प॒शृ॒णु॒यादृ॒चः स्व॒यम् ।

चरे॑दस्य॒ ताव॑द् गो॒षु ना॒स्य श्रु॒त्वा गृ॒हे व॑सेत् । २७।

गा॒वत् । अ॒स्याः । गो॒ऽप॒तिः । न । उ॒प॒ऽश्रु॒णु॒यात् । ऋ॒चः । स्व॒यम् ।
चरे॑त् । अ॒स्य । ता॒वत् । गो॒षु । न । अ॒स्य । श्रु॒त्वा । गृ॒हे । व॑सेत्

जब तक गोपति इस गौके विषयमें प्रतिज्ञा न कर लेय तब तक इसकी गौओंमें विचरण करे और प्रतिज्ञाके अनन्तर इसके घरमें न रहे ॥ २७ ॥

यो अ॒स्या ऋ॒च उ॒प॒श्रु॒त्याथ गो॒ष्वची॑चरत् ।

आ॒युश्च॒ तस्य॒ भूतिं॑ च॒ दे॒वा वृ॑श्चन्ति॒ ही॒डिताः॑ २८

यः । अ॒स्याः । ऋ॒चः । उ॒प॒ऽश्रु॒त्य । अथ॑ । गो॒षु । अ॒ची॒चर॑त् ।

आ॒युः । च॒ । तस्य॑ । भू॒तिम् । च॒ । दे॒वाः । वृ॑श्चन्ति॒ । ही॒डिताः॑ २८

जो यजमान प्रतिज्ञाकी वाणी कहकर भी गौओंमें विचरण करता रहता है तो देवता अपमानित होकर उसकी आयु और विभूतिको नष्ट कर डालते हैं ॥ २८ ॥

व॒शा च॑रन्ती बहु॒धा दे॒वानां॑ नि॒हितो नि॒धिः ।

आ॒विष्कृ॑णुष्व रू॒पाणि॑ य॒दा स्था॑म जिघां॑सति २९

व॒शा । च॑रन्ती । बहु॒धा । दे॒वाना॑म् । निऽहि॒तः । निऽधिः॑ ।

आ॒विः । कृ॑णुष्व । रू॒पाणि॑ । य॒दा । स्था॑म । जिघां॑सति ॥ २९ ॥

देवताओंकी निधिरूपमें स्थापित हुई वशा जब अनेक प्रकार से विचरण करती है उस समय जब स्थानका नाश करना चाहती है तो अनेक प्रकारके रूपोंको प्रकट करती है ॥ २९ ॥

आवि॒श॒त्मानं॑ कृ॒णुते॑ य॒दा स्था॒म जिघां॑सति ।

अथो॑ ह ब्र॒ह्मभ्यो॑ व॒शा या॒च्छ्याय॑ कृ॒णुते॑ मनः ३०

आ॒विः । आ॒त्मान॑म् । कृ॒णुते॑ । य॒दा । स्था॒म । जिघां॑सति ।

अथो॑ इति । ह । ब्र॒ह्मभ्यः॑ । व॒शा । या॒च्छ्याय॑ । कृ॒णुते॑ । मनः॑ ॥

जब वशा अपने स्थान- (पति) का संहार करना चाहती है तो अपने रूपको प्रकट करती है और ब्राह्मणोंकी याचनाके लिये मन करती है ॥ ३० ॥ (३१)

मन॑सा सं क॒ल्पय॑ति तद् दे॒वाँ अपि॑ गच्छति ।

ततो॑ ह ब्र॒ह्माणो॑ व॒शामु॑पप्रयन्ति याचि॑तुम् ॥३१॥

मन॑सा । सं । क॒ल्पय॑ति । तद् । दे॒वान् । अपि॑ । ग॒च्छति॑ ।

ततः॑ । ह । ब्र॒ह्माणः॑ । व॒शाम् । उ॒पप्र॑यन्ति । याचि॑तुम् ॥३१॥

वह मनसे संकल्प करती है और वह संकल्प देवताओंको प्राप्त होता है तब ब्राह्मण वशाकी याचना करनेके लिये समीपमें आते हैं स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।

दाने॑न राज॒न्यो व॒शाया॑ मा॒तुर्हे॒डं न ग॑च्छति ॥३२॥

स्व॒धाऽका॑रेण । पि॒तृभ्यः॑ । य॒ज्ञेन॑ । दे॒वता॑भ्यः ।

दा॒नेन॑ । राज॒न्यः । व॒शायाः॑ । मा॒तुः । हे॒डम् । न । ग॒च्छति॑ ॥

क्षत्रिय पितरोंके निमित्त स्वधा करनेसे देवताओंके निमित्त यज्ञ करनेसे और वशाका दान करनेसे माताके क्रोधका पात्र नहीं होता है ॥ ३२ ॥

व॒शा मा॒ता रा॒ज॒न्य॒स्य॒ तथा॒ संभू॑तम॒ग्र॒शः ।

तस्या॑ आ॒हुर॒न॒र्प॒णं॒ यद् ब्र॒ह्म॒भ्यः॑ प्र॒दी॒यते॑ ॥ ३३ ॥

व॒शा । मा॒ता । रा॒ज॒न्य॒स्य॒ । तथा॑ । सम्भू॑तम् । अ॒ग्र॒शः ।

तस्याः॑ । आ॒हुः । अ॒न॒र्प॒णम् । यत् । ब्र॒ह्म॒भ्यः॑ । प्र॒दी॒यते॑ ३३

वशा राजन्यकी माता है तथा इनका समूह पहिले प्रकट हुआ है, उसका जो ब्राह्मणोंको प्रदान करना है उसको अनर्पण कहते हैं यथाज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत् सुचो अग्रये ।

ए॒वा ह॑ ब्र॒ह्म॒भ्यो॑ व॒शाम॒ग्र॒य आ॑ वृ॒श्च॒ते॒द॒दत् ॥ ३४ ॥

यथा॑ । आ॒ज्यम् । प्र॒गृ॒ही॒तम् । आ॒लु॒म्पे॒त् । सु॒चः । अ॒ग्र॒ये ।

ए॒व । ह॑ । ब्र॒ह्म॒भ्यः॑ । व॒शाम् । अ॒ग्र॒ये । आ॑ । वृ॒श्च॒ते॒ । अ॒द॒दत् ॥

जैसे ग्रहण किया हुआ घृत सुचासे अग्निके लिये छिन्न हो जाता है, इसी प्रकार ब्राह्मणोंके लिये वशाको न देता हुआ अग्नि के लिये छिन्न होजाता है ॥ ३४ ॥

पु॒रो॒डा॒श॒व॒त्सा सु॒दु॒घा लो॒के॒स्मा॒ उप॑ तिष्ठति ।

सा॒स्मै॒ सर्वा॑न् का॒मान् व॒शा प्र॒द॒दुषे॑ दु॒हे ॥ ३५ ॥

पु॒रो॒डा॒श॒व॒त्सा । सु॒दु॒घा । लो॒के॒ । अ॒स्मै॒ । उप॑ । तिष्ठ॒ति ।

सा । अ॒स्मै॒ । सर्वा॑न् । का॒मान् । व॒शा । प्र॒द॒दुषे॑ । दु॒हे ॥ ३५ ॥

इस यजमानके लिये इस लोकमें पुरोडाशरूपी वत्ससे सुन्दरता से (फलको) दुहाने वाली वशा इसके समीप रहती है, ऐसी यह वशा इस दान करने वालेके लिये सम्पूर्ण कामनाओंको देती है ३५

सर्वान् कामान् यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।

अथाहुर्नारिकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥३६॥

सर्वान् । कामान् । यमराज्ये । वशा । प्रददुषे । दुहे ।

अथ । आहुः । नरकम् । लोकम् । निरुन्धानस्य । याचिताम् ॥

वशा दान देने वालेके लिये यमराज्यमें सकल कामनाओंको देती है और माँगी हुई वशाको रोकने वालेको नरकलोक मिलने का विद्वान् पुरुष वर्णन करते हैं ॥ ३६ ॥

प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतय वशा ।

वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥३७॥

प्रवीयमाना । चरति । क्रुद्धा । गोपतये । वशा ।

वेहतम् । मा । मन्यमानः । मृत्योः । पाशेषु । बध्यताम् ॥३७॥

वशा क्रोधमें भरकर गोपतिका भक्षणसा करती हुई विचरती है, कि—यह सुभ्रु गर्भघातिनीको अपनी मानता हुआ मृत्युके पाशों से बँध जावे ॥ ३७ ॥

यो वेहतं मन्यमानोमा च पचते वशाम् ।

अप्यस्य पुत्रान् पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥३८॥

यः । वेहतम् । मन्यमानः । अमा । च । पचते । वशाम् ।

अपि । अस्य । पुत्रान् । पौत्रान् । च । याचयते । बृहस्पतिः ३८

जो वशा गर्भघातिनीको अपनी मानता हुआ साथ ही साथ वशाका पचन करता है तो बृहस्पति इसके पुत्र और पौत्रोंकी याचना करते हैं ॥ ३८ ॥

११६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

मह॒देषा॒व तप॑ति च॒रन्ती॑ गो॒षु गौ॑रपि ।

अथो॑ ह गो॒पत॑ये व॒शाद॑दु॒षे वि॒षं दु॒हे ॥ ३६ ॥

मह॒त् । ए॒षा । अ॒व । त॒प॒ति । च॒रन्ती॑ । गो॒षु । गौः । अ॒पि ।

अथो॒ इति॑ । ह । गो॒ऽप॒तये॑ । व॒शा । अ॒द॒दु॒षे । वि॒षम् । दु॒हे ३६

यह वशा गौ गौओंमें बड़ा भारी सन्ताप फैलाती हुई विचरण करती है यदि गोपति इसको नहीं देता है तो यह उसके लिये विष दुहती है ॥ ३६ ॥

प्रि॒यं प॑शूनां भ॒वति॑ यद् ब्र॒ह्मभ्यः॑ प्र॒दी॒यते॑ ।

अथो॑ व॒शाया॑स्तत् प्रि॒यं यद् दे॒वत्रा॑ ह॒विः स्यात् ४०

प्रि॒यम् । प॒शूना॑म् । भ॒वति॑ । यत् । ब्र॒ह्मभ्यः॑ । प्र॒दी॒यते॑ ।

अथो॒ इति॑ । व॒शायाः॑ । तत् । प्रि॒यम् । यत् । दे॒वत्रा॑ । ह॒विः । स्यात्

जो वशा ब्राह्मणोंको देदी जाती है यह पशुओंका प्रिय होता है, फिर वशाका यह प्रिय होता है जो वह देवताओंमें हविरूपसे दीजाती है ॥ ४० ॥ (५२)

या व॒शा उ॒दक॑लायन् दे॒वा य॒ज्ञादु॑देत्य ।

तासां॑ वि॒लिप्त्यं॑ भी॒मामु॑दाकुरुत ना॒रदः॑ ॥ ४१ ॥

याः । व॒शाः । उ॒त्॒अक॑ल्पयन् । दे॒वाः । य॒ज्ञात् । उ॒त्॒एत्य॑ ।

तासा॑म् । वि॒लि॒प्त्यम् । भी॒माम् । उ॒त्॒आकुरु॑त । ना॒रदः॑ ४१

देवताओंने यज्ञसे आकर जो वशाकी कल्पनाकी, उस समय विलिप्ती भीमाको नारदने स्वीकार किया ॥ ४१ ॥

तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति ।

तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ ४२ ॥

ताम् । देवाः । अमीमांसन्त । वशा । इया३म् । अवशा३ । इति ।

ताम् । अब्रवीत् । नारदः । एषा । वशानाम् । वशतमा । इति ॥

उस समय देवताओं ने मीमांसा की, कि—यह वशा अवशा है । तब उसके विषय में नारद ने कहा, कि—यह वशाओं में भी परमवशा है कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।

तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्रीयादब्राह्मणः

कति । नु । वशाः । नारद । याः । त्वम् । वेत्थ । मनुष्यजाः ।

ताः । त्वा । पृच्छामि । विद्वांसम् । कस्याः । न । अश्रीयात् ।

अब्राह्मणः ॥ ४३ ॥

हे नारद ! मनुष्यों में प्रकट होने वाली ऐसी कितनी वशा हैं, कि—जिनको तुम जानते हो, तुम विद्वान् हो इसलिये मैं उनके विषय में ब्रूकता हूँ, कि—अब्राह्मण किसका प्राशन न करे ॥ ४३ ॥

विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा ।

तस्या नाश्रीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ४४

विऽलिप्त्याः । बृहस्पते । या । च । सूतवशा । वशा ।

तस्याः । न । अश्रीयात् । अब्राह्मणः । यः । आऽशंसेत । भूत्याम्

हे बृहस्पते ! जो अब्राह्मण विभूतिकी प्रार्थना करे वह इनका प्राशन न करे, विलिप्ती सूतवशा और वशा ॥ ४४ ॥

नमस्ते अस्तु नारदादानुष्टु विदुषे वशा ।

कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ ४५ ॥

नमः । ते । अस्तु । नारद । अनुष्टु । विदुषे । वशा ।

कतमः । आसाम् । भीमस्तमा । याम् । अदत्त्वा । पराभवेत् ४५

हे नारद ! आपके लिये नमस्कार है, वशा विद्वान्की स्तुतिके अनुकूल ही है, परन्तु इन वशाओंमें परम भयंकर वशा कौनसी होती है, कि-जिसको न देने पर पराभव होता है ॥ ४५ ॥

विलिप्ती या बृहस्पतेथो सूतवशा वशा ।

तस्या नाश्रीणादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ४६

विऽलिप्ती । या । बृहस्पते । अथो इति । सूतऽवशा । वशा ।

तस्याः । न । अश्रीयात् । अब्राह्मणः । यः । आशंसेत । भूत्याम्

हे बृहस्पते ! जो अब्राह्मण विभूतिकी प्रार्थना करे वह इनका प्राशन न करे, विलिप्ती सूतवशा और वशा ॥ ४६ ॥

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा ।

ताः प्र यच्छेद् ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ४७

त्रीणि । वै । वशाऽजातानि । विऽलिप्ती । सूतऽवशा । वशा ।

ताः । प्र । यच्छेत् । ब्रह्मभ्यः । सः । अनाव्रस्कः । प्रजापतौ ।

विलिप्ती सूतवशा और वशा ये वशाओंके तीन भेद हैं, इनको ब्राह्मणोंके अर्पण कर देय तो वह प्रजापतिको क्षोभ देने वाला नहीं होता है ॥ ४७ ॥

ए॒तद् वो॑ ब्रा॒ह्म॒णा ह॒विरि॑ति॒ मन्वी॑त याचि॒तः ।

व॒शां चेदे॑नं॒ याचे॑यु॒र्या भी॒माद॑दुषो गृ॒हे ॥ ४८ ॥

ए॒तत् । वः । ब्रा॒ह्म॒णाः । ह॒विः । इति॑ । मन्वी॑त । याचि॒तः ।

व॒शाम् । च । इत् । ए॒नम् । याचे॑युः । या । भी॒मा । अ॒ददु॑षः । गृ॒हे

जो अ॒दा॒ताके घरमें भी॒मा व॒शा है उस व॒शाकी यदि इससे याचना करें तो इनके प्रार्थना करने पर यह माने, कि—हे ब्राह्मणों ! यह तो तुम्हारे लिये हविरूप है ॥ ४८ ॥

दे॒वा व॒शां पर्य॑वदन् न नो॒दादि॑ति॒ हीडि॑ताः ।

ए॒ताभि॑ः ऋ॒ग्भिर्भे॑दं तस्मा॒द् वै स॒ परा॑भवत् ॥ ४९ ॥

दे॒वाः । व॒शाम् । परि॑ । अ॒वद॑न् । न । नः । अ॒दात् । इति॑ । ही॒डि॒ताः

ए॒ताभिः॑ । ऋ॒क्भिः । भे॒दम् । तस्मा॑त् । वै । सः । परा॑ । अ॒भव॑त् ।

क्रोधमें भरे हुए दे॒वताओंने इन वा॒णियोंसे भेद डालनेके लिये व॒शासे कहा, कि—इसने हमको नहीं दिया है, अत एव वह अ॒दा॒ता पराजित होजाता है ॥ ४९ ॥

उ॒तैनां॑ भे॒दो नाद॑दाद् व॒शाभि॑न्द्रेण याचि॒तः ।

तस्मा॑त् तं दे॒वा आ॒गसो॑वृ॒श्चन्न॑हमुत्तरे ॥ ५० ॥

उ॒त । ए॒नाम् । भे॒दः । न । अ॒ददा॑त् । व॒शाम् । इ॒न्द्रेण॑ । याचि॒तः ।

तस्मा॑त् । तम् । दे॒वाः । आ॒गसः॑ । अ॒वृश्च॑न् । अ॒हम् उत्तरे॑ ५०

इन्द्रकी प्रार्थना करने पर और भेद पड़ने पर भी यदि व॒शा

१२० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

को नहीं देता है, तो इस पापके कारण देवता उसको श्रेष्ठ अहंकार के चक्रमें डाल कर नष्ट कर डालते हैं ॥ ५० ॥

ये वशाया अदानाय वदन्ति परिश्रापिणः ।

इन्द्रस्य मन्येव जाल्मा आ वृश्चन्ते अचिन्त्या ॥ ५१ ॥

ये । वशायाः । अदानाय । वदन्ति । परिश्रापिणः ।

इन्द्रस्य । मन्येवे । जाल्माः । आ । वृश्चन्ते । अचिन्त्या ॥ ५१ ॥

जो बड़बड़ाने वाले वशाका दान न करनेको कहते हैं, वे जालम मूर्खतावश अपनेको इन्द्रके क्रोधसे नष्ट कर लेंगे ॥ ५१ ॥

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।

रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचिन्त्या ॥ ५२ ॥

ये । गोपतिम् । पराज्नीय । अथ । आहुः । मा । ददाः । इति ।

रुद्रस्य । अस्ताम् । ते । हेतिम् । परि । यन्ति । अचिन्त्या ॥ ५२ ॥

जो गोपतिके पास जाकर कहते हैं, मत दो वे मूर्खतावश रुद्रके अस्त्रप्रक्षेपको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।

देवान्सब्राह्मणानृत्वा जिह्वो लोकान्निर्ऋच्छति ५३

यदि । हुताम् । यदि । अहुताम् । अमा । च । पचते । वशाम् ।

देवान् । सऽब्राह्मणान् । ऋत्वा । जिह्वः । लोकात् । निः । ऋच्छति

चतुर्थेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ।

इति चतुर्थेनुवाकः ॥

यदि हुत वा अहुत वशाका पचन करता है तो वह जिह्म देवता और ब्राह्मणोंको दबाता हुआ इस लोकसे दुर्गतिमें पड़ता है ॥ ५३ ॥ (२३)

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (४९४)

चतुर्थ अनुवाक समाप्त

ब्रह्मगवीविषयमेतत् सूक्तम् । ब्राह्मणस्य गौर्ब्रह्मगवी । तां क्षत्रियो नादद्यात् । आदद्याच्चेद् नाग् वीर्यं लक्ष्मीस्तं हास्यति । ओजश्चादि नशिष्यति । तां क्षत्रियो न हन्यात् न पचेत् न भक्षेत् । सा हि हता सती नानाविधा आपदो नानाविधान् मृत्यून नानाविधानि च दुःखानि ऐहिकान्यामुष्मिकाणि आवहतीत्याह ॥

सम्पदायानुसारेणास्य सूक्तस्य विनियोगस्तु “नैतां ते देवाः” इत्यत्र [५. १८] द्रष्टव्यः ॥

यह सूक्त ब्रह्मगवीविषयक है । ब्राह्मणकी गौ ब्रह्मगवी कहलाती है क्षत्रिय उसको ग्रहण न करे । यदि ग्रहण कर लेता है तो वाणी वीर्य और लक्ष्मी उसको त्याग देती है । उसका ओज आदि नष्ट होजाता है । क्षत्रिय उसका हनन पचन वा भक्षण न करे । वह हरण करने पर अनेक प्रकारकी आपत्तियोंको, अनेक प्रकारके मृत्युकारणोंको और इस लोक तथा परलोकके अनेक प्रकारके दुःखोंको देती है ।

सम्पदायके अनुसार इस सूक्तका विनियोग “नैवं ते देवाः” इस पञ्चमकाण्डके अठारहवें सूक्तमें देखना चाहिये ॥

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वितर्ते श्रिता ॥ १ ॥

श्रमेण । तपसा । सृष्टा । ब्रह्मणा । वित्ता । ऋते । श्रिता ॥ १ ॥

परब्रह्ममें आश्रित तपके द्वारा रची हुई इस गौको ब्राह्मणने श्रमसे पाया है ॥ १ ॥

सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥ २ ॥

सत्येन । आवृता । श्रिया । प्रावृता । यशसा । परीवृता ॥ २ ॥

यह सत्यसे आवृत है, सम्पत्तिसे पूर्ण रहती है और यशसे सम्पन्न रहती है ॥ २ ॥

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे
प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ३ ॥

स्वधया । परिहिता । श्रद्धया । पर्यूढा । दीक्षया । गुप्ता ।

यज्ञे । प्रतिस्थिता । लोकः । निधनम् ॥ ३ ॥

यह गौ स्वधासे परिहित श्रद्धासे पर्यूढ, दीक्षासे रक्षित और यज्ञ में प्रतिष्ठा पाती रहती है क्षत्रियका इसकी ओर देखना मृत्यु है ३

ब्रह्म पदवायं ब्राह्मणोधिपतिः ॥ ४ ॥

ब्रह्म । पदवायम् । ब्राह्मणः । अधिपतिः ॥ ४ ॥

इस गौके द्वारा ब्रह्मपद प्राप्त होता है, ब्राह्मण ही इसका अधिपति है ॥ ४ ॥

तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य

ताम् । आददानस्य । ब्रह्मगवीम् । जिनतः । ब्राह्मणम् । क्षत्रियस्य ।

अप क्रामति सूनुता वीर्यं पुण्या लक्ष्मीः ॥ ६ ॥

अप । क्रामति । सूनुता । वीर्यम् । पुण्या । लक्ष्मीः ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

ऐसी ब्राह्मणकी गौका अपहरण करने वाले और ब्राह्मणको दिक करने वाले क्षत्रियकी पवित्र लक्ष्मी वीर्य और प्रिय मधुर वाणी भाग जाती है ॥ ५ ॥ (२४)

पञ्चम अनुवाकमें प्रथम पर्यायसूक्त समाप्त (४९५)

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च
धर्मश्च ॥ १ ॥

ओजः । च । तेजः । च । सहः । च । बलम् । च । वाक् । च ।

इन्द्रियम् । च । श्रीः । च । धर्मः । च ॥ १ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च
द्रविणं च ॥ २ ॥

ब्रह्म । च । क्षत्रम् । च । राष्ट्रम् । च । विशः । च । त्विषिः ।

च । यशः । च । वर्चः । च । द्रविणम् । च ॥ २ ॥

आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च
श्रोत्रं च ॥ ३ ॥

आयुः । च । रूपम् । च । नाम । च । कीर्तिः । च । प्राणः ।

च । अपानः । च । चक्षुः । च । श्रोत्रम् । च ॥ ३ ॥

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च
पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ ४ ॥

पयः । च । रसः । च । अन्नम् । च । अन्नऽअद्यम् । च । ऋतम् ।

च । सत्यम् । च । इष्टम् । च । पूर्तम् । च । प्रजा । च ।

पशवः । च ॥ ४ ॥

तानि सर्वाण्यपक्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो
ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥

तानि । सर्वाणि । अप । क्रामन्ति । ब्रह्मगवीम् । आददानस्य ।

जिनतः । ब्राह्मणम् । क्षत्रियस्य ॥ ५ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ॥

जो क्षत्रिय ब्राह्मणकी गौको छीनकर उसकी आयुको कम करता है तो उस क्षत्रियको ओज तेज शत्रुओंको दबानेकी शक्ति बल वाणी इन्द्रियें श्री धर्म, वेद क्षात्रशक्ति राष्ट्र प्रजायें दीप्ति यश वर्च और धन, आयु रूप नाम कीर्ति प्राण अपान चक्षु श्रोत्र, पय रस अन्न अन्नको पचानेकी अग्नि ऋत सत्य श्रुतिविहित याग आदि इष्ट और स्मृतिविहित कूप तटाक आदि पूर्त प्रजा और पशु ये सब छोड़ देते हैं ॥ १-५ ॥ (२५)

पञ्चम अनुवाकमें द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (४९६)

सैषा भीमा ब्रह्मगव्यं घविषा साक्षात् कृत्या कूल्बज-
मावृता ॥ १ ॥

सा । एषा । भीमा । ब्रह्मगवी । अघविषा । सऽअक्षात् । कृत्या ।

कूल्बजम् । आवृता ॥ १ ॥

यह ब्राह्मणकी गौ भयंकर होती है कूल्बजसे आवृत मारण-
रूप पापके विषसे सम्पन्न साक्षात् कृत्या बन जाती है ॥ १ ॥

सर्वाण्यस्यां घोराणि सर्वे च मृत्यवः ॥ २

सर्वाणि । अस्याम् । घोराणि । सर्वे । च । मृत्यवः ॥ २ ॥

इसमें सब भयंकर कर्म और सब प्रकारके मृत्युप्रद कारण समाये रहते हैं ॥ २ ॥

सर्वाण्यस्यां क्रूराणि सर्वे पुरुषवधाः ॥ ३ ॥

सर्वाणि । अस्याम् । क्रूराणि । सर्वे । पुरुषवधाः ॥ ३ ॥

इसमें सकल क्रूर कर्म और सब प्रकारके पुरुषोंके वध होते हैं ३
सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पड्वीश

आ द्यति ॥ ४

सा । ब्रह्मज्यम् । देवपीयुम् । ब्रह्मगवी । आदीयमाना ।

मृत्योः । पड्वीशे । आ । द्यति ॥ ४ ॥

ऐसी यह ब्राह्मणसे छीनी हुई ब्रह्मगवी वेद वा ब्रह्मत्वको हानि पहुँचाने वाले देवतासंहारक पुरुषको मृत्युके काष्ठमय पाद-बन्धनसे जकड़ देती है ॥ ४ ॥

मेनिः शतवधा हि सा ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ ५ ॥

मेनिः । शतवधा । हि । सा । ब्रह्मज्यस्य । क्षितिः । हि । सा ५

ब्राह्मणकी आयुका हास करने वालेके लिये वह क्षयंकारी गौ सैंकड़ों प्रकारसे वध करने वाला आयुध होजाती है ॥ ५ ॥

तस्माद् वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ ६ ॥

तस्मात् । वै । ब्राह्मणानाम् । गौः । दुःआधर्षा । विजानता ६

इस कारण विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंकी गौको दुराधर्ष समझे ६
वज्रो धावन्ती वैश्वानर उद्धीता ॥ ७ ॥

वज्रः । धावन्ती । वैश्वानरः । उत्स्वीता ॥ ७ ॥

वह वज्रकी समान दौड़ती है-गिरती है-और अग्निकी समान
ऊपरको चलती है ॥ ७ ॥

हेतिः शफानुत्खिदन्ती महादेवोऽपेक्षमाणा ॥ ८ ॥

हेतिः । शफान् । उत्स्खिदन्ती । महादेवः । अपेक्षमाणा ८

वह संहारक देव महादेवकी अपेक्षा करती हुई खुरोंको पट-
काती हुई आयुधरूप होजाती है ॥ ८ ॥

क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाभि स्फूर्जति ॥ ९ ॥

क्षुरपविः । ईक्षमाणा । वाश्यमाना । अभि । स्फूर्जति ॥ ९ ॥

यह देखती हुई छुरेकी समान तीक्ष्ण बज्ररूप होती है और
रंभाती हुई कड़कती है ॥ ९ ॥

मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ १० ॥

मृत्युः । हिङ्कृण्वती । उग्रः । देवः । पुच्छम् । परिऽअस्यन्ती ।

हिम् शब्द करती हुई मृत्युरूप होती है और पूँछको चारों
ओर घुमाती हुई उग्र देवतारूप होती है ॥ १० ॥

सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ११

सर्वज्यानिः । कर्णौ । वरीवर्जयन्ती । राजयक्ष्मः । मेहन्ती ११

कानोंको हिलाती हुई सब प्रकारसे आयुका हास करनेवाली
होती है और मूत्रोत्सर्ग करती हुई राजयक्ष्मा फैलानेवाली होती है

मे॒निर्दु॒ह्यमा॒ना शी॒र्ष॒क्तिर्दु॒ग्धा ॥ १२ ॥

मे॒निः । दु॒ह्यमा॒ना । शी॒र्ष॒क्तिः । दु॒ग्धा ॥ १२ ॥

दुही जाती हुई संहारक आयुधरूप होती है और दुहने पर शीर्षक्तिरोगरूप होती है ॥ १२ ॥

से॒दि॒रुप॒तिष्ठ॑न्ती मि॒थो॒योधः॑ परा॒मृष्टा ॥ १३ ॥

से॒दिः । उ॒प॒तिष्ठ॑न्ती । मि॒थः॒ऽयोधः॑ । परा॒मृष्टा ॥ १३ ॥

समीपमें खड़ी होने पर विशीर्ण करती है और परामृष्ट होने पर आपसमें युद्ध कराने वाली होती है ॥ १३ ॥

शर॒व्या ३ मु॒खेपि॑न॒ह्यमा॒न ऋ॒तिर्ह॒न्यमा॒ना ॥ १४ ॥

शर॒व्या । मु॒खे । अ॒पि॒ऽन॒ह्यमा॒ने । ऋ॒तिः । ह॒न्यमा॒ना ॥ १४ ॥

और मुखके मुहरे आदिसे ढकने पर निशाना होती है और पीटने पर दुर्गति करने वाली होती है ॥ १४ ॥

अ॒घवि॑षा नि॒पत॑न्ती तमो॒ निप॑तिता ॥ १५ ॥

अ॒घऽवि॑षा । नि॒प॒त॒न्ती । तमः॑ । नि॒प॒ति॒ता ॥ १५ ॥

बैठती हुई अघविषा और बैठ जाने पर मृत्युप्रद व्याधिरूप अंधकार देती है ॥ १५ ॥

अ॒नुग॑च्छन्ती प्रा॒णानु॑प दास॒यति॑ ब्रह्म॒गवी॑ ब्रह्म॒ज्यस्य॑

अ॒नु॒ऽग॑च्छन्ती । प्रा॒णान् । उ॒प । दा॒स॒यति॑ । ब्रह्म॒ग॒वी । ब्रह्म॒ज्य॒स्य

इति पञ्चमेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

ऐसी यह ब्रह्मगवी ब्राह्मणकी हानि करने वालेके पीछे चलती चलती उसके प्राणोंको क्षीण कर डालती है ॥ १६ ॥ (२६)

पञ्चम अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (४९७)

१२८ अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

वैरं वि॒कृत्यमा॑ना पौ॒त्राद्यं॑ विभा॒ज्यमा॑ना ॥ १ ॥

वैरम् । वि॒कृत्यमा॑ना । पौ॒त्रा॑द्यम् । वि॒भा॒ज्यमा॑ना ॥ १ ॥

यह ब्रह्मगवी छेदन करा देती है और पौत्र आदिका विभाग करा देती है ॥ १ ॥

दे॒वहे॒तिर्हि॒यमा॑णा व्यु॒द्धिर्ह॒ता ॥ २ ॥

दे॒व॒हे॒तिः । हि॒यमा॑णा । वि॒द्विः । ह॒ता ॥ २ ॥

हरते समय देवताओंका आयुधरूप होती है और हरी जाने पर क्षयकरी होती है ॥ २ ॥

पा॒प्माधि॑धीयमा॑ना पा॒रुष्य॑मवधीयमा॑ना ॥ ३ ॥

पा॒प्मा । अधि॑धीयमा॑ना । पा॒रुष्य॑म् । अव॑धीयमा॑ना ॥ ३ ॥

अधिधीयमाना पापमयी होती है और कठोरताको लाती है ३
विषं प्र॒यस्य॑न्ती त॒क्मा प्र॑यस्ता ॥ ४ ॥

वि॒षम् । प्र॒यस्य॑न्ती । त॒क्मा । प्र॑यस्ता ॥ ४ ॥

प्रयस्यन्ती विषरूप होती है और प्रयस्ता (अन्नरूप हुई) जीवनको कठिनतामें डालने वाली तक्मारूप होती है ॥ ४ ॥

अ॒घं प॒च्यमा॑ना दु॒ःस्वप्न्यं॑ प॒क्वा ॥ ५ ॥

अ॒घम् । प॒च्यमा॑ना । दु॒ःस्वप्न्य॑म् । प॒क्वा ॥ ५ ॥

पचन करते समय व्यसन देती है और पक्व होजाने पर दुस्वप्नपद होती है ॥ ५ ॥

मूल॑बर्हणी पर्या॒क्रियमा॑णा ज़ि॒तिः पर्या॑कृता ॥ ६ ॥

मूलऽवर्हणी । परिऽआक्रियमाणा । क्षितिः । परिऽआकृता ६
पर्याक्रियमाणा जड़ उखाड़ने वाली होती है और पर्याकृता
क्षय करती है ॥ ६ ॥

असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणाशीविष उद्धृता ॥ ७ ॥

असम्ज्ञा । गन्धेन । शुक् । उद्ध्रियमाणा । आशीविषः । उद्धृता ७

गंधके द्वारा ज्ञानको भली प्रकार लुप्त कर देती है, उद्ध्रिय-
माणा शोकप्रदा होती है और उद्धृता सर्पस्वरूपिणी होती है ७

अभूतिरुपह्रियमाणा पराभूतिरुपहृता ॥ ८ ॥

अभूतिः । उपऽह्रियमाणा । पराऽभूतिः । उपऽहृता ॥ ८ ॥

उपह्रियमाण अभूति होती है और उपहृता पराभूति होती है ८
शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना शिमिदा पिशिता ॥ ९ ॥

शर्वः । क्रुद्धः । पिश्यमाना । शिमिदा । पिशिता ॥ ९ ॥

पिश्यमाना क्रोधमें भरे हुए महादेवसी होती है, पिशिता
शिमिदा होती है ॥ ९ ॥

अवर्तिरश्यमाना निर्ऋतिरशिता ॥ १० ॥

अवर्तिः । अश्यमाना । निःऽऋतिः । अशिता ॥ १० ॥

प्राशन की जाती हुई वृत्तिहीनतारूप दरिद्रताको देने वाली
होती है और प्राशन करने पर दुर्गतिकारिणी पापदेवता होती है

अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चा-

मुष्माच्च ॥ ११ ॥

१३० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अ॒शि॒ता । लो॒कात् । छि॒न॒त्ति । ब्र॒ह्म॒ऽग॒वी । ब्र॒ह्म॒ऽज्य॒म् । अ॒स्मात् ।

च । अ॒मुष्मात् । च ॥ ११ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ॥

ब्राह्मणकी गौ अशित होने पर ब्राह्मणको हानि पहुँचाने वालेको इस लोकसे और परलोकसे भी उच्छिन्न कर डालती है ॥ ११ ॥ (२७)

पञ्चम अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (४९८)

तस्या॑ आ॒हन॑नं कृ॒त्या मे॒निरा॒शस॑नं व॒लग॑ ऊ॒र्ब॒ध्यम् १

तस्याः । आ॒ऽह॒न॒नम् । कृ॒त्या । मे॒निः । आ॒ऽश॒स॒नम् । व॒लगः ।

ऊ॒र्ब॒ध्यम् ॥ १ ॥

इसका आहनन (लेजाना) कृत्या है, इसका आशसन संहारक आयुध है, गोबर मिला अर्धपक्व चारा शपथरूप होता है १

अ॒स्व॒गता॑ परि॒हृता॑ ॥ २ ॥

अ॒स्व॒गता॑ । परि॒हृता॑ ॥ २ ॥

यह छीनी हुई अपने अधीन नहीं रहती ॥ २ ॥

अ॒ग्निः क्र॒व्याद् भू॒त्वा ब्र॒ह्म॒ग॒वी ब्र॒ह्म॒ज्यं प्र॒विश्या॑त्ति ३

अ॒ग्निः । क्र॒व्य॒ऽअ॒त् । भू॒त्वा । ब्र॒ह्म॒ग॒वी । ब्र॒ह्म॒ज्यम् । प्र॒विश्या॑त्ति ।

अ॒त्ति ॥ ३ ॥

ब्राह्मणकी गौ क्रव्याद् अग्नि बन ब्रह्मज्यमें प्रवेश कर उस का भक्षण करती है ॥ ३ ॥

स॒र्वास्या॑ङ्गा प॒र्वा मू॒लानि॑ वृ॒श्चति॑ ॥ ४ ॥

सर्वा । अस्य । अङ्गा । पर्वा । मूलानि । वृश्चति ॥ ४ ॥

इसके सकल अवयव और जोड़ोंका छेदन कर डालती है, ४
छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥ ५ ॥

छिनत्ति । अस्य । पितृबन्धु । परा । भावयति । मातृबन्धु ५

इसके पिताके संबन्धी बन्धुओंका छेदन कर देती है और
मातृपक्षके बन्धुओंका तिरस्कार कराती है ॥ ५ ॥

विवाहां ज्ञातीन्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य
क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ॥ ६ ॥

विश्वाहान् । ज्ञातीन् । सर्वान् । अपि । क्षापयति । ब्रह्मगवी ।

ब्रह्मज्यस्य । क्षत्रियेण । अपुनः दीयमाना ॥ ६ ॥

क्षत्रियके द्वारा न लौटाई हुई ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यके सकल
विवाहित बन्धुओंका क्षय कर डालती है ॥ ६ ॥

अवास्तुमेनमस्वंगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति
क्षीयते ॥ ७ ॥

अवास्तुम् । एनम् । अस्वंगम् । अप्रजसम् । करोति । अपराऽ-

परणः । भवति । क्षीयते ॥ ७ ॥

वह इसको गृहरहित, परतन्त्र और संतानहीन कर डालती है
और वह अपरापरण होता हुआ क्षीण होजाता है ॥ ७ ॥

य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥ ८ ॥

१३२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

यः । ए॒वम् । वि॒दुषः । ब्रा॒ह्म॒णस्य॑ । क्ष॒त्रियः॑ । गा॒म् । आ॒ऽद॒त्ते ८

इति पञ्चमेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

जो क्षत्रिय विद्वान् ब्राह्मणकी गौका अपहरण करता है (उस की यह दशा होती है) ॥ ८ ॥ (२८)

पञ्चम अनुवाकमे पञ्चम पर्याय सूक्त समाप्त (४६९)

क्षि॒प्रं वै तस्या॒हन॑ने गृ॒ध्राः कुर्व॑त ऐ॒ल॒वम् ॥ १ ॥

क्षि॒प्रम् । वै । तस्य॑ । आ॒ऽह॑नने । गृ॒ध्राः । कुर्व॑ते । ऐ॒ल॒वम् ॥ १ ॥

जो क्षत्रिय उसको लेजाता है गृध्र शीघ्र ही उसकी नेत्रापत्ति ऐलवको करते हैं ॥ १ ॥

क्षि॒प्रं वै तस्या॒द॒हनं॑ परि॒ नृत्य॑न्ति केशिनी-

राघ्ना॒नाः पा॒णि॒नो॒र॒सि कु॒र्वा॒णाः पा॒प॒मै॒ल॒वम् ॥ २ ॥

०तस्य॑ । आ॒ऽद॒हन॑म् । परि॑ । नृत्य॑न्ति । केशिनीः ।

आ॒ऽघ्ना॒नाः । पा॒णि॒ना । उ॒र॒सि । कु॒र्वा॒णाः । पा॒प॒म् । ऐ॒ल॒वम् २

केश वाली स्त्रियें शीघ्र ही उसकी भस्म करने वाली चिताके पास घूमती हैं, वह हाथसे छातीको कूटती हैं और दुःखमय नेत्र-विकारको करती हैं ॥ २ ॥

क्षि॒प्रं वै तस्य॑ वा॒स्तु॒षु वृ॒काः कुर्व॑त ऐ॒ल॒वम् ॥ ३ ॥

०तस्य॑ । वा॒स्तु॒षु । वृ॒काः । कुर्व॑ते । ऐ॒ल॒वम् ॥ ३ ॥

शीघ्र ही उसके घरोंमें भेड़िये आँखे मटकाने लगते हैं ॥ ३ ॥

क्षि॒प्रं वै तस्य॑ पृ॒च्छ॑न्ति यत् तदासी॑दिदं॒ नु ता॑-

दिति॑ ॥ ४ ॥

क्षिप्रम् । वै । तस्य । पृच्छन्ति । यत् । तत् । आसीत् । इदम् ।

नु । ताश् । इति ॥ ४ ॥

उसके घरके विषयमें पुरुष शीघ्र ही कहने लगते हैं, कि-उस का जो घर था वह यह है ॥ ४ ॥

छिन्ध्या छिन्धि प्र छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय । ५ ।

छिन्धि । आ । छिन्धि । प्र । छिन्धि । अपि । क्षापय । क्षापय ५

(हे ब्रह्मगवि !) तू इस अपहारकका छेदन कर छेदन कर इसको नष्ट कर नष्ट कर ॥ ५ ॥

आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ६ ॥

आददानम् । आङ्गिरसि । ब्रह्मज्यम् । उप । दासय ॥ ६ ॥

हे आङ्गिरसि ! इस छीनने वाले ब्रह्मज्यको तू क्षीण कर ६ वैश्वदेवी हु १ च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ ७ ॥

वैश्वदेवी । हि । उच्यसे । कृत्या । कूल्बजम् । आवृता ॥ ७ ॥

तू कूल्बजसे आवृत वैश्वदेवी कृत्या कहलाती है ॥ ७ ॥

ओषन्ती सम्पन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ८ ॥

ओषन्ती । सम्पन्ती । ब्रह्मणः । वज्रः ॥ ८ ॥

तू मन्त्ररूपी वज्रसे भस्म करने वाली है भली प्रकार भस्म करने वाली है ॥ ८ ॥

क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ९ ॥

क्षुरपविः । मृत्युः । भूत्वा । वि । धाव । त्वम् ॥ ९ ॥

१३४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तू क्षुरपवि मृत्यु बन कर आक्रमण कर ॥ ९ ॥

आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्त चाशिषः ॥ १० ॥

आ । दत्से । जिनताम् । वर्चः । इष्टम् । पूर्तम् । च । आशिषः

तू छीनने वालोंके तेज इष्ट पूर्त और आशीर्वादोंको हर लेती है

आदाय जीतं जीताय लोकेऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ११

आदाय । जीतम् । जीताय । लोके । अमुष्मिन् । प्र । यच्छसि

और उस हानि पहुँचाने वालेको अल्पायु करनेके लिये ग्रहण करके परलोकमें भेज देती है ॥ ११ ॥

अघ्न्ये पद्वीर्भव ब्राह्मणस्याभिः शस्त्या ॥ १२ ॥

अघ्न्ये । पद्वीः । भव । ब्राह्मणस्य । अभिः शस्त्या ॥ १२ ॥

हे अघ्न्ये ! तू ब्राह्मणके शापवश पैरोंको प्राप्त होने वाली वेड़ी बन ॥ १२ ॥

मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥ १३ ॥

मेनिः । शरव्या । भव । अघात् । अघविषा । भव ॥ १३ ॥

तू आयुधरूप वाणावलिरूप और पापवश अघविषा बन १३

अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपी-

योरराधसः ॥ १४ ॥

अघ्न्ये । प्र । शिरः । जहि । ब्रह्मज्यस्य । कृतआगसः । देव-

पीयोः । अराधसः ॥ १४ ॥

हे अघ्न्ये ! तू अपराधी देवहिंसक कार्यको सिद्ध न होने देने वाले ब्रह्मज्यके शिरका संहार कर ॥ १४ ॥

त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ १५ ॥

त्वया । प्रमूर्णम् । मृदितम् । अग्निः । दहतु । दुःचितम् ॥ १५ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षष्ठं पर्यायसूक्तम् ॥

तेरे द्वारा प्रमूर्ण और मसले हुए उस दुश्चितको अग्नि भस्म करे ॥ १५ ॥ (१९)

पञ्चम अनुवाकमें छठा पर्याय सूक्त समाप्त (५००)

वृश्च प्र वृश्च सं वृश्च दह प्र दह सं दह ॥ १ ॥

वृश्च । प्र । वृश्च । सम् । वृश्च । दह । प्र । दह । सम् । दह ॥ १ ॥

ब्रह्मज्यं देव्यघ्न्य आ मूलादनुसंदह ॥ २ ॥

ब्रह्मज्यम् । देवि । अघ्न्ये । आ । मूलात् । अनुसंदह ॥ २ ॥

हे देवि अघ्न्ये ! तू ब्रह्मज्यको काट ! काट !! भस्म कर प्रकृष्टतासे भस्म कर भली प्रकार भस्म कर उसको मूलसहित भस्म कर डाल ॥ १ ॥ २ ॥

यथायाद् यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥ ३ ॥

यथा । अयात् । यमसदनात् । पापलोकान् । परावतः ॥ ३ ॥

एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोराधसः

एव । त्वम् । देवि । अघ्न्ये । ब्रह्मज्यस्य । कृतआगसः । देव-

पीयोः । अराधसः ॥ ४ ॥

वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ५ ॥

वज्रेण । शतपर्वणा । तीक्ष्णेन । क्षुरभृष्टिना ॥ ५ ॥

प्र स्कन्धान् प्र शिरो जहि ॥ ६ ॥

प्र । स्कन्धान् । प्र । शिरः । जहि ॥ ६ ॥

यह यमसदनसे जिस प्रकार परमदूरके पापलोकोंको प्राप्त हो, इस प्रकार हे देवि अधन्ये ! तू अपराधी देवहिंसक कार्यसिद्धिमें विघ्न डालने वाले ब्रह्मज्यके कंधोंको और शिरको तीक्ष्ण धार वाले सैकड़ों गाँठों वाले क्षुरेकी समान तीक्ष्ण वज्रसे काट डाल ३-६ लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥ ७ ॥

लोमानि । अस्य । सम् । छिन्धि । त्वचम् । अस्य । वि । वेष्टय

इसके लोमोंको काट इसकी खालको उधेड़ ॥ ७ ॥

मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥ ८ ॥

मांसानि । अस्य । शातय । स्नावानि । अस्य । सम् । वृह ॥ ८ ॥

इसके मांसोंको काट इस नसोंको फुला ॥ ८ ॥

अस्थान्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ९ ॥

अस्थीनि । अस्य । पीडय । मज्जानम् । अस्य । निः । जहि ॥ ९ ॥

इसकी हड्डियोंमें दर्दको उत्पन्न कर और इसकी मज्जाको क्षीण कर ॥ ९ ॥

सर्वास्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥ १० ॥

सर्वा । अस्य । अङ्गा । पर्वाणि । वि । श्रथय ॥ १० ॥

इसके सब अंगोंको और जोड़ोंको ढीले कर दे ॥ १० ॥
 अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्त-
 रिक्षान्महतो वरिष्णः ॥ ११ ॥

अग्निः । एनम् । क्रव्यऽअत् । पृथिव्याः । नुदताम् । उत् । ओषतु ।

वायुः । अन्तरिक्षात् । महतः । वरिष्णः ॥ ११ ॥

क्रव्याद् अग्नि इसको भस्म कर डाले और वायुदेव इसको
 महिमामय महान् अन्तरिक्षसे और पृथिवीसे खदेड़ें ॥ ११ ॥

सूर्य एनं दिवः प्र नुदतां न्योषतु ॥ १२ ॥

सूर्यः । एनम् । दिवः । प्र । नुदताम् । नि । ओषतु ॥ १२ ॥

पञ्चमेनुवाके सप्तमं पर्यायसूक्तम् ॥

पञ्चमोनुवाकः ॥

इति द्वादशं काण्डं समाप्तम् ॥

सूर्यदेव इसको स्वर्गसे खदेड़ें और भस्म कर डालें ॥ १२ ॥ (३०)

पञ्चम अनुवाकमें सप्तम पर्याय सूक्त समाप्त (५०१)

पञ्चम अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका द्वादश काण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत

भाषानुवादसहित

समाप्त.

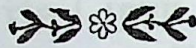
॥ द्वादशकाण्ड समाप्त ॥

—०—

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

त्रयोदश-काण्डम्



सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

“उदेहि वाजिन्” इति सूक्तं रोहितदेवताकम् । रोहितः कश्चिद् देवः । उद्यन् यः सूर्यस्तदात्मक इति ज्ञेयम् । रोहितसाहचर्येण मरुतः इन्द्रः अज एकपादः अग्निः सविता मित्रावरुणौ क्रव्याद् अग्निः सूर्य इत्यादयो देवा अप्याहूता वर्णिताश्च । रोहितस्य तथा तत्संबन्धिदेवानामत्र वर्णने प्रयोजनं राज्ञो राष्ट्रस्य भरणम् इति सूक्त इतस्ततो द्रष्टव्यम् ॥

क्वचिन्मन्त्रेषु रोहितपदस्य निर्वचनं रूहो रुरोह प्ररूहो रुरोह द्यावापृथिवीभ्यां रुरोहेति रोहित इति ध्वनितम् ॥

याज्ञिकास्तु वक्ष्यमाणप्रकारेण विनियुञ्जन्ति । तद्यथा ।

अर्थकामः “उदेहि वाजिन्” इत्यादिविंशत्यृग्विभिरुद्यन्तम् आदित्यम् उपतिष्ठते ॥

तथा अर्थोत्थापनकामः उक्तविंशत्यृग्विभिः स्नानं कृत्वा उपतिष्ठते ॥

तथा अर्थसिद्धिकामः अहतवस्त्रपरिधानं कृत्वा उक्ताभिर्ऋग्विभिरुपतिष्ठते ॥

तथा अर्थो मम सिध्यताम् एवंकामस्ताभिर्ऋग्विभिरुपतिष्ठते ॥

तथा विद्रावणादिविषये शमनकामः उक्ताभिर्ऋग्विभिरुपतिष्ठते ॥

सूत्रितं हि । “०उत्तमेन [६. ६२] वाचस्पतिलिङ्गाभिरुच्य-
न्तम् उपतिष्ठते । स्नातोऽहतवसनो निक्त्वाहतम् आच्छादयते
ददाति” इति । कौ० ५. ५ ॥ उदेहि वाजिन्निति त्रिंशत्यृचो
वाचस्पतिलिङ्गा इति केशवः ॥

“यो रोहितः” इति द्वयोः ऋचोः [२५, २६] सलिलगणे
पाठः । अतः “सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नाति मन्थान्तानि” [कौ०
३. १] “सलिलैः सर्वकामः” [कौ० ३. ७] इत्यादौ चास्य
विनियोगः ॥ सलिलगणश्च “आपो हि ष्ठा” इति १. ५ सूक्ते
द्रष्टव्यः ॥

“समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धः” इति [२८—३२]
पञ्चर्चस्य विनियोगो “य इमे द्यावापृथिवी” [१३. ३] इत्यत्र
द्रष्टव्यः ॥

“उदेहि वाजिन्” सूक्तमें रोहित देवताका वर्णन है । उदय
होते हुए सूर्यको रोहित देवता समझना चाहिये । रोहितके साह-
चर्यसे मरुत् इन्द्र अज एकपाद् अग्नि सविता मित्रावरुण क्रव्याद्
अग्नि सूर्य आदि देवताओंका आह्वान किया है और उनका
वर्णन भी किया है । सूक्तको चारों ओरसे देखने पर प्रतीत
होता है, कि—रोहितका तथा उससे सम्बन्ध रखने वाले देवताओं
के वर्णनका प्रयोजन राजाके राष्ट्रका भरण ही है ।

मन्त्रोंमें कहीं, रोहण करने वाला, रोहण (प्रादुर्भाव) कर
गया, प्रकृष्टतासे रोहण करने वाला और द्यावापृथिवीमें प्रादुर्भूत
होने वाला आदि अर्थोंमें रोहित पदका निर्वचन किया है ।

याज्ञिक निम्नलिखितरीतिसे विनियोग करते हैं, कि—

धनको चाहने वाला पुरुष “उदेहि वाजिन्” आदि बीस
ऋचाओंसे उदय होते हुए सूर्यका उपस्थान करे ।

तथा धनको उठाना चाहने वाला इन बीस ऋचाओंसे स्नान
करके उपस्थान करे ।

धनमें सिद्धि को चाहने वाला पुरुष बिना फटे कोरे वस्त्र को पहिन कर पूर्वोक्त ऋचाओंसे उपस्थान करे ।

तथा “मेरा प्रयोजन सिद्ध होजाय” ऐसी कामना वाला इन ऋचाओंसे वस्त्र को अभिमंत्रित करके उढ़वावे ।

तथा विद्रावण आदिके विषयमें शमनकी इच्छा वाला पुरुष इन ऋचाओंसे वस्त्र को अभिमंत्रित करके देवे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-“छठे काण्डके बासठवें सूक्त उत्तमसूक्तसे और वाचस्पतिलिंगा ऋचाओंसे उदय होते हुए सूर्यका उपस्थान करे । स्नान करके कोरे वस्त्र को पहिन उसको शुद्ध करके आच्छादन करे और देदेय” (कौशिकसूत्र ५ । ५) । केशवने कहा है, कि-“उदेहि वाजिन्” यह बीस ऋचाएँ वाचस्पतिलिङ्गा हैं ।

“यो रोहितः” आदि पच्चीसवीं छब्बीसवीं दो ऋचाओंका सलिलगणमें पाठ है । अत एव “सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नाति मन्थान्तानि” (कौशिकसूत्र ३ । १) सलिलैः सर्वकामः (कौशिकसूत्र ३ । ७) इत्यादिमें इनका विनियोग है । सलिलगणको “आपो हि ष्ठा” इस प्रथम काण्डके पाँचवें सूक्तमें देखना चाहिये ।

“समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धः” आदि अट्ठाईसवीं ऋचासे बत्तीसवीं ऋचा तक पाँच ऋचाओंका विनियोग “य इमे द्यावापृथिवी” इस तेरहवें काण्डके तीसरे सूक्तमें देखना चाहिये ॥

उदेहि वाजिन् यो अ॒प्स्व॑न्त॒रिदं॑ रा॒ष्ट्रं प्र वि॒श
सू॒नृता॑वत् ।

यो रोहि॒तो वि॒श्वमि॒दं ज॒जान॑ स त्वा॑ रा॒ष्ट्राय॑ सुभृ॒तं
विभर्तु॑ ॥ १ ॥

उत्^१एहि । वाजिन् । यः । अप्सु^२ । अन्तः । इदम् । राष्ट्रम् ।

ष । विश । सृता^३स्वत् ।

यः । रोहितः । विश्वम् । इदम् । जजान । सः । त्वा । राष्ट्राय ।

सुभृतम् । बिभर्तु ॥ १ ॥

हे वेगवान् सूर्यदेव ! जो आप अन्तरिक्षके भीतर हैं सो उदित हूजिये और इस प्रिय सत्य वाणीसे सम्पन्न राष्ट्रके भीतर प्रवेश करिये, ऐसे जिन रोहित (सूर्य) देवताने इस विश्वको प्रादुर्भूत किया है वह आपको (हे राजन्) राष्ट्रके भली प्रकार भरण करने वालेके रूपमें पुष्ट करें ॥ १ ॥

उद्वाज आ गन् यो अस्व^४न्तर्विश आ रोह
त्वद्योनयो याः ।

सोमं दधानोप ओषधीर्गाश्चतुष्पदो द्विपद आ
वेशयेह ॥ २ ॥

उत् । वाजः । आ । गन् । यः । अप्सु^५ । अन्तः । विशः । आ । रोह ।

त्वत्^६योनयः । याः ।

सोमम् । दधानः । अपः । ओषधीः । गाः । चतुः^७स्पदः । द्वि^८स्पदः ।

आ । वेशय । इह ॥ २ ॥

आप जिनके कारण हैं ऐसी जो जल (वा अन्तरिक्ष) में रहने वाली प्रजाएँ हैं और बलपद अन्न हैं वे आपके पास आवें और आप उन पर आरोहण करें आप सोमको धारण करते

१४२

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

हुए, जल ओषधि चौपाये, गौ और दो पैर वाले मनुष्य आदि को इस राज्यमें प्रवेश कराइये ॥ २ ॥

यूयमु॒ग्रा म॒रुतः पृ॒श्निमा॒तर इ॒न्द्रेण॑ यु॒जा प्र मृ॑णीत॒ शत्रून्
आ वो रो॒हितः शृ॒णवत् सु॒दानव॑स्त्रि॒प॒त्तासो॑ म॒रुतः
स्वा॒दुसं॒मुदः॑ ॥ ३ ॥

यू॒यम् । उ॒ग्राः । म॒रुतः । पृ॒श्नि॒ऽमा॒तरः । इ॒न्द्रेण॑ । यु॒जा । प्र ।
मृ॒णीत॑ । श॒त्रून् ।

आ । वः । रो॒हितः । शृ॒णवत् । सु॒दान॒वः । त्रि॒प॒त्ता॒सः ।
म॒रुतः । स्वा॒दु॒सं॒मुदः॑ ॥ ३ ॥

हे इन्द्रके साथ मित्रता रखने वाले अदितिमातृक प्रचण्ड मरुद्गणों ! तुम शत्रुओंका संहार करो, स्वादु पदार्थोंसे मोदको प्राप्त होने वाले, सुन्दरतापूर्वक वृष्टिका दान करने वाले हे उड-आस मरुद्गणों ! रोहित देव ! तुम्हारी बातको सुनें ॥ ३ ॥

रुहो॑ रु॒रोह॑ रो॒हित आ रु॒रोह॑ गर्भो॑ जनी॒नां ज॒नुषा॑-
मु॒प॒स्थम् ।

ताभिः॑ संर॒ब्धम॑न्वविन्दन् प॒दुर्वी॑र्गातुं प्र॒पश्य॑न्निह
रा॒ष्ट्रमा॒हाः ॥ ४ ॥

रुहः॑ । रु॒रोह॑ । रो॒हितः । आ । रु॒रोह॑ । गर्भः॑ । जनी॒नाम् ।
ज॒नुषा॑म् । उ॒प॒स्थम् ।

ताभिः । सम्प्रबन्धम् । अनु । अविन्दन् । षट् । उर्वीः । गातुम् ।

प्रस्पर्शन् । इह । राष्ट्रम् । आ । अहाः ॥ ४ ॥

आरोहणशील रोहित सूर्यदेव उदय होकर चढ़ रहे हैं यह उत्पत्ति वालोंके उपस्थमें जायाओंके गर्भरूपसे प्रादुर्भूत होते हैं, उनसे संबन्ध हुए छः उर्वियोंको पानेके लिये प्रति दिन राष्ट्रको देखते हुए उन उर्वियोंको पाते हैं ॥ ४ ॥

आ ते राष्ट्रमिह रोहितोहार्षीद् व्यास्थन्मृधो अभयं
ते अभूत् ।

तस्मै ते द्यावापृथिवी रेवतीभिः कामं दुहाथामिह शक्-
रीभिः ॥ ५ ॥

आ । ते । राष्ट्रम् । इह । रोहितः । अहार्षीत् । वि । आस्थत् ।

मृधः । अभयम् । ते । अभूत् ।

तस्मै । ते । द्यावापृथिवी इति । रेवतीभिः । कामम् । दुहाथाम् । इह ।

शक्वरीभिः ॥ ५ ॥

इस तेरे राज्यको सूर्यदेवने हरण कर लिया है अर्थात् तेरे राज्यमें सूर्यदेव आगए हैं और स्थित होगए हैं अतः तू संग्रामसे निर्भय होगया है, (क्योंकि—उनकी कृपासे तेरी विजय अवश्य होगी) ऐसे तेरे लिये द्यावापृथिवी धनप्रदायिनी ऋचाओंसे इस लोकमें तेरी कामनाओंको दुहें ॥ ५ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी जजान तत्र तन्तुं परमेशी तंतान
तत्र शिश्रियेज एकपादादहद् द्यावापृथिवी बलेन ६

१४४

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

रोहितः । द्यावापृथिवी इति । जजान । तत्र । तन्तुम् । परमेऽस्थी ।

ततान ।

तत्र । शिश्रिये । अजः । एकऽपादः । अट हत् । द्यावापृथिवी इति ।

बलेन ॥ ६ ॥

रोहितदेवने द्यावापृथिवीको प्रादुर्भूत किया है उसमें परमेष्ठीने तन्तुको विस्तृत किया है, तहाँ एक पाद-अजने आश्रय लिया और उसने द्यावापृथिवीको बलसे टढ़ कर दिया है ॥ ६ ॥

रोहितो द्यावापृथिवी अटंहत् तेन स्वस्तभितं तेन

नाकः ।

तेनान्तरिक्षं विमिता रजांसि तेन देवा अमृतमन्व-

विन्दन् ॥ ७ ॥

रोहितः । द्यावापृथिवी इति । अट हत् । तेन । स्वः । स्तभितम् ।

तेन । नाकः ।

तेन । अन्तरिक्षम् । विमिता । रजांसि । तेन । देवाः । अमृतम् ।

अनु । अविन्दन् ॥ ७ ॥

रोहितने द्यावापृथिवीको टढ़ किया है, उसने स्वर्ग दुःखके लेशरहित स्थान-को स्तंभित किया है, उसने अन्तरिक्षका तथा अन्य लोकोंका निर्माण किया है और उसके द्वारा देवताओंने अमृतत्वको पाया है ॥ ७ ॥

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो

रुहश्च ।

दिवं॑ रू॒द्वा म॑ह॒ता म॑हि॒म्ना सं ते॑ रा॒ष्ट्रम॑न॒क्तु प॑य॒सा
घृ॒तेन॑ ॥ ८ ॥

वि । रो॒हितः । अ॒मृ॒शत् । वि॒श्वऽरू॑पम् । स॒म् आ॒कु॒र्वाणः ।
प्रऽरू॑हः । रु॒हः । च ।

दिव॑म् । रू॒द्वा । म॑ह॒ता । म॑हि॒म्ना । स॒म् । ते । रा॒ष्ट्रम् । अ॒न॒क्तु ।
प॑य॒सा । घृ॒तेन॑ ॥ ८ ॥

रुह और प्ररुह सबको भली प्रकार प्रकट करते हुए रोहित देवने सब शरीरोंका स्पर्श किया है वह सूर्यदेव अपनी विशाल महिमासे तेरे राष्ट्रको घृत और दुग्धसे पूर्ण करें ॥ ८ ॥

यास्ते॑ रु॒हः प्र॑रू॒हो यास्त॑ आ॒रू॒हो याभि॑रा॒पृणा॑सि
दि॒वम॑न्त॒रि॒क्षम् ।

ता॒सां ब्र॑ह्म॒णा प॑य॒सा वा॒वृ॒धानो॑ वि॒शि रो॒ष्ट्रे जा॑गृ॒हि
रो॒हित॑स्य ॥ ९ ॥

याः । ते । रु॒हः । प्रऽरू॑हः । याः । ते । आ॒रू॒हः । याभिः ।
आऽपृ॑णासि । दि॒वम् । अ॒न्त॒रि॒क्षम् ।

ता॒साम् । ब्र॑ह्म॒णा । प॑य॒सा । वा॒वृ॒धानः । वि॒शि । रा॒ष्ट्रे । जा॑गृ॒हि ।
रो॒हित॑स्य ॥ ९ ॥

(हे राजन्) जो आपकी रोहणशील प्ररोहणशील और आरोहणशील प्रजा लता आदि हैं, कि-जिनसे आप स्वर्ग और

१४६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अन्तरिक्ष निवासियोंका पालन करते हैं उनके दुग्धकी समान फलप्रद कर्मसे और मन्त्रशक्तिसे बढ़ते हुए आप सूर्यदेवकी व्याप्ति वाले राष्ट्रमें (वा सूर्यदेवके राष्ट्रमें और प्रजामें) जागते रहिये ६ यास्ते विशस्तपसः संबभूवुर्वत्सं गायत्रीमनु ता इहागुः। तास्त्वा विशन्तु मनसा शिवेन संमाता वत्सो अभ्येतु रोहितः ॥ १० ॥

याः । ते । विशः । तपसः । सम्भवूवुः । वत्सम् । गायत्रीम् । अनु । ताः । इह । आ । अगुः ।

ताः । त्वा । आ । विशन्तु । मनसा । शिवेन । सम्माता । वत्सः । अभि । एतु । रोहितः ॥ १० ॥

(हे राजन् !) तपके कारण जो आपकी प्रजाएँ प्रकट हुई हैं वे गायत्रीरूप वत्सके द्वारा यहाँ आई हैं, वे अपने कल्याणकारी मनसे आपमें प्रवेश करें अर्थात् मनसे आपका कल्याण चाहें और इनका सम्माता वत्स रोहित आपके पास आवे अर्थात् सूर्यदेव आपके ऊपर अनुग्रह करें ॥ १० ॥ (१)

ऊर्ध्वो रोहितो अधि नाके अस्थाद् विश्वा रूपाणि जनयन् युवा कविः ।

तिग्मेनाग्निज्योतिषा वि भाति तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वः । रोहितः । अधि । नाके । अस्थात् । विश्वा । रूपाणि । जनयन् । युवा । कविः ।

तिग्मेन । अग्निः । ज्योतिषा । वि । भाति । तृतीये । चक्रे ।

रजसि । प्रियाणि ॥ ११ ॥

रोहित (सूर्यदेव) ऊँचे होकर स्वर्गमें स्थित होते हैं उस समय तरुण हुए वह चतुर सूर्यदेव सब रूपोंको प्रादुर्भूत करते हैं अग्निदेव (उनकी ही) तिरछी ज्योतिसे दमकते हैं, वह (सूर्य वा अग्नि देव) तीसरे लोक (स्वर्ग) में (फलप्रदान करके मनुष्योंके) प्रिय कार्योंको करते हैं ॥ ११ ॥

सहस्रशृङ्गो वृषभो जातवेदा घृताहुतः सोमपृष्ठः सुवीरः ।
मा मा हासीन्नाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च
मे वीरपोषं च धेहि ॥ १२ ॥

सहस्रशृङ्गः । वृषभः । जातवेदाः । घृतः । आहुतः । सोमः । पृष्ठः ।
सुवीरः ।

मा । मा । हासीत् । नाथितः । न । इत् । त्वा । जहानि ।
गोऽपोषम् । च । मे । वीरऽपोषम् । च । धेहि ॥ १२ ॥

शिखारूप सहस्रों शृंग वाले, कामनापूर्तिकी वर्षा करने वाले, घृतसे आहुत, सोमको पृष्ठभाग पर धारण करने वाले, सुन्दर वीर्यसे उत्पन्न होने वाले पुत्र आदिको प्रदान करने वाले जात-वेदा अग्नि मुझको न त्यागें । अपनी शरणमें रखें हे अग्निदेव !) आप मुझको गौओंकी पुष्टिमें और वीर्यसे उत्पन्न हुए वीर पुत्र पौत्र आदिकी पुष्टिमें स्थापित करें ॥ १२ ॥

रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण
मनसा जुहोमि ।

१४८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमाना स मा रोहैः सामित्यै
रोहयतु ॥ १३ ॥

रोहितः । यज्ञस्य । जनिता । मुखम् । च । रोहिताय । वाचा ।
श्रोत्रेण । मनसा । जुहोमि ।

रोहितम् । देवाः । यन्ति । सुमनस्यमानाः । सः । मा । रोहैः ।
साम् इत्यै । रोहयतु ॥ १३ ॥

रोहित देव यज्ञका प्रादुर्भव करने वाले हैं और यज्ञके मुख हैं,
मैं वाणी श्रोत्र और मनके द्वारा रोहितके लिये ही आहुति देता
हूँ सब देवता मनमें प्रसन्न होते हुए रोहितके पास जाते हैं, वह
मुझको अपने प्रादुर्भावोंके साथ युद्धके लिये चढ़ावें ॥ १३ ॥

रोहितो यज्ञं व्यदधाद् विश्वकर्मणे तस्मात् तेजांस्युप
मेमान्यागुः ।

वोचेयं ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि ॥ १४ ॥

रोहितः । यज्ञम् । वि । अदधात् । विश्वकर्मणे । तस्मात् । तेजांसि ।
उप । मा । इमानि । आ । अगुः ।

वोचेयम् । ते । नाभिम् । भुवनस्य । अधि । मज्मनि ॥ १४ ॥

रोहितने विश्वकर्माके लिये यज्ञको पुष्ट किया था, उस यज्ञसे
ये तेज मेरे पास आरहे हैं मैं आपकी नाभिको भुवनकी मज्जा पर
ही कहता हूँ अर्थात् आप भुवनकी मज्जाके बंधक हैं ॥ १४ ॥

आ त्वा॑ रुरो॒ह बृ॒ह॒त्यू॒त प॒ङ्क्ति॑रा क॒कुब् वर्च॑सा जा॒त-
वे॒दः ।

आ त्वा॑ रुरो॒हो॒ष्णि॒हा॒क्ष॒रो व॑षट्कार आ त्वा॑ रुरो॒ह
रो॒हि॒तो रे॒त॒सा स॒ह ॥ १५ ॥

आ । त्वा । रुरो॒ह । बृ॒ह॒ती । उ॒त । प॒ङ्क्तिः । आ । क॒कुप् । वर्च॑सा ।
जा॒तऽवे॒दः ।

आ । त्वा । रुरो॒ह । उ॒ष्णि॒हाऽअ॒क्ष॒रः । व॑षट्कारः । आ । त्वा ।
रुरो॒ह । रो॒हि॒तः । रे॒त॒सा । स॒ह ॥ १५ ॥

हे जातवेदा अग्ने ! बृहतीछन्द पङ्क्तिछन्द और ककुप् छन्दने अपने प्रतापके साथ आपमें प्रवेश किया है, उष्णिहा और अक्षर ने भी आपमें प्रवेश किया है और वषट्कारने भी आपमें प्रवेश किया है अर्थात् इन सबसे आपको आहुति दीजाती है और हे अग्ने ! सूर्यदेव भी अपने तेजसे आपमें प्रवेश करते हैं ॥ १५ ॥

अ॒यं व॒स्ते गर्भं॑ पृथि॒व्या दि॒वं व॒स्ते॒यम॒न्तरि॑क्षम् ।

अ॒यं ब्र॒ध्नस्य॑ वि॒ष्टपि॑ स्व॒लोकान्॑ व्या॒न॒शे ॥ १६ ॥

अ॒यम् । व॒स्ते । गर्भ॑म् । पृथि॒व्याः । दि॒वम् । व॒स्ते । अ॒यम् । अ॒न्तरि॑क्षम्

अ॒यम् । ब्र॒ध्नस्य॑ । वि॒ष्टपि॑ । स्वः । लो॒कान् । वि । आ॒न॒शे ॥ १६

यह (सूर्यदेव) पृथिवीके गर्भको आच्छादित कर लेते हैं यह धुलोक और अन्तरिक्षलोकको भी आच्छादित कर लेते हैं, यह (अग्नि वा सूर्य) सब जगत्के बंधक (सूर्य) के स्वर्गमें तथा और सकल स्वर्गोंमें व्याप्त होजाते हैं ॥ १६ ॥

१५० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

वाचस्पते पृथिवी नः स्योना स्योना योनिस्तत्पा
नः सुशेवा ।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यग्नि-
रायुषा वर्चसा दधातु ॥ १७ ॥

वाचः । पते । पृथिवी । नः । स्योना । स्योना । योनिः । तत्पा ।
नः । सुशेवा ।

इह । एव । प्राणः । सख्ये । नः । अस्तु । तम् । त्वा । परमे-
ऽस्थिन् । परि । अग्निः । आयुषा । वर्चसा । दधातु ॥ १७ ॥

हे वाचस्पते देव ! पृथिवी हमको सुख देने वाली हो, योनि
हमको सुख देवे, शय्या हमको सुख देवे, प्राण हमारे साथ मित्रता
करता हुआ इसी लोकमें रहे हे परमेष्ठिन् ! ऐसे आपको अग्निदेव
आयु और तेजसे धारण करें ॥ १७ ॥

वाचस्पत ऋतवः पञ्च ये नौ वैश्वकर्मणाः परि ये
संबभूवुः ।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् परि
रोहित आयुषा वर्चसा दधातु ॥ १८ ॥

पते । ऋतवः । पञ्च । ये । नौ । वैश्वकर्मणाः । परि । ये ।
सम्बभूवुः ।

परि । रोहितः । आयुषा । वर्चसा । दधातु ॥ १८ ॥

हे वाचस्पते ! हम दोनोंके कर्मसे जो पाँच ऋतुएँ प्रकट हुई हैं,
हमारा प्राण उनमें मित्रता रखता हुआ यहाँ ही रहे, ऐसे आपको
हे परमेष्ठिन् ! सूर्यदेव अपनी आयु और तेजसे धारण करें ॥ १८ ॥
वाचस्पते सौमनसं मनश्च गोष्ठे नो गा जनय योनिषु
प्रजाः ।

इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन् पर्यह-
मायुषा वर्चसा दधामि ॥ १९ ॥

वाचः । पते । सौमनसम् । मनः । च । गोऽस्थे । नः । गाः ।
जनय । योनिषु । प्रजाः ।

इह । एव । प्राणः । सख्ये । नः । अस्तु । तम् । त्वा । परमेऽ-
स्थिन् । परि । अहम् । आयुषा । वर्चसा । दधामि ॥ १९ ॥

हे वाचस्पते ! हमारा मन प्रसन्नता-सम्पन्न रहे आप हमारी
गोष्ठमें गौओंको उत्पन्न करिये और योनियोंमें प्रजाओंको उत्पन्न
करिये, प्राण हमारे साथ मित्रता करता हुआ इसी लोकमें रहे,
ऐसे आपको हे परमेष्ठिन् ! मैं वर्च और आयुसे धारण करता हूँ ॥ १९ ॥
परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणा-

वभि त्वा ।

सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् २०

परि । त्वा । धात् । सविता । देवः । अग्निः । वर्चसा । मित्रा-
वरुणौ । अभि । त्वा ।

सर्वाः । अरातीः । अवऽक्रामन् । आ । इ॒हि । इ॒दम् । रा॒ष्ट्रम् ।

अ॒करः । सू॒नुता॑ऽवत् ॥ २० ॥

हे राजन् ! सविता देवता आपको चारों ओरसे पुष्ट करें, अग्निदेव और मित्र तथा वरुण देवता आपको पुष्ट करें, आप सब शत्रुओंको दबाते हुए इस राष्ट्रमें आइये और इस राज्यको प्रिय सत्य वाणीसे सम्पन्न करिये ॥ २० ॥ (२)

यं त्वा पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहित ।

शुभा यासि रिणन्नपः ॥ २१ ॥

यम् । त्वा । पृषती । रथे । प्रष्टिः । वहति । रो॒हि॒त ।

शु॒भा । या॒सि । रि॒णन् । अ॒पः ॥ २१ ॥

हे रोहित ! आपको पृषती प्रष्टि रथमें धारण करती है आप जलोंमें चलते हुए शुभ करनेके लिये चलते हैं ॥ २१ ॥

अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य सूरिः सुवर्णा बृहती
सुवर्चाः ।

तया वाजान् विश्वरूपां जयेम तया विश्वाः पृतना
अभि ष्याम ॥ २२ ॥

अनु॑व्रता । रोहि॑णी । रोहि॑तस्य । सू॒रिः । सु॒वर्णा । बृ॒हती ।

सु॒वर्चाः ।

तया । वा॒जान् । वि॒श्वऽरू॒पान् । ज॒ये॒म । तया । वि॒श्वाः । पृ॒तना ।

अ॒भि । स्या॒म ॥ २२ ॥

आरोहण करने वाले रोहित (चन्द्र) की रोहिणी अनुव्रता है वह सूरिसुवर्णा बृहती और सुवर्चा है उसके द्वारा हम अनेक रूपों वाले वेगवान् प्राणियोंको जीतते हैं और उसके द्वारा हम सकल सेनाओंको दबावें ॥ २२ ॥

इदं सद् रोहिणी रोहितस्यासौ पन्थाः पृषती येन याति
तां गन्धर्वाः कश्यपा उन्नयन्ति तां रक्षन्ति कवयो-
प्रमादम् ॥ २३ ॥

इदम् । सद् । रोहिणी । रोहितस्य । असौ । पन्थाः । पृषती ।
येन । याति ।

ताम् । गन्धर्वाः । कश्यपाः । उत् । नयन्ति । ताम् । रक्षन्ति ।
कवयः । अप्रमादम् ॥ २३ ॥

यह रोहिणी और रोहितका स्थान है, यह वह मार्ग है जिससे पृषती जाती है, उसको कश्यप गंधर्व ऊपरको लेजाते हैं, चतुर पुरुष सावधानतापूर्वक इसकी रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥

सूर्यस्याश्वा हरयः केतुमन्तः सदा वहन्त्यमृताः सुखं
रथम् ।

घृतपावा रोहितो भ्राजमानो दिवं देवः पृषतीमा विवेश
सूर्यस्य । अश्वाः । हरयः । केतुमन्तः । सदा । वहन्ति । अमृताः ।

सुखम् । रथम् ।

घृत॑ऽपा॒वा । रो॒हि॒तः । भ्रा॒ज॒मा॒नः । दि॒वम् । दे॒वः । पृ॒ष॒तीम् ।

आ । वि॒वेश ॥ २४ ॥

सूर्यके अश्व वेग वाले हैं, ज्ञानसे सम्पन्न हैं और अमर हैं वे सदा सुखपूर्वक रथको खेंचते हैं, घृतकी समान सारमय फलसे पवित्र करनेवाले दमकते हुए सूर्यदेवने पृषती द्यौमें प्रवेश किया है २४

यो रो॒हि॒तो वृ॒ष॒भ॒स्ति॒ग्म॒शृ॒ङ्गः॑ । पर्य॒ग्निं॑ परि॒ सूर्यं॑ ब॒भूव॑
यो वि॒ष्ट॒भ्नाति॑ पृ॒थि॒वीं दि॒वं च॒ तस्मा॑द् दे॒वा अधि॑

सृ॒ष्टीः॑ सृ॒जन्ते ॥ २५ ॥

यः । रो॒हि॒तः । वृ॒ष॒भः । ति॒ग्म॒शृ॒ङ्गः॑ । परि॑ । अ॒ग्निम् । परि॑ ।

सूर्यम् । ब॒भूव॑ ।

यः । वि॒स्त॒भ्नाति॑ । पृ॒थि॒वीम् । दि॒वम् । च॒ । तस्मा॑त् । दे॒वाः ।

अधि॑ । सृ॒ष्टीः॑ । सृ॒जन्ते ॥ २५ ॥

जो रोहितदेव कामनाओंकी वर्षा करने वाले हैं, तीखी किरणों वाले हैं जो अग्नि और सूर्यकी और रहते हैं जो पृथिवी और द्यौ को रोके हुए हैं, उनसे ही देवता सृष्टिकी रचना किया करते हैं २५

रो॒हि॒तो दि॒व॒मा॒रु॒ह॒न्म॒हत॑ पर्य॒ण॒वात् ।

सर्वा॑ रु॒रोह॑ रो॒हि॒तो रु॒हः ॥ २६ ॥

रो॒हि॒तः । दि॒वम् । आ । अ॒रु॒ह॒त् । म॒हतः॑ । परि॑ । अ॒र्ण॒वात् ।

सर्वाः॑ । रु॒रोह॑ । रो॒हि॒तः । रु॒हः ॥ २६ ॥

रोहित देव महान् समुद्रसे द्यौ पर आरोहण करते हैं, वह रोहित रोहणशील वस्तुओं पर आरोहण करते हैं ॥ २६ ॥

वि मिमीष्व पयस्वतीं घृताचीं देवानां धेनुरनपस्पृगेपा
इन्द्रः सोमं पिबतु क्षेमो अस्त्वग्निः प्र स्तौतु वि मृधो

नुदस्व ॥ २७ ॥

वि । मिमीष्व । पयस्वतीम् । घृताचीम् । देवानाम् । धेनुः । अन-
पस्पृक् । एषा ।

इन्द्रः । सोमम् । पिबतु । क्षेमः । अस्तु । अग्निः । प्र । स्तौतु ।

वि । मृधः । नुदस्व ॥ २७ ॥

तू घृतसे पूजित पयस्वती देवधेनुका मान कर यह अनपस्पृक् है, इन्द्र सोमका पान करें और अग्निदेव क्षेम करें और तेरी प्रशंसा करें और तू संग्रामोंमें शत्रुओंको खदेड़ ॥ २७ ॥

समिद्धो अग्निः समिधानो घृतवृद्धो घृताहुतः ।

अभीषाद् विश्वाषाडग्नि सपत्नान् हन्तु ये मम २८

सम्सृद्धः । अग्निः । सम्सृद्धानः । घृतवृद्धः । घृतऽआहुतः ।

अभीषाट् । विश्वाषाट् । अग्निः । सपत्नान् । हन्तु । ये । मम २८

प्रदीप्त हुए अग्निदेव जो घृतसे बड़े हैं और जिनमें घृतकी आहुति दी गई है वे चारों ओरसे शत्रुओंका पराभव करने वाले, सबका पराभव कर सकने वाले हैं वे जो मेरे शत्रु हैं उनका संहार करें ॥ २८ ॥

हन्त्वेनान् प्र दहत्वरियो नः पृतन्यति ।

क्रव्यादाग्निना वयं सपत्नान् प्र दहामसि ॥ २६ ॥

हन्तु । एनान् । प्र । दहतु । अरिः । यः । नः । पृतन्यति ।

क्रव्यऽअदा । अग्निना । वयम् । सऽपत्नान् । प्र । दहामसि २६

अग्निदेव इन सब शत्रुओंको मारें और जो शत्रु सेनाको लेकर हमको मारना चाहता है उसको भस्म कर डालें, हम क्रव्याद् अग्निके द्वारा शत्रुओंको भस्म करते हैं ॥ २६ ॥

अवाचीनानव जहीन्द्र वज्रेण बाहुमान् ।

अथा सपत्नान् मामकानग्नेस्तेजोभिरादिषि ॥ ३० ॥

अवाचीनान् । अव । जहि । इन्द्र । वज्रेण । बाहुऽमान् ।

अथ । सऽपत्नान् । मामकान् । अग्नेः । तेजऽभिः । आ । अदिषि

हे इन्द्र ! आप भुजबलसम्पन्न हैं अतः आप हमारे नीच शत्रुओंका संहार करिये, फिर हे अग्ने ! आप अपनी लपटोंसे मेरे शत्रुओंको भस्म कर डालिये ॥ ३०) (३)

अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मद् व्यथया सजातमुत्पि-
पानं बृहस्पते ।

इन्द्राग्नी मित्रावरुणावधरे पद्यन्तामप्रतिमन्यूयमानाः

अग्ने । सऽपत्नान् । अधरान् । पादय । अस्मत् । व्यथय । सऽ-

जातम् । उत्ऽपिपानम् । बृहस्पते ।

इन्द्राग्नी इति । मित्रावरुणौ । अधरे । पञ्चन्ताम् । अप्रतिऽमन्युयमाना

हे अग्ने ! आप हमारे शत्रुओंको नीचे गिराइये और हे बृहस्पते ! आप ऊपरको बढ़ते हुए समानजन्मा शत्रुको व्यथित करिये, हे इन्द्र अग्नि तथा मित्र और वरुण देवताओं ! जो शत्रु हमारे प्रतिकूल होकर क्रोध कर रहे हैं वे नीचे पड़ जाँय ॥ ३१ ॥

उद्यंस्त्वं देव सूर्य सपत्नानव मे जहि ।

अवैनानश्मना जहि ते यन्त्वधमं तमः ॥ ३२ ॥

उत्ऽयन् । त्वम् । देव । सूर्य । सऽपत्नान् । अव । मे । जहि ।

अव । एनान् । अश्मना । जहि । ते । यन्तु । अधमम् । तमः ३२

हे सूर्यदेव ! उदय होते हुए आप मेरे शत्रुओंका संहार करिये, इनको पत्थरों (ओलों) से मार डालिये, ये मृत्युरूप घोर अंधकारको प्राप्त होजावें ॥ ३२ ॥

वत्सो विराजो वृषभो मतीनामा रुरोह शुक्रपृष्ठोन्तरिक्षम्
घृतेनार्कमभ्यर्चन्ति वत्सं ब्रह्म सन्तं ब्रह्मणा वर्धयन्ति

वत्सः । विऽराजः । वृषभः । मतीनाम् । आ । रुरोह । शुक्रऽपृष्ठः ।

अन्तरिक्षम् ।

घृतेन । अर्कम् । अभि । अर्चन्ति । वत्सम् । ब्रह्म । सन्तम् ।

ब्रह्मणा । वर्धयन्ति ॥ ३३ ॥

विराट्के वत्स, बुद्धियोंकी वर्षा करने वाले शुक्रपृष्ठ सूर्यदेव अन्तरिक्ष पर आरोहण करते हैं, सूर्यरूप वत्सके ब्रह्म होने पर भी पुरुष उसको ब्रह्मसे अर्थात् मन्त्रसे बढ़ाया करते हैं ॥ ३३ ॥

१५८

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

दिवं च रोहं पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं १ सं स्पृशस्व ३४
दिवम् । च । रोह । पृथिवीम् । च । रोह । राष्ट्रम् । च । रोह ।

द्रविणम् । च । रोह ।

प्रजाम् । च । रोह । अमृतम् । च । रोह । रोहितेन । तन्वम् ।

सम् । स्पृशस्व ॥ ३४ ॥

हे राजन् ! आप स्वर्गमें चढ़ें, पृथिवी पर अधिष्ठित रहें, राष्ट्र पर अधिष्ठित रहें और धन पर अधिष्ठित रहें, प्रजाओं पर छत्र-च्छाया करते रहें, अमृत पर अधिष्ठित रहें और सूर्यसे अपने शरीरका स्पर्श करिये ॥ ३४ ॥

ये देवा राष्ट्रभृतोभितो यन्ति सूर्यम् ।

तैष्टे रोहितः संविदानो राष्ट्रं दधातु सुमनस्यमानः ३५

ये । देवाः । राष्ट्रभृतः । अभितः । यन्ति । सूर्यम् ।

तैः । ते । रोहितः । सम्विदानः । राष्ट्रम् । दधातु । सुमन-

स्यमानः ॥ ३५ ॥

जो राष्ट्रका भरण करने वाले राष्ट्रभृत् देवता सूर्यके चारों ओर विचरण करते हैं रोहितदेव उनसे प्रसन्नतापूर्वक आपके विषय में एकमत होकर आपके राष्ट्रको पुष्ट करें ॥ ३५ ॥

उत्त्वा यज्ञा ब्रह्मपूता वहन्त्यध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति ।

तिरः समुद्रमति रोचसेर्णवम् ॥ ३६ ॥

उत् । त्वा । यज्ञाः । ब्रह्मऽपूताः । वहन्ति । अध्वऽगतः । हरयः ।
त्वा । वहन्ति ।

तिरः । समुद्रम् । अति । रोचसे । अर्णवम् ॥ ३६ ॥

हे सूर्यदेव ! मन्त्रपूत यज्ञ आपका वहन करते हैं, और मार्गमें जाने वाले घोड़े आपका वहन करते हैं आप तिरछे होकर समुद्र को परम शोभा प्रदान करते हैं ॥ ३६ ॥

रोहिते द्यावापृथिवी अधि श्रिते वसुजिति गोजिति
संधनाजिति ।

सहस्रं यस्य जनिमानि सप्त च वोचेयं ते नाभिं भुव-
नस्याधि मज्जनि ॥ ३७ ॥

रोहिते । द्यावापृथिवी इति । अधि । श्रिते इति । वसुऽजिति । गोऽ-
जिति । संधनऽजिति ।

सहस्रम् । यस्य । जनिमानि । सप्त । च । वोचेयम् । ते । नाभिम् ।
भुवनस्य । अधि । मज्जनि ॥ ३७ ॥

वसुजित गोजित् संधनजित् रोहितमें द्यावापृथिवी अधिश्रित हैं, जिनके सात सहस्र जन्मों (उदरों) का मैं वर्णन करता हूँ भुवनकी मज्जाके बंधक भी उनहीको कहता हूँ ॥ ३७ ॥

यशा यासि प्रदिशो दिशश्च यशाः पशूनामुत चर्षणी-
नाम् ।

यशाः पृथिव्या अदित्या उपस्थेहं भूयासं सवितेव चारुः

१६०

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

यशाः । यासि । प्रदिशः । दिशः । च । यशाः । पशूनाम् ।

उत । चर्षणीनाम् ।

यशाः । पृथिव्याः । अदित्याः । उपस्थे । अहम् । भूयासम् ।

सविताऽइव । चारुः ॥ ३८ ॥

आप यशसे दिशा और प्रदिशाओंमें जाते हैं और यशसे पशु और मनुष्योंमें विचरण करते हैं, मैं भी यशसे अखण्डनीया पृथिवीकी गोदमें सविता देवताकी समान कमनीय रहूँ ॥ ३८ ॥

अमुत्र सन्निह वेत्थेनः संस्तानि पश्यसि ।

इतः पश्यन्ति रोचनं दिवि सूर्यं विपश्चितम् ॥ ३९ ॥

अमुत्र । सन् । इह । वेत्थ । इतः । सन् । तानि । पश्यसि ।

इतः । पश्यन्ति । रोचनम् । दिवि । सूर्यम् । विपःश्चितम् ३९

आप परलोकमें रहते हुए यहाँके सब वृत्तान्तोंको जानते हैं और यहाँसे तहाँके सबको देखते हैं और प्राणी भी यहाँसे द्यौमें कमनीय विद्वान् सूर्यको देखते हैं ॥ ३९ ॥

देवो देवान् मर्चयस्यन्तश्चरस्यर्णवे ।

समानमग्निमिन्धते तं विदुः कवयः परे ॥ ४० ॥

देवः । देवान् । मर्चयसि । अन्तः । चरसि । अर्णवे ।

समानम् । अग्निम् । इन्धते । तम् । विदुः । कवयः । परे ॥ ४० ॥

आप देवता होकर भी देवताओंको व्यापारमें प्रवृत्त करते हैं और अन्तरिक्षके भीतर विचरण करते हैं, जो पुरुष समान अग्निको प्रदीप्त करते हैं वे श्रेष्ठ चतुर पुरुष उनको जानते हैं ४०

अ॒वः प॒रेण॑ प॒र ए॒ना॒वरेण॑ प॒दा व॒त्सं बिभ्र॑ती गौरु॒द॒स्थात् ।
सा क॒द्रीची॑ कं स्वि॒द॒र्धं प॒रा॒गात् क्व॑ स्वि॒त् सू॒ते न॒हि
यू॒थे अ॒स्मिन् ॥ ४१ ॥

अ॒वः । प॒रेण॑ । प॒रः । ए॒ना । अ॒वरेण॑ । प॒दा । व॒त्सम् । बि॒भ्रती॑ ।
गौः । उ॒त् । अ॒स्थात् ।

सा । क॒द्रीची॑ । कम् । स्वि॒त् । अ॒र्धम् । प॒रा । अ॒गात् । क्व॑ ।
स्वि॒त् । सू॒ते । न॒हि । यू॒थे । अ॒स्मिन् ॥ ४१ ॥

एक पैरसे अन्नको और अपर पैरसे वत्सको धारण करती हुई श्वेतवर्णा गौ (सूर्यकिरण) उठती है वह कद्रीची किसी आधे भागमें जाती है वह कहीं पड़ती है यूथमें नहीं पड़ती है ४१ एकपदी द्विपदी सा चतुष्पद्यष्टापदी नवपदी बभूवुषी । सहस्राक्षरा भुवनस्य पङ्क्तिस्तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति ॥ ४२ ॥

एक॑ऽपदी । द्वि॒पदी॑ । सा । चतुः॑ऽपदी । अ॒ष्टाऽपदी॑ । नव॑ऽपदी ।
ब॒भूवु॑षी ।

सह॑स्रऽअक्षरा । भुव॑नस्य । प॒ङ्क्तिः । तस्याः॑ । समु॒द्राः । अधि॑ ।
वि । क्ष॒रन्ति॑ ॥ ४२ ॥

(यह माध्यमिका किरण ही सब जगत्का निर्माण करती है उसकी रीति यह है, कि—) वह मध्यमके साथ एकत्व को प्राप्त होकर एकपदी होजाती है, मध्यम आदित्यके साथ द्विपदी

होजाती है और दिशाओंके साथ चतुष्पदी होजाती है और अवा-
न्तर दिशाओंके साथ अष्टापदी होजाती है, दिशा विदिशा और
सूर्यमे नवपदी होजाती है और वह बहुतसे जलोंको करने वाली
है, भुवनकी पंक्ति है, उससे मेघ क्षरित होते हैं ॥ ४२ ॥

आ॒रोहन् द्याम॒मृतः प्रा॒व मे वचः ।

उत् त्वा य॒ज्ञा ब्रह्म॑पू॒ता वह॑न्त्यध्व॒गतो हर॑यस्त्वा
वह॑न्ति ॥ ४३ ॥

आ॒रोहन् । द्याम् । अ॒मृतः । प्र । अ॒व । मे । वचः ।

उत् । त्वा । य॒ज्ञाः । ब्रह्म॑पू॒ताः । वह॑न्ति । अध्व॒गतः । हर॑यः ।
त्वा । वह॑न्ति ॥ ४३ ॥

हे सूर्यदेव ! आप अमृत हैं अतः घौमें आरोहण करते हुए मेरे
वचनकी रक्षा करिये, मंत्रपूत यज्ञ आपका वहन करते हैं और
मार्गमें चलने वाले घोड़े आपका वहन करते हैं ॥ ४३ ॥

वेद॑ तत् ते॒ अमर्त्य॑ यत् त॒ आक्रम॑णं दि॒वि ।

यत् ते॒ सध॑स्थं पर॒मे व्यो॑मन् ॥ ४४ ॥

वेद॑ । तत् । ते॒ । अ॒मर्त्य॑ । यत् । ते॒ । आ॒क्रम॑णम् । दि॒वि ।

यत् । ते॒ । सध॑स्थम् । पर॒मे । वि॒ओमन् ॥ ४४ ॥

हे अमर्त्य सूर्यदेव ! आपका जो घौमें विचरण करना है और
परम व्योममें उपासकोंके साथ रहनेका जो स्थान है उसको मैं
जानता हूँ ॥ ४४ ॥

सूर्यो॑ द्यां सूर्यः पृथि॒वी सूर्य॑ आपो॒ति पश्य॑ति ।

सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥ ४५ ॥

सूर्यः । द्याम् । सूर्यः । पृथिवीम् । सूर्यः । आपः । अति । पश्यति ।

सूर्यः । भूतस्य । एकम् । चक्षुः । आ । रुरोह । दिवम् । महीम् ॥

सूर्य ग्रहलोकको देखते हैं, सूर्य पृथ्वीलोकके साक्षी हैं और सूर्य जलके भी साक्षी हैं, सूर्यदेव प्राणिमात्रके असाधारण नेत्र हैं वही द्यौ और मही पर आरोहण करते हैं ॥ ४५ ॥

उर्वीरासन् परिधयो वेदिभूमिरकल्पत ।

तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्नसं च रोहितः ॥ ४६ ॥

उर्वीः । आसन् । परिऽधयः । वेदिः । भूमिः । अकल्पत ।

तत्र । एतौ । अग्नी इति । आ । अधत्त । हिमम् । घ्नसम् । च ।

रोहितः ॥ ४६ ॥

उर्विये परिधिये बनीं और भूमि वेदीरूपमें कल्पित हुई तहाँ रोहितने इन अग्नियोंको और हिम तथा दिनको स्थापित किया है ४६

हिमं घ्नसं चाधाय यूपान् कृत्वा पर्वतान् ।

वर्षाज्यावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४७ ॥

हिमम् । घ्नसम् । च । आऽधाय । यूपान् । कृत्वा । पर्वतान् ।

वर्षाऽज्यौ । अग्नी इति । ईजाते इति । रोहितस्य । स्वऽविदः ४७

सूर्यके स्वर्गको पाने वाले पुरुष हिम और दिनका आधान करके तथा पर्वतोंको यूप बना कर वर्षाज्य अग्निकी पूजा करते थे ४७

स्वर्विदो रोहितस्य ब्रह्मणाग्निः समिध्यते ।

तस्माद् घंसस्तस्माद्धिमस्तस्माद् यज्ञो जायत ॥ ४८ ॥

स्वःऽविदः । रोहितस्य । ब्रह्मणा । अग्निः । सम् । इध्यते ।

तस्मात् । घंसः । तस्मात् । हिमः । तस्मात् । यज्ञः । अजायत ४८

स्वर्गप्रापक रोहितके मंत्रसे अग्निको प्रदीप्त किया जाता है, उसी से दिन हिम और यज्ञ प्रकट हुआ है ॥ ४८ ॥

ब्रह्मणाग्नी वावृधानौ ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ ।

ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ४९ ॥

ब्रह्मणा । अग्नी इति । वृधानौ । ब्रह्मवृद्धौ । ब्रह्मऽआहुतौ ।

ब्रह्मऽइद्धौ । अग्नी इति । ईजाते इति । रोहितस्य । स्वःऽविदः ४९

सूर्यके स्वर्गको पाना चाहने वाले पुरुष मंत्रसे आहुत और मंत्र से बढ़े हुए अग्नियोंको मन्त्रसे बढ़ाते हुए उन मन्त्रप्रज्वलित अग्नियोंकी पूजा करते हैं ॥ ४९ ॥

सत्ये अन्यः समाहितोऽस्वः अन्यः समिध्यते ।

ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५० ॥

सत्ये । अन्यः । सम्ऽआहितः । अप्सु । अन्यः । सम् । इध्यते । ०

सत्यमें अन्य प्रतिष्ठित है और जलमें दूसरी अग्निको प्रदीप्त किया जाता है सूर्यसम्बन्धी स्वर्गको पाना चाहने वालोंने उन मंत्र-समृद्ध अग्नियोंकी पूजाकी थी ॥ ५० ॥ (५)

यं वातः परि शुभमिति यं वेन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।

ब्रह्मेद्धावग्नी ईजाते रोहितस्य स्वर्विदः ॥ ५१ ॥

यम् । वातः । परिऽशुम्भति । यम् । वा । इन्द्रः । ब्रह्मणः । पतिः ।

ब्रह्मऽइन्द्रौ । अग्नी इति । ईजाते इति । रोहितस्य । स्वऽविदः ५१

वायु जिसको शोभित करना चाहता है इन्द्र और ब्रह्मणस्पति
जिसको सुशोभित करना चाहते हैं ऐसे पुरुषोंका समूह ही सूर्य
के स्वर्गलोकको पानेके लिये मंत्रप्रदीप्त अग्नियोंकी पूजा करते हैं ५१
वेदिं भूमिं कल्पयित्वा दिवं कृत्वा दक्षिणाम् ।

घंसं तदग्निं कृत्वा चकार विश्वमात्मन्वद् वर्षेणाज्येन
रोहितः ॥ ५२ ॥

वेदिम् । भूमिम् । कल्पयित्वा । दिवम् । कृत्वा । दक्षिणाम् ।

घंसम् । तत् । अग्निम् । कृत्वा । चकार । विश्वम् । आत्मन्वत् ।

वर्षेण । आज्येन । रोहितः ॥ ५२ ॥

रोहितने भूमिको वेदि बनाकर और द्यौको दक्षिणा बना कर
तथा दिनको अग्नि बनाकर वर्षारूपी घृतसे विश्वको आत्मन्वद्
कर लिया है ॥ ५२ ॥

वर्षमाज्यं घंसो अग्निर्वेदिभूमिरकल्पत ।

तत्रैतान् पर्वतानग्निर्गीर्भिरूर्ध्वा अकल्पयत् ॥ ५३ ॥

वर्षम् । आज्यम् । घंसः । अग्निः । वेदिः । भूमिः । अकल्पत ।

तत्र । एतान् । पर्वतान् । अग्निः । गीऽभिः । ऊर्ध्वान् । अकल्पयत्

वर्षाको घृत, दिनको अग्नि और भूमिको वेदि बनाया तहाँ
अग्निने स्तुतियोंके द्वारा इन पर्वतोंको ऊँचा बनाया ॥ ५३ ॥

१६६

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

गी॒र्भि॒रु॒र्ध्वान् क॒ल्पयित्वा॒ रोहि॑तो भू॒मि॑मब्रवीत् ।

त्वयी॑दं सर्वं जायतां यत् भू॒तं यच्च॑ भा॒व्यम् ॥ ५४ ॥

गीऽभिः । ऊ॒र्ध्वान् । क॒ल्पयित्वा । रोहि॑तः । भू॒मिम् । अब्र॒वीत् ।

त्वयि॑ । इ॒दम् । सर्व॑म् । जा॒यता॑म् । यत् । भू॒तम् । यत् । च ।

भा॒व्यम् ॥ ५४ ॥

स्तुतियोंसे ऊपरको बनाकर रोहितने भूमिसे कहा, कि-जो भूत है और होने वाला है यह सब तुझमें उत्पन्न होवे ॥ ५४ ॥

स य॒ज्ञः प्र॒थमो॑ भू॒तो भ॒व्यो॑ अजायत ।

तस्मा॑द्ध ज॒ज्ञ इ॒दं सर्वं॑ यत् किं चे॒दं वि॒रोच॑ते रोहि॑तेन

ऋषि॑णाभू॒तम् ॥ ५५ ॥

सः । य॒ज्ञः । प्र॒थमः । भू॒तः । भ॒व्यः । अजा॒यत ।

तस्मा॑त् । ह । ज॒ज्ञे । इ॒दम् । सर्व॑म् । यत् । किम् । च । इ॒दम् ।

वि॒रोच॑ते । रोहि॑तेन । ऋषि॑णा । आ॒भू॒तम् ॥ ५५ ॥

वह यज्ञ पहिले भूत भाव्यके रूपमें प्रकट हुआ उससे यह जो कुछ रोचमान है यह प्रकट हुआ, इसको द्रष्टा रोहितने ही पुष्ट किया है ॥ ५५ ॥

यश्च॑ गां प॒दा स्फुर॑ति प्र॒त्यङ् सूर्य॑ च मे॒हति॑ ।

तस्य॑ वृश्वा॒मि ते॒ मूलं॑ न च्छायां॑ क॒रवो॑परम् ॥ ५६ ॥

यः । च । गा॒म् । प॒दा । स्फुर॑ति । प्र॒त्यङ् । सूर्य॑म् । च । मे॒हति॑ ।

तस्य । वृश्चामि । ते । मूलम् । न । छायां । करवः । अपरम् ५६

जो पैरसे गौका स्पर्श करता है और सूर्यके प्रति मूत्रोत्सर्ग करता है उसकी मैं जड़को काटता हूँ और उसके ऊपर मैं छाया नहीं कर सकता ॥ ५६ ॥

यो माभिच्छायमत्येपि मां चाग्निं चान्तरा ।

तस्य वृश्चामि ते मूलं न छायां करवोपरम् ॥ ५७ ॥

यः । मा । अभिच्छायम् । अतिऽएषि । माम् । च । अग्निम् ।
च । अन्तरा ।

तस्य । वृश्चामि । ते । मूलम् । न । छायां । करवः । अपरम् ।

जो मेरी छायाका अतिक्रमण करता है और मेरे तथा अग्निके बीचमेंको निकलता है, उसकी जड़को मैं काट डालूँगा उसके ऊपर मैं छाया नहीं कर सकूँगा ॥ ५७ ॥

यो अथ देव सूर्य त्वां च मां चान्तरायति ।

दुःस्वप्न्यं तस्मिन्मलं दुरितानि च मृज्महे ॥ ५८ ॥

यः । अथ । देव । सूर्य । त्वाम् । च । माम् । च । अन्तरा । अयति ।

दुःस्वप्न्यम् । तस्मिन् । शमलम् । दुःइतानि । च । मृज्महे ५८

हे सूर्यदेव ! जो इस समय मेरे आपके बीचमें विघ्न डालना चाहता है हम उसमें दुःस्वप्न पाप और दुष्कर्मोंको डालते हैं ५८

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।

मान्त स्थुर्नो अरातयः ॥ ५९ ॥

१६८

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

मा । प्र । गा॒म । प॒थः । व॒यम् । गा । य॒ज्ञात् । इ॒न्द्र । सो॒मिनः ।

मा । अ॒न्तः । स्तुः । नः । अ॒रा॒तयः ॥ ५६ ॥

हे इन्द्र ! हम सोम जिसमें प्रयुक्त होता है उस यज्ञपद्धतिसे दूर न जावें और शत्रु हमारे देशके भीतर स्थित न रहें ॥ ५६ ॥

यो य॒ज्ञस्य॑ प्र॒साध॑न॒स्तन्तु॑र्दे॒वेष्व॑त॒तः ।

तमाहु॑तमशीमहि ॥ ६० ॥

यः । य॒ज्ञस्य॑ । प्र॒साध॑नः । तन्तुः । दे॒वेषु॑ । आ॒त॒तः ।

तम् । आ॒हु॒तम् । अ॒शीम॒हि ॥ ६० ॥

प्रथमे॒नुवा॑के प्रथमं सूक्तम् ॥

इति प्रथमो॒नुवा॑कः ॥

जो यज्ञका प्रसाधन तन्तु देवताओंमें विस्तृत हैं उस आहुत (यज्ञ) को हम प्राप्त करें ॥ ६० ॥ (६)

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५०२)

प्रथम अनुवाक समाप्त

“उदस्य केतवः” इति सवितृदेवताकम् ॥

याज्ञिका वक्ष्यमाणप्रकारेण विनियुञ्जन्ति ।

“उदस्य केतवः” इत्यनुवाकस्य सलिलगणे पाठः । अतस्तस्य गणप्रयुक्तो विनियोगो द्रष्टव्यः [१. ५] ॥

तथा उपनयने आयुरभिवृद्धयर्थम् अनेनानुवाकेन माणवकस्त्रिकालम् आदित्यं उपतिष्ठेत । सूत्रितं हि । “उदस्य केतवः [१३. २] मूर्धाहम् [१६. ३] विषासहिम् [१७. १] इत्युच्यन्तम् उपतिष्ठते मध्यंदिनेऽस्तं यन्तम्” इति । कौ० ७. ६ ॥

तथा चातुर्मास्ये साकमेधपर्वणि पित्र्येष्टौ जातायाम् आदित्यो-

पस्थाने इदं विनियुक्तम् । तद् उक्तं वैताने । “प्राञ्चोभ्युत्क्रम्यो-
दस्य केतव इत्यादित्यमुपतिष्ठन्ते” इति । वै० २. ५ ॥

“उदस्य केतवः” यह सविता देवताका सूक्त है । याज्ञिक पुरुष
इसका इस प्रकार विनियोग करते हैं, कि—

“उदस्य केतवः” अनुवाकका सलिलगणमें पाठ है अतः इसका
गणके अनुसार विनियोग करना चाहिये । इसका अधिक विस्तार
प्रथम काण्डके पञ्चम सूक्तमें है ।

तथा बालक उपनयनमें आयुकी वृद्धिके लिये इस अनुवाकसे
तीनों कालमें सूर्यका उपस्थान करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण
भी है, कि—‘उदस्य केतवः (१३ । २) मूर्धाहम् (१६ । ३)
विषासहिम् (१७ । १) इत्युद्यन्तं आदित्यं उपतिष्ठते मध्यन्दिनेऽस्तं
यन्तम् ।’ (कौशिकसूत्र ७ । ६) ॥

तथा चातुर्मास्यके साकमेधकर्ममें पित्र्येष्टिके होने पर जो
आदित्योपस्थान होता है उसमें इसका विनियोग होता है । इसी
बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“प्राञ्चोभ्युत्क्रम्योदस्य केतव
इत्यादित्यमुपतिष्ठन्ते” (वैतानसूत्र २ । ५) ॥

उदस्य केतवो दिवि शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।

आदित्यस्य नृचक्षसो महिब्रतस्य मीढुषः ॥ १ ॥

उत् । अस्य । केतवः । दिवि । शुक्राः । भ्राजन्तः । ईरते ।

आदित्यस्य । नृचक्षसः । महिब्रतस्य । मीढुषः ॥ १ ॥

महिमामय कर्म वाले, सेचक, मनुष्योंके साक्षी आदित्यदेवकी
निर्मल किरणें आकाशमें दमकती रहती हैं और इनको ऊपरको
चढ़ाती हैं ॥ १ ॥

१७० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

दिशां प्रज्ञानां स्वरयन्तमर्चिषां सुपक्षमाशुं पतयन्त-
मर्णवे ।

स्तवामसूर्यं भुवनस्य गोपां यो रश्मिभिर्दिश आभाति
सर्वाः ॥ २ ॥

दिशाम् । प्रज्ञानाम् । स्वरयन्तम् । अर्चिषां । सुपक्षम् । आशुम् ।
पतयन्तम् । अर्णवे ।

स्तवाम् । सूर्यम् । भुवनस्य । गोपाम् । यः । रश्मिभिः । दिशः ।
आभाति । सर्वाः ॥ २ ॥

अपनी कान्तिसे (पूर्व पश्चिम आदि) ज्ञान वाली दिशाओंमें
(प्राणियोंसे) शब्द कराने वाले, सुन्दर पर वाले (अरुण)
को समुद्रमें प्रतिष्ठित करने वाले और जो अपनी किरणोंसे सब
दिशाओंको प्रकाशित करते हैं उन भुवनरक्षक सूर्यदेवकी हम
स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधया यासि शीभं नानारूपे अहनी
कर्षि मायया ।

तदादित्य महि तत् ते महि श्रवो यदेको विश्वं परि भूम
जायसे ॥ ३ ॥

यत् । प्राङ् । प्रत्यङ् । स्वधया । यासि । शीभम् । नानारूपे इति
नानारूपे । अहनी इति । कर्षि । मायया ।

तत् । आ॒दि॒त्य । म॒हि । तत् । ते । म॒हि । श्र॒वः । यत् । ए॒कः ।

वि॒श्वम् । परि । भू॒म् । जा॒य॒से ॥ ३ ॥

आप अन्नमय हविके द्वारा पूर्व और पश्चिम दिशामें शीघ्रता से जाते हैं और अपनी मायासे दिन रातको अनेक रूपों वाले करते हैं, हे आदित्य ! आपका यह महान् प्रशंसनीय यश है जो आप अकेले ही विश्वमें सबसे महान् रहते हैं ॥ ३ ॥

वि॒प॒श्चितं॑ तर॒णिं॑ आ॒ज॒मा॒नं॑ व॒ह॒न्ति॒ यं॑ ह॒रि॒तः॑ स॒प्त॒ ब॒ह्वीः॑ ।
सु॒ताद् य॒म॒त्रि॒र्दिव॑मु॒न्नि॒नाय॑ तं त्वां प॒श्य॒न्ति॒ परि॒या॒न्त॒मा॒जिम् ॥ ४ ॥

वि॒पः॑ऽचितम् । तर॒णिम् । आ॒ज॒मा॒नम् । व॒ह॒न्ति॒ । यम् । ह॒रि॒तः॑ ।
स॒प्त । ब॒ह्वीः॑ ।

सु॒तात् । यम् । अ॒त्रिः॑ । दि॒वम् । उ॒त्ऽनि॒नाय॑ । तम् । त्वा ।
प॒श्य॒न्ति॒ । परि॒ऽया॒न्तम् । आ॒जिम् ॥ ४ ॥

विद्वान् भवसागरकी नौकारूप दमकते हुए जिन सूर्यदेवको सात घोड़े वहन करते हैं, समुद्रसे जिनको आधिदैविक आध्यात्मिक और आधिभौतिक—इन तीनों दुःखोंसे रहित ब्रह्म द्यौमें ऊपरको लाता है ऐसे आपको हम आजिमें जाता हुआ देखते हैं ॥ ४ ॥

मा त्वां द॒भन् परि॒यान्त॑मा॒जिं स्व॒स्ति दु॒र्गाँ अ॒तिं

या॒हि शी॒भम् ।

दि॒वं च॑ सू॒र्यं पृ॒थि॒वीं च॑ दे॒वीम॑हो॒रा॒त्रे वि॒मि॒मा॒नो
य॒दे॒षि ॥ ५ ॥

मा । त्वा । द॒भन् । परि॒श्यान्त॑म् । आ॒जिम् । स्व॒स्ति । दुः॒श्यान् ।

अति । या॒हि । शी॒भम् ।

दि॒वम् । च । सूर्य॑ । पृ॒थि॒वीम् । च । दे॒वीम् । अ॒हो॒रा॒त्रे इति॑ ।

वि॒मि॒मानः । यत् । ए॒षि ॥ ५ ॥

हे सूर्य ! आप जो द्यौ और देवी पृथिवीमें दिन रातका मान करते हुए चलते हैं ऐसे आपको आजमें जाने पर (शत्रु) न दबा सकें आप शीघ्रतासे कल्याणपूर्वक दुर्गम स्थलोंको लाँच जाइये ५ स्वस्ति ते सूर्य चरसे रथाय येनोभावन्तौ परियासि

सद्यः ।

यं ते वह॑न्ति ह॒रितो॑ वहि॑ष्ठाः श॒तम॑श्वा यदि॑ वा स॒प्त
ब॒ह्वीः ॥ ६ ॥

स्व॒स्ति । ते । सूर्य॑ । च॒रसे॑ । रथा॑य । येन॑ । उ॒भौ । अ॒न्तौ ।

परि॒श्या॑सि । स॒द्यः ।

यम् । ते । वह॑न्ति । ह॒रितः॑ । वहि॑ष्ठाः । श॒तम् । अ॒श्वाः । यदि॑ ।

वा । स॒प्त । ब॒ह्वीः ॥ ६ ॥

हे सूर्यदेव ! जिस रथसे आप दोनों (समुद्रोंके) अन्तोंको शीघ्र ही प्राप्त होते हैं उस आपके विचरण करने वाले रथका कल्याण हो और आपके जो भारवहन करनेमें समर्थ सौ, सात वा बहुतसे हरित घोड़े आपका वहन करते हैं उनके लिये भी स्वस्ति हो ॥ ६ ॥

सुखं सूर्यं रथमंशुमन्तं स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम्
 यं ते वहन्ति हरितो वहिष्ठाः शतमश्वा यदि वा सप्त बहीः
 सुखम् । सूर्यं । रथम् । अंशुमन्तम् । स्योनम् । सुवह्निम् । अधि ।
 तिष्ठ । वाजिनम् ।

यम् । ते । वहन्ति । हरितः । वहिष्ठाः । शतम् । अश्वाः । यदि ।
 वा । सप्त । बहीः ॥ ७ ॥

हे सूर्यदेव ! आप सुखस्वरूप सुखदायक सुन्दर अग्निकी समान
 दमक वाले वेगवाले रथ पर सवार होजिये उस आपके रथको भार
 वहन करनेमें श्रेष्ठ सात सौ वा बहुतसे घोड़े खेंचते हैं ॥ ७ ॥

सप्त सूर्यो हरितो यातवे रथे हिरण्यत्वचसो बृहतीर्युक्त
 अमोचि शुक्रो रजसः परस्ताद् विधूय देवस्तमो दिव-
 मारुहत् ॥ ८ ॥

सप्त । सूर्यः । हरितः । यातवे । रथे । हिरण्यत्वचसः । बृहतीः ।
 अयुक्त ।

अमोचि । शुक्रः । रजसः । परस्तात् । विधूय । देवः । तमः ।
 दिवम् । आ । अरुहत् ॥ ८ ॥

निर्मल सूर्यदेव गमन करनेके लिये सुवर्णकी समान त्वचा
 वाले सात बड़े २ अश्वोंको रथमें जोतते हैं और अंधकारको दूर
 करके लोकसे परे उन घोड़ोंको छोड़ देते हैं और स्वर्गमें प्रवेश
 कर जाते हैं ॥ ८ ॥

उत् के॒तुना॑ बृ॒हता॑ दे॒व आ॒गन्नु॒पावृ॒क् तमो॒भि

ज्योति॑र॒श्रैत् ।

दि॒व्यः सु॒पर्णः॑ स॒ वी॒रो व्य॒ख्य॒ददि॑तेः पु॒त्रो भुव॑नानि
वि॒श्वा ॥ ६ ॥

उत् । के॒तुना॑ । बृ॒हता॑ । दे॒वः । आ । अ॒गन् । अप । अ॒वृ॒क् ।
तमः । अ॒भि । ज्योति॑ः । अ॒श्रैत् ।

दि॒व्यः । सु॒ऽपर्णः॑ । सः । वी॒रः । वि । अ॒ख्यत् । अदि॑तेः । पु॒त्रः ।
भुव॑नानि । वि॒श्वा ॥ ६ ॥

अपने ऊपरको जाने वाले महान्केतुके द्वारा सूर्यदेव आरहे हैं अन्धकारको दूर कर ज्योतिका आश्रय लेरहे हैं वह अदितिका पुत्र दिव्य सुपर्ण (अरुण) सब लोकोंमें प्रसिद्ध होरहा है ॥ ६ ॥

उ॒द्यन् र॒श्मीना॑ त॒नुषे॑ वि॒श्वा रूपाणि॑ पु॒ष्यसि॑ ।

उ॒भा स॒मुद्रौ॑ क्र॒तुना॑ वि॒ भा॒सि स॒र्वाल्लो॒कान् परि॒-
भूर्भा॑ज॒मानः॑ ॥ १० ॥

उ॒त्स्यन् । । र॒श्मीन् । आ । त॒नुषे॑ । वि॒श्वा । रूपा॑णि । पु॒ष्यसि॑ ।

उ॒भा । स॒मुद्रौ॑ । क्र॒तुना॑ । वि । भा॒सि । स॒र्वान् । लो॒कान् । परि॒-
भूः । आ॒ज॒मानः॑ ॥ १० ॥

हे सूर्यदेव ! आप उदय होते समय किरणोंको फैलाते हैं और सब रूपवान् पदार्थोंको पुष्ट करते हैं और दमकते हुए आप अपने गमनसे दोनों समुद्रोंको और सब लोकोंको दमकाते हैं ॥ १० ॥ (७)

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोर्णवम्
विश्वान्यो भुवना विचष्टे हरण्यैरन्यं हरितो वहन्ति
पूर्वऽअपरम् । चरतः । मायया । एतौ । शिशू इति । क्रीडन्तौ ।

परि । यातः । अर्णवम् ।

विश्वा । अन्यः । भुवना । विऽचष्टे । हरण्यैः । अन्यम् । हरितः ।
वहन्ति ॥ ११ ॥

अपनी मायासे शिशुकी समान क्रीड़ा करने वाले ये दोनों
आगे पीछे समुद्रकी ओर चले जाते हैं, इनमें एक सब भुवनोंको
प्रकाशित करता है और दूसरेको घोड़े अपने हिरण्यमय शरीरों
से वहन करते हैं ॥ ११ ॥

दिवि त्वात्त्रिरधारयत् सूर्या मासाय कर्तवे ।

स एषि सुधृतस्तपन् विश्वा भूतावचाकशत् ॥ १२ ॥

दिवि । त्वा । अत्रिः । अधारयत् । सूर्य । मासाय । कर्तवे ।

सः । एषि । सुधृतः । तपन् । विश्वा । भूता । अवऽचाकशत् १२

हे सूर्य ! आधिदैविक आध्यात्मिक और आधिभौतिक-इन
तीनों प्रकारके दुःखसे रहित अत्रिने आपको मास-समूहको करने
के लिये घौमें स्थापित किया है, वही भली प्रकार धारण किये
हुए आप तपते हुए आरहे हैं और सकल भूतोंको प्रकाशित
करते रहते हैं ॥ १२ ॥

उभावन्तौ समर्षसि वत्सः संमातराविव ।

नन्वे॑त॒दितः॑ पु॒रा ब्र॒ह्म दे॒वा अ॒मी वि॒दुः ॥ १३ ॥

उ॒भौ । अ॒न्तौ । स॒म् । अ॒र्ष॒सि । व॒त्सः । स॒मा॒तरौऽइ॒व ।

न॒नु । ए॒तत् । इ॒तः । पु॒रा । ब्र॒ह्म । दे॒वाः । अ॒मी इति॑ । वि॒दुः १३

जैसे बालक माता पिताके पास जाता है ऐसे ही आप दोनों समुद्रोंके पास जाते हैं, ये देवता यह समझते हैं कि—यही सनातन ब्रह्म हैं ॥ १३ ॥

यत् स॒मु॒द्रम॒नु श्रि॒तं तत् सि॒षा॒सति॑ सूर्यः ।

अ॒ध्वा॒स्य वि॒ततो॑ म॒हान् पू॒र्वश्चा॒परश्च॒ यः ॥ १४ ॥

यत् । स॒मु॒द्रम् । अ॒नु । श्रि॒तम् । तत् । सि॒षा॒सति॑ । सूर्यः ।

अ॒ध्वा । अ॒स्य । वि॒त॒तः । म॒हान् । पू॒र्वः । च । अ॒परः । च । यः १४

जो मार्ग समुद्र तक चला गया है सूर्यदेव (प्रकाश फैला कर लोकोंके लिये उसीका) दान करते हैं, इनका जो पूर्वापर मार्ग है वह महान् है और विस्तृत है ॥ १४ ॥

तं स॒मा॒प्नोति॑ जू॒तिभि॒स्ततो॑ ना॒प चि॒कित्स॑ति ।

ते॒नामृ॒तस्य॑ भ॒क्षं दे॒वानां॑ ना॒व रु॒न्धते ॥ १५ ॥

तम् । स॒म् । आ॒प्नोति॑ । जू॒तिभिः॑ । ततः॑ । न । अ॒प । चि॒कित्स॑ति ।

तेन॑ । अ॒मृ॒तस्य॑ । भ॒क्षम् । दे॒वाना॑म् । न । अ॒व । रु॒न्धते ॥ १५ ॥

उस मार्गको आप शीघ्रतासे गमन करने वाले घोड़ोंके द्वारा प्राप्त होते हैं आप उससे असावधान नहीं रहते हैं उसके द्वारा देवताओं के अमृतके भक्षणको भी नहीं रोकते हैं ॥ १५ ॥

उदु॑ त्यं॒ जा॒तेवे॑दसं॒ दे॒वं॒ वह॑न्ति के॒तवः॑ ।

दृ॒शे वि॒श्वाय॑ सूर्य॒म् ॥ १६ ॥

उत् । ऊं॑ इति । त्यम् । जा॒तऽवे॑दसम् । दे॒वम् । वह॑न्ति । के॒तवः॑ ।

दृ॒शे । वि॒श्वाय॑ । सूर्य॒म् ॥ १६ ॥

किरणों वा अश्व, सब उत्पन्न होने वालोंको जानने वाले सूर्य-
देवको, सबको दिखानेके लिये ऊपरको लाती हैं ॥ १६ ॥

अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा यन्त्य॒क्तुभिः॑ ।

सूरा॑य वि॒श्वचक्ष॑से ॥ १७ ॥

अप॒ । त्ये । ता॒यवः॑ । यथा॒ । नक्ष॑त्रा । यन्ति॒ । अ॒क्तुऽभिः॑ ।

सूरा॑य । वि॒श्वऽचक्ष॑से ॥ १७ ॥

जैसे चोर रातके साथ ही साथ भाग जाते हैं ऐसे ही सबके
द्रष्टा सूर्यके कारण नक्षत्र रातके साथ २ भाग जाते हैं ॥ १७ ॥

अदृ॑श्न्नस्य के॒तवो॒ वि र॒श्मयो॒ जनाँ॑ अनु ।

भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा ॥ १८ ॥

अदृ॑श्न् । अ॒स्य । के॒तवः॑ । वि । र॒श्मयः॑ । जना॑न् । अनु ।

भ्राज॑न्तः । अ॒ग्नयः॑ । यथा ॥ १८ ॥

अग्निकी समान दमकती हुई इन सूर्यदेवकी ज्ञानदाता किरणों
प्रत्येक पुरुषोंके पीछे दीखती हैं ॥ १८ ॥

तर॒णिर्वि॒श्वदर्श॑तो ज्योति॒ष्कृदा॑सि सूर्य ।

१७८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

विश्वमा भासि रोचन ॥ १६ ॥

तरणिः । विश्वऽदर्शतः । ज्योतिऽकृत् । असि । सूर्य ।

विश्वम् । आ । भासि । रोचन ॥ १६ ॥

हे कमनीय सूर्यदेव ! आप (संसारसागरकी) नौकारूप हैं सबको देखने वाले और ज्योति देने वाले हैं आप सबको प्रकाशित करते हैं ॥ १६ ॥

प्रत्यङ् देवाना विशः प्रत्यङ् दुदेषि मानुषीः ।

प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ २० ॥

प्रत्यङ् । देवानाम् । विशः । प्रत्यङ् । उत् । एषि । मानुषीः ।

प्रत्यङ् । विश्वम् । स्वः । दृशे ॥ २० ॥

हे सूर्यदेव ! आप प्रत्येक मानुषी और दैवीप्रजाको सामने रख कर उनके सामने उदित होते हैं प्रत्येक पुरुषको देखनेके लिये उसको सामने लाकर उदित होते हैं ॥ २० ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां अनु ।

त्वं वरुण पश्यसि ॥ २१ ॥

येन । पावक । चक्षसा । भुरण्यन्तम् । जनान् । अनु ।

त्वम् । वरुण । पश्यसि ॥ २१ ॥

हे पवित्र करने वाले पापनिवारक सूर्यदेव ! पूर्वके पुण्यात्मा पुरुषोंसे आचरित मार्गमें शीघ्रतासे जाते हुए पुण्यात्मा पुरुषको आप जिस अनुग्राहिकादृष्टिसे देखते हैं (उस दृष्टिकी हम स्तुति करते हैं) ॥ २१ ॥

वि द्याम॑षि रज॑स्पृ॒थ्वह॑र्मि॒मानो अ॒क्तुभिः॑ ।

पश्य॑न् जन्मा॑नि सूर्य॑ ॥ २२ ॥

वि । द्याम् । ए॒षि । रजः॑ । पृ॒थु । अ॒हः । मि॒मानः । अ॒क्तुऽभिः॑ ।

पश्य॑न् । जन्मा॑नि । सूर्य॑ ॥ २२ ॥

हे सूर्यदेव ! आप उत्पन्न हुए सब पाणियों पर अनुग्रह करने के लिये उनको देखते हुए तथा रात्रियोंसहित दिनका निर्माण करते हुए द्युलोक भूलोक और विशाल अन्तरिक्षलोकमें अनेक प्रकारसे विचरण करते हैं ॥ २२ ॥

सप्त॑ त्वा॑ ह॒रितो॑ रथे॒ वह॑न्ति देव सूर्य॑ ।

शोचि॑ष्केशं विच॑क्ष॒णम् ॥ २३ ॥

सप्त॑ । त्वा॑ ! ह॒रितः॑ । रथे॑ । वह॑न्ति । दे॒व । सूर्य॑ ।

शोचि॑ ऽकेशम् । वि॒च॒क्ष॒णम् ॥ २३ ॥

हे सूर्यदेव ! दमकती हुई किरणों वाले सूक्ष्मद्रष्टा रथमें आपको सात घोड़े सवारी देते हैं ॥ २३ ॥

अयु॑क्त सप्त॑ शु॒न्ध्यु॒वः सूर॑ो रथ॑स्य न॒प्त्यः॑ ।

ताभि॑र्याति॒ स्वयु॑क्तिभिः ॥ २४ ॥

अयु॑क्त । सप्त॑ । शु॒न्ध्यु॒वः । सूरः॑ । रथ॑स्य । न॒प्त्यः॑ ।

ताभिः॑ । या॒ति । स्वयु॑क्तिऽभिः ॥ २४ ॥

सूर्यदेवने सात पवित्र करने वाले रत्नक घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ लिया है और वह उनसे अपनी युक्तियोंके द्वारा चल रहे हैं ॥ २४ ॥

१८० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

रोहि॒तो दि॒व॒मा॒रु॒ह॒त् तप॑सा तप॒स्वी ।

स योनि॑मैति॒ स उ॑ जायते॒ पुनः॑ स दे॒वाना॑मधिपति॒-
ब॒भूव ॥ २५ ॥

रोहि॑तः । दि॒व॒म् । आ । अ॒रु॒ह॒त् । तप॑सा । तप॒स्वी ।

सः । योनि॑म् । आ । ए॒ति॒ । सः । ऊँ इति॑ । जा॒य॒ते॒ । पुनः॑ । सः ।

दे॒वाना॑म् । अधि॑पतिः । ब॒भूव ॥ २५ ॥

तपस्वी रोहित सूर्यदेव अपने तपसे द्यौमें आरोहण करते हैं, वह योनिको प्राप्त होते हैं और वही फिर प्रकट होते हैं और वह (सूर्य वा आत्मा) देवताओंके अधिपति हुए थे ॥ २५ ॥

यो वि॒श्वच॑र्षणि॒रुन॑ वि॒श्वतो॑मुखो यो वि॒श्वत॑स्पाणि॒-
रुन॑ वि॒श्वत॑स्पृथः ।

सं बा॒हुभ्यां॑ भ॒रति॑ सं प॒तत्रै॑र्द्यावापृथि॒वी ज॒नय॑न् दे॒व एकः॑

यः । वि॒श्वऽच॑र्षणिः । उ॒त । वि॒श्वतः॑ऽमुखः । यः । वि॒श्वतः॑ऽपाणिः ।

उ॒त । वि॒श्वतः॑ऽपृथः ।

सम् । बा॒हुऽभ्या॑म् । भ॒रति॑ । सम् । प॒तत्रैः॑ । द्यावापृथि॒वी इति॑ ।

ज॒नय॑न् । दे॒वः । एकः॑ ॥ २६ ॥

जो सबके द्रष्टा हैं और अनेक मुख वाले हैं तथा जिनके हाथ चारों ओर हैं और जो विश्वतस्पृथ हैं वह असाधारण देव अपनी पतनशील किरणोंसे द्यावापृथिवीको प्रादुर्भूत करते हुए अपनी भुजाओंसे सबका भरण करते हैं ॥ २६ ॥

एकपाद् द्विपदो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति
पश्चात् ।

द्विपाद् षट्पदो भूयो वि चक्रमे त एकपदस्तन्वं १
समासते ॥ २७ ॥

एकऽपात् । द्विऽपदः । भूयः । वि । चक्रमे । द्विऽपात् । त्रिऽपादम् ।
अभि । एति । पश्चात् ।

द्विऽपात् । ह । षट्ऽपदः । भूयः । वि । चक्रमे । ते । एकऽपदः ।
तन्वम् । सम् । आसते ॥ २७ ॥

एकपाद् द्विपदोंमें आक्रमण करता है, फिर द्विपाद् त्रिपदोंको प्राप्त होता है, द्विपाद् फिर षट्पदोंमें विक्रमण करता है, वे एक-पदके तन्व (ब्रह्मपद) की उपासना करते हैं ॥ २७ ॥

अतन्द्रो यास्यन् हरितो यदास्थाद् द्वे रूपे कृणुते रोच-
मानः ।

केतुमानुद्यन्त्सहमानो रजांसि विश्वा आदित्य प्रवतो
वि भांसि ॥ २८ ॥

अतन्द्रः । यास्यन् । हरितः । यत् । आऽअस्थात् । द्वे इति । रूपे
इति । कृणुते । रोचमानः ।

केतुऽमान् । उत्स्यन् । सहमानः । रजांसि । विश्वाः । आदित्य ।
प्रऽवतः । वि । भांसि ॥ २८ ॥

तन्द्रारहित सूर्यदेव गमन करते समय जिस समय विश्राम करते हैं उस समय वह रोचमान सूर्य अपने दो रूपोंको करते हैं । हे आदित्य ! उदय होते हुए ध्वजा वाले आप सब प्रकृष्ट लोकों को दबाते हुए दमकते हैं ॥ २८ ॥

ब॒रम॒हाँ अ॒सि सूर्य॑ ब॒डा॒दित्य॑ म॒हाँ अ॒सि ।

म॒हांस्ते॑ म॒हतो॑ म॒हिमा॑ त्वमा॒दित्य॑ म॒हाँ अ॒सि २६

ब॒ट् । म॒हान् । अ॒सि । सूर्य॑ । ब॒ट् । आ॒दि॒त्य । म॒हान् । अ॒सि ।

म॒हान् । ते । म॒हतः॑ । म॒हिमा॑ । त्वस् । आ॒दि॒त्य । म॒हान् । अ॒सि २६

हे सूर्य ! आप महान् हैं, यह सत्य है । हे आदित्य ! आप महान् हैं यह सत्य है । आप महान्की महिमा भी महान् है, हे आदित्य ! आप महान् हैं ॥ २६ ॥

रोच॑से दि॒वि रोच॑से अ॒न्तरि॑क्षे प॒तङ्ग॑ पृथि॒व्यां रोच॑से

रोच॑से अ॒प्स्व॑न्तः ।

उ॒भा स॒मुद्रौ॑ रु॒च्या व्पा॒पिथ॑ दे॒वो दे॒वासि॑ म॒हिषः॑ स्व॒र्जित्

रोच॑से । दि॒वि । रोच॑से । अ॒न्तरि॑क्षे । प॒तङ्ग॑ । पृथि॒व्याम् । रोच॑से ।

रोच॑से । अ॒प्सु । अ॒न्तः ।

उ॒भा । स॒मुद्रौ॑ । रु॒च्या । वि । आ॒पिथ॑ । दे॒वः । दे॒व । अ॒सि ।

म॒हिषः॑ । स्व॒र्जित् ॥ ३० ॥

हे सूर्यदेव ! आप घौमें दमकते हैं, अन्तरिक्षमें दमकते हैं आप पृथिवीमें दमकते हैं और जलके भीतर दमकते हैं, आप अपनी

कान्तिसे दोनों समुद्रोंको व्याप्त कर लेते हैं हे देव ! आप स्वर्गके
जेता पूजनीय देव हैं ॥ ३० ॥ (९)

अर्वाङ् परस्तात् प्रयतो व्यध्व आशुर्विपश्चित् पतयन्
पतङ्गः ।

विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन् प्र केतुना सहते विश्व
मेजत् ॥ ३१ ॥

अर्वाङ् । परस्तात् । प्रयतः । विऽअध्वे । आशुः । विपऽचित् ।
पतयन् । पतङ्गः ।

विष्णुः । विऽचित्तः । शवसा । अधिऽतिष्ठन् । प्र । केतुना । सहते ।
विश्वम् । एजत् ॥ ३१ ॥

विद्वान् सूर्यदेव दक्षिणगामी होते हुए शीघ्रतापूर्वक मार्गको
लाँघते हैं, यह सूर्यदेव व्यापक हैं, विशेष ज्ञानवान् हैं, बलपूर्वक
अधिष्ठित होते हुए यह अपने ज्ञानसे सब चेष्टा-शील जगत्को
दबा देते हैं ॥ ३१ ॥

चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी
अन्तरिक्षम् ।

अहोरात्रे परि सूर्यवसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि
चित्रः । चिकित्वान् । महिषः । सुपर्णः । आऽरोचयन् । रोदसी
इति । अन्तरिक्षम् ।

१८४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अ॒हो॒रा॒त्रे इति । परि । सूर्य॑म् । व॒साने॑ इति । प्र । अ॒स्य॒ । वि॒श्वा ।
ति॒रतः॑ । वी॒र्या॑णि ॥ ३२ ॥

पूजनीय ज्ञानवान् महिमामय सुन्दरतासे पतन (गमन) करने वाले सूर्यदेव व्यापृथिवी और अन्तरिक्षको दमकाते हैं, दिन और रात सूर्यका ही आश्रय लेते हैं, इसके वीर्यसे ही सब पार जाते हैं ॥ ३२ ॥

ति॒ग्मो वि॒भ्राजन् तन्वं॑ १ शि॒शानो॑रंग॒मासः॑ प्र॒वतो॑
ररा॑णः ।

ज्योति॑ष्मान् प॒क्षी म॑हिषो व॒योधा॑ वि॒श्वा आ॒स्थात्
प्र॒दिशः॑ कल्प॑मानः ॥ ३३ ॥

ति॒ग्मः । वि॒भ्राजन् । तन्वं॑म् । शि॒शानः॑ । अ॒रम् । अ॒गमा॑सः । प्र॒वतः॑ ।

ररा॑णः ।

ज्योति॑ष्मान् । प॒क्षी । म॑हिषः । व॒यः । धा॑ । वि॒श्वाः । आ ।

अ॒स्थात् । प्र॒दिशः॑ । कल्प॑मानः ॥ ३३ ॥

यह तिग्म (तीखे) सूर्यदेव दमकते रहते हैं, शरीरको छीलते रहते हैं अर्थात् स्वच्छ करते रहते हैं, मनुष्योंको शब्द कराते हुए प्राप्त होते हैं, दमक वाले हैं, गमन करने वाले हैं, महिमामय हैं, अन्नको पुष्ट करने वाले हैं यह सब दिशाओंकी कल्पना करते हुए स्थित रहते हैं ॥ ३३ ॥

चि॒त्रं दे॒वानां॑ के॒तुरनी॑कं ज्योति॑ष्मान् प्र॒दिशः॑ सूर्य॑
उ॒द्यन् ।

दि॒वा॒क॒रो॒ति॒ ह॒म्नै॒स्त॒मांसि॒ विश्वा॑ता॒रीद् दुरि॑तानि

शु॒क्रः ॥ ३४ ॥

चि॒त्रम् । दे॒वाना॑म् । के॒तुः । अ॒नी॒कम् । ज्योति॑ष्मान् । प्र॒दि॒शः ।

सूर्यः॑ । उ॒त्स्यन् ।

दि॒वा॒ऽक॒रः । अ॒ति । ह॒म्नैः । त॒मांसि॑ । वि॒श्वा । अ॒ता॒रीत् ।

दुः॒इ॒तानि॑ । शु॒क्रः ॥ ३४ ॥

यह सूर्यदेव देवताओंमें दर्शनीय है, देवताओंकी केतुरूप हैं, उदय होते हुए दिशाओंमें ज्योतिष्मान् रहते हैं अपने प्रकाशोंसे दिन कर देते हैं यह दमकते हुए सूर्यदेव सकल अंधकारोंको और पापोंको दूर कर देते हैं ॥ ३४ ॥

चि॒त्रं दे॒वाना॑मु॒द॒गा॒दनी॑कं च॒क्षुर्मि॒त्रस्य॑ वरु॒णस्या॒ग्नेः ।

आ॒प्राद् द्या॒वापृ॒थि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑त-

स्त॒स्थुष॑श्च ॥ ३५ ॥

चि॒त्रम् । दे॒वाना॑म् । उ॒त् । अ॒गात् । अ॒नी॒कम् । च॒क्षुः । मि॒त्रस्य॑ ।

वरु॑णस्य । अ॒ग्ने ।

आ । अ॒प्रात् । द्या॒वापृ॒थि॒वी इति॑ । अ॒न्तरि॑क्षम् । सूर्यः॑ । आ॒त्मा ।

जग॑तः । त॒स्थुषः॑ । च ॥ ३५ ॥

यह जो किरणोंका पूजनीय समूह उदय हुआ है यह मित्र और वरुणदेवका चक्षु है अर्थात् ये देवता इस नेत्रसे ही देखते

हैं यह सूर्यदेव स्थावर और जंगमजगत्की आत्मा हैं, इस प्रकार यह सर्वभूतानुप्रवेशी सूर्यदेव व्यापकृथिवी और अन्तरिक्ष सबको ही व्याप्त कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

उच्चा पतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम् ।
पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रं ज्योतिर्यदविन्द-
दत्त्रिः ॥ ३६ ॥

उच्चा । पतन्तम् । अरुणम् । सुऽपर्णम् । मध्ये । दिवः । तरणिम् ।
भ्राजमानम् ।

पश्याम । त्वा । सवितारम् । यम् । आहुः । अजस्रम् । ज्योतिः ।

यत् । अविन्दत् । अत्त्रिः ॥ ३६ ॥

ऊपरको चलते हुए अरुण वर्ण वाले सुन्दर पतन वाले द्यौके मध्यमें गमन करते हुए आप सविता देवताको हम सदा देखें, ज्योतिःस्वरूप आपको आधिदैविक आध्यात्मिक और आधिभौतिक दुःखोंसे रहित अत्त्रि पाते हैं ॥ ३६ ॥

दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णमदित्याः पुत्रं नाथकाम उप
यामि भीतः ।

स नः सूर्य प्रतिरदीर्घमायुर्मा रिषाम सुमतौ ते स्याम ॥

दिवः । पृष्ठे । धावमानम् । सुऽपर्णम् । अदित्याः । पुत्रम् । नाथ-
ऽकामः । उप । यामि । भीतः ।

सः । नः । सूर्य । प्र । ति । र । दीर्घम् । आयुः । मा । रिषाम । सु-
ऽमतौ । ते । स्याम ॥ ३७ ॥

भयभीत हुआ मैं घौमें दौड़ने वाले शोपन पतन वाले अदिति
 के पुत्र सूर्य देवकी प्रार्थना करता हुआ उनकी शरणमें जाता
 हूँ, ऐसे हे सूर्य देव ! आप हमको दीर्घायु दीजिये हम हंसित न
 होवें और आपकी अनुग्रहात्मिका शोभन बुद्धिमें स्थिर रहें ३७
 सहस्राक्ष्यं वि॒यता॒वस्य॒ पक्षौ॒ हरे॒र्हंसस्य॒ पत॑तः स्व॒र्गम् ।
 स दे॒वान्त॑स॒र्वानुर॑स्यु॒पद॑द्य॒ संप॑श्यन् याति॒ भुव॑नानि
 विश्वा॑ ॥ ३८ ॥

सह॒स्र॒अ॒क्ष्यम् । वि॒स्य॒तौ । अ॒स्य । प॒क्षौ । हरेः॑ । ह॒ंसस्य॑ । पत॑तः ।
 स्वः॑ऽगम् ।

सः । दे॒वान् । स॒र्वान् । उ॒रसि॑ । उ॒प॒ऽद॑द्य॒ । स॒म्प॑श्यन् । या॒ति ।
 भुव॑नानि । विश्वा॑ ॥ ३८ ॥

इन स्वर्गको जाते हुए गमनशील पापनाशक सूर्य के दोनों
 (दक्षिणायन उत्तरायणरूप) पक्ष सहस्रों दिन तक भी नियमित
 ही रहते हैं । यह सब देवताओं को अपनेमें लीन कर सब प्राणियों
 को देखते हुए गमन किया करते हैं ॥ ३८ ॥

रोहितः कालो अभवद् रोहितोऽग्रे प्रजापतिः ।

रोहितो यज्ञानां मुखं रोहितः स्वः राभरत् ॥ ३९ ॥

रोहितः । कालः । अभवत् । रोहितः । अग्रे । प्रजापतिः ।

रोहितः । यज्ञानाम् । मुखम् । रोहितः । स्वः । आ । अभरत् ३९

पहिले रोहित काल हुए थे और रोहित ही प्रजापति थे, रोहित
 ही यज्ञोंके मुख हैं और रोहित स्वर्गका भरण करते हैं ॥ ३९ ॥

रोहितो लोको अभवद् रोहितोत्यंतपद् दिवम् ।

रोहितो रश्मिभिर्भूमिं समुद्रमनु सं चरत् ॥ ४० ॥

रोहितः । लोकः । अभवत् । रोहितः । अति । अतपत् । दिवम् ।

रोहितः । रश्मिभिः । भूमिम् । समुद्रम् । अनु । सम् । चरत् ४०

रोहितदेव दर्शनीय हैं और रोहित स्वर्गमें तपते हैं और रोहित-
देव अपनी किरणोंसे समुद्र और भूमिमें विचरण करते हैं ४० (१०)

सर्वा दिशः समचरद् रोहितोधिपतिर्दिवः ।

दिवं समुद्रमाद् भूमिं सर्वं भूतं वि रक्षति ॥ ४१ ॥

सर्वाः । दिशः । सम् । अचरत् । रोहितः । अधिपतिः । दिवः ।

दिवम् । समुद्रम् । आत् । भूमिम् । सर्वम् । भूतम् । वि । रक्षति

स्वर्गके अधिपति, रोहितदेव सब दिशाओंमें विचरण करते हैं,
वैसे समुद्रमें विचरण करते हैं, यह सब प्राणियोंकी और भूमिकी
रक्षा करते हैं ॥ ४१ ॥

आरोहन्शुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः ।

चित्रश्चिक्त्वान्महिषो वातमाया यावतो लोकानभि

यद् विभाति ॥ ४२ ॥

आऽरोहन् । शुक्रः । बृहती । अतन्द्रः । द्वे इति । रूपे इति । कृणुते ।

रोचमानः ।

चित्रः । चिकित्वान् । महिषः । वातम्ऽआयाः । यावतः । लोकान् ।

अभि । यत् । विऽभाति ॥ ४२ ॥

ये तन्द्रारहित निर्मल सूर्य देव अपने अश्वों पर अपने दो रूपों को करते हैं, यह रोचमान हैं, पूजनीय हैं, महिमामय हैं, गमनको प्राप्त होते हैं और जितने लोक हैं उन सबको प्रकाशित करते हैं ४२
अभ्य १ न्यदेति पर्यन्यदस्यतेहोरात्राभ्यां महिषः कल्प-
मानः ।

सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः

अभि । अन्यत् । एति । परि । अन्यत् अस्यते । अहोरात्राभ्याम् ।

महिषः । कल्पमानः ।

सूर्यम् । वयम् । रजसि । क्षियन्तम् । गातुऽविदम् । हवामहे ।

नाधमानाः ॥ ४३ ॥

दिन और रात्रियोंसे पूजनीयरूपमें कल्पित इन सूर्यदेवका एक रूप सामने आता है और दूसरा चलता रहता है । हम प्रार्थना करके स्वर्गमार्गके लंभक अन्तरिक्षलोकमें निवास करने वाले सूर्य-देवका आह्वान करते हैं ॥ ४३ ॥

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि

विश्वं बभूव ।

विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं

ब्रवीमि ॥ ४४ ॥

पृथिवीऽमः । महिषः । नाधमानस्य । गातुः । अदब्धऽचक्षुः ।

परि । विश्वम् । बभूव ।

विश्वम् । सम्ऽपश्यन् । सुऽविदत्रः । यजत्रः । इदम् । शृणोतु ।

यत् । अहम् । ब्रवीमि ॥ ४४ ॥

पृथिवीका पालन करने वाले, महिमामय, प्रार्थना करने वालेके लम्बक, अहीनदृष्टि सूर्यदेव विश्वके चारों ओर व्याप्त रहते हैं, वह विश्वको देखते रहते हैं, कल्याणमयी विद्या वाले और पूजनीय सूर्यदेव, मैं जो कुछ कहता हूँ उसको सुनें ॥ ४४ ॥

पर्यस्य महिमा पृथिवीं समुद्रं ज्योतिषा विभ्राजन्
परि घामन्तरिक्षम् ।

सर्वं संपश्यन्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि

परि । अस्य । महिमा । पृथिवीम् । समुद्रम् । ज्योतिषा । वि-
भ्राजन् । परि । घाम् । अन्तरिक्षम् ।

सर्वम् । सम्ऽपश्यन् । सुऽविदत्रः । यजत्रः । इदम् । शृणोतु । यत् ।

अहम् । ब्रवीमि ॥ ४५ ॥

इनकी महिमा सर्वत्र फैली हुई है यह अपनी ज्योतिसे पृथिवी समुद्र औ और अन्तरिक्ष सबमें व्याप्त हैं, सब (के कर्मों) को देखते हैं, शोभन विद्यासे सम्पन्न हैं, यष्टव्य (पूजनीय) हैं ऐसे सूर्यदेव जो कुछ मैं कहता हूँ उसको सुनें ॥ ४५ ॥

अ॒बो॒ध्य॒ग्निः॑ स॒मिधा॑ ज॒नानां॑ प्र॒ति धे॒नुमि॑वा॒यती॒सु-
पा॒सम् ।

य॒द्वा इ॒व प्र॒ व॒यामु॑ज्जिहा॒नाः प्र॒ भा॒नवः॑ सि॒स्रते॒
नाक॑म॒च्छ ॥ ४६ ॥

अ॒बो॒धि । अ॒ग्निः । स॒म्ऽइ॒धा । ज॒नाना॑म् । प्र॒ति । धे॒नुम्ऽइ॒व ।
आ॒ऽय॒ती॒म् । उ॒प॒सम् ।

य॒द्वाःऽइ॒व । प्र॒ । व॒याम् । उ॒त्ऽजिहा॑नाः । प्र॒ । भा॒नवः॑ । सि॒स्र॒ते ।
नाक॑म् । अ॒च्छ ॥ ४६ ॥

द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति द्वितीयोनुवाकः ॥

धेनुकी समान आती हुई उपाके समय यह (सूर्यात्मक) अग्नि मनुष्योंकी समिधासे जाने गए हैं अर्थात् उपाके द्वारा सूर्यागमन को जानकर मनुष्य अग्निहोत्र करनेका उद्योग करते हैं तब साधारण प्राणी इनके उदय होनेको जानते हैं इनकी ऊपरको जाती हुई किरणें शीघ्रतासे स्वर्गकी ओर जाती हैं मैं भी उन सूर्यदेव की शरणमें जाता हूँ ॥ ४६ ॥ (११)

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५०३) ॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त

रोहितदेवताकम् एतत् सूक्तम् । रोहितः कश्चिद् देव उद्यत्सूर्य-
रूपः सूर्यस्य रोहितनामको यः प्रधानोश्वस्तद्रूपेण वा कल्पितः ।
तस्य परमार्थं रूपं त्रयोदशचतुर्दशपञ्चदशषोडशसप्तदशाष्टादशै-
कोनविंशेषु मन्त्रेषु द्रष्टव्यम् ॥

सांप्रदायिकास्तु एवं विनियुञ्जन्ति । तद्यथा ।

आभिचारिके कर्मणि “य इमे द्यावापृथिवी” इत्यनुवाकेन पाशान् पदे वृश्चति विधानेन ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेनानुवाकेन रक्तशालिजीरौदनं संपा-
त्पाभिमन्त्र्य द्वेष्टाय ददाति ॥

तस्मिन्नेव कर्मणि अनेनानुवाकेन आमपात्रस्योपरि द्वेष्टाय
हस्तप्रक्षालनं ददाति ॥

तथा तस्मिन्नेव कर्मणि अनेनानुवाकेन वृषभं संपातवन्तं कृत्वा
शत्रोरभिमुखं विमृजति ॥

तथा उक्त एव कर्मणि अनेनानुवाकेन शत्रुप्रतिकृतिं मृन्मयीं
कृत्वा पश्चाद् अग्नेः स्थाणौ बद्ध्वा तस्या मूर्ध्नि संपातान् आ-
नयति ॥ “यस्मिन् षड्वीः पञ्च” [६] इत्यृचा उदवज्रान् प्रह-
रति उक्तेन विधानेन ॥ “यो अन्नादो अन्नपतिः” [७] इत्यृचा
उदकम् अभिमन्त्र्य द्वेष्टं मनसा चाध्यायन्नाचामति ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । “समिद्धो अग्निः [१३. १. २८-३२]
य इमे द्यावापृथिवी [१३. ३] अजैष्म [१६. ६] इत्यधिपा-
शान् आदधाति । पदेपदे पाशान् वृश्चति । अधिपाशान् बाधकां
छङ्कूस्तान् संलुप्य संनह्य भ्रष्ट्रेभ्यस्यति । अशिशिपोः क्षीरौदना-
दीनि त्रीणि । गर्तेध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादश-
रात्रं संपातान् अभ्यतिनयति । षष्ठ्योदवज्रान् प्रहरति सप्तम्या-
चामति” इति [कौ० ६. ३] ॥

यह सूक्त रोहित देवता वाला है । रोहित एक देव हैं जो
उदय होते हुए सूर्यात्मक हैं वा सूर्य के प्रधान अश्व भी रोहितदेव
होसकते हैं । इनका वास्तविकरूप तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें,
सोलहवें, सत्रहवें, अठारहवें और उन्नीसवें मन्त्रमें देखना चाहिये ।

साम्प्रदायिक पुरुष इसका विनियोग इस प्रकार करते हैं, कि—

आभिचारिक कर्ममें “य इमे द्यावापृथिवी” अनुवाकसे विधानके अनुसार शत्रुके पैरोंको काटे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इस अनुवाकसे लाल सट्टीके चावलोंके दुग्ध-भातको सम्पातित और अभिमन्त्रित करके शत्रुओंको देय ।

इसी कर्ममें इस अनुवाकसे कच्चे पात्रके ऊपर शत्रुके हाथ धुलवावें ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इस अनुवाकसे वृषभको सम्पातित करके शत्रुकी ओर छोड़े ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इस अनुवाकसे शत्रुकी मट्टीकी मूर्तिको बना कर फिर अग्निके स्थाणुमें बाँध कर उसके मस्तकमें सम्पातों को लावे । “यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च” इस छठी ऋचासे जलवज्रोंका प्रहार करे । और सातवीं ऋचासे जलको अभिमन्त्रित करके मन में शत्रुका ध्यान करता हुआ आचमन करे ।

इस विषयमें कौशिकसूत्रका प्रमाण है, कि—“समिद्धो अग्निः [१३. १. २८-३२] य इमे द्यावापृथिवी [१३. ३] अजैष्म [१६. ६] इत्यधिपाशान् आदधाति । पदेपदे पाशान् वृश्चति । अधिपाशान् बाधकांछङ्कूस्तान् संक्षुद्य संनह्य भ्रष्ट्रेभ्यस्यति । अशिशिषोः क्षीरौदनादीनि त्रीणि । गर्तेध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं संपातान् अभ्यतिनयति । षष्ठ्योद-वज्राम् प्रहरति । सप्तम्याचामति” इति [कौ० ६. ३] ॥

य इमे द्यावापृथिवी जजान यो द्रापि कृत्वा भुव-
नानि वस्ते ।

यस्मिन् क्षियन्ति प्रदिशः षडुर्वीर्याः पतङ्गो अनु-
विचाकशीति

तस्य॑ दे॒वस्य॑ । क्रु॒द्धस्यै॑तदागो॒ य एवं॑ वि॒द्वांसं॑ ब्रा॒ह्मणं॑
जि॒नाति॑ ।

उद् वे॒पय॑ रो॒हित॒ प्र क्षि॑णीहि ब्रह्म॒ज्यस्य॑ प्रति॑ मुञ्च
पा॒शा॒न् ॥ १ ॥

यः । इ॒मे इति॑ । आ॒वा॒पृ॒थि॒वी इति॑ । ज॒ज्ञान॑ । यः । द्रा॒पि॒म् । कृ॒त्वा ।
भु॒व॒ना॒नि । व॒स्ते ।

यस्मिन् । क्षि॒यन्ति॑ । प्र॒दि॒शः । षट् । उ॒र्वीः । याः । प॒त॒ङ्गः । अ॒नु॒वि॒-
चा॒क॒शीति॑ ।

तस्य॑ । दे॒वस्य॑ ॥ क्रु॒द्धस्य॑ । ए॒तत् । आ॒गः । यः । ए॒वम् । वि॒द्वां॒-
सम् । ब्रा॒ह्म॒णम् । जि॒नाति॑ ।

उत् । वे॒प॒य । रो॒हि॒त । प्र । क्षि॒णी॒हि । ब्रह्म॒ज्यस्य॑ । प्रति॑ । मु॒ञ्च ।
पा॒शा॒न् ॥ १ ॥

जिन्होंने इस आवापृथिवीको प्रादुर्भूत किया है जो द्रापि करके भुवनोंको आच्छादन करते हैं, जिनमें छः उर्वियों और दिशाएँ निवास करती हैं कि जिन दिशाओंको सूर्य प्रकाशित करते हैं ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १ ॥

यस्माद् वाता ऋतुथा पवन्ते यस्मात् समुद्रा अधि
विचरन्ति

तस्य देवस्य ०।०।० ॥ २ ॥

यस्मात् वाताः । ऋतुथा । पवन्ते । यस्मात् । समुद्राः । अधि । वि-
चरन्ति ।

तस्य ० ॥ २ ॥

जिस देवसे ऋतुके अनुसार वायु चलते हैं और जिसके प्रभाव से समुद्र बहते हैं ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २ ॥

यो मारयति प्राणयति यस्मात् प्राणन्ति भुवनानि

विश्वा

तस्य ०।०।० ॥ ३ ॥

यः । मारयति । प्राणयति । यस्मात् । प्राणन्ति । भुवनानि । विश्वा ।

तस्य ० ॥ ३ ॥

जो प्राणन कराते हैं अर्थात् मनुष्योंको जीवित रखते हैं और मनुष्योंको मारते हैं और जिनके प्रभाववश सब प्राणी श्वास प्रश्वास लेते हैं ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ३ ॥

यः प्राणेन द्यावापृथिवी तर्पयत्यपानेन समुद्रस्य जठरं

यः पिपति

तस्य ०।०।० ॥ ४ ॥

यः । प्राणेन । द्यावापृथिवी इति । तर्पयति । अपानेन । समुद्रस्य ।

जठरम् । यः । पिपति ।

तस्य । ०॥ ४ ॥

जो प्राणके द्वारा द्यावापृथिवीको तृप्त करता है, अपानके द्वारा समुद्रके जठरका पालन करता है । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ४ ॥

यस्मिन् विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह
पङ्क्त्या श्रितः ।

यः परस्य प्राणं परमस्य तेज आददे

तस्य ०।०।० ॥ ५ ॥

यस्मिन् । विराट् । परमेऽस्थी । प्रजाऽपतिः । अग्निः । वैश्वानरः ।

सह । पङ्क्त्या । श्रितः ।

यः । परस्य । प्राणम् । परमस्य । तेजः । आददे ।

तस्य । ० ॥ ५ ॥

जिसमें विराट परमेष्ठी प्रजा अग्नि और वैश्वानर पंक्तिके साथ स्थित हैं जिसने उत्कृष्टके प्राणको और परमके तेजको ग्रहण कर लिया है। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ५ ॥

यस्मिन् षडुर्वीः पञ्च दिशो अधि श्रिताश्चतस्र आपो

यज्ञस्य त्रयेक्षराः ।

यो अन्तरा रोदसी क्रुद्धश्चक्षुषैक्षत ।

तस्य ०।०।० ॥ ६ ॥

यस्मिन् । षट् । उर्वीः । पञ्च । दिशः । अधि । श्रिताः । चतस्रः ।

आपः । यज्ञस्य । त्रयः । अक्षराः ।

यः । अन्तरा । रोदसी इति । क्रुद्धः । चक्षुषा । ऐक्षत ।

तस्य ० ॥ ६ ॥

जिसमें छः उर्वियों, पाँच दिशायें, चार जल, यज्ञके तीन अक्षर अधिश्रित हैं। जो क्रोधमें भर कर आवापृथिवीके मध्यमें नेत्रसे देखता है ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ६ ॥

यो अन्नादो अन्नपतिर्वभूव ब्रह्मणस्पतिरुत यः ।

भूतो भविष्यद् भुवनस्य यस्पतिस्-

१६८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तस्य ०।०।० ॥ ७ ॥

यः। अन्नऽअदः। अन्नऽपतिः। बभूव। ब्रह्मणः। पति। उत। यः।

भूतः। भविष्यत्। भुवनस्य। यः। पतिः।

तस्य ०।० ॥ ७ ॥

जो अन्नके पालक और अन्नके भक्षक होते हैं जो ब्रह्मण-
स्पति हैं जो भूत और भविष्यके भुवनके स्वामी हैं। ऐसे क्रोधमें
भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको
मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको
क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको
पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ७ ॥

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते

तस्य ०।०।० ॥ ८ ॥

अहोरात्रैः। विऽमितम्। त्रिंशत्ऽअङ्गम्। त्रयःऽदशम्। मासम्।

यः। निऽमिमीते।

तस्य ० ॥ ८ ॥

जिन्होंने दिन रातोंसे तीस अंगोंका समूह (मास) बनाया
है जो तेरहवें (लौद-अधिक) मासका निर्माण करते हैं। ऐसे
क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान्
ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये
उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात्
उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ८ ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्
पतन्ति

त आवृ॒त्रन्त्स॒दना॒दृत॒स्य

तस्य॑ ०।०।० ॥ ६ ॥

कृ॒ष्णम् । नि॒श्या॒नम् । हर॑यः । सु॒ष्प॒र्णाः । अ॒पः । व॒सा॒नाः ।

दि॒वम् । उ॒त् । प॒त॒न्ति ।

ते । आ । अ॒वृ॒त्रन् । स॒दना॒त् । अ॒त॒स्य ।

तस्य॑ ० ॥ ६ ॥

सूर्यदेवकी शोभन पतन वाली रसकाहरण करने वाली किरणें जलसे अपनेको ढकती हुई अर्थात् जलको सोखती हुई घौमें जाती हैं फिर दक्षिणायनमें वे जलके साथ रहनेके स्थानसे लौटती हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ६ ॥

यत् ते॑ च॒न्द्रं क॑श्यप रोच॒नाव॒द् यत् संहि॑तं पु॒ष्क॒लं
चि॒त्रभा॑नु ।

यस्मि॒न्त्सूर्या॑ आ॒र्पिताः॑ स॒प्त सा॒कं

तस्य॑ ०।०।० ॥ १० ॥

यत् । ते॑ । च॒न्द्रम् । क॑श्यप । रोच॒न॒वत् । यत् । स॒म्प॒दितम् ।

पु॒ष्क॒लम् । चि॒त्र॒व॒तु ।

यस्मि॑न् । सूर्या॑ । आ॒र्पिताः॑ । स॒प्त । सा॒कम् ।

२०० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तस्य ।० ॥ १० ॥

हे कश्यप ! आपका जो रोचनासम्पन्न आल्हादक संहित पुष्कल चित्रभानु है और जिसमें सात सूर्य साथ अर्पित हैं । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मण को मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये, उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १० ॥ (१२)

बृहदेनमनु वस्ते पुरस्ताद् रथन्तरं प्रति गृह्णाति पश्चात् ।

ज्योतिर्वसाने सदमप्रमादं

तस्य ०।०।० ॥ ११ ॥

बृहत् । एनम् । अनु । वस्ते । पुरस्तात् । रथम्स्तरम् । प्रति ।

गृह्णाति । पश्चात् ।

ज्योतिः । वसाने इति । सदम् । अप्रमादम् ।

तस्य ।० ॥ ११ ॥

बृहद् अनुकूल रहकर इसको आच्छादन करता है और रथन्तर इसको पीछेसे ग्रहण करता है ये दोनों प्रमाद रहित होकर सदा ज्योतियोंसे आच्छादित रहते हैं । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ ११ ॥

बृहदन्यतः पक्ष आसीद् रथन्तरमन्यतः सबले सघ्रीची ।

यद् रोहितमजनयन्त देवास्-

तस्य ०।०।० ॥ १२ ॥

बृहत् । अन्यतः । पक्षः । आसीत् । रथमस्तरम् । अन्यतः । सवले

इति सस्वले । सध्रीची इति ।

यत् । रोहितम् । अजनयन्त । देवाः ।

तस्य ० ॥ १२ ॥

जब देवताओंने रोहितको प्रादुर्भूत किया तो बृहत् एक ओर से पक्ष हुआ दूसरी ओरसे रथन्तर हुआ ये दोनों बली और सध्रीची हैं । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशों को डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १२ ॥

स वरुणः सायमग्निर्भवति स मित्रो भवति प्रातरुद्यन् ।

स सविता भूत्वान्तरिक्षेण याति स इन्द्रो भूत्वा

तपति मध्यतो दिवं

तस्य ०।०।० ॥ १३ ॥

सः । वरुणः । सायम् । अग्निः । भवति । सः । मित्रः । भवति ।

प्रातः । उत्स्यन् ।

सः । सविता । भूत्वा । अन्तरिक्षेण । याति । यः । इन्द्रः ।

भूत्वा । तपति । मध्यतः । दिवम् ।

तस्य ।० ॥ १३ ॥

वह (पापनिवारक) वरुण सायंकालके समय अग्नि होता है और वह प्रातःकालके समय उदय होता हुआ मित्र (सूर्य) होता है, वह सविता बनकर अन्तरिक्षके मध्यमेंको जाता है और वह इन्द्र होकर स्वर्गके मध्यमें तपता है। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १३ ॥

सहस्राह्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।

स देवान्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्यन् याति भुवनानि

विश्वा

तस्य ०।०।० ॥ १४ ॥

सहस्र॑अ॒ह्यम् । वि॒स्यतौ॑ । अ॒स्य । प॒क्षौ । हरेः॑ । हंस॒स्य ।

पततः॑ । स्वः॒ऽगम् ।

सः । दे॒वान् । स॒र्वान् । उर॑सि । उ॒प॒ऽदद्य॑ । स॒म्ऽपश्य॑न् । या॒ति ।

भु॒वनानि॑ । वि॒श्वा ।

तस्य ।० ॥ १४ ॥

इस स्वर्गको जाते हुए गमनशील पापनाशक सूर्यके दोनों (उत्तरायण दक्षिणायनरूप) पक्ष सहस्रों दिन तक भी नियमित ही रहते हैं, यह सब देवताओंको अपनेमें लीन करके सब प्राणियों को देखते हुए गमन किया करते हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देव

का ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है ।
हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये
और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे
बाँध लीजिये ॥ १४ ॥

अयं स देवो अप्सवः १ अन्तः सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः ।

य इदं विश्वं भुवनं जजान

तस्य ०।०।० ॥ १५ ॥

अयम् । सः । देवः । अप्सवः । अन्तः । सहस्रमूलः । पुरुशाकः ।
अत्रिः ।

यः । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । जजान ।

तस्य । ० ॥ १५ ॥

जिन्होंने इस सकल भुवनको प्रकट किया है, वह यह देव जल
के भीतर रहते हैं, यह सहस्रोंकी मूल है, पुरुशाक हैं और
आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों दुःखोंसे
से शून्य अत्रि हैं । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध
करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप
ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये इसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति
पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १५ ॥

शुक्रं वहन्ति हरयो रघुष्यदो देवं दिवि वर्चसा भ्राज-
मानम् ।

यस्योर्वा दिवं तन्वं १ स्तपन्त्यर्वा इ सुवर्णैः पटैर्वि भाति

तस्य ०।०।० ॥ १६ ॥

शुक्रम् । वहन्ति । हरयः । रघुऽस्यदः । देवम् । दिवि । वर्चसा ।

भ्राजमानम् ।

यस्य । ऊर्ध्वाः । दिवम् । तन्वः । तपन्ति । अर्वाङ् । सुऽवर्णैः ।

पटरैः । वि । भाति ।

तस्य । ० ॥ १६ ॥

स्वर्गमेंअपने दमकते हुए तेजसे दमकते हुए सूर्यदेवको शीघ्र-
गामी रसहरणशील किरणें निर्मल रसको पहुँचाती हैं, जिन सूर्य-
देवके ऊपरके शरीररूप किरणें स्वर्गको तपाते हैं और जो गमन-
शील सुन्दर वर्णकी किरणोंसे नीचेको जाकर प्रकाश फैलाते हैं ।
ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान्
ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपा-
इये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये
अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १६ ॥

येनादित्यान् हरितः संवहन्ति येन यज्ञेन बहवो यन्ति

प्रजानन्तः ।

यदेकं ज्योतिर्बहुधा विभाति

तस्य ० । ० । ० ॥ १७ ॥

येन । आदित्यान् । हरितः । सम्ऽवहन्ति । येन । यज्ञेन । बहवः ।

यन्ति । प्रऽजानन्तः ।

यत् । एकम् । ज्योतिः । बहुऽधा । विऽभाति ।

तस्य । ० ॥ १७ ॥

जिस देवताके प्रभावशः सूर्यदेवके घोड़े सूर्यदेवको सवारी देते हैं और जिनकी महिमासे विद्वान् पुरुष यज्ञको प्राप्त होते हैं और जो एक ज्योति होने पर भी अनेक प्रकारसे प्रकाशित होता है। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १७ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि

तस्थुस्तस्य ०।०।० ॥ १८ ॥

सप्त । युञ्जन्ति । रथम् । एकचक्रम् । एकः । अश्वः । वहति ।

सप्तनामा ।

त्रिनाभि । चक्रम् । अजरम् । अनर्वम् । यत्र । इमा । विश्वा ।

भुवना । अधि । तस्थुः ।

तस्य ० ॥ १८ ॥

सर्पणशील किरणें इन अन्य ज्योतियोंको निस्तेज करके अकेले ही अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले एकचक्र सूर्यरूप रथमें लग जाती हैं और यह मुख्य व्यापक सूर्य सप्त ऋषियोंसे नमन पाते हुए विचरण किया करते हैं और यह सूर्य ग्रीष्म वर्षा हेमन्त नामक तीन ऋतुओंके चक्र वाले अजर अनाश्रित कालका करते रहते हैं, इसी कालमें सब भुवन ठहरे हुए हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको

२०६

अथर्ववेदसंहिता—भाषानुवादसहित

मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १८ ॥

अष्टधा युक्तो वहति वह्निरुग्रः पिता देवानां जनिता
मतीनाम् ।

ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते
मातरिश्वा

तस्य ०।०।० ॥ १९ ॥

अष्टधा । युक्तः । वहति । वह्निः । उग्रः । पिता । देवानाम् ।
जनिता । मतीनाम् ।

ऋतस्य । तन्तुम् । मनसा । मिमानः । सर्वाः । दिशः । पवते ।
मातरिश्वा ।

तस्य । ० ॥ १९ ॥

युक्त वह्नि आठ प्रकारसे वहते हैं यह उग्र है, देवताओंके पालक और बुद्धियोंके प्रकट करने वाले हैं और पवनदेव जलके तन्तुका ममसे मान करते हुए सब दिशाओंको पवित्र करते हैं । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ १९ ॥

सम्यञ्च तन्तुं प्रदिशोनु सर्वा अन्तर्गीयत्रयाममृतस्य गर्भे

तस्य०।०।० ॥ २० ॥

स॒म्यश्च॑म् । तन्तु॑म् । प्र॒दि॒शः । अ॒नु । सर्वाः । अ॒न्तः । गा॒य॒त्र्याम् ।

अ॒मृत॑स्य । गर्भे॑ ।

तस्य॑ ।० ॥ २० ॥

गायत्रीके भीतर, अमृतके गर्भमें और सब दिशाओंमें सम्पूजित जलतन्तुको (करते हुए वायुदेव पवित्र करते हैं) ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २० ॥ (१३)

नि॒मृ॒च॒स्ति॒स्रो॒ व्यु॒षो॑ ह॒ ति॒स्र॒स्त्री॒णि॒ रजा॑सि॒ दि॒वो॑ अ॒ङ्ग॒
ति॒स्रः॑ ।

वि॒द्वा ते॑ अ॒ग्ने त्रे॒धा ज॒नि॒त्रं त्रे॒धा दे॒वानां॑ ज॒नि॒मानि॑
वि॒द्म

तस्य॑०।०।० ॥ २१ ॥

नि॒मृ॒चः । ति॒स्रः । वि॒उ॒षः । ह॒ । ति॒स्रः । त्री॑णि । रजा॑सि । दि॒वः ।

अ॒ङ्ग । ति॒स्रः ।

वि॒द्म । ते॒ । अ॒ग्ने । त्रे॒धा । ज॒नि॒त्रम् । त्रे॒धा । दे॒वानाम् । ज॒नि॒
मा॒नि । वि॒द्मः ।

तस्य॑ ।० ॥ २१ ॥

२०८

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

हे अग्ने ! हम तेरे तीन प्रकारके प्रादुर्भावोंको जानते हैं तेरी विशेषरूपसे भस्म करने वाली तीन गतिये हैं (उनको हम जानते हैं) और तीनों लोकोंको तथा स्वर्गके तीनों भेदोंको भी हम जानते हैं, ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २१ ॥

वि य और्णोत् पृथिवीं जायमान आ समुद्रमदधाद्-

न्तरिक्षे

तस्य ०।०।० ॥ २२ ॥

वि । यः । और्णोत् । पृथिवीम् । जायमानः । आ । समुद्रम् ।

अदधात् । अन्तरिक्षे ।

तस्य ० ॥ २२ ॥

जो प्रादुर्भाव होकर पृथिवीको आच्छादित कर लेता है और जलको अन्तरिक्ष तकमें स्थापित कर देता है । ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २२ ॥

त्वमग्ने क्रतुभिः केतुभिर्हितोर्कः समिद्ध उदरोचथा
दिवि ।

किमभ्यार्चन्मरुतः पृश्निमातरो यद् रोहितमजनयन्त
देवास-

तस्य ०।०।० ॥ २३ ॥

त्वम् । अग्ने । क्रतुऽभिः । केतुऽभिः । हितः । अर्कः । सम्ऽइन्द्रः ।

उत् । अरोचथाः । दिवि ।

किम् । अभि । आर्चन् । मरुतः । पृश्निऽमातरः । यत् । रोहितम् ।

अजनयन्त । देवाः ।

तस्य १० ॥ २३ ॥

हे अग्ने ! आप ज्ञानमय यज्ञोंसे स्थापित किये जाते हैं और भली प्रकार दीप्त होकर स्वर्गमें अर्चनसाधनरूपमें दीप्त होते हैं क्या पृश्निमातृक मरुतोंने आपका अर्चन किया था जो देवताओंने रोहित का साक्षात्कार किया है ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहित-देव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये, उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रतिपाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये य आत्मदा बलदा यस्य विश्वं उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

योऽस्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदस्-

तस्य ०।०।० ॥ २४ ॥

यः । आत्मऽदाः । बलऽदाः । यस्य । विश्वे । उपऽआसते ।

प्रऽशिषम् । यस्य । देवाः ।

२१० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

यः । अस्य । ईशे । द्विऽपदः । यः । चतुऽपदः ।

तस्य । ० ॥ २४ ॥

जो आत्मबल देने वाले हैं, बलप्रदान करने वाले हैं, सब देवता जिनके प्रशासनकी उपासना करते हैं, और जो इन दो पैर वाले मनुष्य आदिके और चार पैर वाले गौ घोड़े आदिके ईश्वर हैं। ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है। हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्य को कँपाइये, उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको ढालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २४ ॥

एकपाद् द्विपादो भूयो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति
पश्चात् ।

चतुष्पाच्चक्रे द्विपादामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तिमुपतिष्ठ-
मानम्-

तस्य देवस्य । क्रुद्धस्यैतदागो य एवं विद्वांसं ब्राह्मणं
जिनाति ।

उद् वेपय रोहित प्र क्षिणीहि ब्रह्मज्यस्य प्रति मुञ्च
पाशान् ॥ २५ ॥

एकपात् । द्विऽपदः । भूयः । वि । चक्रमे । द्विपात् । त्रिपादम् ।
अभि । एति । पश्चात् ।

चतुऽपात् । चक्रे । द्विपादाम् । अभिऽस्वरे । सम्पश्यन् ।
पङ्क्तिम् । उपऽतिष्ठमानः ।

तस्य । दे॒वस्य ॥ क्रु॒द्रस्य । ए॒तत् । आ॒गः । यः । ए॒वम् ।

वि॒द्वांसम् । ब्रा॒ह्मणम् । जि॒नाति ।

उत् । वे॒पय । रो॒हित । प्र । क्षि॒णीहि । ब्र॒ह्मज्यस्य । प्र॒ति । मु॒ञ्च ।

पा॒शान् ॥ २५ ॥

एकपाद् द्विपदोंमें विक्रमण करता है, फिर द्विपाद् त्रिपदोंको प्राप्त होता है, द्विपाद् फिर षट्पदोंमें विक्रमण करता है वे एक-पदके तन्व (ब्रह्मपद) की उपासना करते हैं, ऐसे क्रोधमें भरे हुए देवका ही वह अपराध करता है जो विद्वान् ब्राह्मणको मारता है । हे रोहितदेव ! आप ऐसे ब्रह्मज्यको कँपाइये, उसको क्षीण करिये और ब्रह्मज्यके प्रति पाशोंको डालिये अर्थात् उसको पाशोंसे बाँध लीजिये ॥ २५ ॥

कृ॒ष्णायाः पु॒त्रो अ॒र्जुनो रा॒त्र्या व॒त्सो जा॒यत ।

स ह॒ द्यामधि॑ रो॒हति॑ रु॒हो रुरो॒ह रो॒हितः ॥ २६ ॥

कृ॒ष्णायाः । पु॒त्रः । अ॒र्जुनः । रा॒त्र्याः । व॒त्सः । अ॒जा॒यत ।

सः । ह॒ । द्याम् । अधि॑ । रो॒हति॑ । रु॒हः । रुरो॒ह । रो॒हितः २६

तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति तृतीयोनुवाकः ॥

कृष्णा रात्रिका पुत्र अर्जुन वत्स (सूर्य) हुआ वह द्यौमें आरोहण करता है वह रोहित रोहणशील पदार्थों पर आरोहण करता है ॥ २६ ॥ (१४)

तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५०४)

तृतीय अनुवाक समाप्त

२१२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

एतदपि रोहितदेवताकम् । विनियोगस्तु “स एति” इत्यनुवाकं
जपति स्वर्गकाम इति विनियोगमालायाम् ॥

यह रोहित देवताका सूक्त है । विनियोगमालामें कहा है कि-
स्वर्गकी इच्छा वाला पुरुष इसका जप करे ।

स एति सविता स्वर्दिवस्पृष्टेवचाकशत् ।

सः । एति । सविता । स्वः । दिवः । पृष्टे । अवऽचाकशत् ॥ १ ॥

यह सूर्यदेव घुपृष्टमें दमकते हुए आरहे हैं ॥ १ ॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ २ ॥

रश्मिभिः । नभः । आऽभृतम् । महाऽइन्द्रः । एति । आऽवृतः

इन्होंने अपनी किरणोंसे आकाशको आच्छादित कर लिया
है, यह परमेश्वरसम्पन्न किरणोंसे सम्पन्न हुए आरहे हैं ॥ २ ॥

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् ॥ ३ ॥

सः । धाता । सः । विऽधर्ता । सः । वायुः । नभः । उत्ऽश्रितम् ।

वह धाता है विधर्ता है वह वायु है और वह उच्छ्रित आकाश है ॥

सौर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः ॥ ४ ॥

सः । अर्यमा । सः । वरुणः । सः । रुद्रः । सः । महाऽदेवः ।

वह अर्यमा है, रुद्र है, महादेव है और वरुण है ॥ ४ ॥

सो अग्निः स उ सूर्य स उ एव महायमः ॥ ५ ॥

सः । अग्निः । सः । ऊं इति । सूर्यः । सः । ऊं इति । एव ।

महाऽयमः ॥ ५ ॥

वही अग्नि सूर्य हैं और वही महायम हैं ॥ ५ ॥

तं वत्सा उपं तिष्ठन्त्येकशीर्षाणो युता दश । ६ ।

तम् । वत्साः । उपं । तिष्ठन्ति । एकशीर्षाणः । युताः । दश । ६

उनकी ही एक शिर वाले दश युक्त वत्स उपासना करते हैं ६

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति । ७

पश्चात् । प्राञ्चः । आ । तन्वन्ति । यत् । उत्सृजति । वि । भासति ।

उनको पीछेसे पूजनीय किरणें घेर लेती हैं, वह उदय होते हैं तो दमकते हैं ॥ ७ ॥

तस्यैष मारुतो गणः स एति शिख्याकृतः ॥ ८ ॥

तस्य । एषः । मारुतः । गणः । सः । एति । शिख्याकृतः ॥ ८ ॥

उनका ही यह छींकेका आकार मारुतगण आरहा है ॥ ८ ॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ ९ ॥

रश्मिभिः । नभः । आभृतम् । महाइन्द्रः । एति । आवृतः ९

इन सूर्यदेवने अपनी किरणोंसे आकाशको आच्छादित कर लिया है यह महेन्द्रसे किरणोंसे घिरे हुए आरहे हैं ॥ ९ ॥

तस्येमे नव कोशा विष्टम्भा नवधा हिताः ॥ १० ॥

तस्य । इमे । नव । कोशाः । विष्टम्भाः । नवधा । हिताः १०

उनके यह विष्टंभ नौ कोश नौ प्रकारसे स्थित हैं ॥ १० ॥

स प्रजाभ्यो वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ११ ॥

२१४

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

सः । प्र॒जाभ्यः । वि । प॒श्य॒ति । यत् । च । प्रा॒णति । यत् ।

च । न ॥ ११ ॥

वह जंगम और स्थावर सब प्रजाओंको देखते हैं-सबके साक्षी हैं ॥ ११ ॥

तमि॒दं नि॒गतं॒ सहः॒ स एष॒ एक॑ एक॒वृदे॑क॒ ए॒व ॥ १२ ॥

तम् । इ॒दम् । नि॒गतम् । सहः । सः । ए॒षः । एकः । एक॒वृत् ।

एकः । ए॒व ॥ १२ ॥

यह सब उसको ही प्राप्त होता है, वह असाधारण एकवृत् एक ही है ॥ १२ ॥

ए॒ते अ॒स्मिन् दे॒वा एक॑वृ॒तो भव॑न्ति ॥ १३ ॥

ए॒ते । अ॒स्मिन् । दे॒वाः । एक॑वृ॒तः । भव॑न्ति ॥ १३ ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

ये सब देवता इनमें एकवृत् (इन एकका ही वरण करने वाले) होते हैं ॥ १३ ॥ (१५)

चतुर्थ अनुवाकमें प्रथम पर्यायसूक्त समाप्त (५०५)

की॒र्तिश्च॒ यशश्चा॒म्भश्च॒ नभश्च॒ ब्राह्म॑णव॒र्चसं॒ चान्नं॑
चा॒न्नाद्यं॑ च ॥ १ ॥

की॒र्तिः । च । य॒शः । च । अ॒म्भः । च । न॒भः । च । ब्रा॒ह्म॒ण-

व॒र्च॒सम् । च अ॒न्नम् । च । अ॒न्नऽअ॒द्यम् । च ॥ १ ॥

(उसको) कीर्ति यश जल आकाश ब्रह्मतेज अन्न और अन्नको पचानेकी शक्ति (प्राप्त होती है) ॥ १ ॥

य एतं देवमेकवृत्तं वेद ॥ २ ॥

यः । एतम् । देवम् । एकवृत्तम् । वेद ॥ २ ॥

जो इन एकवृत्त देवको जानता है ॥ २ ॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ॥ ३ ॥

न । द्वितीयः । तृतीयः । चतुर्थः । न । अपि । उच्यते ॥ ३ ॥

जो इन एकवृत्त देवको जानता है वह दूसरा तीसरा वा चौथा नहीं कहलाता है ॥ ३ ॥

न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥ ४ ॥

न । पञ्चमः । न । षष्ठः । सप्तमः । न ॥ ४ ॥

जो इन एकवृत्त देवको जानता है वह पाँचवाँ छठा वा सातवाँ नहीं कहलाता है ॥ ४ ॥

नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ ५ ॥

न । अष्टमः । न । नवमः । दशमः । न । अपि । उच्यते ॥ ५ ॥

जो इन एकवृत्त देवको जानता है वह आठवाँ नवाँ वा दशम नहीं कहलाता है (किन्तु अप्रतिम रहता है) ॥ ५ ॥

स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न ॥ ६ ॥

सः । सर्वस्मै । वि । पश्यति । यत् । च । प्राणति । यत् । च । न ॥

जो इन एकवृत्त देवको जानता है वह जंगम और स्थावर सबको देखता है ॥ ६ ॥

तमिदं निर्गतं सहः स एष एक एकवृत्तदेक एव ॥ ७ ॥

२१६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तम् । इदम् । निऽगतम् । सहः । सः । एषः । एकः । एकऽवृत् ।

एकः । एव । ० ॥ ७ ॥

यह सब उसको ही प्राप्त होता है वह असाधारण एकवृत्
एक ही है ॥ ७ ॥

सर्वे अस्मिन् देवा एकवृत्तो भवन्ति । ० ॥ ८ ॥

सर्वे । अस्मिन् । देवाः । एकऽवृत्तः । भवन्ति । ० ॥ ८ ॥

इति चतुर्थेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ।

इसमें सब देवता एकवृत् होते हैं ॥ ८ ॥ (१६)

चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय पर्यायसूक्त समाप्त (५०६)

ब्रह्म च तपश्च कीर्तिश्च यशश्चाम्भश्च नभश्च ब्राह्मण-
वर्चसं चान्नं चान्नाद्यं च । ० ॥ १ ॥

ब्रह्म । च । तपः । च । कीर्तिः । च । यशः । च । अम्भः ।

च । नभः । च । ब्राह्मणऽवर्चसम् । च । अन्नम् । च । अन्नऽअन्नम् । च । ०

भूतं च भव्यं च श्रद्धा च रुचिश्च स्वर्गश्च स्वधा च

भूतम् । च । भव्यम् । च । श्रद्धा । च । रुचिः । च । स्वऽऽगः ।

च । स्वधा । च ॥ २ ॥

य एतं देवमेकवृत्तं वेद ॥ ३ ॥

यः । एतम् । देवम् । एकऽवृत्तम् । वेद ॥ ३ ॥

ब्रह्म तप कीर्ति यश जल नभ ब्रह्मतेज अन्न और अन्नको

पचानेकी शक्ति, भूत भव्य श्रद्धा रुचि स्वर्ग स्वधा (ये उसको प्राप्त होते हैं) जो इन एकवृत् देवको जानता है ॥ १-३ ॥

स ए॒व मृ॒त्युः सो॒ऽमृतं॑ सो॒ऽभ्वं॑ १ स र॒क्षः ॥ ४ ॥

स । ए॒व । मृ॒त्युः । सः । अ॒मृतम् । सः । अ॒भ्वम् । सः । र॒क्षः ४

स रु॒द्रो व॒सु॒निर्व॒सुदे॒ये नमो॒वा॒के वषट्कारो॒नु संहि॑तः

सः । रु॒द्रः । व॒सु॒ऽवनिः । व॒सु॒ऽदे॒ये । नमः॒ऽवा॒के । वषट्॒ऽका॒रः ।

अनु । सम्॒संहि॑तः ॥ ५ ॥

तस्ये॒मे सर्वे॑ या॒तव॒ उप॑ प्र॒शिष॑मासते ॥ ६ ॥

तस्य । इ॒मे । सर्वे॑ । या॒तवः । उप॑ । प्र॒शिषम् । आ॒सते ॥ ६ ॥

वही मृत्यु है, अमृत है, अभ्व है और वही राक्षस है, वही रुद्र है, वसुदेवमें वसुनि है नमोवाकमें अनुसंहित वषट्कार है, सब पीड़ाकारक उसकी ही आज्ञामें चलते हैं ॥ ४-६ ॥

तस्या॒मू सर्वा॑ नक्ष॒त्रा व॒शे च॒न्द्रम॑सा स॒ह ॥ ७ ॥

तस्य । अ॒मू । सर्वा॑ । नक्ष॒त्रा । व॒शे । च॒न्द्रम॑सा । स॒ह ॥ ७ ॥

इति चतुर्थेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

चन्द्रमा सहित ये सब नक्षत्र उसके ही वशमें रहते हैं ७ (१७)

चतुर्थ अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५०७)

स वा अ॒हो॒जाय॑त तस्मा॒दह॑रजायत ॥ १ ॥

सः । वै । अ॒हः । अ॒जा॒य॒त । तस्मा॑त् । अ॒हः । अ॒जा॒य॒त ॥ १ ॥

वह दिनसे प्रादुर्भूत हुए और दिन उनसे प्रादुर्भूत हुआ है १

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ॥ २ ॥

०वै । रात्र्याः । अजायत । तस्मात् । रात्रिः । अजायत ॥ २ ॥

वह रात्रिसे प्रादुर्भूत हुए और रात्रि उनसे प्रादुर्भूत हुई है २

स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ३

०वै । अन्तरिक्षात् । अजायत । तस्मात् । अन्तरिक्षम् । अजायत

वह अन्तरिक्षसे प्रकट हुए और अन्तरिक्ष उनसे प्रकट हुआ है

स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ॥ ४ ॥

०वै । वायोः । अजायत । तस्मात् । वायुः । अजायत ॥ ४ ॥

वह वायुसे प्रकट हुए और वायु उनसे प्रकट हुआ है ॥ ४ ॥

स वै दिवो जायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ॥ ५ ॥

०वै । दिवः । अजायत । तस्माद् । द्यौः । अधि । अजायत ५

वह द्यौसे प्रादुर्भूत हुए और द्यौ उनसे प्रादुर्भूत हुआ है ॥ ५ ॥

स वै दिग्भ्यो जायत तस्मात् दिशो जायन्त ॥ ६ ॥

०वै । दिग्भ्यः । अजायत । तस्मात् । दिशः । अजायन्त ॥ ६ ॥

वह दिशाओंसे प्रकट हुए और दिशाएँ उनसे प्रादुर्भूत हुई हैं ६

स वै भूमेरजायत तस्माद् भूमिरजायत ॥ ७ ॥

०वै । भूमेः । अजायत । तस्मात् । भूमिः । अजायत ॥ ७ ॥

वह भूमिसे प्रकट हुए और भूमि उनसे प्रकट हुई है ॥ ७ ॥

स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत ॥ ८ ॥

०वै । अग्नेः । अजायत । तस्मात् । अग्निः । अजायत ॥ ८ ॥

वह अग्निसे प्रकट हुए और अग्नि उनसे प्रकट हुई है ॥ ८ ॥

स वा अद्भ्यो जायत तस्मादापो जायन्त ॥ ९ ॥

०वै । अद्भ्यः । अजायत । तस्मात् । आपः । अजायन्त ९

वह जलोंसे प्रकट हुए हैं और जल उनसे प्रकट हुआ है ॥ ९ ॥

स वा ऋग्भ्यो जायत तस्मादृचो जायन्त ॥ १० ॥

०वै । ऋक्भ्यः । अजायत । तस्मात् । ऋचः । अजायन्त १०

वह ऋचाओंसे प्रादुर्भूत होते हैं और ऋचाएँ उनसे प्रादुर्भूत होती हैं ॥ १० ॥

स वै यज्ञादजायत तस्माद् यज्ञो जायत ॥ ११ ॥

सः । वै । यज्ञात् । अजायत । तस्मात् । यज्ञः । अजायत ॥ ११ ॥

वह यज्ञसे प्रकट हुए हैं और यज्ञ उनसे प्रादुर्भूत होता है ११

स यज्ञस्तस्य यज्ञः स यज्ञस्य शिरस्कृतम् ॥ १२ ॥

सः । यज्ञः । तस्य । यज्ञः । सः । यज्ञस्य । शिरः । कृतम् १२

वह यज्ञ हैं, यज्ञ उनका है और वह यज्ञके शिररूप हैं ॥ १२ ॥

स स्तनयति स वि द्योतते स उ अश्मानमस्यति

सः । स्तनयति । सः । वि । द्योतते । सः । ऊँ इति । अश्मानम् ।

अस्यति ॥ १३ ॥

वही कड़कते हैं, वही दमकते हैं वही ओलोंको फेंकते हैं १३

पापाय वा भद्राय वा पुरुषायासुराय वा ॥ १४ ॥

पा॒पाय॑ । वा । भ॒द्राय॑ । वा । पु॒रुषाय॑ । अ॒सुराय॑ । वा ॥ १४ ॥

य॒द्रा कृ॒णोष्योष॑धीर्य॒द्रा वर्ष॑सि भ॒द्रया॑ य॒द्रा ज॒न्यमवी॑वृधः

यत् । वा । कृ॒णोषि॑ । ओष॑धीः । यत् । वा । वर्ष॑सि । भ॒द्रया॑ ।

यत् । वा । ज॒न्यम् । अवी॑वृधः ॥ १५ ॥

आप पापीके लिये कल्याणकर्ता पुरुषके लिये साधारण पुरुष के लिये वा असुरके लिए जो औषधियोंको करते हैं, कल्याणकारक दृष्टि करके वरसते हैं वा उनकी उत्पत्तिको बढ़ाते हैं ॥१४॥१५॥

तावां॑स्ते म॒घवन्॑ म॒हिमोपो॑ ते त॒न्वः श॒तम् ॥ १६ ॥

तावा॑न् । ते । म॒घ॒ऽवन् । म॒हि॒मा । उ॒पो इति॑ । ते । त॒न्वः । श॒तम्

हे मघवन् ! ऐसी आपकी महिमा है सैंकड़ों शरीर आपके पास ही हैं ॥ १६ ॥

उपो॑ ते ब॒ध्वे ब॒द्धानि॑ यदि॒ वासि॑ न्य॒र्बुदम् ॥ १७ ॥

उ॒पो इति॑ । ते । ब॒ध्वे । ब॒द्धानि॑ । यदि॒ । वा । अ॒सि । निऽअ॒र्बु॒दम्

इति चतुर्थेनुवाके चतुर्थ पर्यायसूक्तम् ॥

आप अनन्त हैं अतः अपने समीपमें है सैंकड़ों बद्धोंको बाँध लेते हैं ॥ १७ ॥ (१८)

चतुर्थ अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (५०८) ॥

भू॒यानिन्द्रो॑ न॒मुराद् भू॒यानिन्द्रा॑सि मृ॒त्युभ्यः॑ ॥ १ ॥

भू॒यान् । इन्द्रः॑ । न॒मुरात् । भू॒यान् । इन्द्र॑ । अ॒सि । मृ॒त्युऽभ्यः॑ १

इन्द्र नमुरसे श्रेष्ठ हैं और हे इन्द्र ! आप मृत्युके कारणोंसे भी श्रेष्ठ हैं ॥ १ ॥

भू॒या॒नरा॑त्याः श॒च्याः प॒तिस्त्वमि॑न्द्रासि वि॒भूः प्र॒भूरिति॑
त्वोपा॑स्महे व॒यम् ॥ २ ॥

भू॒या॒न् । अ॒रा॒त्याः । श॒च्याः । प॒तिः । त्वम् । इन्द्र । अ॒सि ।

वि॒भूः । प्र॒भूः । इति । त्वा । उप । आ॒स्महे । व॒यम् ॥ २ ॥

शचीपति दानप्रतिबंधिका शक्तिसे बढ़कर हैं, हे इन्द्र ! आप विभु और प्रभु हैं, इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं ॥२॥

नम॑स्ते अस्तु पश्य॑त पश्य॑ मा पश्य॑त ॥ ३ ॥

नमः । ते । अस्तु । पश्य॑त । पश्य॑ । मा । पश्य॑त ॥ ३ ॥

अ॒न्नाद्ये॑न॒ यश॑सा तेज॑सा ब्राह्म॑णवर्च॑सेन ॥ ४ ॥

अ॒न्नऽअ॒द्ये॑न । यश॑सा । तेज॑सा । ब्रा॒ह्म॒णऽव॒र्च॑सेन ॥ ४ ॥

आपको प्रणाम है आप मुझको यश तेज और ब्रह्मतेजसे देखिये, देखिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

अ॒म्भो अ॒मो महः॑ सह॒ इति॑ त्वोपा॑स्महे व॒यम् । ० । ० ५

अ॒म्भः । अ॒मः । महः॑ । सहः॑ । इति॑ । ० ॥ ५ ॥

जल अम मह सह इस रूपमें हम आपकी उपासना करते हैं ०५

अ॒म्भो अ॒रुणं॑ र॒जतं॑ र॒जः सह॒ इति॑ त्वोपा॑स्महे व॒यम्

। ० । ० ॥ ६ ॥

अ॒म्भः । अ॒रु॒णम् । र॒ज॒तम् । र॒जः । सहः॑ । इति॑ । ० ॥ ६ ॥

इति चतुर्थेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

अंभ अरुण रजत रज और सहरूपमें आपकी उपासना करते हैं अतः आप हमको अन्न आदिसे देखिये आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ (१९)

चतुर्थ अनुवाकमें पञ्चम पर्वाय सूक्त समाप्त (५०९)

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् । ० । ० ॥ १ ॥

उरुः । पृथुः । सुभूः । भुवः । इति । ० ॥ १ ॥

उरु पृथु और सुभूर्भुवः-इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं ० ॥ १ ॥

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् । ० । ०

प्रथः । वरः । व्यचः । लोकः । इति । ० ॥ २ ॥

प्रथ वर व्यच और लोक-इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं ० ॥ २ ॥

भेवद्वसुरिदद्वसुः संयद्वसुरायद्वसुरिति त्वोपास्महे वयम्

भवत्स्वसुः । इदत्स्वसुः । संयत्स्वसुः । आयत्स्वसुः । इति ।

त्वा । उप । आस्महे । वयम् ॥ ३ ॥

संयद्वसु भवद्वसु इदद्वसु और आयद्वसु-इस प्रकार हम आपकी उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत ॥ ४ ॥

नमः । ते । अस्तु । पश्यत । पश्य । मा । पश्यत ॥ ४ ॥

अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ५ ॥

अन्नऽअद्येन । यशसा । तेजसा । ब्राह्मणऽवर्चसेन ॥ ५ ॥

चतुर्थेनुवाके पष्ठं पर्यायसूक्तम् ॥

चतुर्थोनुवाकः ॥

इति त्रयोदशं काण्डं समाप्तम् ॥

आपके लिये प्रणाम है मुझको देखिये, अन्नसे यशसे तेजसे और ब्रह्मवर्चस्से (सम्पन्न करनेके लिये) मुझको देखिये। ४।५। (२०)

चौथे अनुवाकमें छठा पर्याय सूक्त समाप्त (५१०)

चतुर्थ अनुवाक समाप्त

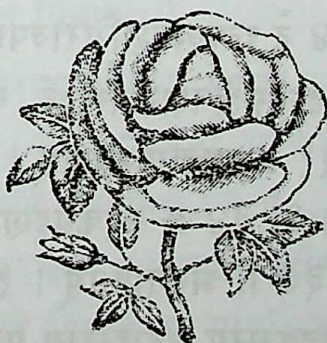
इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका त्रयोदश काण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत

भाषानुवादसहित

समाप्त.



मिलने का पता—

सनातनधर्म-यन्त्रालय,

मुरादाबाद

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

चतुर्दश-काण्डम्

❀❀❀❀

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

विवाहपरमेतत् काण्डम् । तत्र वक्ष्यमाणानि कर्माणि भवन्ति ।
तेषु तत्तन्मन्त्रविनियोगाः सूत्रकारेण प्रायोऽन्वर्थमेव कृतास्ते कौशिके
दशमेध्याये विस्तरेण प्रपञ्चितास्तत्रैव द्रष्टव्याः । अत्र तु कर्मक्रमस्य
मन्त्रवद् दिग्दर्शनम् ॥

सूक्तारम्भे सूर्या नाम या सूर्यरूपा सवितृपुत्री देवी तस्या विवा-
हस्य कथा वर्णिता ॥

कर्मक्रमस्तु यथा वक्ष्यते ।

विवाहः । स कुमार्याः पितृगृहे । सत्येनोत्तमितेति षोडश पूर्वा-
परमिति १. २३, २४ द्वे इत्यष्टादशभिराज्यहोमः । आगमकृशरं
कुमारीमाशयति ॥ हस्तगृहीतशरावसंपुटं सानुचरं कंचिद् वरं
प्रति प्रेषयति । १. ३१ ॥ ब्राह्मणप्रेषणम् । १. ३१ ॥ कुमारी-
रक्षार्थं पालप्रेषणम् । १. ३४ ॥ उदकग्रहणार्थं व्रजनम् ॥ अप्सु
लोष्टं प्रक्षिपति । १. ३७ ॥ अवगाहनम् । १. ३८ ॥ उदकघट-
पूरणम् । १. ३८ ॥ उदकघटम् उदाहाराय प्रयच्छति । १. ३९ ॥
शाखायां घटनिधानम् ॥ तेनोदकेन सर्वोदकार्यकरणम् ॥ आज्य-
होमः । १. १७ ॥ कुमारीकेशविचर्तनम् । १. ५८ ॥ ईशानकोणे
तिष्ठन्त्याः कुमार्या उष्णोदकेन आसावनम् । २. ६५ ॥ शीतोद-
केन सेचनम् । १. ३५, १. ४३ ॥ वाससाङ्गानि प्रमार्ष्टि ॥ तत्

कुमारी पालाय प्रयच्छति । २. ६६, ६७ ॥ तद्वासस्तुम्बरदण्डेन
 गृहीत्वा गोपाटे प्रक्षिपति ॥ अहतेन वाससा तामाच्छादयति ।
 १. ४५, ५३ ॥ यज्ञोपवीतवद्वाधूयं वस्त्रं बध्नाति ॥ केशप्रलेखनम् ।
 २. ६८ ॥ योक्त्रस्य कटिप्रदेशे बन्धनम् । १. ४२, २. ७० ॥
 ज्येष्ठीप्रधुमणे रक्तमूत्रेण बन्धनम् अनामिकायाम् ॥ कन्यादानाद्
 अनन्तरम् उपाध्यायः कुमारीं हस्ते गृहीत्वा कौतुकगृहान्निर्णयति ।
 शाखायां युगं धारयति । १. २० ॥ दक्षिणतस्तत् पुरुषो धारयति
 कन्याया ललाटप्रदेशे हिरण्यबन्धनम् । १. ४०, ४१ । तदुपरि
 युगच्छिद्रादुदकनिनयनम् ॥ कुमार्या अशमारोहणम् । १. ४७ ॥
 तथा लाजहोमः । २. ६३ ॥ वरेण पाणिग्रहणम् । १. ४८-५२ ॥
 वरः कन्याम् अग्निं त्रिः परिणयति । १. ३६ ॥ समलेखालेखनम् ॥
 तासु बधूमुत्क्रामयति ॥ तल्प उपवेशयति । २. ३१, १. ६० ॥
 उपविष्टायास्तस्याः पादौ सुहृत् प्रक्षालयति ॥ कुमारीकटिवेष्टितं
 योक्त्रं मोचयति । १. ५७, ५८ ॥ तद्योक्त्रे भृत्याः संरभन्ते । ये
 जयन्ति ते बलीयांसो मन्यन्ते ॥ बधूः सर्वोपधीर्वरमूर्ध्नि पलाश-
 पत्रेणावपति । २. ५३-५८ ॥ कुमारीं तल्पेऽपि उत्थापयति । १.
 ५६, ६०, ६२ ॥ इति विवाहः ॥

अथोद्वाहः । तत्र वरस्य गृहे बधून्नयनम् । तद्यथा । बधूवरौ यान-
 मारोहयति । १. ६१, २. ३० ॥ कर्ता अग्रे व्रजति । २. ८, १. ६४ ॥
 दक्षिणेन पादेन प्रक्रामति अध्वानम् । २. ११, १. ३४ ॥ तेनैवाहा
 यद्यन्याप्यूढा तर्हि बधूवस्त्रस्य दशाखण्डं गृहीत्वा चतुष्पथे क्षिप्त्वा
 दक्षिणेन पादेन तदुपरि तिष्ठति तत् प्रायश्चित्तम् । २. ७४ ॥ उभ-
 योरूढयोः शुभकामः सन् जपं कुर्यात् । २. ४६ ॥ अनन्तरा ब्रह्माणम्
 अतिक्रमयतः ॥ यानस्य विनिष्करणम् । २. ४७ ॥ अध्वनि तीर्थं
 आयाते लोष्टं प्रक्षिप्य तत् उत्तरति । २. ६ ॥ महावृक्षेषु दृष्टेषु जपति ।
 २. ६ ॥ बध्वीक्षणार्थं कुट्टु स्त्रीष्वागतासु ताः प्रति जपति ।

२. २८ ॥ द्वैभेदं (सिन्धुसंगमं) दृष्ट्वा जपति । २. ७ ॥ ओषधी-
नदीक्षेत्रवनेषु दृष्टेषु जपति । २. ७ ॥ शमशाने दृष्टे जपति । २. ७३ ॥
अध्वनि सुत्तायां वध्वां प्रबोधयति मन्त्रेण । २. ७५ ॥ वरपितृगृह
आसन्नागते जपति । २. १२ ॥ गृहमागते याने तद् अङ्घ्रि संप्रोच्य
बलीवर्दीं विमोचयति । २. १६ ॥ निष्कृत्यपनोदाय पत्नीशालां
प्रोक्षति । २. १६ ॥ दक्षिणतो गृहपार्श्वे गोमयपिण्डेशमानं स्था-
पयति । १. ४७ ॥ तस्योपरि पलाशस्य यत्पर्णत्रितयं तस्माद्
मध्यमपर्णं गृहीत्वा स्थापति तस्योपरि घृतं घृतस्योपरि चत्वारि
दूर्वाग्राणि तदुपरि वधूं स्थापयति । १. ४७ ॥ तस्माद् वधूं प्रपाद्य
वरगृहे प्रवेशयति । २. २६, १. २१, १. ६३, १. ६४ । पूर्ण-
पात्रेण कुम्भफलेन अक्षतसहितेन प्रवेशः ॥ अग्निं प्रज्वाल्य ततो
हस्तग्रहणं कृत्वा वरो वधूं परिणयति । २. १७, १८ ॥ अग्नि-
सरस्वतीपितृमूर्यादेवमित्रवरुणेभ्यो नमस्कुर्वतीम् अनुमन्त्रयते ।
२. २०, २. ४६ ॥ कश्चिद् रोहितचर्म आहरति । २. २१ । उप-
स्तृतस्य तस्योपरि बन्बजम् उपस्तृणीते तस्योपरि वधूमारोहयति
उपवेशयति च । २. २३ ॥ दक्षिणोत्तरम् उपस्थं कुरुते वधूः ॥
ब्राह्मणायनं कुमारं शुभनामकं तस्या उपस्थ उपवेशयति । २. २४ ॥
कुमाराय फलमोदकादि दत्त्वा तम् उत्थापयति । २. २५ ॥ तेन
भूतेनेत्यादिना वरवध्वौ क्रमेण जुहतः । २. १-५, २. ४५ ॥
संपातान् आनयति । उदपात्रे उत्तरान् संपातान् आनयति । उद-
पात्रं वरवध्वोरञ्ज्योर्निनयति । २. ४५ ॥ तेन भूतेनेति रसान्
संपात्य तान् स्थालीपाकं च जायापती उपसर्पयति । तत एक-
स्मिन् स्थाने स्वजनैः सह उपविश्य मिष्टान्नस्य सहाशनं कुर्यात्
पतिः ॥ तेनैव सूक्तेन यवानाम् आज्यमिश्राणां पूर्णाञ्जलिं जुहोति ॥
इत्युद्राहः ॥

अथ चतुर्थिकाकर्म । तद्यथा । सप्त मर्यादा इति वरो व्रीहीन्

जुहोति विवाहाग्नौ ॥ अक्षयौ नाविति पास्परं वरवध्वावक्षिणी
 अञ्जाते ॥ महीमूष्विति वरवध्वौ खट्वामालम्भयति आचार्यः ।
 आरोहयति । २. ३१ । तत्र च तामुपवेशयति । २. २३ ॥ संवे-
 शयति च । २. ३२ ॥ तौ ब्रह्मेणाच्छादयति ॥ तावभिमुखौ
 करोति । २. ३७ ॥ इहेमाविति । २. ६४ । वरवध्वौ त्रिः संनु-
 दति ॥ मधुघमणिं पिष्ट्वा औक्षे प्रक्षिप्य वधूवरौ परस्परं संगच्छेते ।
 २. ७१, ७२ ॥ ब्रह्म जज्ञानमिति अङ्गष्टेन वरः प्रजननदेशं स्पृ-
 शति ॥ खट्वाया उत्थापयति वरो वधूम् । २. ४३ ॥ अहत-
 वस्त्रं वरवध्वौ परिधापयति आचार्यः । १. ४५ । ५३, ५५ ॥
 वधूसीमन्ते शष्पं निदधाति वरः । १. ५५, ५६ । व्रीहियवौ सीमन्ते
 निदधाति अमन्त्रकम् । दर्भपिञ्जल्या सीमन्तं विचृतति । शण-
 शकलेन वधूकेशान् परिवेष्टयति ॥ सर्वेण काण्डेन आज्यं जुहोति
 वरः । प्रायश्चित्तमेतत् ॥ शुल्कद्रव्यं पृथक् करोति इदं तव इदं
 मामकीयमिति । १. ३२ ॥ वाधूयं वस्त्रं ददतं वरमनुमन्त्रयते ।
 १. २५-३० । आचार्यस्तत् प्रतिगृह्णाति । २. ४१, ४२ ॥ तत्
 स्थाणावासजति । २. ४८ ॥ तद् गृहीत्वा गच्छति । २. ४६ ॥
 तद् वृत्तं प्रतिच्छादयति । २. ५० ॥ सर्वे स्नानं कुर्वन्ति । २. ४५ ॥
 तेन वाधूयेनाच्छादयत्यात्मानमाचार्यः । २. ५१ ॥ नवं वसानः ।
 २. ४४ । इति जपित्वा आचार्यो गृहं गच्छति ॥ कुमार्यो नीय-
 मानायां पितृगृहे रोदने सति जीवं रुदन्ति । १. ४६ । इत्यनया
 यदीमे केशिनः । २. ५६-६२ । इति चतसृभिश्चाज्यं जुहोति ।
 तत् प्रायश्चित्तम् ॥ इति चतुर्थकाकर्म ॥

यह काण्ड विवाहपरक है । इसमें आगे कहे जाने वाले कर्म
 होने हैं । इनमें मन्त्रोंका विनियोग सूत्रकारने प्रयोगके अनुकूल
 ही किया है और कौशिकने इनका दशम अध्यायमें विस्तार-

पूर्वक वर्णन किया है अतः इनको तहाँ ही देखना चाहिये । यहाँ कर्मक्रमका मन्त्रकी समान दिग्दर्शन करा दिया है ॥

सूक्तके आरम्भमें सूर्या नाम वाली सूर्यरूपा जो सविताकी पुत्री देवी है उसके विवाहकी कथा वर्णित है ।

कार्यक्रम इस प्रकार है, कि-पहिले विवाह है, वह कुमारीका पिताके घरमें होता है । “सत्येनोत्तभिते” इन सोलह और प्रथम अनुवाककी तेईसवीं चौबीसवीं इन अठारह ऋचाओंसे आज्य-होम होता है । प्रथम अनुवाककी ३१ वीं ऋचासे शास्त्रोक्त खिचड़ीको कुमारीको प्राशन करावे, हाथमें सम्पुट सकोरा लेकर अनुचरसहित किसी पुरुषको वरके पास भेजे, ब्राह्मणको भेजे ॥ १ । ३४ वीं ऋचासे कुमारीकी रक्षाके लिए पालको प्रेषित करे । १ । ३७ वीं ऋचासे जल लेनेके लिये जावे और जलमें ढला फेंके । १ । ३८ वीं ऋचासे स्नान करे और घटको जलसे भरे । १ । ३९ वीं ऋचासे जल लेजाने वालेको जलपूर्ण घट देय । १ । ४० वीं ऋचासे शाखामें घट बाँधे, उस जलसे सर्वोदकार्य-करण होता है और घृतका होम करे । १ । ४८ वीं ऋचासे कुमारीके केशोंको गूँथे ॥ दूसरे अनुवाककी पैंसठवीं ऋचासे उष्णोदकसे स्नान करावे । प्रथम अनुवाककी पैंतीसवीं और तैंतालीसवीं ऋचासे शीतल जल छिड़के । द्वितीय अनुवाककी छियासठवीं और सरसठवीं ऋचासे वस्त्रसे अंगको स्वच्छ करे और उसको कुमारी पालकके लिये देदेय । प्रथम अनुवाककी पैंतालीसवीं और तरेपनवीं ऋचाओंसे उस वस्त्रको तुंबरदण्डसे ग्रहण करके गोपाटमें डाले, नवीन वस्त्रसे उस (कुमारी) को आच्छादित करे । दूसरे अनुवाककी अड़सठवीं ऋचासे यज्ञोप-वीतकी समान बाधूय वस्त्रको बाँधे, केशप्रलेखन करे । प्रथम अनुवाककी वयालीसवीं और द्वितीय अनुवाककी सत्तरवीं ऋचा

से योक्त्रको कमरमें बाँधे । प्रथम अनुवाककी बीसवीं ऋचासे ज्येष्ठमधुमणिको रक्तसूत्रसे अनामिकामें बाँधे, उपाध्याय कन्या-दानके अनन्तर कुमारीको हाथसे पकड़ कर कौतुकघरसे लेजाय, शाखामें युगको स्थापित करे । प्रथम अनुवाककी ४० वीं और ४१ वीं ऋचासे 'दाहिनी ओरसे पुरुष उसको धारण करे, कन्याके ललाटस्थानमें सुवर्ण बाँधे । प्रथम अनुवाककी सैंतालीसवीं ऋचा से उसके युगच्छिद्रसे जल डाले, कुमारीको पत्थर पर चढ़ावे । दूसरे अनुवाककी तरेसठवीं ऋचासे खीलोंके होमको करे । प्रथम अनुवाककी अड़तालीसवींसे/बावनवीं तककी पाँच ऋचाओंसे वरके द्वारा पाणिग्रहण कराया जाता है । १ । ३६ वीं ऋचासे वर कन्याको तीन बार अग्निकी परिक्रमा करावे । द्वितीय अनुवाक की इकतीसवीं और प्रथम अनुवाककी साठवीं ऋचासे सात रेखाएँ खींचे और उनका वधूसे उत्क्रमण करावे और उसको शय्या पर बैठावे । प्रथम अनुवाककी सत्तावनवीं और अट्ठावनवीं ऋचाओंसे बैठी हुई कुमारीके पादोंको कोई मित्र धो देय और कुमारीकी कमरमें डरसी हुई डोरीको खोल देय । दूसरे अनुवाक की तरेपनसे अट्ठावनवीं तककी ऋचाओंसे उस रस्सीको भृत्य खेंचें, उस समय जो जीत जाते हैं वे बली माने जाते हैं, वधू सर्वौषधियोंको ढाकके पत्तेसे वरके मस्तक पर रखे । प्रथम अनुवाककी ५६, ६० और वासठवीं ऋचाओंसे कुमारीको शय्यापरसे उठावे ॥ यह विवाहका कृत्य पूर्ण हुआ ।

अब उद्वाहके कृत्योंका वर्णन करते हैं, कि-इसमें वरके घरमें वधूको लाया जाता है । यथा-प्रथम अनुवाककी इकसठवीं और द्वितीय अनुवाककी तीसवीं ऋचासे वधू और वरको सवारी पर चढ़ावे । द्वितीय अनुवाककी आठवीं और प्रथम अनुवाककी चौंसठवीं ऋचासे कर्ता आगे चले । द्वितीय अनुवाककी ग्यारहवीं

और प्रथम अनुवाककी चौतीसवीं ऋचासे दाहिने पैरसे रास्ते पर चले । उसीदिन यदि किसी दूसरीका विवाह हुआ हो तो वधूवस्त्र के दशाखण्डको लेकर चौराहेमें डाल देय और उस पर दाहिना पैर रख कर खड़ा होजावे यह उसका प्रायश्चित्त है । दोनोंके ऊढ़ होने पर शुभ चाहता हुआ द्वितीय अनुवाककी छियालीसवीं ऋचाका जप करे । दूसरे अनुवाककी सैंतालीसवीं ऋचासे बीचमेंसे ब्रह्माको छोड़ देय, फिर रथका विनिष्करण होता है । मार्गमें तीर्थ आजावे तो द्वितीय अनुवाककी छियालीसवीं ऋचा से ढलेको डाल कर उतर पड़े यही इसका प्रायश्चित्त है । द्वितीय अनुवाककी नवम ऋचाको महावृत्तोंके दीखने पर जपे । यदि वधूको देखनेके लिये कुट्टक् (नजरलगाने वाली) स्त्रियें आजावें तो दूसरे अनुवाककी नवम ऋचाका जप करे । सिंधुके संगमको देखकर द्वितीय अनुवाककी सातवीं ऋचाका जप करे । औषधि नदी क्षेत्र और वनके दीखने पर दूसरे अनुवाककी सातवीं ऋचाका जप करे । श्मशानके दीखने पर दूसरे अनुवाककी तिहत्तरवीं ऋचाका जप करे । मार्गमें वधूके सोजाने पर दूसरे अनुवाककी पितृहत्तरवीं ऋचासे जगावे । वरके पिताके घरके समीप आने पर दूसरे अनुवाककी बारहवीं ऋचाका जप करे । घरमें यानके आने पर उसको दूसरे अनुवाककी सोलहवीं ऋचा से जलसे प्रोक्षित करके बैलोंको खोल देय । निऋतिको दूर करनेके लिये दूसरे अनुवाककी उन्नीसवीं ऋचासे पत्नीशाला का प्रोक्षण करे । प्रथम अनुवाककी सैंतालीसवीं ऋचासे दाहिनी ओर घरके कोनेमें गोबरके पिण्डे पर पत्थरको स्थापित करे । फिर प्रथम अनुवाककी सैंतालीसवीं ऋचासे उस पत्थर पर पलाशके तीन पत्तोंमेंसे बीचके पत्तेको पकड़ कर स्थापित करे उसके ऊपर घृत रक्खे और घृतके ऊपर चार दूर्वाग्रोंको रक्खे

फिर उन पर वधूको बैठावे । फिर द्वितीय अनुवाककी छब्बीसवीं, प्रथम अनुवाककी इक्कीसवीं तरेसठवीं और चौंसठवीं ऋचाओं से वधूको चला कर वरके घरमें प्रवेश करावे पूर्णपात्रके साथ फलके साथ जिसमें अक्षत भरे हों ऐसे घटके साथ प्रवेश करे । फिर दूसरे अनुवाककी १७ वीं और १८ वीं ऋचाओंसे अग्नि को प्रज्वालित करके वर हाथ पकड़ कर वधूका परिणयन करे । फिर दूसरे अनुवाककी बीसवीं और द्वालीसवीं ऋचाओंसे अग्नि सरस्वती सूर्यादेव मित्र और वरुणके लिये नमस्कार करती हुई पत्नीका अनुमन्त्रण करे । दूसरे अनुवाककी इक्कीसवीं ऋचासे कोई रोहितचर्मको लावे । फिर २ । २३ से उस बिछे हुएके ऊपर बगईको बिछा देय उस पर वधूको चढ़ावे और बैठावे । २ । २४ से वधू दक्खिन उत्तरकी ओर गोद करके बैठे तब ब्राह्मणके घरके किसी शुभ नाम वाले बालकको उसकी गोदीमें बैठावे । फिर २ । २५ से कुमारको मोदक आदि देकर उठावे । फिर वर और वधू दूसरे अनुवाककी पहिलीसे पाँचवीं तककी और पैतालीसवीं ऋचाओंसे क्रमशः आहुति देवें । फिर २ । ४५ से सम्पातोंको लावे, जलपूर्ण पात्रमें उत्तर सम्पातोंको लावे, जलपूर्ण पात्रको वर वधूकी अञ्जलिमें देय । फिर तेन भूतेनसे सम्पातित करके उनको और स्थालीपाकको जायापतीके पास लेजावे । फिर पति एक स्थानमें अपने कुटुम्ब वालोंके साथ बैठ कर मिष्ठान्नका भक्षण करे । फिर इसी सूक्तसे घृतमिश्रित जौंकी पूर्णाहुति देवे ॥ यह उद्गाह हुआ ॥

अब चतुर्थीकर्म चलता है, कि-वर “सप्तमर्यादा” इस पञ्चम काण्डके प्रथम सूक्तकी छठी ऋचासे विवाहाग्निमें धानोंका होम करे । “अक्षयौनाविति” इस सप्तमकाण्डके सैंतीसवें सूक्तसे वर वधू परस्परके नेत्रोंमें सुर्मा डालें । “महीमूषु” इस सप्तमकाण्डके

छठे सूक्तकी दूसरी ऋचासे आचार्य वर वधूको खट्वाका स्पर्श करावे । और २ । अ० ३१ से खट्वा पर चढ़ावे । फिर द्वितीय अनुवाककी तेईसवीं ऋचासे वधूको उस खट्वा पर बैठावे । २ अ० ३२ से भली प्रकार बैठनेको कहे । फिर ७ का० ३८ से उन दोनोंको वस्त्रसे आच्छादित कर देय २ । अ० ३७ से उनको अभिमुख करे । फिर इहेमाविति इस २ अ० ६४ से वर वधूको तीन बार प्रेरणा करे । फिर दूसरे अनुवाककी इकहत्तरवीं और बहत्तरवीं ऋचासे (प्रथम काण्डके चौंतीसवें सूक्तमें वर्णित) मदुघमणिको पीसकर औत्तमें डाल कर वर वधू परस्पर संगमन करें । चतुर्थकाण्डके प्रथम मन्त्र “ब्रह्मजज्ञानम्” से वर अंगुष्ठके द्वारा प्रजननप्रदेशका स्पर्श करे । २ अ० ४३ से वर वधूको खट्वासे उठाता है । प्रथम अनुवाककी ४५ वीं, ५३ वीं और पचपनवीं ऋचाओं से आचार्य विना फटे वस्त्र को वर वधूको आच्छादित करे । प्रथम अनुवाककी ५५ वीं और ५६ वीं ऋचाओंसे वर वधूके सीमन्तमें शष्पको रक्खे फिर वर विना मंत्र पढ़े हुए ही वधूके सीमन्तमें धान और जौंको रक्खे । कुशाओंकी मुट्ठीसे सीमन्तका स्पर्श करे । सनके टुकड़े से वधूके केशोंको बाँधे वर सब काण्डसे घृतकी आहुति देय । यह प्रायश्चित्त है । प्रथम अनुवाककी बत्तीसवीं ऋचासे शुल्कद्रव्यको पृथक् करे, कि—यह तेरा है और यह मेरा है । प्रथम अनुवाककी २५ वीं से तीसवीं तककी पाँच ऋचाओंसे वधूके वस्त्र को देते हुए वरका अनुमन्त्रण करे । द्वितीय अनुवाककी ४१ वीं और ४२वीं ऋचाओंसे आचार्य उसको ग्रहण करे । २ अ० ४८ से उसको स्थाणु पर रक्खे । द्वितीय अनुवाककी ४६ वीं ऋचासे उसको लेकर जावे । द्वितीय अनुवाककी ५० वीं ऋचासे उससे वृत्तको ढके । फिर २ अ० ४५ से सब स्नान करते हैं । द्वितीय अनु-

वाककी इक्यानवीं ऋचासे उस बाधूय वस्त्रसे आचार्य अपनेको आच्छादित करे । “नवं वसानः” इस द्वितीय अनुवाककी चौवालीसवीं ऋचाको जपता हुआ आचार्य अपने घरको प्रस्थान करे । कुमारीके लेजाते समय पितृगृहमें रोदन होने पर “जीवं रुदन्ति” इस प्रथम अनुवाककी छियालीसवीं ऋचासे और “यदीमे केशिनः” इन द्वितीय अनुवाककी उनसठवींसे बासठवीं तककी चार ऋचाओं से घृतकी आहुति देय । यह प्रायश्चित्त है ॥ इति चतुर्थीकर्म ॥

सत्येनोत्तमिता भूमिः सूर्येणोत्तमिता द्यौः ।

ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः १

सत्येन । उत्तमिता । भूमिः । सूर्येण । उत्तमिता । द्यौः ।

ऋतेन । आदित्याः । तिष्ठन्ति । दिवि । सोमः । अधि । श्रितः १

सत्यसे ही पृथ्वी स्थित है, सूर्यसे द्यौ स्थित है, सत्यसे ही सूर्य स्थित हैं और द्यूलोकमें सोम भी सत्यसे ही स्थित है ॥१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।

अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

सोमेन । आदित्याः । बलिनः । सोमेन । पृथिवी । मही ।

अथो इति । नक्षत्राणाम् । एषाम् । उपस्थे । सोमः । आहितः ।

सोमसे आदित्य बलवान् हैं, सोमसे ही यह पृथिवी पूजनीय है, इसी लिये नक्षत्रोंके समीपमें यह सोम स्थित हैं ॥ २ ॥

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिपन्त्योषधिम् ।

सोमं यं ब्रह्माणं विदुर्न तस्यांश्नाति पार्थिवः ॥३॥

२३४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सोमम् । मन्यते । पपि॒श्वान् । यत् । सम्पि॒षन्ति । ओषधिम् ।

सोमम् । यम् । ब्रह्माणः । वि॒दुः । न । तस्य । अ॒श्नाति॒ पार्थिवः ३

जो रासायनिक सोमरूप औषधिको पीस कर पान करते हैं वे समझते हैं, कि-मैंने सोमका पान कर लिया यह अधिदैवत सोमयज्ञ सोम नहीं है, परन्तु मन्त्रवेत्ता जिस सोमको जानते हैं उसको यह साधारण पार्थिव पुरुष नहीं जानते ॥ ३ ॥

यत् त्वा॑ सोम प्र॒पिबन्ति॒ तत् आ॒प्याय॑से पुनः ।

वा॒युः सोम॑स्य र॒क्षिता॑ समा॒नां मास॑ आ॒कृतिः ॥४॥

यत् । त्वा । सोम । प्र॒पिबन्ति । ततः । आ । प्या॒यसे । पुनः ।

वा॒युः । सोम॑स्य । र॒क्षिता । समा॒नाम् । मासः । आ॒कृतिः ॥४॥

हे सोम ! पुरुष आपका पान करते हैं और आप फिर बढ़ जाते हैं सम्बत्सरोंमें मासरूप आकृति वाला अर्थात् सम्बत्सरके प्रत्येक मासमें चलने वाला वायु सोमका रक्षक है ॥ ४ ॥

आ॒च्छद्भि॒धानैर्गु॒पितो॑ बा॒र्हतैः॑ सोम र॒क्षितः॑ ।

ग्रा॒णामिच्छृ॑ण्वन् तिष्ठ॑सि न ते अ॒श्नाति॒ पार्थिवः ५

आ॒च्छत्वि॒धानैः । गु॒पितः । बा॒र्हतैः । सोम । र॒क्षितः ।

ग्रा॒णाम् । इत् । शृ॒ण्वन् । तिष्ठ॑सि । न । ते । अ॒श्नाति॒ पार्थिवः

हे सोम ! आप आच्छद्भिधानोंसे और बृहती छन्दोंसे होने वाले कर्मोंसे रक्षित हैं और सोमाभिषवणके पत्थरसे सुनते हुए ठहरते हैं साधारण पार्थिव प्राणी आपका प्राशन नहीं कर सकता ५

चित्तिरा उपवर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।

द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ६ ॥

चित्तिः । आः । उपऽवर्हणम् । चक्षुः । आः । अभिऽअञ्जनम् ।

द्यौः । भूमिः । कोशः । आसीत् । यत् । अयात् । सूर्या । पतिम्

जिससमय सूर्या पतिके पास गई थी उस समय ज्ञान उपवर्हण हुआ और चक्षु अभ्यञ्जन हुआ था और द्यौ तथा भूमि कोश हुए थे ॥ ६ ॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।

सूर्याया भद्रमिद् वासो गाथयैति परिष्कृता ॥ ७ ॥

रैभी । आसीत् । अनुऽदेयी । नाराशंसी । निऽओचनी ।

सूर्यायाः । भद्रम् । इत् । वासः । गाथया । एति । परिष्कृता ७

मनुष्योंकी प्रशंसा करने वाली न्योचिनी रैभ्या उस समय सूर्याके साथ २ दी गई थी वह गाथाके द्वारा परिष्कृत होकर सूर्या के कन्याणमय वस्त्रको लेकर चलती थी ॥ ७ ॥

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरम् छन्द ओपशः ।

सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८ ॥

स्तोमाः । आसन् । प्रतिऽधयः । कुरीरम् । छन्दः । ओपशः ।

सूर्यायाः । अश्विना । वरा । अग्निः । आसीत् । पुरऽगवः ॥ ८ ॥

उस समय स्तुतियें प्रतिधि थे, छन्द स्त्रीत्वव्यञ्जचिन्ह केश-जाल थे, अश्विनीकुमार सूर्याके वर थे और अग्नि पुरोगव था ८

२३६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सोमो वधूर्युभवदश्विनास्तामुभा वरा ।

सूर्या यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥ ९ ॥

सोमः । वधूऽयुः । अभवत् । अश्विना । आस्ताम् । उभा । वरा ।

सूर्याम् । यत् । पत्ये । शंसन्तीम् । मनसा । सविता । अददात् ९

मनसे पतिके लिये प्रार्थना करती हुई सूर्याको जब सूर्यदेव दे रहे थे उस समय सोम वधूयु हुए और अश्विनीकुमार वर थे ९

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।

शुक्रावनद्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥ १० ॥

मनः । अस्याः । अनः । आसीत् । द्यौः । आसीत् । उत । छदिः ।

शुक्रौ । अनद्वाहौ । आस्ताम् । यत् । अयात् । सूर्या । पतिम्

जिस समय सूर्या पतिको प्राप्त हुई उस समय मन रथ था और द्यौ घर था और वैल श्वेत थे ॥ १० ॥ (१)

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् ।

श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ११ ॥

ऋक्सामाभ्याम् । अभिऽहितौ । गावौ । ते । सामनौ । ऐताम् ।

श्रोत्रे इति । ते । चक्रे इति । आस्ताम् । दिवि । पन्थाः । चराचरः

ऋक् और सामसे अभिहित दो गो-साम आये थे, द्युलोकका जो चराचर मार्ग है उसने उनको तेरे श्रोत्ररूपमें कल्पित किया था ११

शुचीं ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।

अ॒नो॑ म॒न॒स्मय॑ सूर्या॒रोह॑त् प्र॒यती॑ पति॒म् ॥ १२ ॥

शु॒ची॑ इति॒ । ते॒ । च॒क्रे॑ इति॒ । या॒त्याः॑ । वि॒ऽआ॒नः॑ । अ॒क्षः॑ । आ॒ऽह॑तः ।

अ॒नः॑ । म॒न॒स्मय॑म् । सू॒र्या॑ । आ॒ । अ॒रो॒ह॑त् । प्र॒ऽय॒ती॑ । पति॒म् ॥ १२

हे सूर्ये ! तुझ गमन करने वालीके लिये दमकने वाले सूर्य और चन्द्रमाको चक्र बनाया गया था और व्यानको अक्ष बनाया गया था, तब पतिके घर जाती हुई सूर्या मनस्मय रथमें चढ़ी थी ॥ १२

सूर्या॒या॑ व॒हतुः॑ प्रा॒गात् स॒विता॑ य॒मवा॑सृजत् ।

म॒घासु॑ ह॒न्यन्ते॑ गा॒वः॑ फ॒ल्गु॒नीषु॑ व्यु॒ह्यते॑ ॥ १३ ॥

सूर्या॒याः॑ । व॒हतुः॑ । प्र॒ । अ॒गात् । स॒विता॑ । यम् । अ॒व॒ऽसृ॑जत् ।

म॒घासु॑ । ह॒न्यन्ते॑ । गा॒वः॑ । फ॒ल्गु॒नीषु॑ । वि॒ । उ॒ह्य॑ते ॥ १३ ॥

सविताने जिस पदार्थको दिया था वह सूर्याके दहेजके रूपमें गया था । बैल मघा नक्षत्रमें चलाये जाते हैं और फल्गुनी नक्षत्र उनसे रथ खिचवाया जाता है ॥ १३ ॥

यद॑श्चि॒वना॑ पृ॒च्छमा॑ना॒वया॑तं त्रि॒चक्रे॑ण॒ वहतुं॑ सू॒र्यायाः॑

कै॒कं च॒क्रं वा॑मासीत् क॒ दे॒ष्ट्राय॑ त॒स्थथुः॑ ॥ १४ ॥

यत् । अ॒श्चि॒वना॑ । पृ॒च्छमा॑नौ । अ॒यात॑म् । त्रि॒ऽच॒क्रे॑ण॒ । व॒हतु॑म् ।

सूर्या॒याः॑ ।

क्व॒ । एक॑म् । च॒क्रम् । वा॒म् । आ॒सीत् । क्व॒ । दे॒ष्ट्राय॑ । त॒स्थथुः॑

हे अश्विनीकुमारों ! आपके विषयमें पूछा गया था उस समय जब आप त्रिचक्र रथसे सूर्याका वहन करनेके लिये आये थे

२३८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तब तुम्हारा एक चक्र कहाँ था और तुम अपने २ व्यापारमें प्रवृत्त कराने वाले व्यक्तिके पास कहाँ ठहरे थे ॥ १४ ॥

यदयांतं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।

विश्वे देवा अनु तद् वामजानन् पुत्रः पितरमवृणीत

पूषा ॥ १५ ॥

यत् । अयातम् । शुभः । पती इति । वरेऽयम् । सूर्याम् । उप ।

विश्वे । देवाः । अनु । तत् । वाम् । अजानन् । पुत्रः । पितरम् ।

अवृणीत । पूषा ॥ १५ ॥

हे शुभ कामोंके पालक अश्विनीकुमारो ! जब तुम सूर्याको श्रेष्ठ सम्भक्त कर उसके पास वरण करनेके लिये आये उस समय विश्वेदेवताओंने तुमको जाना था और पुंनामक नरकसे रक्षा करने वाले सूर्यने पालकका वरण किया था ॥ १५ ॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।

अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद् विदुः ॥ १६ ॥

द्वे इति । ते । चक्रे इति । सूर्ये । ब्रह्माणः । ऋतुऽथा । विदुः ।

अथ । एकम् । चक्रम् । यत् । गुहा । तत् । अद्धातयः । इत् । विदुः ।

हे सूर्ये ! ब्रह्माण तेरे दोनों चक्रोंको ऋतुके अनुसार जानते हैं, जो तेरा एक चक्र गूढ़ है उसको विद्वान् ही जानते हैं ॥ १६ ॥

(यह सूर्याविवाह साधारण दृष्टिसे देखने पर विचित्र ही मालूम होता है, परन्तु यह गूढार्थक है साधारण विवाहसे इसकी तुलना नहीं की जासकती इसमें कोई आध्यात्मिक तत्त्व छिपा हुआ है) ॥

अ॒र्य॒म॒णं॑ य॒जाम॑हे सु॒बन्धुं॑ प॒ति॒वेद॑नम् ।

उ॒र्वारु॑कमि॒व बन्ध॑नात् प्रेतो मु॒ञ्चामि॑ नामु॒तः ॥ १७ ॥

अ॒र्य॒म॒णम् । य॒जाम॑हे । सु॒बन्धु॑म् । प॒ति॒ऽवेद॑नम् ।

उ॒र्वारु॑कम् इ॒व । बन्ध॑नात् । प्र । इ॒तः । मु॒ञ्चा॒मि । न । अ॒मु॒तः ॥

हम पतिको प्राप्त कराने वाले शोभन बांधवोंसे सम्पन्न रखने वाले अर्यमा देवताकी पूजा करते हैं जैसे ऊर्वारुक (ककड़ी) ढण्ठलसे अलग होजाती है, इसी प्रकार मैं इस कन्याको यहाँसे अलग करता हूँ । किंतु पतिकुलसे अलग नहीं करता हूँ ॥ १७ ॥

प्रेतो मु॒ञ्चामि॑ नामु॒तः सु॒ब॒द्धा॒ममु॑तस्करम् ।

यथे॒यमि॑न्द्र मी॒ढ्वः सु॒पु॒त्रा सु॒भगा॑स॒ति ॥ १८ ॥

प्र । इ॒तः । मु॒ञ्चा॒मि । न । अ॒मु॒तः । सु॒ब॒द्धा॒म् । अ॒मु॒तः । क॒र॒म् ।

यथा । इ॒यम् । इ॒न्द्र । मी॒ढ्वः । सु॒पु॒त्रा । सु॒भगा॑ । अ॒स॒ति १८

मैं (पुरोहित) इसको इस पितृकुलसे अलग करता हूँ पतिकुलसे अलग नहीं करता हूँ, किंतु भली प्रकार सम्बद्ध करता हूँ, हे सेचक इन्द्र ! जिस प्रकार यह सौभाग्यवती और सुपुत्रा हो (तैसा अनुग्रह करिये) ॥ १८ ॥

प्र त्वा॑ मु॒ञ्चामि॑ वरु॒णस्य॑ पा॒शाद् येन॑ त्वाब॑ध्नात्
सवि॒ता सु॒शेवाः॑ ।

ऋ॒तस्य॑ यो॒नौ सु॒कृ॒तस्य॑ लो॒के स्यो॒नं ते॑ अस्तु स॒ह॒
संभ॑लायै ॥ १९ ॥

प्र । त्वा । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । येन । त्वा । अबध्नात् ।

सविता । सुऽशेवाः ।

ऋतस्य । योनौ । सुऽकृतस्य । लोके । स्योनम् । ते । अस्तु ।

सहऽसंभलायै ॥ १९ ॥

सुन्दर सुख देने वाले सूर्यदेवने जिससे तुझको बाँध रक्खा था उस वरुणके पाशसे मैं तुझको मुक्त करता हूँ तुझ मिष्टभाषिणी के लिये सत्यके कारण मिलने वाले सुकृतलोकमें सुख प्राप्त हो १९

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासौ वशिनी त्वं विदथमा

वदासि ॥ २० ॥

भगः । त्वा । इतः । नयतु । हस्तगृह्य । अश्विना । त्वा । प्र ।

वहताम् । रथेन ।

गृहान् । गच्छ । गृहपत्नी । यथा । असः । वशिनी । त्वम् ।

विदथम् । आ । वदासि ॥ २० ॥

सौभाग्यप्रद भग देवता तुझको हाथ पकड़ कर लेजावें अर्थात् तुझको सौभाग्य देवें अश्विनीकुमार रथमें तुझको ले जावें, तू घरको इस प्रकार जावे, कि—तू घरका पालन करने वाली और घरको वशमें रखने वाली रहे और अपने घरमें भाषण करती रहे ॥ २० ॥ (२)

इह प्रियं प्रजोयै ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हिपत्याय
जागृहि ।

ए॒ना प॒त्या त॒न्वं १ सं स्पृ॑श॒स्वाथ जिर्विर्वि॑दथ॒मा
व॒दासि ॥ २१ ॥

इ॒ह । प्रि॒यम् । प्र॒ज्जायै ! ते । सम् । ऋ॒ध्यताम् । अ॒स्मिन् । गृ॒हे ।
गा॒र्ह॒स्प॒त्याय । जा॒गृ॒हि ।

ए॒ना । प॒त्या । त॒न्व॒म् । सम् । स्पृ॑श॒स्व । अथ । जिर्विः । वि॒द॒॒थम् । आ । व॒दा॒सि ॥ २१ ॥

यहाँ पर तेरी प्रजाके लिये प्रिय वस्तुओंकी वृद्धि होती रहे तू इस धारमें गार्हस्पत्य अग्निके लिये सावधान रह, इस पतिसे अपने शरीरका स्पर्श कर और तू घरमें आयुकी समाप्ति तक बोलती रह २१

इ॒हैव स्तं॒ मा वि॒ यौष्टं॒ विश्व॑मायुर्व्य॒श्नुत॑म् ।

क्री॒डन्तौ पु॒त्रैर्न॑प्त॒भिर्मो॑द॒मानौ स्व॑स्त॒कौ ॥ २२ ॥

इ॒ह । ए॒व । स्त॒म् । मा । वि । यौ॒ष्टम् । विश्व॑म् । आ॒युः । वि ।
अ॒श्नु॒तम् ।

क्री॒डन्तौ । पु॒त्रैः । न॑प्त॒भिः । मो॑द॒मानौ । सु॒अ॒स्त॒कौ ॥ २२ ॥

तुम दोनों यहाँ ही रहो, वियुक्त न होओ, सारी आयु भर अनेक प्रकारके भोजन करो, पुत्र और पोतोंके साथ खेलते रहो, प्रसन्न होते रहो और कल्याणसम्पन्न रहो ॥ २२ ॥

पू॒र्वापरं॑ चरतो मा॒ययै॑तौ शि॒शू क्री॑डन्तौ परि॒ यातो॑र्णवम्
वि॒श्वान्यो॑ भुव॒ना वि॒चष्ट॑ ऋ॒तूर॑न्यो वि॒दध॑ज्जायसे नवः

पूर्वऽअपरम् । चरतः । मायया । एतौ । शिशू इति । क्रीडन्तौ ।

परि । यातः । अर्णवम् ।

विश्वा । अन्यः । भुवना । विश्वे । ऋतून् । अन्यः । विश्वधत् ।

जायसे । नवः ॥ २३ ॥

यह सूर्य और चन्द्रमा बालककी समान क्रीड़ा करते हुए पूर्व पश्चिम समुद्रमें जाते हैं, इनमेंसे एक भुवनोंको देखता है और दूसरा ऋतुओंको करता हुआ नवीनरूपमें प्रादुर्भूत होता है २३ नवोनवो भवसि जायमानोहं । केतुरुषसामेष्यग्रम् ।

भागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् प्र चन्द्रमस्तिरसे दीर्घ-
मायुः ॥ २४ ॥

नवऽनवः । भवसि । जायमानः । अहाम् । केतुः । उषसाम् ।
एषि । अग्रम् ।

भागम् । देवेभ्यः । वि । दधासि । आस्यन् । प्र । चन्द्रमः ।
तिरसे । दीर्घम् । आयुः ॥ २४ ॥

हे चन्द्रदेव ! आप प्रतिमासमें होकर नवीन ही नवीन होते हैं आप अपनी कलाओंके हास वृद्धिके कारण प्रतिपदा द्वितीया आदि दिनोंके ज्ञापक हैं और आप उषःकालके समय (सूर्यके) आगे आते हैं और आप आते समय देवताओंको भाग देते हैं और हे चन्द्र ! आप दीर्घायु प्रदान करते हैं ॥ २४ ॥

परां देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।

कृत्यैषा पद्मती भूत्वा जाया विशते पतिम् ॥ २५ ॥

परा । देहि । शाशुन्यम् । ब्रह्मभ्यः । वि । भज । वसु ।

कृत्या । एषा । पत्स्वती । भूत्वा । आ । जाया । विशते । पतिम् ।

यह कृत्या पैरो वाली कृत्यासी पतिमें प्रवेश करती है (अतः हे वर!) आप इस शाशुन्यको दीजिये और ब्राह्मणोंको धन दीजिये नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्यज्यते ।

एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्वन्धेषु बध्यते ॥ २६ ॥

नीललोहितम् । भवति । कृत्या । आसक्तिः । वि । अज्यते ।

एधन्ते । अस्याः । ज्ञातयः । पतिः । बन्धेषु । बध्यते ॥ २६ ॥

यह वस्त्र नीललोहित होता है इसमें कृत्याकी आसक्ति प्रकट होती है (यदि इस वस्त्रको नहीं दिया जाता है तो) इस वधूके समान जाति वाले बांधव तो बढ़ते हैं और पति बंधनमें पड़ता चला जाता है ॥ २६ ॥

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।

पतिर्यद् वध्वो ३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णते ॥ २७ ॥

अश्लीला । तनूः । भवति । रुशती । पापया । अमुया ।

पतिः । यत् । वध्वः । वाससः । स्वम् । अङ्गम् । अभिऽऊर्णते २७

जो पति इस वधूके वस्त्रसे अपने अंगको ढकता है तो इस पापमय कृतिसे उसका शरीर अश्लील होजाता है ॥ २७ ॥

आशसनं विशसनमथा अधिविकर्तनम् ।

२४४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषाजुवादसहित

सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति २८

आशसनम् । विशसनम् । अथो इति । अधिऽविकर्तनम् ।

सूर्यायाः । पश्य । रूपाणि । तानि । ब्रह्मा । उत । शुम्भति २८

आशसन विशसन और विकर्तन-सूर्याके इन रूपोंको देखो इनको ब्रह्मा ही सुशोभित कर सकता है ॥ २८ ॥

तृष्टमेतत् कटुकमपाष्टवद् विषवन्नैतदत्तवे ।

सूर्या यो ब्रह्मा वेद स इद् बाधूयमर्हति ॥ २९ ॥

तृष्टम् । एतत् । कटुकम् । अपाष्टवत् । विषवत् । न । एतत् । अत्तवे ।

सूर्याम् । यः । ब्रह्मा । वेद । सः । इत् । बाधूयम् । अर्हति २९

यह वस्त्र तृषा लगाने वाला है, कटुक है अपाष्टवद् है, और अत्ताके लिये विषकी समान है, जो ब्रह्मा सूर्याको जानता है वह बाधूय वस्त्रके योग्य है ॥ २९ ॥

स इत् तत् स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम् ।

प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति ३०

सः । इत् । तत् । स्योनम् । हरति । ब्रह्मा । वासः । सुमङ्गलम् ।

प्रायश्चित्तिम् । यः । अधिऽएति । येन । जाया । न । रिष्यति ।

जिससे प्रायश्चित्त होता है और जिससे जाया नहीं मरती है उस ही मंगलपद सुखपद वस्त्रको ब्रह्मा धारण करता है ३० (३)

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृत वदन्तावृतोद्येषु ।

ब्रह्म॑णस्पते॒ पति॑मस्यै रोच॑य चारु॑ संभ॒लो वद॑तु वाच॑मे-
ताम् ॥ ३१ ॥

यु॒वम् । भग॑म् । सम् । भ॒रत॑म् । सम्ऽऋ॒द्धम् । ऋ॒तम् । वद॑न्तौ ।
ऋ॒तऽउ॒च्ये॒षु ।

ब्रह्म॑णः । प॒ते । पति॑म् । अ॒स्यै । रो॒चय॑ । चारु॑ । सम्ऽभ॒लः ।
वद॑तु । वाच॑म् । ए॒ताम् ॥ ३१ ॥

तुम दोनों सत्य बोलनेके अवसरों पर सत्य बोलते हुए समृद्धि-
सम्पन्न भाग्यको सम्पादित करो, हे 'ब्रह्मणस्पते ! आप इसके
लिये पतिको पसन्द करिये और वह इस (स्वीकृतिरूपा) वाणी
को अच्छी प्रकार भाषण करता हुआ बोले ॥ ३१ ॥

इहे॑दसाथ॒ न प॑रो ग॒माथे॑मं गा॒वः प्र॒जया॑ वर्ध॒याथ॑ ।
शु॒भं यती॑रु॒स्त्रियाः॑ सोम॑वर्च॒सो वि॒श्वे दे॒वाः क्रन्नि॒ह वो
मना॑ंसि ॥ ३२ ॥

इ॒ह । इत् । अ॒सा॒थ । न । प॒रः । ग॒मा॒थ । इ॒मम् । गा॒वः । प्र॒ज॒या ।
वर्ध॑याथ ।

शु॒भम् । यतीः॑ । उ॒स्त्रियाः॑ । सोम॑वर्च॒सः । वि॒श्वे । दे॒वाः । क्रन् ।
इ॒ह । वः । मना॑ंसि ॥ ३२ ॥

तुम यहाँ बैठो, आगे न जाओ, यह वस्तु है, यह गौएँ हैं, तुम
दोनों प्रजासे बढ़ो, ये कल्याण करने वाली धेनु हैं, विश्वेदेवता
तुम सबके मनोको सोमकी समान कान्ति वाला करें ॥ ३२ ॥

२४६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसाहित

इ॒मं गा॒वः प्र॒जया॑ सं वि॒शा॒थायं॑ दे॒वानां॑ न मि॒नाति॑
भा॒गम् ।

अ॒स्मै वः॑ पू॒षा म॒रुतश्च॑ स॒र्वे अ॒स्मै वो॑ धा॒ता स॒विता॑
सु॒वाति॑ ॥ ३३ ॥

इ॒मम् । गा॒वः । प्र॒जया॑ । स॒म् । वि॒शा॒थ । अ॒यम् । दे॒वाना॑म् ।
न । मि॒नाति॑ । भा॒गम् ।

अ॒स्मै । वः । पू॒षा । म॒रुतः॑ । च । स॒र्वे । अ॒स्मै । वः । धा॒ता ।
स॒विता॑ । सु॒वाति॑ ॥ ३३ ॥

ये गौएँ इसको प्राप्त होवें, यह देवताओंका भाग है इसका बाँट नहीं होसकता, इसके लिये तुमको पूषा और सब मरुत तथा धाता और सविता देवता भी प्रेरित करें ॥ ३३ ॥

अ॒नृ॒क्षरा॑ ऋ॒जवः॑ स॒न्तु प॒न्था॑नो॒ येभिः॑ स॒खा॒यो य॒न्ति॑
नो व॒रे॒यम् ।

सं भ॒गेन॑ स॒म॒र्य॑म्णा सं धा॒ता सृ॒जतु॑ वर्च॒सा ३४
अ॒नृ॒क्षराः॑ । ऋ॒जवः॑ । स॒न्तु । प॒न्थानः॑ । येभिः॑ । स॒खा॒यः । य॒न्ति॑ ।
नः । व॒रे॒यम् ।

स॒म् । भ॒गेन॑ । स॒म् । अ॒र्य॑म्णा । स॒म् । धा॒ता । सृ॒जतु॑ । वर्च॒सा

जिन वरणीय मार्गसमूहोंसे हमारे मित्र जाते हैं, वे मार्ग तुम्हारे लिये सरल और निष्कण्टक होवें, धाता देवता तुमको सौभाग्य, तेज और सूर्यसे भली प्रकार सम्पन्न रखें ॥ ३४ ॥

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।

यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३५ ॥

यत् । च । वर्चः । अक्षेषु । सुरायाम् । च । यत् । आहितम् ।

यत् । गोषु । अश्विना । वर्चः । तेन । इमाम् । वर्चसा । अवतम् ।

जो वर्च फाँसोंमें और सुरामें स्थापित किया गया है और जो वर्च गौओंमें है, हे अश्विनीकुमारों ! उस वर्चसे तुम इसकी रक्षा करो ॥ ३५ ॥

येन महानध्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।

येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसावतम् ॥ ३६ ॥

येन । महानध्न्याः । जघनम् । अश्विना । येन । वा । सुरा ।

येन । अक्षाः । अभ्यषिच्यन्त । तेन । इमाम् । वर्चसा ।

अवतम् ॥ ३६ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जिस वर्चसे जघन महानध्न्या है जिस वर्चसे सुरा और अक्षोंका अभिषेचन हुआ है उस वर्चसे तुम मेरी रक्षा करो ॥ ३६ ॥

यो अनिध्मो दीदयदस्वन्तर्यं विप्रास ईडते अध्वरेषु ।

अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्यावान्

यः । अनिध्मः । दीदयत् । अप्सु । अन्तः । यम् । विप्रासः ।

ईडते । अध्वरेषु ।

२४८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अपा॑म् । नपा॑त् । मधु॑ऽमनीः । अपः॑ । दाः॑ । याभिः॑ । इन्द्रः॑ ।
वृ॒धे । वी॒र्य॑ऽवान् ॥ ३७ ॥

जो प्रज्वलित न होने पर भी जलोंके भीतर हिंसा करता है और ब्राह्मण यज्ञमें जिसकी स्तुति करते हैं जो जलोंका रक्षक है ऐसे हे लोष्ट ! तू मधुमय जलको दे कि-जिससे वीर्यवान् इन्द्र बढ़ता है ॥ ३७ ॥

इ॒दम॑हं रु॒शन्तं॑ ग्रा॒भं त॑नू॒दू॒पिम॑पो॒हामि॑ ।

यो भ॒द्रो रो॑च॒नस्तमु॑द॒चामि॑ ॥ ३८ ॥

इ॒दम् । अ॒हम् । रु॒शन्तम् । ग्रा॒भम् । त॑नू॒दू॒पिम् । अप॑ । ऊ॒हामि॑ ।
यः । भ॒द्रः । रो॒चनः॑ । त॑म् । उ॒त् । अ॒चामि॑ ॥ ३८ ॥

मैं जो ग्राहक हिंसक शरीरको दूषित करने वाला (मल) है उसको दूर करता हूँ और जो कल्याणप्रद कान्ति देने वाला पदार्थ है उसको प्राप्त करता हूँ ॥ ३८ ॥

आ॒स्यै ब्रा॒ह्मणाः॑ स्नप॑नी॒र्हर॑न्त्ववी॒रघ्नी॑रु॒द॒जन्त्वापः॑ ।

अ॒र्य॒म्णो अ॒ग्निं प॑र्ये॒तु पू॒षन् प्र॑ती॒क्षन्ते॑ श्व॒शुरो॑ दे॒वरश्च॑

आ । अ॒स्यै । ब्रा॒ह्मणाः॑ । स्नप॑नीः । ह॒रन्तु॑ । अ॒वीर॑ऽघ्नीः । उ॒त् ।

अ॒जन्तु॑ । आपः॑ ।

अ॒र्य॒म्णः । अ॒ग्निम् । प॑रि । ए॒तु । पू॒षन् । प्र॑ति । ई॒क्षन्ते॑ । श्व॒शुरः॑ ।

दे॒वरः॑ । च ॥ ३९ ॥

ब्राह्मण इसके लिये स्नान कराने वाले जल लावें और वीरों

का हनन न करने वाले जल इसको प्राप्त होवें, हे पूषन् ! यह अर्यमासे अग्निको प्राप्त हो इसके श्वशुर और देवर इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

शं ते हिरण्यं शम् सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्ज्ज्व ।

शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शम् पत्या तन्वं १
सं स्पृशस्व ॥ ४० ॥

शम् । ते । हिरण्यम् । शम् । ऊं इति । सन्तु । आपः । शम् ।
मेथिः । भवतु । शम् । युगस्य । तर्ज्ज्व ।

शम् । ते । आपः । शतपवित्राः । भवन्तु । शम् । ऊं इति । पत्या ।
तन्वम् । सम् । स्पृशस्व ॥ ४० ॥

सुवर्ण तेरे लिये सुखकारी हो, जल तेरे लिये सुखदायक हों
आक्रोश तेरे लिये सुखप्रद हो, और युगका तर्ज्ज्व तेरे लिये सुख-
प्रद हो, सैंकड़ोंको पवित्र करने वाले जल तेरे लिये सुखप्रद हों
और तू कल्याण पाती हुई अपने पतिसे शरीरका स्पर्श
कर ॥ ४० ॥ (४)

खे रथस्य खेनसाः खे युगस्य शतक्रतो ।

अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥

खे । रथस्य । खे । अनसः । खे । युगस्य । शतक्रतो इति शतः शतक्रतो ।

अपालाम् । इन्द्र । त्रिः । पूत्वा । अकृणोः । सूर्यत्वचम् ॥ ४१ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! रथके आकाशमें, गाड़ीके आकाशमें, मैंने

अपालाको तीन बार पवित्र करके सूर्यकी समान त्वचा वालो कर दिया है ॥ ४१ ॥

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।

पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम् ॥ ४२ ॥

आशासाना । सौमनसम् । प्रजाम् । सौभाग्यम् । रयिम् ।

पत्युः । अनुव्रता । भूत्वा । सम् । नह्यस्व । अमृताय । कम् ४२

तू मनकी प्रसन्नताको प्रजाको सौभाग्यको और धनको चाहती हुई पतिके अनुकूल रह अमृतत्वके इस सुखको बाँध ॥ ४२ ॥

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा ।

एवा त्वं सम्राड्येधि पत्युरस्तं परेत्य ॥ ४३ ॥

यथा । सिन्धुः । नदीनाम् । साम्राज्यम् । सुषुवे । वृषा ।

एव । त्वम् । सम्राज्ञी । एधि । पत्युः । अस्तम् । पराड्यत्य ४३

जैसे रत्नोंकी वर्षा करने वाला समुद्र नदियोंके साम्राज्यको भोगता है, इसी प्रकार तू भी पतिके घरमें जाकर सम्राज्ञी बन कर रह ॥ ४३ ॥

सम्राड्येधि श्वशुरेषु सम्राड्युत देवृषु ।

ननान्दुः सम्राड्येधि सम्राड्युत श्वश्र्वाः ॥ ४४ ॥

सम्राज्ञी । एधि । श्वशुरेषु । सम्राज्ञी । उत । देवृषु ।

ननान्दुः । सम्राज्ञी । एधि । सम्राज्ञी । उत । श्वश्र्वाः ४४

तू श्वशुरोंमें साम्राज्ञी बन कर रह, तू देवोंमें साम्राज्ञी बन

कर रह, तू नन्दोंमें साम्राज्ञी बनकर रह और तू सासोंमें साम्राज्ञी बन कर रह ॥ ४४ ॥

या अ॒कृ॒न्त॒न्न॒व॒य॒न् याश्च॑ त॒त्ति॒रे था दे॒वीर॒न्ताँ
अ॒भि॒तो॒द॒द॒न्त ।

तास्त्वा॑ ज॒र॒से सं व्य॑य॒न्त्वा॒युष्म॒ती॒दं परि॑ ध॒त्स्व वासः॑

याः । अ॒कृ॒न्त॒न् । अ॒व॒य॒न् । याः । च । त॒त्ति॒रे । याः । दे॒वीः ।

अ॒न्ता॒न् । अ॒भि॒तः । अ॒द॒द॒न्त ।

ताः । त्वा । ज॒र॒से । सम् । व्य॑य॒न्तु । आ॒यु॒ष्म॒ती । इ॒दम् ।

परि॑ । ध॒त्स्व । वासः॑ ॥ ४५ ॥

जिन स्त्रियोंने इस वस्त्रको काता है बुना है फैलाया है और इनको पूर्ण किया है, वे देवियों तुम्हको बुढ़ापे तक पहुँचावें, हे आयुष्मति ! तू इस वस्त्रको पहिर ॥ ४५ ॥

जी॒वं रु॒द॒न्ति वि॒ न॒य॒न्त्य॒ध्व॒रं दी॒र्घा॒मनु॒ प्रसि॑तिं
दी॒ध्यु॒र्नरः॑ ।

वा॒मं पि॒तृ॒भ्यो य इ॒दं स॒मी॒रि॒रे म॒यः पति॑भ्यो ज॒नये॑
परि॒ष्वजे॑ ॥ ४६ ॥

जी॒वम् । रु॒द॒न्ति । वि । न॒य॒न्ति । अ॒ध्व॒रम् । दी॒र्घा॒म् । अ॒नु ।

प्र॒सि॒तिम् । दी॒ध्युः । न॒रः ।

नामम् । पितृभ्यः । ये । इदम् । सम्ईरिरे । मयः । पतिभ्यः ।

जनये । परिस्वजे ॥ ४६ ॥

जब पुरुष कन्यारूप यज्ञको लेजाते हैं तो पुरुष विशाल सन्तान-
तन्तुरूप कन्याका शोक करने लगता है उस समय इसके घरके
प्राणी उस जीवके लिये रोते हैं, हे बधू ! जो इसको करते हैं वे
पितरोंके लिये वाम करते हैं अत एव तू पालक श्वशुर आदिके
लिये और उत्पादक मातृकुलके लिये अलिंगन कर ॥ ४६ ॥

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेश्मानं देव्याः पृथिव्या
उपस्थे ।

तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता
कृणोतु ॥ ४७ ॥

स्योनम् । ध्रुवम् । प्रजायै । धारयामि । ते । अश्मानम् । देव्याः ।

पृथिव्याः । उपस्थे ।

तम् । आ । तिष्ठ । अनुमाद्या । सुवर्चाः । दीर्घम् । ते । आयुः ।

सविता । कृणोतु ॥ ४७ ॥

मैं इस सुखप्रद ध्रुव पत्थरको पृथ्वीदेवीकी गोदमें स्थापित
करता हूँ, तू सुन्दर कान्ति वाली और प्रसन्न करती हुई इस
पत्थर पर बैठ सविता देवता तेरी आयुको बड़ी करें ॥ ४७ ॥

येनाग्निरस्य भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम् ।

तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिशा मया सह प्रजया च
धनेन च ॥ ४८ ॥

येन । अग्निः । अस्याः । भूम्याः । हस्तम् । जग्राह । दक्षिणम् ।
 तेन । गृह्णामि । ते । हस्तम् । मा । व्यथिष्ठाः । मया । सह । प्र-
 जया । च । धनेन । च ॥ ४८ ॥

जिस आशयसे अग्निदेवने इस भूमिके दाहिने हाथको पकड़ा है उसी भावसे मैं तेरे हाथको पकड़ता हूँ, तू व्यथित न हो मेरे साथ प्रजा और धनके साथ रह ॥ ४८ ॥

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु
 अग्निः सुभगां जातेवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु
 देवः । ते । सविता । हस्तम् । गृह्णातु । सोमः । राजा । सुप्रजसम् ।
 कृणोतु ।

अग्निः । सुभगाम् । जातवेदाः । पत्ये । पत्नीम् । जरत् अष्टिम् ।
 कृणोतु ॥ ४९ ॥

सविता देवता तेरे हाथको ग्रहण करें अर्थात् सविता देवताकी समान मैं तेरे हाथको पकड़ता हूँ, राजा सोम तुम्हको सुन्दर प्रजा बाली करें, जातवेदा अग्नि तुम्हको सौभाग्यवती और पतिके साथ चुड़ापे तक रहने वाली करें ॥ ४९ ॥

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्यां जरदष्टिर्यथासं
 भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गाहं पत्याय देवाः
 गृह्णामि । ते । सौभगत्वाय । हस्तम् । मया । पत्यां । जरत् अष्टिः ।

यथाः । असः ।

भगः । अ॒र्य॒मा । स॒वि॒ता । पु॒र॒म् । अ॒धिः । म॒ह्यम् । त्वा । अ॒दुः ।

गा॒र्ह॒स्प॒त्याय । दे॒वाः ॥ ५० ॥

हे कन्ये ! जिस प्रकार तू मुझ पतिके साथ जुड़ापे तक रहे इस प्रकार मैं तेरे हाथको सौभाग्यके लिये ग्रहण करता हूँ, भगदेवता अर्यमा देवता सवितादेवता और लक्ष्मीने तुझको गृहस्थाश्रमके लिये मुझको दिया है ॥ ५० ॥ (५)

भग॑स्ते ह॒स्त॑मग्रहीत् सवि॒ता ह॒स्त॑मग्रहीत् ।

प॒त्नी त्वम॑सि ध॒र्म॑णा॒हं गृ॒ह॒प॒ति॒स्तव॑ ॥ ५१ ॥

भगः । ते । ह॒स्तम् । अ॒ग्र॒ही॒त् । स॒वि॒ता । ह॒स्तम् । अ॒ग्र॒ही॒त् ।

प॒त्नी । त्वम् । अ॒सि । ध॒र्म॑णा । अ॒हम् । गृ॒ह॒प॒तिः । तव॑ ॥ ५१ ॥

भगदेवताने तेरे हाथको पकड़ा है, सविता देवताने तेरे हाथ को पकड़ा है अर्थात् मेरे रूपमें इन देवताओंने ही तुझ पर अनुग्रह किया है, तू धर्मपूर्वक मेरी पत्नी है और मैं तेरा गृहपति हूँ ५१ ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।

मया॑ प॒त्या प्र॒जाव॑ति सं जी॒व श॒रदः॑ श॒तम् ॥ ५२ ॥

मम॑ । इ॒यम् । अ॒स्तु । पो॒ष्या । म॒ह्यम् । त्वा । अ॒दात् । बृ॒ह॒स्प॒तिः ।

मया॑ । प॒त्या । प्र॒जा॒व॒ति । सम् । जी॒व । श॒रदः॑ । श॒तम् ॥ ५२ ॥

यह मेरी पोष्या हो, बृहस्पतिदेवताने तुझको मुझे दिया है, मुझ पतिके साथ तू प्रजासे सम्पन्न रहती हुई सौ वर्ष तक जीवित रह त्वष्टा वासो व्युदधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्

तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया
त्वष्टा । वासः । विः । अदधात् । शुभे । कम् । बृहस्पतेः । प्रऽशिषा ।
कवीनाम् ।

तेन । इमाम् । नारीम् । सविता । भगः । च । सूर्याम्ऽइव ।
परि । धत्ताम् । प्रऽजया ॥ ५३ ॥

हे शुभे ! बृहस्पतिदेवकी और बुद्धिमानोंकी आज्ञानुसार
त्वष्टाने इस सुखप्रद वस्त्रको बनाया है सविता देवता और भग
देवता सूर्याकी समान इस वस्त्रसे इस नारीको प्रजाके द्वारा पुष्ट
करें ॥ ५३ ॥

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो
अश्विनोभा ।

बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु ५४
इन्द्राग्नी इति । द्यावापृथिवी इति । मातरिश्वा । मित्रावरुणा ।
भगः । अश्विना । उभा ।

बृहस्पतिः । मरुतः । ब्रह्म । सोमः । इमाम् । नारीम् । प्रऽजया ।
वर्धयन्तु ॥ ५४ ॥

इन्द्र अग्नि द्यावापृथिवी वायु मित्र वरुण भग दोनों-अश्विनी-
कुमार बृहस्पति मरुद्गण ब्रह्म और सोम देवता इस नारीको
प्रजासे बढ़ावें ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत् ।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि ॥५५॥

बृहस्पतिः । प्रथमः । सूर्यायाः । शीर्षे । केशान् । अकल्पयत् ।
तेन । इमाम् । अश्विना । नारीम् । पत्ये । सम् । शोभयामसि

हे अश्विनीकुमारों ! देवताओंमें प्रथम बृहस्पतिने सूर्याके शिर
में केशोंको ठीक किया था, हम वस्त्रके द्वारा और बृहस्पतिके
उस कृत्यके अनुसार उस नारीको पतिके लिये सुशोभित करते हैं
इदं तद्रूपं यदवस्त योषां जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम्
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान् विद्वान् वि चर्चर्त

पाशान् ॥ ५६ ॥

इदम् । तत् । रूपम् । यत् । अवस्त । योषां । जायम् । जिज्ञासे ।

मनसा । चरन्तीम् ।

ताम् । अनु । अर्तिष्ये । सखिभिः । नवग्वैः । कः । इमान् ।

विद्वान् । वि । चर्चर्त । पाशान् ॥ ५६ ॥

यह वह रूप है जिसको योषा धारण करती है मैं इस मनमें
विचार करती हुई योषाको जानता हूँ, मैं इसकी नवीन गति
वाली सखियोंके अनुकूल चलूँगा, किस विद्वान्ने इन केशोंको
गुँथा है ॥ ५६ ॥

अहं विष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन् मनसः
कुलायम् ।

न स्तेयमग्निं मनसोदमुच्ये स्वयं श्रद्धनानो वरुणस्य
पाशान् ॥ ५७ ॥

अहम् । त्रि । स्यामि । मयि । रूपम् । अस्याः । वेदत् । इत् ।
पश्यन् । मनसः । कुलायम् ।

न । स्तेयम् । अग्नि । मनसा । उत् । अमुच्ये । स्वयम् । श्रद्धनानः ।
वरुणस्य । पाशान् ॥ ५७ ॥

मैं इसके मनके घरको जानता हुआ और इसके रूपको देखता
हुआ उसको अपनेमें बाँधता हूँ मैं चोरीका उपभोग नहीं करता
हूँ मन लगाकर स्वयं गूँथता हुआ वरुणके पाशोंको खोलता हूँ ५७
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात्
सविता सुशेवाः ।

उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु
प्र । त्वा । मुञ्चामि । वरुणस्य । पाशात् । येन । त्वा । अबध्नात् ।
सविता । सुशेवाः ।

उरुम् । लोकम् । सुगम् । अत्र । पन्थाम् । कृणोमि । तुभ्यम् ।
सहपत्न्यै । वधु ॥ ५८ ॥

सविता देवताने जिस वरुणपाशसे तुझको बाँध दिया था
उस वरुणके पाशसे सुखको देने वाला मैं तुझको छुड़ाता हूँ । हे
वधू ! मैं तुझ पत्नीके साथ विशाल लोकके मार्गको सुगम करता हूँ

उद्येच्छध्वमप रत्नो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात ।
धाता विपश्चित् पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु
प्रजानन् ॥ ५६ ॥

उत् । यच्छध्वम् । अप । रत्नः । हनाथ । इमाम् । नारीम् ।
सुकृते । दधात ।

धाता । विपःश्चित् । पतिम् । अस्यै । विवेद । भगः । राजा ।
पुरः । एतु । प्रजानन् ॥ ५६ ॥

जलप्रदान करिये, रत्नसोंका संहार करिये और इस नारीको
पुण्यमें स्थापित करिये, विद्वान् धाताने इसको पति प्राप्त कराया
है विद्वान् राजा भग इसके सामने आवें ॥ ५६ ॥

भगस्ततत्त चतुरः पादान् भगस्ततत्त चत्वार्युष्पलानि ।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोनु वर्ध्रान्त्सानो अस्तु सुमङ्गली ६०

भगः । ततत्त । चतुरः । पादान् । भगः । ततत्त । चत्वारि ।
उष्पलानि ।

त्वष्टा । पिपेश । मध्यतः । अनु । वर्ध्रान् । सा । नः । अस्तु ।
सुमङ्गली ॥ ६० ॥

भग देवताने इसके चारों पादोंको और चारों उष्पलोंको
तयार किया है और मध्यमें वर्ध्रोंको तयार किया है वह हमें
सुमंगल देने वाली हो ॥ ६० ॥

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।

आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं
कृणु त्वम् ॥ ६१ ॥

सुऽकिंशुकम् । वहतुम् । विश्वऽरूपम् । हिरण्यऽवर्णम् । सुऽवृतम् ।
सुऽचक्रम् ।

आ । रोह । सूर्ये । अमृतस्य । लोकम् । स्योनम् । पतिभ्यः ।
वहतुम् । कृणु । त्वम् ॥ ६१ ॥

हे सूर्ये-बधू ! मनुष्योंको भली प्रकार दमकाने वाले अनेक प्रकारके वर्णसे सम्पन्न, सुखपूर्वक वरण करने योग्य, सुदीप्ति-सम्पन्न दहेज पर तू आरोहण करे और इस जलस्थानकी समान विशाल दहेजको तू श्वशुर सास पति आदि पालकोंके लिये सुखप्रद कर ॥ ६१ ॥

अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते ।

इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमास्मभ्यं सवितर्वह ॥ ६२ ॥

अभ्रातृऽघ्नीम् । वरुण । अपशुऽघ्नीम् । बृहस्पते ।

इन्द्र । अपतिऽघ्नीम् । पुत्रिणीम् । आ । अस्मभ्यम् । सवितः ।
वह ॥ ६२ ॥

हे वरुण ! हे बृहस्पते ! हे इन्द्र ! और हे सविता देव ! आप इस बधूको भ्राता पशु और पतिको क्षति न पहुँचाने वाली और पुत्रोंसे सम्पन्न होने वालीके रूपमें प्राप्त हमें कराइये ॥ ६२ ॥

मा हिंसिष्टं कुमार्यं स्थूणे देवकृते पथि ।

२६० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृणमो वधूपथम् ॥ ६३ ॥

मा । हिंसिष्टम् । कुमार्गम् । स्थूणे इति । देवऽकृते । पथि ।

शालायाः । देव्याः । द्वारम् । स्योनम् । कृणमः । वधूपथम् ६३

हे देव ! देवकृत स्थूण मार्गमें कुमारीका बहन करने वाले रथ को क्षति न पहुँचाइये, हम शालादेवीके द्वार पर वधूके मार्गको सुखदायक बनाते हैं ॥ ६३ ॥

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके
वि राज ॥ ६४ ॥

ब्रह्म । अपरम् । युज्यताम् । ब्रह्म । पूर्वम् । ब्रह्म । अन्ततः ।

मध्यतः । ब्रह्म । सर्वतः ।

अनाव्याधाम् । देवपुराम् । प्रपद्य । शिवा । स्योना । पतिऽ-
लोके । वि । राज ॥ ६४ ॥

प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

ब्राह्मण (वा मंत्र) आगे पीछे भीतर मध्यमें और सब ओर रहें, तू व्याधियोंसे रहित और जिसमें पहिले देवता रहते हैं ऐसी शालाको प्राप्त होकर पतिके घरमें कन्याण करती हुई और सुख देती हुई दमकती रह ॥ ६४ ॥ (६)

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५११)

प्रथम अनुवाक समाप्त ।

तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्या वहतुना सह ।

स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ १ ॥

तुभ्यम् । अग्ने । पति । अवहम् । सूर्याम् । वहतुना । सह ।

सः । नः । पतिभ्यः । जायाम् । दाः । अग्ने । प्रजया । सह १

हे अग्निदेव ! आपके लिये ही पहिले समयमें दहेजके साथ सूर्याको लाये थे, वह आप हम पालकोंको प्रजाके साथ जाया दीजिये ॥ १ ॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।

दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ २ ॥

पुनः । पत्नीम् । अग्निः । अदात् । आयुषा । सह । वर्चसा ।

दीर्घआयुः । अस्याः । यः । पतिः । जीवाति । शरदः । शतम् २

अग्निने हमको आयु और वर्चके साथ पत्नी दी है अब इसका जो पति है वह दीर्घायु हो और सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ २ ॥

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेपरः पतिः ।

तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ३ ॥

सोमस्य । जाया । प्रथमम् । गन्धर्वः । ते । अपरः । पतिः ।

तृतीयः । अग्निः । ते । पतिः । तुरीयः । ते । मनुष्यजाः ॥ ३ ॥

तू पहिले सोमकी जाया हुई फिर गंधर्व तेरा दूसरा रक्षक हुआ अग्नि तेरा तीसरा रक्षक हुआ चौथा मनुष्यसे उत्पन्न हुआ मैं तेरा चौथा पति हूँ ॥ ३ ॥

२६२

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददद्मये ।

रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥ ४ ॥

सोमः । ददत् । गन्धर्वाय । गन्धर्वः । ददत् । अग्नये ।

रयिम् । च । पुत्रान् । च । अदात् । अग्निः । मह्यम् । अथो इति ।

इमाम् ॥ ४ ॥

सोमने गंधर्वको दिया, गंधर्वने तुमको अग्निके अर्पण किया अग्नि-
देवने मुझको इसको तथा धन और पुत्रोंको दिया है ॥ ४ ॥

आ वामगन्तसुमतिर्वाजिनीवसून्यश्विना हत्सु कामा

अरंसत ।

अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्या

अशीमहि ॥ ५ ॥

आ । वाम् । अगन् । सुमतिः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।

नि । अश्विना । हत्सु । कामाः । अरंसत ।

अभूतम् । गोपा । मिथुना । शुभः । पती इति । प्रियाः । अर्यम्णः ।

दुर्यान् । अशीमहि ॥ ५ ॥

हे उषःकालके धनसे सम्पन्न अश्विनीकुमारों ! जो कामनाएँ
तुम्हारे हृदयमें रमण करती रहती हैं वह और तुम्हारी अनुग्रहा-
त्मिका शुभ बुद्धि हमको प्राप्त हो, हे शुभस्पती अश्विनीकुमारों ! तुम
हमारे रक्षक बनो और प्रिय बनो हम सूर्यदेवके प्रतापसे घरोंको भोगें

सा म॒न्द॒सा॒ना म॒न॒सा शि॒वेन॑ र॒यिं धे॑हि॒ सर्व॑वीरं वच॒-
स्य॒म् ।

सु॒गं ती॒र्थं सु॒प्रपा॑णं शु॒भस्प॑ती स्था॒णुं पथि॑ष्ठामप॒ दुर्म॑तिं
हत॒म् ॥ ६ ॥

सा । म॒न्द॒सा॒ना । म॒न॒सा । शि॒वेन॑ । र॒यिम् । धे॒हि । सर्व॑ऽवीरम् ।
वच॒स्य॒म् ।

सु॒गम् । ती॒र्थम् । सु॒प्रपा॑णम् । शु॒भः । प॒ती इति॑ । स्था॒णुम् ।
पथि॑ऽस्थाम् । अप॒ । दुः॒स्प॒तिम् । ह॒तम् ॥ ६ ॥

वह तू कन्याणमय प्रसन्न मनसे सब वीरोंसे सम्पन्न बलप्रद
धनको पुष्ट कर हे शोभन अलंकारको धारण करने वाले अश्विनी-
कुमारों ! तुम इस सुप्रपान तीर्थको सुगम करो मार्गमें स्थित स्थाणु
को और दुर्मतिको नष्ट करो ॥ ६ ॥

या ओष॑धयो॒ या न॒द्योऽ॑ यानि॒ क्षेत्रा॑णि॒ या वना॑ ।
तास्त्वा॑ वधु॒ प्रजा॑व॒र्ती प॒त्ये र॒क्षन्तु॑ र॒क्षसः॑ ॥ ७ ॥

या । ओष॑धयः । याः । न॒द्यः । यानि॑ । क्षेत्रा॑णि । या । वना॑ ।

ताः । त्वा॑ । वधु॑ । प्रजा॑ऽव॒तीम् । प॒त्ये । र॒क्षन्तु॑ । र॒क्षसः॑ ॥ ७ ॥

हे वधु ! जो औषधियें नदियें क्षेत्र और वन हैं वे तुझको प्रजा
से सम्पन्न करें और पतिके लिये राक्षससे रक्षित रखें ॥ ७ ॥

ए॒मं प॒न्थाम॑रुक्षाम सु॒गं स्व॑स्तिवा॒हनम् ।

यस्मि॑न् वी॒रो न रि॑ष्य॒त्यन्ये॑षां वि॒न्दते॑ वसु॒ ॥ ८ ॥

२६४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

आ । इ॒मम् । प॒न्थाम् । अ॒रु॒न्ता॒म् । सु॒ग॒म् । स्व॒स्ति॒वा॒हन॒म् ।

यस्मिन् । वी॒रः । न । रि॒ष्यति । अ॒न्येषा॑म् । वि॒न्दते । वसु ८

कन्याणमय वाहन वाले हम इस सुगम मार्गमें चढ़ते हैं, इस मार्गमें वीर मारा नहीं जाता और दूसरोंके धनको पाता है॥८॥

इ॒दं सु॒ मे॒ नरः॑ शृ॒णुत॑ यया॒शिषा॑ दं॒पती॑ वा॒मम॑श्नुतः ।

ये ग॒न्ध॒र्वा अ॒प्सर॑सश्च दे॒वीरेषु॑ वा॒नस्प॑त्येषु येधि॒ तस्थुः॑ ।

स्यो॒नास्ते॑ अ॒स्यै व॒ध्वै भ॑वन्तु मा हिं॒सिपु॑र्व॒हतु॑मु॒ह्यमा॑नम्

इ॒दम् । सु॒ । मे॒ । नरः॑ । शृ॒णुत॑ । यया॑ । आ॒शिषा॑ । दं॒पती॑ इति॑ ।

दम्पती । वा॒मम् । अ॒श्नुतः॑ ।

ये । ग॒न्ध॒र्वाः । अ॒प्सर॑सः । च॒ । दे॒वीः । ए॒षु । वा॒नस्प॑त्येषु ।

ये । अधि॑ । तस्थुः॑ ।

स्यो॒नाः । ते॒ । अ॒स्यै । व॒ध्वै । भ॑वन्तु । मा । हिं॒सिपुः॑ । व॒हतु॑म् ।

उ॒ह्यमा॑नम् ॥ ६ ॥

हे मनुष्यों ! तुम मेरी इस वाणीको सुनो, कि—जिस आशीर्वाद से दम्पति श्रेष्ठ पदार्थोंको भोग सकेंगे कि—जो इन वनस्पतियोंमें गंधर्व अप्सरा देवी हैं वे इस वधूके लिये सुखप्रद हों और इस ले जाये जाते हुए दहेजको नष्ट न करें ॥ ६ ॥

ये व॒ध्वश्च॒न्द्रं व॑हतुं यद्मा॒ यन्ति॑ ज॒नाँ अनु॑ ।

पुन॒स्तान् य॒ज्ञिया॑ दे॒वा न॑यन्तु यत॒ आग॑ताः १०

ये । ब॒ध्वः । च॒न्द्रम् । ब॒ह॒तुम् । य॒क्ष्माः । य॒न्ति । ज॒नान् । अ॒नु ।

पुनः । तान् । य॒ज्ञियाः । दे॒वाः । न॒यन्तु । यतः । आ॒गताः । १०

जो नाशक कारण बधूको चन्द्रमाकी समान आल्हाद देने वाले दहेजके लिये मनुष्योंकी ओर आरहे हैं, यज्ञिय देवता फिर उनको तहाँ लेजावें, कि-जहाँसे वे आरहे हैं ॥ १० ॥ (७)

मा वि॒दन् परि॒प॒न्थिनो॒ य आ॒सीद॑न्ति दं॒पती ।

सु॒गेन॑ दु॒र्गम॑तीता॒मप॑ द्रान्त्वरा॒तयः॑ ॥ ११ ॥

मा । वि॒दन् । परि॒प॒न्थिनः॑ । ये । आ॒सीद॑न्ति । दं॒पती इति॑
दम्प॑ती ।

सु॒गेन॑ । दुः॒ग्गम् । अ॒ति । इ॒ताम् । अप॑ । द्रान्तु॑ । अ॒रा॒तयः॑ ११

जो डाँकू दम्पतिके पास आना चाहते हैं वे दम्पतीको न पास करें हम सुगमतासे इस दुर्गम मार्गको लाँघ जावें हमारे शत्रु कुत्सित गतिको प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

सं का॒शयामि॑ ब॒हतुं॑ ब्र॒ह्मणा॑ गृ॒हैरघो॑रेण॒ चक्षु॑षा
मि॒त्रिये॑ण ।

पर्या॑णद्धं वि॒श्वरूपं॑ यदस्ति॒ स्योनं॑ पति॒भ्यः स॒विता॑
तत् कृ॑णोतु ॥ १२ ॥

सम् । का॒श॒यामि॑ । ब॒ह॒तुम् । ब्र॒ह्मणा॑ । गृ॒हैः । अघो॑रेण । चक्षु॑षा ।
मि॒त्रिये॑ण ।

२६६

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

परिऽआनद्धम् । विश्वऽरूपम् । यत् । अस्ति । स्योनम् । पतिऽभ्यः ।
सविता । तत् । कृणोतु ॥ १२ ॥

मैं मंत्रके द्वारा ग्रहोंके द्वारा और घोरतारहित मित्रकी समान
स्निग्धता भरे नेत्रके द्वारा दहेजको दीप्त करता हूँ, इसमें जो अनेक
वर्णके पदार्थ हैं सविता देवता उनको पालकोंके लिये सुखप्रद करें
शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश ।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्ध-
यन्तु ॥ १३ ॥

शिवा । नारी । इयम् । अस्तम् । आ । अगन् । इमम् । धाता ।
लोकम् । अस्यै । दिदेश ।

ताम् । अर्यमा । भगः । अश्विना । उभा । प्रजाऽपतिः । प्रजया ।
वर्धयन्तु ॥ १३ ॥

यह कल्याणकारिणी नारी गृहमें आगई है धाताने इसके
लिये यह घररूपलोक निर्दिष्ट किया है ऐसी वधूको अर्यमा
अश्विनीकुमार भग और प्रजापति देवता प्रजासे बढ़ावें ॥ १३ ॥

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन् तस्यां नरो वपत बीज-
मस्याम् ।

सा वः प्रजां जनयद् वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृष-
भस्य रेतः ॥ १४ ॥

आत्मन्ऽवती । उर्वरा । नारी । इयम् । आ । अगन् । तस्याम् ।
नरः । वपत । बीजम् । अस्याम् ।

सा । वः । प्रजाम् । जनयत् । वक्षणाभ्यः । विभ्रती । दुग्धम् ।

ऋषभस्य । रेतः ॥ १४ ॥

यह आत्मन्वती उर्वरा नारी आगई है, हे नर ! तू इसमें बीज को बो, यह ऋषभकी समान तेरे वीर्य और दुग्धको धारण करती हुई वक्षणाओंसे तुम्हारे लिङ्गे प्रजाको उत्पन्न करे ॥ १४ ॥

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति ।

सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् ॥ १५ ॥

प्रति । तिष्ठ । विराट् । असि । विष्णुः इव । इह । सरस्वति ।

सिनीवालि । प्र । जायताम् । भगस्य । सुमतौ । असत् ॥ १५ ॥

हे सरस्वति ! तू प्रतिष्ठित हो तू विष्णुकी समान विराट् है, हे सिनीवालि ! तू भग देवताकी सुमतिमें रह और तुझमें सन्तान उत्पन्न होवे ॥ १५ ॥

उद् व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।

मादुष्कृतौ व्येनसावध्यावशुनमारताम् ॥ १६ ॥

उत् । वः । ऊर्मिः । शम्याः । हन्तु । आपः । योक्त्राणि । मुञ्चत ।

मा । अदुःकृतौ । विऽएनसौ । अध्यावौ । अशुनम् । आ । अरताम्

हे जलों ! जो तुम्हारी कर्मकी लहर है उसको अब शान्त करो, लगामोंको छोड़ दो, ये दुष्कृत रहित और विपाप अतएव न पीटने योग्य वाहन अशुनका आरंभ न करें ॥ १६ ॥

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शुग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः

२६८

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

वीरसू॒र्दे॒वृका॒मा सं त्व॑यै॒धिषी॑महि सु॒मन॒स्यमा॑ना १७

अघोरऽचक्षुः । अपतिऽघ्नी । स्योना । शग्मा । सुऽशेवा । सुऽयमा ।

गृहेभ्यः ।

वीरऽसूः । देवृ॒ऽका॒मा । सम् । त्वया । ए॒धि॒षी॒महि । सु॒ऽमन॒स्यमा॑ना

हे वधु ! तू मनमें प्रसन्न होती हुई, वीर पुत्रोंको उत्पन्न करने के लिये, देवृकामा और स्निग्ध दृष्टि रखती हुई, पतिको क्षति न पहुँचाती हुई सबको वशमें रखती हुई सुखदायिनी बन कर गृहको प्राप्त हो हम तुझसे वृद्धिको प्राप्त होवें ॥ १७ ॥

अदे॒वृध्न्य॑पति॒घ्नीहै॒धि शि॒वा प॒शुभ्यः॑ सु॒यमा॑ सु॒वर्चाः॑ ।

प्रजा॑वती वीरसू॒र्दे॒वृका॒मा स्यो॒नेम॑म॒ग्निं गा॒र्हिप॑त्यं स॒पर्य

अदे॒ऽघ्नी । अपति॑ऽघ्नी । इह । ए॒धि । शि॒वा । प॒शुभ्यः॑ । सु॒यमा॑ ।

सु॒वर्चाः॑ ।

प्रजा॑वती । वीरऽसूः । देवृ॒ऽका॒मा । स्यो॒ना । इ॒मम् । अ॒ग्निम् । गा॒र्हऽप॑त्यम् । स॒पर्य ॥ १८ ॥

तू देवर और पतिको क्षति न पहुँचाती हुई, पशुओंके लिये कल्याणकारिणी रहती हुई, सुन्दर कांतिसे सम्पन्न रहती हुई, नियममें रहती हुई प्रजासे सम्पन्न रहती हुई वीरोंको उत्पन्न करती हुई, सुखदायिनी बनती हुई देवरका हित चाहती हुई इस अग्निकी पूजा कर ॥ १८ ॥

उत्तिष्ठे॒तः कि॒मिच्छ॑न्ती॒दिमा॑गा अ॒हं त्वे॒डे अ॒भिभूः॑ स्वाद् गृहात् ।

शून्यैषी निर्ऋते याजगन्धोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह
रंस्थाः ॥ १६ ॥

उत् । तिष्ठ । इतः । किम् । इच्छन्ती । इदम् । आ । अगाः ।
अहम् । त्वा । ईडे । अभिऽभूः । स्वात् । गृहात् ।

शून्यऽएषी । निःऽऋते । या । आऽजगन्ध । उत् । तिष्ठ । अराते ।
प्र । पत । मा । इह । रंस्थाः ॥ १६ ॥

हे निर्ऋते ! तू यहाँसे उठ, तू किस वस्तुकी चाहनासे यहाँ
आई है, अपने घरसे तिरस्कार करता हुआ मैं तेरा सत्कार करता
हूँ, तू शून्यकी इच्छा करती हुई जो आई है, सो हे शत्रुरूपिणी !
तू उठ, यहाँ रमण न कर ॥ १६ ॥

यदा गार्हपत्यमसंपर्यैत् पूर्वमग्निं वधूरियम् ।

अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु ॥ २० ॥

यदा । गार्हऽपत्यम् । असंपर्यैत् । पूर्वम् । अग्निम् । वधूः । इयम् ।

अध । सरस्वत्यै । नारि । पितृभ्यः । च । नमः । कुरु ॥ २० ॥

गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेसे पहिले यह वधू अग्निकी पूजा कर
रही है, अब हे नारि ! तू सरस्वती देवीके लिये और पितरोंके
लिये प्रणाम कर ॥ २० ॥ (=)

शर्म वर्मैतदा हरस्यै नार्या उपस्तेर ।

सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत् । २१ ॥

शर्म । वर्म । एतत् । आ । हर । अस्यै । नार्यै । उपऽस्तेर ।

सिनीवालि । प्र । जायताम् । भगस्य । सुऽमृतौ । असत् ॥ २१ ॥

इस नारीके लिये आसनरूप मृगचर्ममें कल्याण और रक्षाको ला, यह भग देवताकी प्रसन्तामें रहे अर्थात् सौभाग्यसे सम्पन्न रहे, हे सिनीवालि ! यह सन्तानको उत्पन्न करती रहे ॥ २१ ॥

यं बल्वजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथनं ।

तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् २२

यम् । बल्वजम् । निऽअस्यथ । चर्म । च । उपऽस्तृणीथनं ।

तत् । आ । रोहतु । सुप्रजाः । या । कन्या । विन्दते । पतिम् २२

तुम जिस तृणको रख रहे हो और मृगचर्मको रख रहे हो, उस पर सुन्दर प्रजासे सम्पन्न होने वाली और पतिको प्राप्त होने वाली कन्या आरोहण करे ॥ २२ ॥

उप स्तृणीहि बल्वजमधि चर्मणि रोहिते ।

तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु ॥ २३ ॥

उप । स्तृणीहि । बल्वजम् । अधि । चर्मणि । रोहिते ।

तत्र । उपऽविश्य । सुप्रजाः । इमम् । अग्निम् । सपर्यतु ॥ २३ ॥

रोहितमृगके चर्म पर बल्वजको फैलाओ, उसके ऊपर बैठ कर यह सुप्रजा नारी अग्निकी पूजा करे ॥ २३ ॥

आ रोह चर्मोपसीदामिमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः

आ । रोह । चर्म । उप । सीद । अग्निम् । एषः । देवः । हन्ति ।
रक्षांसि । सर्वा ।

इह । प्रजाम् । जनय । पत्ये । अस्मै । सुज्यैष्ठ्यः । भवत् ।
पुत्रः । ते । एषः ॥ २४ ॥

तू मृगचर्म पर आरोहण कर और इन अग्निदेवके समीप बैठ ।
यह देव सब राक्षसोंका संहार करते हैं, तू इस घरमें पतिके लिये
सन्तानको उत्पन्न कर, यह तेरा पुत्र ज्येष्ठ होगा ॥ २४ ॥

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो
जायमानाः ।

सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नीं प्रति भूषेह देवान् २५
वि । तिष्ठन्ताम् । मातुः । अस्याः । उपस्थात् । नानारूपाः ।
पशवः । जायमानाः ।

सुमङ्गली । उप । सीद । इमम् । अग्निम् । समूष्पत्नी । प्रति ।
भूष । इह । देवान् ॥ २५ ॥

इस माताकी मोदीसे अनेक प्रकारके जीव प्रकट होकर इसमें
बैठें, हे सुमंगली ! तू इन अग्निदेवके समीप बैठ और इन सब
देवताओंको अलंकृत कर ॥ २५ ॥

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ २६ ॥

सुमङ्गली । प्रतरणी । गृहाणाम् । सुशेवा । पत्ये । श्वशुराय ।
शम्भूः ।

स्यो॒ना । श्व॒श्वै । प्र । गृ॒हान् । वि॒श । इ॒मान् ॥ २६ ॥

तू सुमंगली और घरको चलाने वाली, पतिके लिये सुख देने वाली और श्वशुरके लिये कल्याणकारिणी और सासको सुख देने वाली रहती हुई उस घरमें प्रवेश कर ॥ २६ ॥

स्यो॒ना भ॒व श्व॒शुरे॒भ्यः स्यो॒ना प॒त्ये गृ॒हेभ्यः ।

स्यो॒नास्यै॑ सर्व॑स्यै॑ वि॒शे स्यो॒ना पु॒ष्टायै॑षां भव ॥ २७ ॥

स्यो॒ना । भ॒व । श्व॒शुरे॒भ्यः । स्यो॒ना । प॒त्ये । गृ॒हेभ्यः ।

स्यो॒ना । अ॒स्यै । सर्व॑स्यै॑ । वि॒शे । स्यो॒ना । पु॒ष्टाय । ए॒षाम् । भ॒व

तू श्वशुरोंके लिये कल्याणकारिणी रह, पतिके लिये और घरके लिये सुखद रह, सब प्रजाको सुख देती रह और इनकी पुष्टिके लिये इनको सुखदायिनी हो ॥ २७ ॥

सु॒मङ्ग॒लीरि॒यं वधू॑रिमां॒ समे॒त पश्य॑त ।

सौ॒भा॒ग्यम॒स्यै द॒त्त्वा दौ॒र्भा॒ग्यैर्वि॒परे॑तन ॥ २८ ॥

सु॒मङ्ग॒लीः । इ॒यम् । वधूः । इ॒माम् । स॒मू॒एत॑ । पश्य॑त ।

सौ॒भा॒ग्यम् । अ॒स्यै । द॒त्त्वा । दौ॒र्भा॒ग्यैः । वि॒परे॑तन ॥ २८ ॥

यह वधू सुमंगली है, मिल कर आओ, इसको देखो, इसको सौभाग्य देकर दौर्भाग्योंको ले जाओ ॥ २८ ॥

या दु॒र्हा॒र्दो यु॒वत॑यो याश्च॒ह ज॑रतीरपि ।

व॒र्चो न्व॑स्यै॒ सं द॒त्ताथास्तं॑ वि॒परे॑तन ॥ २९ ॥

याः । दुः॒हा॒र्दः । यु॒वत॑यः । याः । च । इ॒ह । ज॑रतीः । अ॒पि

वर्चः । जु । अस्यै । सम् । दत्त । अय । अस्तम् । विऽपरेतन २६

जो दूषित हृदय वाली स्त्रियें हैं और जो बूढ़ी स्त्रियें हैं वे इसके लिये तेज देकर अपने घरको लौट जावें ॥ २६ ॥

रुक्मप्रस्तरणं वहां विश्वा रूपाणि विभ्रतम् ।

आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम् ३०

रुक्मऽप्रस्तरणम् । बह्यम् । विश्वा । रूपाणि । विभ्रतम् ।

आ । आरोहत् । सूर्या । सावित्री । बृहते । सौभगाय । कम् ३०

मनको रुचने वाले बिछौने वाले अनेक प्रकारके रूपोंको धारण करने वाले इस विशाल (पलंग) पर सूर्यकी पुत्री सूर्याने सुख पानेके लिये आरोहण किया था ॥ ३० ॥ (९)

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।

इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति

जागरासि ॥ ३१ ॥

आ । रोह । तल्पम् । सुमनस्यमाना । इह । प्रजाम् । जनय ।

पत्ये । अस्मै ।

इन्द्राणीऽइव । सुबुधा । बुध्यमाना । ज्योतिःऽअग्राः । उषसः । प्रति ।

जागरासि ॥ ३१ ॥

तू प्रसन्न मनसे इस शय्या पर आरोहण कर और इस पतिके लिये यहाँ प्रजाको उत्पन्न कर तू इन्द्राणीकी समान बुद्धिसे सम्पन्न रहकर समझती रह और पत्येक उषःकालमें जागती रह

दे॒वा अ॒ग्रे न्य॒प॒द्यन्त॒ पत्नीः॑ स॒म॒स्पृ॒शन्त॒ तन्व॒स्त॒नूभिः॑ ।
सूर्ये॑व॒ नारि॑ विश्वरूपा महि॒त्वा प्र॒जाव॑ती॒ पत्या॒ सं
भवे॒ह ॥ ३२ ॥

दे॒वाः । अ॒ग्रे । नि । अ॒प॒द्यन्त॒ । प॒त्नीः । स॒म् । अ॒स्पृ॒शन्त॒ ।
तन्व॑ः । त॒नूभिः ।

सूर्या॑ऽइव । ना॒रि । वि॒श्वऽरू॒पा । महि॑ऽत्वा । प्र॒जाऽव॑ती । प॒त्या ।
स॒म् । भ॒व । इ॒ह ॥ ३२ ॥

देवताओंने भी पहिले (इसी प्रकार पर्यंक पर) आरोहण किया था और अपने अंगोंको पत्नीके अंगोंसे स्पर्श कराया था, हे नारी ! तू विश्वरूपा सूर्याकी समान अपनी महिमासे पतिके साथ रह और प्रजासम्पन्न रह ॥ ३२ ॥

उत्तिष्ठ॑तो॒ विश्वा॑वसो नम॑से॒डामहे॒ त्वा ।
जा॒मिमि॑च्छ॒ पितृ॑षदं न्य॒क्तां स ते॑ भा॒गो ज॒नुषा॑
तस्य॑ वि॒द्धि ॥ ३३ ॥

उत् । तिष्ठ । इतः । वि॒श्व॒व॒सो इति॑ वि॒श्वऽव॑सो । नम॑सा । ई॒डा॒
महे॑ । त्वा ।

जा॒मिम् । इ॒च्छ । पि॒तृ॒ष॒दम् । नि॒अ॒क्ताम् । सः । ते । भा॒गः ।
ज॒नुषा॑ । तस्य॑ । वि॒द्धि ॥ ३३ ॥

हे विश्ववसो ! यहाँसे उठ, हम प्रणामके द्वारा तेरा सत्कार

करते हैं, पिताके घर जाती हुई जामिनकी इच्छा कर वही तेरा भाग है उसके प्रादुर्भावको तू जान ॥ ३३ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वतुना
कृणोमि ॥ ३४ ॥

अप्सरसः । सधमादम् । मदन्ति । हविःस्थानम् । अन्तरा ।
सूर्यम् । च ।

ताः । ते । जनित्रम् । अभि । ताः । परा । इहि । नमः । ते ।
गन्धर्वश्चतुना । कृणोमि ॥ ३४ ॥

अप्सरायें, जहाँ प्राणी साथ २ प्रसन्न होते हैं उस स्थानमें हविर्धानके समय और सूर्यके समय वर्षमें भर जाती हैं, वह तेरे प्रकट होनेका स्थान है उनको ही तू प्राप्त हो, तेरे लिये प्रणाम है मैं तुम्हें गन्धर्वोंके गमनके साथ भेजता हूँ ॥ ३४ ॥

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुसे च कृणमः
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोभि जाया अप्सरसः परेहि
नमः । गन्धर्वस्य । नमसे । नमः । भामाय । चक्षुषे । च । कृणमः ।
विश्ववसो इति विश्ववसो । ब्रह्मणा । ते । नमः । अभि ।

जायाः । अप्सरसः । परा । इहि ॥ ३५ ॥

गन्धर्वकी हविके लिये प्रणाम है और हम उनके क्रोधमें भरे हुए नेत्रके लिये भी प्रणाम करते हैं, हे विश्वावसो ! आप मंत्रशक्ति

२७६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

के कारण और प्रणामोंके कारण इस स्त्रीको अप्सराओंसे दूर रखिये ॥ ३५ ॥

रा॒या व॒यं सु॒मन॑सः स्या॒मो॒दि॒तो ग॑न्धर्व॒मावी॑वृताम ।

अ॒गन्त॑स दे॒वः पर॑मं स॒धस्थ॑मगन्म॒ यत्र॑ प्र॒तिर॑न्त॒ आयुः॑

रा॒या । व॒यम् । सु॒ऽमन॑सः । स्या॒म । उ॒त् । इ॒तः । ग॒न्धर्व॑म् । आ ।

अ॒वी॒वृ॒ताम॑ ।

अ॒गन् । सः । दे॒वः । पर॑मम् । स॒धऽस्थ॑म् । अ॒गन्म॑ । य॒त्र ।

प्र॒ऽति॒रन्ते॑ । आ॒युः ॥ ३६ ॥

हम प्रसन्नाके देने वाले हों, यहाँसे हम गंधर्वोंको ऊपरको भेजते हैं, वह देव परम सधस्थको प्राप्त होगया है और हम भी जहाँ आयु विस्तीर्ण होती है उस स्थान पर पहुँच गए हैं ॥ ३६ ॥

सं पि॒तरा॑वृ॒त्त्विये॑ सृ॒जेथां॑ मा॒ता पि॒ता च॒ रेत॑सो भ॒वाथः॑

म॒र्य इ॒व योषा॑मधि॒रोह॑यैनां प्र॒जां कृ॑णवा॒थामि॒ह पु॑ण्यतं

रयि॑म् ॥ ३७ ॥

सम् । पि॒तरौ । ऋ॒त्त्विये॑ इति । सृ॒जे॒थाम् । मा॒ता । पि॒ता । च॒ ।

रेत॑सः । भ॒वा॒थः ।

म॒र्यऽइ॒व । योषा॑म् । अधि॑ । रो॒हय॑ । ए॒नाम् । प्र॒जाम् । कृ॒णवा॒-

थाम् । इ॒ह । पु॒ण्य॒तम् । र॒यिम् ॥ ३७ ॥

तुम दोनों माता पिता बननेके लिये ऋतुकालमें सक्त हुआ करना, तुम वीर्यके द्वारा माता पिता बनो, जैसे मनुष्य स्त्री पर

आरोहण करते हैं इस प्रकार आप इस स्त्री पर आरोहण करिये,
तुम दोनों प्रजाको उत्पन्न करो और धनको पुष्ट करो ॥ ३७ ॥
तां पूषं छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेषः
ताम् । पूषन् । शिवस्तमाम् । आ । ईरयस्व । यस्याम् । बीजम् ।

मनुष्याः । वपन्ति ।

या । नः । ऊरू इति । उशती । विश्रयाति । यस्याम् । उशन्तः । प्र-
हरेम । शेषः ॥ ३८ ॥

हे पूषन् ! जिसमें मनुष्य बीजका वपन करते हैं उस कल्याण-
कारिणी स्त्रीको प्रेरित करिये, जो कामना करती हुई ऊरुओंका
विश्रयण करे और हम भी कामना करते हुए जिसमें शेषका
प्रहार करें ॥ ३ ॥

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परिष्वजस्व जायां सुमन-
स्यमानः ।

प्रजां कृणवाथामिह मोदमानौ दीर्घ वामायुः सविता
कृणोतु ॥ ३९ ॥

आ । रोह । ऊरुम् । उप । धत्स्व । हस्तम् । परि । स्वजस्व ।
जायाम् । सुमनस्यमानः ।

प्रजाम् । कृणवाथाम् । इह । मोदमानौ । दीर्घम् । वाम् । आयुः ।
सविता । कृणोतु ॥ ३९ ॥

२७८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तू ऊरु पर आरोहण कर, हाथको पकड़ और मनमें प्रसन्न होता हुआ जायाका आलिंगन कर। तुम दोनों मोदमें भर कर प्रजाको करो, सविता देवता तुम दोनोंकी आयुको बढ़ी करें ३६ आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समन-
क्त्वर्यमा ।

अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे
शं चतुष्पदे ॥ ४० ॥

आ । वाम् । प्रजाम् । जनयतु । प्रजापतिः । अहोरात्राभ्याम् ।
सम् । अनक्तु । अर्यमा ।

अदुःस्मङ्गली । पतिः लोकम् । आ । विशम् । इमम् । शम् । नः । भव ।
द्विपदे । शम् । चतुःस्पदे ॥ ४० ॥

प्रजापति तुम दोनोंके लिये प्रजाको प्रकट करें और अर्यमा देवता तुमको दिन और रात्रिसे मिलाते रहें, हे वधू ! तू दुर्मङ्गलों से रहित रहती हुई पतिके घरमें प्रवेश कर तू दो पैर वाले भृत्य संबंधी आदिके लिये और चौपाये गौ आदिके लिये सुख देने वाली हो ॥ ४० ॥ (१०)

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद् बाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद् रक्षांसि तल्पानि
हन्ति ॥ ४१ ॥

देवैः । दत्तम् । मनुना । साकम् । एतत् । बाधूऽयम् । वासः ।
वध्वः । च । वस्त्रम् ।

यः । ब्रह्मणे । चिकितुषे । ददाति । सः । इत् । रक्षांसि ।
तल्पानि । हन्ति ॥ ४१ ॥

मनुजीसहित देवताओंने इस वाधूय वस्त्रको दिया था, जो
विद्वान् ब्राह्मणके लिये इस वधूके वस्त्रको देता है, वह खट्वा-
संबंधी राक्षसोंका संहार करता है ॥ ४१ ॥

यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम् ।
युवं ब्रह्मणेनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम् ४२
यम् । मे । दत्तः । ब्रह्मऽभागम् । वधूऽयोः । वाधूऽयम् । वासः ।
वध्वः । च । वस्त्रम् ।

युवम् । ब्रह्मणे । अनुऽमन्यमानौ । बृहस्पते । साकम् । इन्द्रः ।
च । दत्तम् ॥ ४२ ॥

जो वरका वाधूय वस्त्र और वधूका वस्त्र ब्रह्मभाग समझ
कर मुझको दिया गया है, सो हे बृहस्पते ! तुम और इन्द्र दोनों
ही ब्रह्माकी अनुमतिसे मुझे इसको दे चुके हो ॥ ४२ ॥

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ४३
स्योनात् । योनेः । अधि । बुध्यमानौ । हसामुदौ । महसा । मोद-
मानौ ।

सुगू इति सुगू । सुपुत्रौ । सुगृहौ । तराथः । जीवौ । उषसः ।
विऽभातीः ॥ ४३ ॥

हम दोनों सुखपद कारणसे बोधको प्राप्त हों, हास्यसे मोदको प्राप्त होवें, महत्त्वसे मोदको प्राप्त होवें, सुन्दर चालसे चलते रहें, सुन्दर पुत्रसे सम्पन्न रहें, हम दोनों जीव दमकती हुई उषाओं को तरते रहें ॥ ४३ ॥

नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उपसो विभातीः ।

आण्डात् पतत्रीवामुक्ति विश्वस्मादेनसस्परि ॥ ४४ ॥

नवम् । वसानः । सुरभिः । सुवासाः । उत्स्रगागाम् । जीवः । उपसः । विभातीः ।

आण्डात् । पतत्रीऽइव । अमुक्ति । विश्वस्मात् । एनसः । परि ४४

नवीन सुगंधित सुन्दर वस्त्रको धारण करता हुआ मैं दमकते हुए उषःकालोंको जीवित रहता हुआ प्राप्त करूँ, जैसे आण्डेसे पत्नी छूट जाता है इसी प्रकार मैं सकल पापसे मुक्त हो जाऊँ ४४

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते ।

आपः सप्त सुसुबुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ४५ ॥

शुम्भनी इति । द्यावापृथिवी इति । अन्तिसुम्ने इत्यन्तिसुम्ने । महिव्रते इति महिऽव्रते ।

आपः । सप्त । सुसुबुः । देवीः । ताः । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ४५

द्यावापृथिवी परमशोभायुक्त हैं, उनके मध्यमें चेतन और अचेतन अज्ञानावृत प्राणी रहते हैं, इनका कर्म विशाल है, ये तथा बहने वाले सात प्रकारके जल हमको पापसे मुक्त करें ॥ ४५ ॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।

ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥ ४६ ॥

सूर्यायै । देवेभ्यः । मित्राय । वरुणाय । च ।

ये । भूतस्य । प्रचेतसः । तेभ्यः । इदम् । अकरम् । नमः ॥ ४६ ॥

सूर्याके लिये देवताओंके लिये, मित्रके लिये, वरुणके लिये, जो भूतसंघके जानने वाले हैं, उनके लिये मैं यह प्रणाम करता हूँ

य ऋते चिदभिश्चिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।

संधाता संधिं मघवां पुरुवसुर्निष्कर्ता विहुतं पुनः ॥

यः । ऋते । चित् । अभिश्चिषः । पुरा । जत्रुभ्यः । आतृदः ।

सम्धाता । सम्धिम् । मघवा । पुरुवसुः । निःकर्ता ।

विहुतम् । पुनः ॥ ४७ ॥

जो अभिश्चिष्के बिना पहिले जत्रुओंके निमित्त आतर्दन कर देता है जो मघवा संधिको जोड़ने वाला है, पुरुवसु है विहुतका फिर निष्करण करने वाला है ॥ ४७ ॥

अपास्मत् तम उच्चतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत्

निर्दहनी या पृषातक्यस्मिन् तां स्थाणावध्या संजामि

अप । अस्मत् । तमः । उच्चतु । नीलम् । पिशङ्गम् । उत । लोहि-

तम् । यत् ।

निःदहनी । या । पृषातकी । अस्मिन् । ताम् । स्थाणौ । अधि ।

आ । संजामि ॥ ४८ ॥

जो नील पिशंग और लोहित धूम्र है वह हमारे पाससे दूर होजावे, जो भस्म करने वाली पृषातकी है उसको हम स्थाणुमें संपृक्त करते हैं ॥ ४८ ॥

याव॑तीः कृ॒त्या उप॒वास॑ने याव॑न्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः
व्यृ॒द्धयो॒ या अस॑मृद्धयो॒ या अस्मिन् ता॒ स्था॒णावधि॑
सादयामि ॥ ४९ ॥

याव॑तीः । कृ॒त्याः । उप॒ऽवास॑ने । याव॑न्तः । राज्ञः । वरुणस्य ।
पाशाः ।

वि॒ऽऋद्धयः । याः । अस॑मृद्धयः । याः । अस्मिन् । ताः ।

स्था॒णौ । अधि॑ । सा॒द॒या॒मि ॥ ४९ ॥

उपवासनमें जितनी कृत्याएँ हैं और राजा वरुणके जितने पाश हैं और व्यृद्धि वा असमृद्धि हैं उनको हम स्थाणुमें स्थापित करते हैं या मे प्रियतमा तनूः सा मे विभाय वाससः ।

तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम ॥

या । मे । प्रि॒य॒ऽत॒मा । त॒नूः । सा । मे । वि॒भा॒य । वा॒स॒सः ।

तस्य । अग्र । त्वम् । व॒न॒स्प॒ते । नी॒विम् । कृ॒णु॒ष्व । मा । व॒यम् ।

रिषाम ॥ ५० ॥

जो मेरा प्रिय शरीर है वह वस्त्रसे दमकता रहे, हे वनस्पते ! तू उसके आगे नीविको कर, हम नष्ट न होवें ॥ ५० ॥ (११)
ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।

वासो यत् पत्नीभिर्लुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ५१

ये । अन्ताः । यावतीः । सिचः । ये । ओतवः । ये । च । तन्तवः ।

वासः । यत् । पत्नीभिः । उतम् । तत् । नः । स्योनम् । उप ।

स्पृशात् ॥ ५१ ॥

जो किनारे हैं, जितने सिच हैं, जितने ओतु और तन्तु हैं और जिस वस्त्रको पत्नियोंने बुना है वह सुखदायक होता हुआ हमारा स्पर्श करे ॥ ५१ ॥

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ।

अव दीक्षामसृजत स्वाहा ॥ ५२ ॥

उशतीः । कन्यलाः । इमाः । पितृलोकात् । पतिम् । यतीः ।

अव । दीक्षाम् । असृजत । स्वाहा ॥ ५२ ॥

पिताके घरसे पतिके यहाँ जाती हुई ये कामना करती हुई कन्याएँ दीक्षाको छोड़ती हैं, यह आहुति स्वाहुत हो ॥ ५२ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।

वर्चो गोषु प्रविष्टं यत् तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५३ ॥

बृहस्पतिना । अवसृष्टाम् । विश्वे । देवाः । अधारयन् ।

वर्चः । गोषु । प्रविष्टम् । यत् । तेन । इमाम् । सम् । सृजामसि ॥

बृहस्पतिके द्वारा छोड़ी हुई इस औषधिको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है उसको हम गौओंमें प्रविष्ट वर्चके द्वारा संयुक्त करते हैं

बृहस्पतिना० ।

तेजो गोषु प्रविष्टं यत् तेन० ॥ ५४ ॥

०॥ तेजः । गोषु । प्रविष्टम् । यत् । तेन । ० ॥ ५४ ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इस औषधिको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है उसको हम गौओंमें प्रविष्ट तेजके द्वारा संयुक्त करते हैं ५४

बृहस्पतिना० ।

भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेन० ॥ ५५ ॥

०॥ भगः । गोषु । प्रविष्टः । यः । तेन । ० ॥ ५५ ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इस औषधिको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है उसको हम गौओंमें प्रविष्ट सौभाग्यके द्वारा पुष्ट करते हैं

बृहस्पतिना० ।

यशो गोषु प्रविष्टं यत् तेन० ॥ ५६ ॥

०॥ यशः । गोषु । प्रविष्टम् । यत् । तेन । ० ॥ ५६ ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इस औषधिको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है उसको हम गौओंमें प्रविष्ट यशके द्वारा संयुक्त करते हैं ५६

बृहस्पतिना० ।

पयो गोषु प्रविष्टं यत् तेन० ॥ ५७ ॥

०॥ पयः । गोषु । प्रविष्टम् । यत् । तेन । ० ॥ ५७ ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इसको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है इसको हम गौओंमें प्रविष्ट पयके द्वारा संयुक्त करते हैं ॥ ५७ ॥

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् ।

रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥ ५८ ॥

बृहस्पतिना । अवऽसृष्टाम् । विश्वे । देवाः । अधारयन् ।

रसः । गोषु । प्रऽविष्टः । यः । तेन । इमाम् । सम् । सृजामसि ॥

बृहस्पतिके द्वारा अवसृष्ट इसको विश्वेदेवताओंने पुष्ट किया है
इसको गौओंमें हम प्रविष्ट रसके द्वारा संयुक्त करते हैं ॥ ५८ ॥

यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन

कृण्वन्तोऽघम् ।

अग्निष्ठा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् ॥ ५९ ॥

यदि । इमे । केशिनः । जनाः । गृहे । ते । सम्ऽअनर्तिषुः । रोदेन ।

कृण्वन्तः । अघम् ।

अग्निः । त्वा । तस्मात् । एनसः । सविता । च । प्र । मुञ्चताम् ॥

यह जो केश वाले पुरुष तेरे घरमें (कन्यागमनसे अघ करते
हुए अर्थात् दुःख पाते हुए रोकर घूमे हैं, उस पापसे अग्निदेवता
तुझको मुक्त करें ॥ ५९ ॥

यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्य-

१ घम् ।

अग्निष्ठा० ॥ ६० ॥

यदि । इयम् । दुहिता । तव । विऽकेशी । अरुदत् । गृहे । रोदेन ।

कृण्वती । अघम् ॥० ॥ ६० ॥

२८६

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

यह जो तेरी पुत्री केशोंको बखेर कर रोदनके द्वारा दुःखको फैलाती हुई रोई है उस पापसे अग्निदेवता और सवितादेवता तुझको मुक्त करें ॥ ६० ॥ (१२)

यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वती-

रघम् ।

अग्निष्ट्वा० ॥ ६१ ॥

यत् । जामयः । यत् । युवतयः । गृहे । ते । समऽनर्तिषु । रोदेन ।

कृण्वतीः । अघम् ॥० ॥ ६१ ॥

जो तेरी बहिनें और युवतियें रोदनके द्वारा घरमें दुःख फैलाती हुई घूमी हैं उस पापसे अग्निदेव और सविता-देव तुझको मुक्त करें

यत् ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निश्चितमघकृद्भिरघं

कृतम् ।

अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम् । ६२ ।

यत् । ते । प्रऽजायाम् । पशुषु । यत् । वा । गृहेषु । निऽस्थितम् ।

अघकृत्ऽभिः । अघम् । कृतम् ।

अग्निः । त्वा । तस्मात् । एनसः । सविता । च । प्र । मुञ्चताम्

दुःख फैलाने वालोंने तेरे घरमें प्रजामें और पशुओंमें जो दुःख भर दिया है उस पापसे सवितादेवता और अग्नि देवता तुझको मुक्त करें ॥ ६२ ॥

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका ।

दीर्घायु॑रस्तु मे॒ पति॑र्जी॒वाति॑ श॒रदः॑ श॒तम् ॥ ६३ ॥

इ॒यम् । ना॒री । उ॒प । ब्रू॑ते । पू॒ल्यानि॑ । आ॒ऽव॒प॒न्ति॒का ।

दी॒र्घ॒आ॒युः । अ॒स्तु । मे॒ । प॒तिः । जी॒वा॒ति । श॒र॒दः । श॒त॒म् ॥

यह स्त्रीलोक की आहुति देती हुई नारी कहती है, कि—मेरा पति दीर्घायु हो और सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ ६३ ॥

इ॒हे॒मा॒वि॒न्द्र॒ सं नु॑द च॒क्रवा॒केव॒ दंप॑ती ।

प्र॒जयै॑नौ स्वस्त॒कौ वि॒श्वमा॒युर्व्य॑श्नुताम् ॥ ६४ ॥

इ॒ह । इ॒मौ । इ॒न्द्र । स॒म् । नु॑द । च॒क्र॒वा॒का॒ऽइ॒व । दं॒प॒ती इति॑

द॒म्प॑ती ।

प्र॒ज॒या । ए॒नौ । सु॒अ॒स्त॒कौ । वि॒श्वम् । आ॒युः । वि॒ । अ॒श्रु॒ताम्

हे इन्द्रदेव ! इन दोनों दम्पतियों को आप चक्रवाक की समान प्रेरित रखिये, इनको प्रजासे सुन्दर घर वाले रखिये ये सारी आयु भोग भोगते रहें ॥ ६४ ॥

यदा॑स॒न्ध्यामु॑प॒धाने॑ यद् वो॑प॒वास॑ने कृतम् ।

वि॒वा॒हे कृ॒त्यां यां च॒क्रा॒स्नाने॑ तां नि द॒ध्म॑सि ६५

यत् । आ॒ऽस॒न्ध्याम् । उ॒प॒धा॒ने । यत् । वा । उ॒प॒वा॒स॒ने । कृ॒तम् ।

वि॒वा॒हे । कृ॒त्याम् । या॒म् । च॒क्रुः । आ॒ऽस्ना॑ने । ता॒म् । नि । द॒ध्म॑सि

आसन्दीमें उपधानमें वा उपवासनमें जो (पाप) बन गया है और विवाहमें जिन पुरुषोंने कृत्या की है इन सबको स्नान करने के स्थानमें स्थापित करते हैं ॥ ६५ ॥

यत् दुष्कृतं यच्छमलं विवाहे बहतौ च यत् ।

तत् संभलस्य कम्बले मृज्महे दुरितं वयम् ॥ ६६ ॥

यत् । दुःकृतम् । यत् । शमलम् । विवाहे । बहतौ । च । यत् ।

तत् । सम्भलस्य । कम्बले । मृज्महे । दुःशतम् । वयम् ॥ ६६ ॥

जो विवाह वा दहेजमें पाप और अपराध बन गया है उस पापको हम मिष्टभाषण करने वालेके कम्बलमें निक्षिप्त करते हैं ६६

संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ।

अभूम यज्ञिया शुद्धाः प्र ए आयूंषि तारिषत् ६७

सम्भले । मलम् । सादयित्वा । कम्बले । दुःशतम् । वयम् ।

अभूम । यज्ञियाः । शुद्धाः । प्र । नः । आयूंषि । तारिषत् ६७

हम यज्ञिय पुरुष संभलमें मलको स्थापित करके कम्बलमें दुरितको स्थापित करके शुद्ध होगए हैं वह देव हमारी आयुको पूर्ण करें ॥ ६७ ॥

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः ।

अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ॥ ६८ ॥

कृत्रिमः । कण्टकः । शतदन् । यः । एषः ।

अप । अस्याः । केश्यम् । मलम् । अप । शीर्षण्यम् । लिखात् ॥

यह सैकड़ों दाँतों वाला कृत्रिम कंटक (कंधा) है, यह इसके शिरके मलको दूर करके शीर्षस्थानका स्पर्श करे ॥ ६८ ॥

अङ्गादङ्गाद् वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि ।
तन्मा प्रापत् पृथिवीं मोत देवान् दिवं मा प्रापदुर्वशन्त-
रिक्तम् ।

अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत् पितृंश्च
सर्वान् ॥ ६६ ॥

अङ्गात् अङ्गात् । वयम् । अस्याः । अप । यक्ष्मम् । नि । दध्मसि ।
तत् । मा । प्र । आपत् । पृथिवीम् । मा । उत । देवान् ।
दिवम् । मा । प्र । आपत् । उरु । अन्तरिक्षम् ।

अपः । मा । प्र । आपत् । मलम् । एतत् । अग्ने । यमम् । मा ।
प्र । आपत् । पितृन् । च । सर्वान् ॥ ६६ ॥

हम इसके प्रत्येक अंगमेंसे संहारक दोषको दूर करते हैं, वह
दोष मुझको प्राप्त न हो, पृथिवीको प्राप्त न हो देवताओंको प्राप्त
न हो द्यौको और अन्तरिक्षको भी प्राप्त न हो जलको भी प्राप्त
न हो और हे अग्ने ! यह पितरोंको और उनके अधिष्ठात्री देवता
यमको भी प्राप्त न होवे ॥ ६६ ॥

सं त्वां नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वां नह्यामि पय-
सौषधीनाम् ।

सं त्वां नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाज-
मेमम् ॥ ७० ॥

सम् । त्वा नह्यामि । पयसा । पृथिव्याः । सम् । त्वा । नह्यामि ।

पयसा । ओषधीनाम् ।

सम् । त्वा । नह्यामि । प्रजया । धनेन । सा । सम्जनद्धा । सनुहि ।

वाजम् । आ । इमम् ॥ ७० ॥

मैं तुम्हको पृथिवीके दुग्धकी समान सार तत्त्वसे और औषधियोंके सारतत्त्वसे प्रजासे और धनसे सम्पन्न रखनेके लिये बाँधता हूँ सो तू सन्नद्ध होती हुई धनको दे ॥ ७० ॥ (१३)

अमोहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।

ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ ७१ ॥

अमः । अहम् । अस्मि । सा । त्वम् । साम । अहम् । अस्मि ।

ऋक् । त्वम् । द्यौः । अहम् । पृथिवी । त्वम् ।

तौ । इह । सम् । भवाव । प्रजाम् । आ । जनयावहै ॥ ७१ ॥

मैं विष्णु हूँ तू लक्ष्मी है, मैं साम हूँ तू ऋक् है, मैं द्यौ हूँ तू पृथिवी है, ये दोनों हम यहाँ एक साथ रहें और प्रजाको उत्पन्न करें जनियन्ति नावग्रवः पुत्रियन्ति सुदानवः ।

अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये ॥ ७२ ॥

जनिष्यन्ति । नौ । अग्रवः । पुत्रिष्यन्ति । सुदानवः ।

अरिष्टासू इत्यरिष्टासू । सचे । हि । बृहते । वाजसातये ॥ ७२ ॥

नदियें हम दोनोंको प्रादुर्भूत रखें, कन्याणमय दान देने वाले

पुत्रको प्राप्त होते हैं, हम दोनों अहिंसित प्राण वाले रहते हुए विशाल अन्नकी प्राप्तिके लिये परस्पर संयुक्त रहें ॥ ७२ ॥

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमगमन् ।

ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु ॥ ७३ ॥

ये । पितरः । वधूऽदर्शाः । इमम् । वहतुम् । आ । अगमन् ।

ते । अस्यै । वध्वै । सम्पत्न्यै । प्रजाऽवत् । शर्म । यच्छन्तु ७३

जो पितर वधूको देखनेकी इच्छासे इस दहेजके पास आये हैं, वे इस सुशीला पत्नी वधूके लिये प्रजासम्पन्न कल्याणको दें ७३
येदं पूर्वागन् रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह
दत्त्वा ।

तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्य-
जैषीत् ॥ ७४ ॥

या । इदम् । पूर्वा । अगन् । रशनाऽयमाना । प्रजाम् । अस्यै ।

द्रविणम् । च । इह । दत्त्वा ।

ताम् । वहन्तु । अगतस्य । अनु । पन्थाम् । विराट् । इयम् ।

सुप्रजाः । अति । अजैषीत् ॥ ७४ ॥

जो स्त्री रस्सीकी तरह बन्धनमें डालनेके लिये पहिले इस मार्गको प्राप्त हुई थी, (तो उसके सब सम्बन्धी) यहाँ इस वधू के लिये प्रजा और धनके द्वारा उसको पहिले न चले हुए मार्गमें लेजावे और यह विशाल महिमा वाली उससे बढ़ती हुई रहे ७४

२६२

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासौ दीर्घं त आयुः सविता
कृणोतु ॥ ७५ ॥

प्र । बुध्यस्व । सुबुधा । बुध्यमाना । दीर्घायुत्वाय । शतशारदाय
गृहान् । गच्छ । गृहपत्नी । यथा । असः । दीर्घम् । ते । आयुः ।
सविता । कृणोतु ॥ ७५ ॥

द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

द्वितीयोनुवाकः ॥

इति चतुर्दशं काण्डं समाप्तम् ॥

हे सुन्दर बुद्धि वाली ! तू जगाई जाती हुई सौ वर्ष की दीर्घायु
पानेके लिये जाग तू घरको चल कि-जिस प्रकार तू गृहपत्नी बन
सके, सविता देवता तेरी आयुको बड़ी करें ॥ ७५ ॥ (१४)

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५१२)

द्वितीय अनुवाक समाप्त

इति श्री अथर्ववेदसंहिताका चतुर्दश काण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत

भाषानुवादसहित

समाप्त.



❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

पञ्चदश-काण्डम्

❀ ❀ ❀

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

अत्र काण्डे ब्राह्मणमहिमा प्रपञ्च्यते । ब्राह्मणो नाम उपनयनादि-
संस्कारहीनः पुरुषः । सोऽर्थाद् यज्ञादिवेदविहिताः क्रियाः कर्तुं
नाधिकारी । न स व्यवहारयोग्यश्चेत्यादि जनमतं मनसिकृत्य
ब्राह्मणोधिकारी ब्राह्मणमहानुभावो ब्राह्मणो देवप्रियो ब्राह्मणो ब्राह्मण-
क्षत्रिययोर्वर्चसो मूलं किं बहुना ब्राह्मणो देवाधिदेव एवेति प्रतिपा-
द्यते । यत्र ब्राह्मणो गच्छति विश्वं जगद् विश्वे च देवास्तत्र तम-
नुगच्छन्ति तस्मिन् स्थिते तिष्ठन्ति तस्मिन्चलति ते चलन्ति । यदा
स गच्छति राजवत् स गच्छतीत्यादि । न पुनरेतत् सर्वब्राह्मणपरं
प्रतिपादनम् अपि तु कंचिद्विद्वत्तमं महाधिकारं पुण्यशीलं विश्व-
समान्यं कर्मपरैर्ब्राह्मणैर्विद्विष्टं ब्राह्मणम् अनुलक्ष्य वचनम् इति मन्तव्यम्

इस काण्डमें ब्राह्मणकी महिमाका वर्णन किया गया है । उप-
नयन आदि संस्कारोंसे हीन पुरुषका नाम ब्राह्मण है, अर्थात् वह
यज्ञ आदि वेदविहित क्रियाओंके करनेका अधिकारी नहीं होता
और वह व्यवहारके योग्य भी नहीं होता, इस जनमतको मनमें
विचार कर इस काण्डमें इसका वर्णन किया है, कि—“ब्राह्मण
अधिकारी है ब्राह्मण महानुभाव है ब्राह्मण देवप्रिय है और ब्राह्मण
ब्राह्मण और क्षत्रियके तेजका मूल होता है अधिक क्या ब्राह्मण
देवाधिदेव होता है । जहाँ ब्राह्मण जाता है तहाँ सम्पूर्ण जगत् और

सकल देवता उसके पीछे २ जाते हैं, उसके ठहरने पर ठहरते हैं और उसके चलने पर चलते हैं। जब वह चलता है तो राजाकी समान चलता है।” यह बात सब व्रात्योंके लिये नहीं लिखी है किंतु किसी महाधिकारी पुण्यात्मा विश्व महाविद्वान् भरको समदृष्टिसे देखने वाले विश्वमान्य कर्मपरायण ब्राह्मणोंके द्वारा उपेक्षित व्रात्यको लक्ष्य करके वर्णन किया है। यही समझना चाहिये ॥

व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् १

व्रात्यः । आसीत् । ईयमानः । एव । सः । प्रजाऽपतिम् । सम् ।

ऐरयत् ॥ १ ॥

व्रात्यने चलते हुए ही अर्थात् व्रात्य अवस्थाकी प्राप्त होते ही प्रजापतिको प्रेरित किया ॥ १ ॥

स प्रजापतिः सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत् २

सः । प्रजाऽपतिः । सुवर्णम् । आत्मन् । अपश्यत् । तत् । प्र ।

अजनयत् ॥ २ ॥

उन प्रजापतिने अपनेमें सुवर्णको देखा और उसको प्रकट किया २ तदेकमभवत् तल्ललाममभवत् तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत् तद् ब्रह्मभवत् तत् तपोभवत् तत् सत्यमभवत् तेन प्राजायत ॥ ३ ॥

तत् । एकम् । अभवत् । तत् । ललामम् । अभवत् । तत् । महत् ।

अभवत् । तत् । ज्येष्ठम् । अभवत् । तत् । ब्रह्म । अभवत् ।

तत् । तपः । अभवत् । तत् । सत्यम् । अभवत् । तेन । प्र ।
अजायत ॥ ३ ॥

वह एक हुआ ललाम हुआ महत् हुआ ज्येष्ठ हुआ और वही
ब्रह्मा हुआ वही तप हुआ वही सत्य हुआ और उससे ही यह
प्रकट हुआ है ॥ ३ ॥

सोर्वर्धत स महानभवत् स महादेवो भवत् ॥ ४ ॥

सः । अवर्धत । सः । महान् । अभवत् । सः । महाऽदेवः । अभवत्

वह बढ़ा वह महान् हुआ और वह महादेव हुआ ॥ ४ ॥

स देवानामीशां पर्येत स ईशानोभवत् ॥ ५ ॥

सः । देवानाम् । ईशाम् । परि । ऐत् । सः । ईशानः । अभवत् ५

वह देवताओंका ईश हुआ और वह ईशान हुआ ॥ ५ ॥

स एकव्रात्यो भवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः ॥ ६ ॥

सः । एकव्रात्यः । अभवत् । सः । धनुः । आ । अदत्त । तत् ।

एव । इन्द्रधनुः ॥ ६ ॥

वह मुख्य व्रात्य हुआ और उसने धनुषको ग्रहण किया, वही
इन्द्रधनुष है ॥ ६ ॥

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम् ॥ ७ ॥

नीलम् । अस्य । उदरम् । लोहितम् । पृष्ठम् ॥ ७ ॥

इसका उदर नील है और पीठ लाल है ॥ ७ ॥

नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोणीति लोहितेन द्विषन्तं
विध्यतीति ब्रह्मवादिनां वदन्ति ॥ ८ ॥

नीलेन । ए॒व । अ॒प्रि॒यम् । आ॒तृ॒व्यम् । प्र । ऊ॒र्णो॒ति । लो॒हि॒तेन ।

द्वि॒षन्त॑म् । वि॒ध्य॒ति । इति । ब्र॒ह्म॒ऽवा॒दिनः॑ । व॒द॒न्ति ॥ ८ ॥

इति प्रथमेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

यह नीलसे अप्रिय शत्रुको ढक देता है और लोहितसे द्वेष करने वालेको बीध डालता है इस बातको ब्रह्मवादी कहते हैं ८

प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (५१३)

स उ॒द॒तिष्ठ॑त् स प्रा॒चीं दि॒शम॑नु व्य॒चल॑त् ॥ १ ॥

सः । उ॒त् । अ॒तिष्ठ॑त् । सः । प्रा॒चीम् । दि॒शम् । अ॒नु । वि ।

अ॒चल॑त् ॥ १ ॥

वह उठा और उसने पूर्वदिशाकी ओर गमन किया ॥ १ ॥

तं बृ॒हच्च॑ रथं॒तरं चा॒दि॒त्याश्च॑ वि॒श्वे च॑ दे॒वा अ॒नु॒व्य॒चलन्

तम् । बृ॒हत् । च । रथ॑म्॒स्तर॑म् । च । आ॒दि॒त्याः । च । वि॒श्वे ।

च । दे॒वाः । अ॒नु॒व्य॒चलन् ॥ २ ॥

उसके पीछे बृहत् और रथंतर साम और आदित्य तथा सब देवता चले ॥ २ ॥

बृ॒हते च॑ वै स रथं॒तराय॑ चा॒दि॒त्येभ्य॑श्च वि॒श्वेभ्य॑श्च

दे॒वेभ्य॑ आ वृ॒श्चते॑ य ए॒वं वि॒द्वांसं॑ ब्रा॒त्यमु॑पव॒दति

बृ॒हते । च । वै । सः । रथ॑म्॒स्तराय॑ । च । आ॒दि॒त्येभ्यः॑ । च ।

वि॒श्वेभ्यः॑ । च । दे॒वेभ्यः॑ । आ । वृ॒श्चते॑ । यः । ए॒वम् । वि॒द्वां॒सम् ।

ब्रा॒त्यम् । उ॒प॒व॒दति ॥ ३ ॥

जो पुरुष ऐसे विद्वान् ब्राह्मणकी निन्दा करता है तो वह बृहत्
रथन्तर आदित्य और विश्वेदेवताओंके लिये काट करता है अर्थात्
उनका ही अपराध करता है ॥ ३ ॥

बृहत्तश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानां च विश्वेषां च
देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि ४

बृहत्तः । च । वै । सः । रथन्तरस्य । च । आदित्यानाम् । च ।

विश्वेषाम् । च । देवानाम् । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य ।

प्राच्याम् । दिशि ॥ ४ ॥

(जो उसका सत्कार करता है) वह पूर्व दिशामें बृहत्का
रथन्तरका आदित्योंका और सकल देवताओंका और उसका
प्रिय धाम होता है ॥ ४ ॥

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासो हरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिमणिः ॥ ५ ॥

श्रद्धा । पुंश्चली । मित्रः । मागधः । विज्ञानम् । वासः । अहः ।

उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्रवर्तौ । कल्मलिः । मणिः

(उसकी) श्रद्धा पुंश्चली, मित्र मागध, विज्ञान वस्त्र, दिन पगड़ी
रात्रि केश, और हरित प्रवर्त कल्मणि मणि (होती है) ॥ ५ ॥

भूतं च भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ ६ ॥

भूतम् । च । भविष्यत् । च । परिष्कन्दौ । मनः । विपथम् ६

भूत और भविष्यत् परिष्कन्द होते हैं मन विपथ होता है ६

२६८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

मातरि॒ष्वां च॒ प॒व॒मान॑श्च वि॒पथ॑वा॒हौ वा॒तः सा॒रथी॑
रे॒ष्मा प्र॑तो॒दः ॥ ७ ॥

मा॒त॒रि॒श्वा । च । प॒व॒मानः । च । वि॒प॒थ॒वा॒हौ । वा॒तः । सा॒रथिः ।
रे॒ष्मा । प्र॑तो॒दः ॥ ७ ॥

मातरिश्वा और पवमान विपथवाह होते हैं, वायु सारथी होता है और रेष्मा कोड़ा होता है ॥ ७ ॥

की॒र्तिश्च॒ यश॑श्च पु॒रःस॑रा॒वैनं॑ की॒र्तिर्गच्छ॑त्या यशो॑
गच्छ॑ति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ८ ॥

की॒र्तिः । च । यशः॑ । च । पु॒रःस॑रौ । आ । ए॒नम् । की॒र्तिः ।

गच्छ॑ति । आ । यशः॑ । गच्छ॑ति । यः । ए॒नम् । वेद॑ ॥ ८ ॥

कीर्ति और यश पुरःसर आते हैं, इसको कीर्ति प्राप्त होती है और यश प्राप्त होता है (यह सब उसको प्राप्त होता है जो ब्राह्मणके विषयमें) इस प्रकार जानता है ॥ ८ ॥

स उ॒द॒निष्ठ॑त् स दक्षि॑णां दि॒शम॑नु व्य॒चल॑त् ॥ ९ ॥

०सः । दक्षि॑णाम् । दि॒शम् । ० ॥ ९ ॥

वह उठा और दक्षिण दिशाकी ओर चल दिया ॥ ९ ॥

तं य॒ज्ञाय॑ज्ञि॒यं च॒ वा॒म॒दे॒व्यं च॒ य॒ज्ञश्च॒ यज॑मानश्च
प॒शव॑श्चानु॒व्य॒चल॑न् ॥ १० ॥

तम् । य॒ज्ञाय॑ज्ञि॒यम् । च । वा॒म॒दे॒व्यम् । च । य॒ज्ञः । च । यज॑मानः । च । प॒शवः॑ । च । अनु॒व्य॒चल॑न् ॥ १० ॥

तब उसके पीछे यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य साम तथा यज्ञ यजमान और पशु चले ॥ १० ॥

यज्ञायज्ञियाय च वै स वामदेव्याय च यज्ञाय च यज-
मानाय च पशुभ्यश्चा वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुप-
वदति ॥ ११ ॥

यज्ञायज्ञियाय । च । वै । सः । वामदेव्याय । च । यज्ञाय ।
च । यजमानाय । च । पशुभ्यः । च । आ । वृश्चते । ॥ ११

जो पुरुष ऐसे व्रात्य विद्वाबकी निन्दा करता है तो वह यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य साम यज्ञ और यजमान तथा पशुओंके लिये ही काटता है अर्थात् इनका अपराध करता है ॥ ११ ॥

यज्ञायज्ञियस्य च वै स वामदेव्यस्य च यज्ञस्य च
यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम भवति तस्य
दक्षिणायां दिशि ॥ १२ ॥

यज्ञायज्ञियस्य । च । वै । सः । वामदेव्यस्य । च । यज्ञस्य ।
च । यजमानस्य । च । पशूनाम् । च । प्रियम् । धाम । भवति ।
तस्य । दक्षिणायाम् । दिशि ॥ १२ ॥

(और जो उसके अनुकूल रहता है) वह यज्ञायज्ञियका वाम-
देव्य सामका यज्ञका यजमानका और उसका भी दक्षिण दिशा
में प्रियधाम होता है ॥ १२ ॥

उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधो विज्ञानं वासोहरुष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिमणिः ॥ १३ ॥

उषाः । पुंश्चली । मन्त्रः । मागधः । विज्ञानम् । वासः । अहः ।

उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्रवर्तौ । कल्मलिः । मणिः ॥

(उसकी) उषः पुंश्चली, मन्त्र मागध, विज्ञान वस्त्र, दिन
उष्णीष रात्रि केश और हरित प्रवर्त और कल्मणि मणि होते हैं १३

अमावास्या च पौर्णमासी च परिष्कन्दौ मनो ० ॥

अमावास्या । च । पौर्णमासी । च । ० ॥ १४ ॥

अमावास्या और पौर्णमासी उसके परिष्कन्द होते हैं ० १४

स उदतिष्ठत् स प्रतीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ १५ ॥

० स । प्रतीचीम् । दिशम् । ० ॥ १५ ॥

वह उठा और पश्चिमदिशा की ओर चला ॥ १५ ॥

तं वैरूपं च वैराजं चापश्च वरुणश्च राजानुव्यचलन्

तम् । वैरूपम् । च । वैराजम् । च । आपः । च । वरुणः । च ।

राजा । अनुव्यचलन् ॥ १६ ॥

तो उसके पीछे वैरूप वैराज जल और राजा वरुण चले १६

वैरूपाय च वै स वैराजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च राज्ञ

आ वृश्चते य एवं विद्वांसं ब्राह्मणमुपवदति १७

वैरूपाय । च । वै । सः । वैराजाय । च । अत्सभ्यः । च ।

वरुणाय । च । राज्ञे आ । वृश्चते । ० ॥ १७ ॥

जो ऐसे विद्वान् ब्राह्मणकी निन्दा करता है वह वैरूप वैराज जल और राजा-वरुणका ही अपराध करता है ॥ १७ ॥

वैरूपस्य च वै स वैराजस्य चापां च वरुणस्य च राज्ञः
प्रियं धाम भवति तस्य प्रतीच्यां दिशि ॥ १८ ॥

वैरूपस्य । च । वै । सः । वैराजस्य । च । अपाम् । च । वरुणस्य ।

च । राज्ञः । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । प्रतीच्याम् । दिशि ।

(और जो उसके अनुकूल व्यवहार करता है) वह वैरूप वैराज जल राजा वरुण और उस ब्राह्मणका पश्चिमदिशामें प्रियधाम होता है

इरा पुंश्चली हसो मागधो विज्ञानं वासो हरुणीषं रात्री
केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः ॥ १९ ॥

इरा । पुंश्चली । हसः । मागधः । विज्ञानम् । वासः । अहः ।

उष्णीषम् । रात्री । केशाः । हरितौ । प्रवर्तौ । कल्मलिः । मणिः

उसका पृथ्वी पुंश्चली, हस मागध, विज्ञान वस्त्र, दिन उष्णीष, रात्रि केश, हरित पर्वत और कल्मणि मणि होती है ॥ १९ ॥

अहश्च रात्री च परिष्कन्दौ मनो ० । ० ॥ २० ॥

अहः । च । रात्री । च । ० ॥ २० ॥

दिन और रात्रि उसके परिष्कन्द होते हैं मन ० ॥ २० ॥

३०२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

स उदतिष्ठत् स उदीचीं दिशमनु व्यचलत् ॥ २१ ॥

सः । उत् । अतिष्ठत् । सः । उदीचीम् । दिशम् । अनु । वि ।
अचलत् ॥ २१ ॥

वह उठा और उत्तर दिशाकी ओर चला ॥ २१ ॥

तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानु-
व्यचलन् ॥ २२ ॥

तम् । श्यैतम् । च । नौधसम् । च । सप्तऋषयः । च । सोमः ।
च । राजा । अनुऽव्यचलन् ॥ २२ ॥

तब श्येत नौधस सप्तर्षि और राजा सोम उसके पीछे चले २२
श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च सोमाय
च राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं ब्रात्यमुपवदति

श्यैताय । च । वै । सः । नौधसाय । च । सप्तर्षिभ्यः । च ।

सोमाय । च । राज्ञे । आ । वृश्चते । यः । एवम् । विद्वांसम् ।

ब्रात्यम् । उपऽवदति ॥ २३ ॥

जो ऐसे विद्वान् ब्रात्यकी निन्दा करता है, वह श्यैत नौधस
सप्तर्षि राजा सोमका ही अपराध करता है ॥ २३ ॥

श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च सोमस्य

च राज्ञः प्रियं धाम भवति तस्योदीच्यां दिशि २४
श्यैतस्य । च । वै । सः । नौधसस्य । च । सप्तऋषीणाम् । च ।

सोमस्य । च । रात्रिः । प्रियम् । धाम । भवति । तस्य । उदी-
च्याम् । दिशि ॥ २४ ॥

(और जो उसके अनुकूल रहता है) वह उत्तर दिशामें स्यैत
नौधस सप्तर्षि राजासोम और उसका प्रिय धाम होता है ॥ २४ ॥

विद्युत् पुंश्चली स्तनयित्नुर्मागधो विज्ञानं वासोहरु-
ष्णीषं रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः २५

विद्युत् । पुंश्चली । स्तनयित्नुः । मागधः । विज्ञानम् । वासः ।
अहः । उष्णीषम् । रात्रीः । केशाः । हरितौ । प्रवर्तौ ।
कल्मलिः । मणिः ॥ २५ ॥

(उसकी) विद्युत् पुंश्चली, स्तनयित्नु मागध, विज्ञान वस्त्र,
दिन उष्णीष, रात्रि केश, हरित प्रवर्त और कल्मणि मणि होती है
श्रुतं च विश्रुतं च परिष्कन्दौ मनो विपथम् ॥ २६ ॥

श्रुतम् । च । विश्रुतम् । च । परिष्कन्दौ । मनः । विपथम् ॥

श्रुत और विश्रुत परिष्कन्द होते हैं और मन विपथ होता है २६
मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ वातः सारथीः
रेष्मा प्रतोदः ॥ २७ ॥

मातरिश्वा । च । पवमानः । च । विपथवाहौ । वातः । सारथिः ।
रेष्मा । प्रतोदः ॥ २७ ॥

मातरिश्वा और पवमान विपथवाह होते हैं वात सारथी और
रेष्मा कोड़ा होता है ॥ २७ ॥

३०४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरौवेन कीर्तिर्गच्छत्या यशो
गच्छति य एवं वेद ॥ २८ ॥

कीर्तिः । च । यशः । च । पुरःसरौ । आ । एनम् । कीर्तिः ।

गच्छति । आ । यशः । गच्छति । यः । ० ॥ २८ ॥

इति प्रथमेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ॥

कीर्ति और यश इसके आगे २ चलते हैं और ऐसे ज्ञाताको
कीर्ति और यश प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

प्रथम अनुवाकने द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (५१४)

स संवत्सरमूर्ध्वोतिष्ठत् तं देवा अब्रुवन् ब्रात्य किं नु
तिष्ठसीति ॥ १ ॥

सः । सम् । सवत्सरम् । ऊर्ध्वः । अतिष्ठत् । तम् । देवाः । अब्रुवन् ।

ब्रात्य । किम् । नु । तिष्ठसि । इति ॥ १ ॥

वह वर्ष भर तक ऊपरको खड़ा रहा, तब देवताओंने उससे
कहा, कि-हे ब्रात्य तुम किस लिये अनुष्ठानको कर रहे हो ॥१॥

सो ब्रवीदासन्दीं मे सं भरन्त्विति ॥ २ ॥

सः । अब्रवीत् । आसन्दीम् । मे । सम् । भरन्तु । इति ॥२॥

उसने कहा, कि-मेरे लिये आसन्दी बनाइये ॥ २ ॥

तस्मै ब्रात्यायासन्दीं समभरन् ॥ ३ ॥

तस्मै । ब्रात्याय । आसन्दीम् । सम् । अभरन् ॥ ३ ॥

तब उन्होंने उस ब्रात्यके लिये आसन्दीको बनाया ॥ ३ ॥

तस्या॑ ग्रीष्मश्च॑ वस॒न्तश्च॑ द्वौ पादा॒वास्तां॑ शर॒च्च॑
वर्षाश्च॑ द्वौ ॥ ४ ॥

तस्याः । ग्रीष्मः । च । वसन्तः । च । द्वौ । पादौ । आस्ताम्
शरत् । च । वर्षाः । च । द्वौ ॥ ४ ॥

ग्रीष्म और वसन्त नामक उसके दो पाद हुए तथा शरत्
और वर्षा नामक दो पाद हुए ॥ ४ ॥

बृ॒हच्च॑ रथ॒न्तरं॑ चानू॒च्ये ३ आस्तां॑ यज्ञाय॒ज्ञियं॑ च वाम-
दे॒व्यं च॑ तिरश्च्ये ॥ ५ ॥

बृ॒हत् । च । रथ॒म् । त॒रम् । च । अ॒नू॒च्ये ३ इति॑ । आस्ता॑म् । य॒ज्ञा-
य॒ज्ञियम् । च । वाम॑ दे॒व्यम् । च । तिरश्च्ये ३ इति॑ ॥ ५ ॥

बृहत् और रथन्तर ये दो अनूच्य हुए, यज्ञायज्ञिय और वाम-
देव्य ये तिरश्च्य हुए ॥ ५ ॥

ऋ॒चः प्रा॒ञ्चस्तन्त॑वो यजूं॑षि ति॒र्यञ्चः॑ ॥ ६ ॥

ऋ॒चः । प्रा॒ञ्चः । तन्त॑वः । यजूं॑षि । ति॒र्यञ्चः॑ ॥ ६ ॥

ऋच् और प्राञ्च् तन्तु हुए और यजुः तिर्यक् हुए ॥ ६ ॥

वेद॑ आ॒स्तर॑णं ब्रह्मो॑प॒बर्ह॑णम् ॥ ७ ॥

वेदः । आ॒स्तर॑णम् । ब्रह्म॑ । उ॒प॒बर्ह॑णम् ॥ ७ ॥

वेद आस्तरण हुआ और ब्रह्म उपबर्हण हुआ ॥ ७ ॥

सामा॑साद उ॒द्गीथो॑प॒श्रयः॑ ॥ ८ ॥

साम । आऽसादः । उत्ऽगीथः । उपऽश्रयः ॥ ८ ॥

साम आसाद हुआ और उद्गीथ उपश्रय हुआ ॥ ८ ॥

तामासन्दीं व्रात्य आरोहत् ॥ ९ ॥

ताम् । आऽसन्दीम् । व्रात्यः । आ । आरोहत् ॥ ९ ॥

उस आसन्दी पर व्रात्यने आरोहण किया ॥ ९ ॥

तस्य देवजनाः परिष्कन्दा आसन्तसंकल्पाः प्रहाय्याः

विश्वानि भूतान्युपसदः ॥ १० ॥

तस्य । देवऽजनाः । परिऽस्कन्दाः । आसन् । समूऽकल्पाः ।

प्रऽहाय्याः । विश्वानि । भूतानि । उपऽसदः ॥ १० ॥

देवजन उसके परिष्कन्द हुए, सत्यसंकल्प प्रहाय्य हुए और सकल भूत उपसद् हुए ॥ १० ॥

विश्वान्येवास्य भूतान्युपसदो भवन्ति य एवं वेद ११

विश्वानि । एव । अस्य । भूतानि । उपऽसदः । भवन्ति । यः ॥ १०

इति प्रथमेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस बातको जानता है उसके सब भूत उपसद् होते हैं ११

प्रथम अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५१५)

तस्मै प्राच्या दिशः ॥ १ ॥

तस्मै । प्राच्याः । दिशः ॥ १ ॥

वासन्तौ मासौ गोप्तासवकुर्वन् बृहच्च रथन्तरं चानुष्ठातारौ

वास॑न्तौ । मा॒सौ । गो॒प्तारौ । अ॒कुर्वन् । बृ॒हत् च । रथ॑म्स्त॒रम् ।
च । अनु॑स्था॒तारौ ॥ २ ॥

देवताओंने उसके लिये पूर्व दिशासे वसन्त ऋतुके दो मासों को रक्षक बनाया और बृहत् तथा रथन्तरको अनुष्ठाता बनाया वासन्तावेनं मासौ प्राच्या दिशौ गोपायतो बृहच्च रथन्तरं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ३ ॥

वास॑न्तौ । ए॒नम् । मा॒सौ । प्रा॒च्याः । दि॒शः । गो॒पाय॑तः । बृ॒हत् ।
च । रथ॑म्स्त॒रम् । च । अनु॑ । तिष्ठ॑तः । यः ॥ ३ ॥

जो ऐसा जानता है तो पूर्व दिशाकी ओरसे वसन्त ऋतुके दो मास उसकी रक्षा करते हैं और बृहत् तथा रथन्तर उसके अनुकूल रहते हैं ॥ ३ ॥

तस्मै॑ दक्षि॑णाया दि॒शः ॥ ४ ॥

तस्मै॑ । दक्षि॑णायाः । दि॒शः ॥ ४ ॥

ग्रीष्मौ॑ मा॒सौ गो॒प्ता॒वकुर्वन् यज्ञा॑यज्ञि॒यं च वाम॑दे॒व्यं
चा॒नुष्ठा॒तारौ ॥ ५ ॥

ग्रीष्मौ॑ । मा॒सौ । गो॒प्तारौ । अ॒कुर्वन् । य॒ज्ञाय॑ज्ञि॒यम् । च । वा॒म॒दे॒व्यम् । च ॥ ५ ॥

देवताओंने उसके लिये दक्षिण दिशाकी ओरसे ग्रीष्म ऋतुके दो मासोंको रक्षक नियुक्त किया और यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव्य को अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ ४ ॥ ५ ॥

ग्रैष्मावेनं मासौ दक्षिणाया दिशो गोपायतो यज्ञा-
यज्ञियं च वामदेव्यं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ६ ॥

ग्रैष्मौ । एनम् । मासौ । दक्षिणायाः । दिशः । गोपायतः ।

यज्ञायज्ञियम् । च । वामदेव्यम् । च । ॥ ६ ॥

जो ऐसा जानता है तो दक्षिणदिशाकी ओरसे ग्रीष्म ऋतुके मास इसकी रक्षा करते हैं और यज्ञायज्ञिय तथा वामदेव्य साम उसके अनुकूल रहते हैं ॥ ६ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशः ॥ ७ ॥

तस्मै । प्रतीच्याः । दिशः ॥ ७ ॥

वार्षिकौ मासौ गोप्सारावकुर्वन् वैरूपं च वैराजं चानुष्ठा-
तारौ ॥ ८ ॥

वार्षिकौ । मासौ । गोप्सारौ । अकुर्वन् । वैरूपम् । च । वैराजम् ।

च । ॥ ८ ॥

देवताओंने उसके लिये पश्चिम दिशाकी ओरसे वर्षा ऋतुके दो मासोंको रक्षक नियुक्त किया और वैरूप और वैराजको अनुष्ठाता किया ॥ ७ ॥ ८ ॥

वार्षिकावेनं मासौ प्रतीच्या दिशो गोपायतो वैरूपं
च वैराजं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ ९ ॥

वार्षिकौ । एनम् । मासौ । प्रतीच्याः । दिशः । गोपायतः । वैरू-

पम् । च । वैराजम् । च । ॥ ९ ॥

जो ऐसा जानता है तो पश्चिम दिशाकी ओरसे वर्षा ऋतुके दो मास उसकी रक्षा करते हैं और वैराज तथा वैरूप उसके अनुकूल रहते हैं ॥ ९ ॥

तस्मा उदीच्या दिशः ॥ १० ॥

तस्मै । उदीच्याः । दिशः ॥ १० ॥

शारदौ मासौ गोप्तावकुर्वन्त्येतं च नौधसं चानुष्ठा-
तारौ ॥ ११ ॥

शारदौ । मासौ । गोप्तारौ । अकुर्वन् । श्यैतम् । च । नौधसम् ।
च । ॥ ११ ॥

देवताओंने उसके लिये उच्चर दिशाकी ओरसे शरद ऋतुके दो मासोंको रक्षक नियुक्त किया और श्यैत तथा नौधसको अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ १० ॥ ११ ॥

शारदावेनं मासावुदीच्या दिशो गोपायतः श्यैतं च
नौधसं चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १२ ॥

शारदौ । एनम् । मासौ । उदीच्याः । दिशः । गोपायतः । श्यै-
तम् । च । नौधसम् । च । ॥ १२ ॥

जो ऐसा जानता है तो उत्तरदिशाकी ओरसे शरद ऋतुके दो मास उसकी रक्षा करते हैं और श्यैत तथा नौधस् उसके अनुकूल रहते हैं ॥ १२ ॥

तस्मै ध्रुवाया दिशः ॥ १३ ॥

तस्मै । ध्रुवायाः । दिशः ॥ १३ ॥

३१०

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

हैमनौ मासौ गोप्सारावकुर्वन् भूमिं चाग्निं चानुष्ठातारौ

हैमनौ । मासौ । गोप्सारौ । अकुर्वन् । भूमिम् । च । अग्निम् । च । ०

देवताओंने उसके लिये ध्रुवा दिशा (पृथ्वी) से हेमन्त ऋतुके दो मासोंको रक्तक नियुक्त किया और भूमि तथा अग्निको अनुष्ठाता किया ॥ १३ ॥ १४ ॥

हैमनावेनं मासौ ध्रुवायां दिशो गोपायतो भूमिश्चाग्निश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १५ ॥

हैमनौ । एनम् । मासौ । ध्रुवायाः । दिशः । गोपायतः । भूमिः । च । अग्निः । च । ० ॥ १५ ॥

जो ऐसा जानता है तो ध्रुवा दिशाकी ओरसे हेमन्त ऋतुके दो मास इसकी रक्षा करते हैं और भूमि तथा अग्नि इसके अनुकूल रहते हैं ॥ १५ ॥

तस्मा ऊर्ध्वायां दिशः ॥ १६ ॥

तस्मै । ऊर्ध्वायाः । दिशः ॥ १६ ॥

शैशिरौ मासौ गोप्सारावकुर्वन् दिवं चादित्यं चानुष्ठातारौ ॥ १७ ॥

शैशिरौ । मासौ । गोप्सारौ । अकुर्वन् । दिवम् । च । आदित्यम् । च । अनुऽस्थातारौ ॥ १७ ॥

देवताओंने उसके लिये ऊर्ध्वा दिशाकी ओरसे शिशिर ऋतुके दो मासोंको रक्तक बनाया और द्यौ तथा आदित्यको अनुष्ठाता बनाया ॥ १६ ॥ १७ ॥

शैशिरावेनं मासावूर्ध्वाया दिशो गोपायतो द्यौश्चा-
दित्यश्चानु तिष्ठतो य एवं वेद ॥ १८ ॥

शैशिरौ । एनम् । मासौ । ऊर्ध्वायाः । दिशः । गोपायतः ।

द्यौः । च । आदित्यः । च । अनु । तिष्ठतः । यः । १० ॥ १८ ॥

इति प्रथमेनुवाके चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ॥

जो ऐसा जानता है तो शिशिर ऋतुके दो मास ऊर्ध्वा दिशा की ओरसे इसकी रक्षा करते हैं और द्यौ तथा आदित्य इसके अनुकूल रहते हैं ॥ १८ ॥

प्रथम अनुवाकमें चतुर्थं पर्याय सूक्त समाप्त (५१६)

तस्मै प्राच्या दिशो अन्तर्देशाद् भवमिष्वासमनुष्ठा-
तारमकुर्वन् ॥ १ ॥

तस्मै । प्राच्याः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । भवम् । इषुऽआसम् ।

अनुऽस्थातारम् । अकुर्वन् ॥ १ ॥

देवताओंने उसके लिये पूर्वदिशाके कोणसे बाणका प्रक्षेप करने वाले भवको अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ १ ॥

भव एनमिष्वासः प्राच्या दिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २ ॥

भवः । एनम् । इषुऽआसः । प्राच्याः । दिशः । अन्तःऽदेशात् ।

अनुऽस्थाता । अनु । तिष्ठति । न । एनम् । शर्वः । न । भवः ।

न । ईशानः ॥ २ ॥

पूर्वदिशाके कोणसे अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक भव इसके अनुकूल रहते हैं और भव शर्व तथा ईशान (इसका संहार नहीं करते) २ नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद । ३ ।
न । अस्य । पशून् । न । समानान् । हिनस्ति । यः । १० ॥ ३ ॥

जो ऐसा जानता है तो उसके पशुओंका और समान पुरुषों का (रुद्र) संहार नहीं करते हैं ॥ ३ ॥

तस्मै दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वासमनुष्ठा-
तारमकुर्वन् ॥ ४ ॥

तस्मै । दक्षिणायाः । दिशः । अन्तःदेशात् । शर्वम् । इषुऽआसम् । ०

देवताओंने उसके लिये दक्षिण दिशाके कोणसे बाणप्रक्षेपक शर्वको अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ ४ ॥

शर्व एनमिष्वासो दक्षिणाया दिशो अन्तर्देशादनु-
ष्ठातानु तिष्ठति नैनं ॥ ५ ॥

शर्वः । एनम् । इषुऽआसः । दक्षिणायाः । दिशः । १० ॥ ५ ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपकशर्व दक्षिण दिशा के कोणमें इसके अनुकूल रहते हैं और इसका तथा इसके पशुओं का और इसके समान वयस्कोंका संहार नहीं करते हैं ॥ ५ ॥

तस्मै प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशात् पशुपतिमिष्वासमनु-
ष्ठातारमकुर्वन् ॥ ६ ॥

तस्मै । प्रतीच्याः । दिशः । अन्तःदेशात् । पशुपतिम् । इषुऽआसम् । ०

देवताओंने उसके लिये पश्चिम दिशाके कोणकी ओरसे बाण-प्रक्षेपक शपतिको अनुष्ठाता बनाया ॥ ६ ॥

पशुपतिरेनमिष्वासः प्रतीच्या दिशो अन्तर्देशादनु०

पशुऽपतिः । एनम् । इषुऽआसः । प्रतीच्याः । दिशः । ० ॥ ७ ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता बाणप्रक्षेपक पशुपति दक्षिण दिशाके कोणमें इसके अनुकूल रहते हैं और इसके पशुओंका और इसके समान अवस्था वालोंका संहार नहीं करते हैं ॥७॥

तस्मा उदीच्या दिशो अन्तर्देशादुग्रं देवमिष्वासमनुष्ठा-
तारंमकुर्वन् ॥ ८ ॥

तस्मै । उदीच्याः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । उग्रम् । देवम् । इषुऽआ-
सम् ॥ ८ ॥

देवताओंने इसके लिये उत्तरदिशाके कोणसे अस्त्रप्रक्षेपक उग्र-
देवको अनुष्ठाता नियुक्त किया ॥ ८ ॥

उग्र एनं देव इष्वास उदीच्या दिशो अन्तर्देशादनु०

उग्रः । एनम् । देवः । इषुऽआसः । उदीच्याः । दिशः । ० । ९ ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक उग्र उत्तर दिशाके कोणमें इसके अनुकूल रहते हैं तथा इसके पशुओंका और इसकी समान अवस्था वालोंका संहार नहीं करते हैं ॥९॥

तस्मै ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशाद् रुद्रमिष्वासमनुष्ठा-
तारंमकुर्वन् ॥ १० ॥

तस्मै । ध्रुवायाः । दिशः । अन्तःऽदेशात् । रुद्रम् । इषुऽआसम् । ०

देवताओंने उसके लिये ध्रुव दिशाके अन्तर्देशसे अस्त्रप्रक्षेपक
रुद्रको अधिष्ठाता बनाया ॥ १० ॥

रुद्र ए॒नमि॒ष्वासो ध्रु॒वाया॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद॑नु० ११

रुद्रः । ए॒नम् । इ॒षुऽआ॒सः । ध्रु॒वायाः । दि॒शः । ० ॥ ११ ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक रुद्र उसके अनु-
कूल रहते हैं और ध्रुव दिशाके कोणमें इसके पशुओंका तथा
इसकी समान अवस्था वालोंका संहार नहीं करते हैं ॥ ११ ॥

तस्मा॑ ऊ॒र्ध्वाया॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शान्महा॑दे॒वमि॒ष्वास॑मनु॒-
ष्ठाता॑रमकुर्वन् ॥ १२ ॥

तस्मै । ऊ॒र्ध्वायाः । दि॒शः । अ॒न्तः॒ऽदे॒शात् । म॒हा॒ऽदे॒वम् । इ॒षुऽआ॒-
सम् । ० ॥ १२ ॥

देवताओंने ऊर्ध्वादिकाके कोणमेंसे अस्त्रप्रक्षेपक महादेवको
इसके लिये अनुष्ठाता किया ॥ १२ ॥

महा॑दे॒व ए॒नमि॒ष्वास॑ ऊ॒र्ध्वाया॑ दि॒शो अ॒न्तर्दे॒शाद॑नु०

महा॑ऽदे॒वः । ए॒नम् । इ॒षुऽआ॒सः । ऊ॒र्ध्वायाः । दि॒शः । अ॒न्तः॒ऽ-
दे॒शात् । अ॒नु॒ऽस्था॒ता । ० ॥ १३ ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक महादेव ऊर्ध्व-
दिशाके कोणमें इसके अनुकूल रहते हैं और इसके पशुओंका
तथा इसके समानवयस्कोंका संहार नहीं करते हैं ॥ १३ ॥

तस्मै॑ सर्वे॒भ्यो अ॒न्तर्दे॒शेभ्य॑ ई॒शान॑मि॒ष्वास॑मनु॒ष्ठाता॑-
रमकुर्वन् ॥ १४ ॥

तस्मै । सर्वे॒भ्यः । अ॒न्तः॒ऽदे॒शेभ्यः । ई॒शान॑म् । इ॒षुऽआ॒सम् ।

अ॒नु॒ऽस्था॒तार॑म् । अ॒कुर्व॑न् ॥ १४ ॥

देवताओंने सब दिशाओंके अन्तर्देशसे अस्त्रप्रक्षेपक ईशानको
इसके लिये अनुष्ठाता किया ॥ १४ ॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ १५ ॥

ईशानः । एनम् । इषुऽआसः । सर्वेभ्यः । अन्तःऽदेशेभ्यः । अनुऽ-
स्थाता । अनु । तिष्ठति । न । एनम् । शर्वः । नः । भवः ।

नः । ईशानः ॥ १५ ॥

नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद १६
न । अस्य । पशून् । न । समानान् । हिनस्ति । यः । ॥ १६ ॥

इति प्रथमेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

जो ऐसा जानता है तो अनुष्ठाता अस्त्रप्रक्षेपक ईशान सब
दिशाओंकी अन्तर्दिशाओंसे इसके अनुकूल रहते हैं, भव शर्व
और ईशान इसका संहार नहीं करते हैं और इसके पशुओंका
तथा इसके समानवयस्कोंका भी संहार नहीं करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

प्रथम अनुवाकमें पञ्चम पर्याय सूक्त समाप्त (५१७) ॥

स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत् ॥ १ ॥

सः । ध्रुवाम् । दिशम् । अनु । वि । अचलत् ॥ १ ॥

वह ब्राह्म्य ध्रुव दिशाकी ओर चला ॥ १ ॥

तं भूमिश्चाग्निश्चैषधयश्च वनस्पतयश्च वानस्पत्याश्च
वीरुधश्चानुव्यचलन् ॥ २ ॥

३१६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तम् । भूमिः । च । अग्निः । च । ओषधयः । च । वनस्पतयः ।

च । वानस्पत्याः । च । वीरुधः । च । अनुव्यचलन् ॥ २ ॥

तब भूमि अग्नि औषधि वनस्पति, वनस्पतियोंमें होने वाली औषधियों भी उसके पीछे चलीं ॥ २ ॥

भूमेश्च वै सो ३ भैश्चौषधीनां च वनस्पतीनां च वान-
स्पत्यानां च वीरुधां च प्रियं धाम भवति य एवं
वेद ॥ ३ ॥

भूमेः । च । वै । सः । अग्नेः । च । औषधीनाम् । च । वनस्प-
तीनाम् । च । वानस्पत्यानाम् । च । वीरुधाम् । च । प्रियम् ।
धाम । भवति । यः । १० ॥ ३ ॥

जो इस बातको इस प्रकारसे जानता है वह भूमिका अग्निका वनस्पतियोंका औषधियोंका और वनस्पतिसे बनने वाले पदार्थों का प्रिय धाम होता है ॥ ३ ॥

स ऊर्ध्वा दिशमनु व्यचलत् ॥ ४ ॥

सः । ऊर्ध्वम् । दिशम् । १० ॥ ४ ॥

वह ऊर्ध्व दिशाकी ओर चला ॥ ४ ॥

तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानु-
व्यचलन् ॥ ५ ॥

तम् । ऋतम् । च । सत्यम् । च । सूर्यः । च । चन्द्रः । च । नक्ष-
त्राणि । च । १० ॥ ५ ॥

तव ऋत सत्यं सूर्यं चन्द्रमा और नक्षत्र उसके पीछे २ चले ५
 ऋतस्य च वै स सत्यस्य च सूर्यस्य च चन्द्रस्य च
 नक्षत्राणां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ ६ ॥

ऋतस्य । च । वै । सः । सत्यस्य । च । सूर्यस्य । च । चन्द्रस्य ।

च । नक्षत्राणाम् । च । ० ॥ ६ ॥

जो इस बातको इस प्रकार जानता है वह ऋतु सत्य सूर्य
 चन्द्रमा और नक्षत्रोंका प्रिय-स्थान होता है ॥ ६ ॥

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत् ॥ ७ ॥

सः । उत्तमाम् । दिशम् । ० ॥ ७ ॥

वह उत्तम दिशाकी ओर चला ॥ ७ ॥

तमृचश्च सामानि च यजूषि च ब्रह्म चानुव्यचलत् ८

तम् । ऋचः । च । सामानि । च । यजूषि । च । ब्रह्म । च । ० ८

तब ऋचाएँ साम यजु और ब्रह्म उसके पीछे २ चले ॥ ८ ॥

ऋचां च वै स साम्नां च यजुषां च ब्रह्मणश्च प्रियं

धाम भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

ऋचाम् । च । वै । सः । साम्नाम् । च । यजुषाम् । च । ब्रह्मणः ।

च । ० ॥ ९ ॥

जो ऐसा जानता है वह ऋक् साम यजु और ब्रह्मका प्रियधाम
 होता है ॥ ९ ॥

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् ॥ १० ॥

३१८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सः । बृहतीम् । दिशम् । ० ॥ १० ॥

वह बृहती दिशाकी ओर चला ॥ १० ॥

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्य-
चलन् ॥ ११ ॥

तम् । इतिहऽआसः । च । पुराणम् । च । गाथाः । च । नारा-
शंसीः । च । ० ॥ ११ ॥

तब इतिहास पुराण और नाराशंसी गाथा उसके पीछे चली ११
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नारा-
शंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥

इतिहऽआसस्य । च । वै । सः । पुराणस्य । च । गाथानाम् ।
च । नाराशंसीनाम् । च । ० ॥ १२ ॥

जो इस बातको जानता है वह इतिहास पुराण और नारा-
शंसी गाथाओंका प्रियधाम होता है ॥ १२ ॥

स परमां दिशमनु व्यचलत् ॥ १३ ॥

सः । परमाम् । दिशम् । ० ॥ १३ ॥

वह परम दिशाकी ओर चला ॥ १३ ॥

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च यज्ञश्च यज-
मानश्च पशवश्चानुव्यचलन् ॥ १४ ॥

तम् । आऽहवनीयः । च । गार्हऽपत्यः । च । दक्षिणऽअग्निः ।
च । यज्ञः । च । यजमानः । च । पशवः । च । ० ॥ १४ ॥

तव आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि तथा यज्ञ यजमान और पशु उसके पीछे २ चले ॥ १४ ॥

आहवनीयस्य च वै स गार्हपत्यस्य च दक्षिणाग्नेश्च
यज्ञस्य च यजमानस्य च पशूनां च प्रियं धाम
भवति य एवं वेद ॥ १५ ॥

आहवनीयस्य । च । वै । सः । गार्हपत्यस्य । च । दक्षिणा-
ग्नेः । च । यज्ञस्य । च । यजमानस्य । च । पशूनाम् । च । ०

जो इस बातको जानता है वह आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्निका तथा यज्ञ यजमान और पशुओंका धाम अर्थात् उनके प्रादुर्भूत होनेका पात्र होता है ॥ १५ ॥

सोनादिष्टां दिशमनु व्यचलत् ॥ १६ ॥

सः । अनादिष्टाम् । दिशम् । ० ॥ १६ ॥

वह अनादिष्टा दिशाकी ओर चला ॥ १६ ॥

तमृतवश्चार्तवाश्च लोकाश्च लौक्याश्च मासांश्चार्ध-
मासाश्चाहोरात्रे चानुव्यचलन् ॥ १७ ॥

तम् । ऋतवः । च । आर्तवाः । च । लोकाः । च । लौक्याः ।

च । मासाः । च । अर्धमासाः । च । अहोरात्रे इति । च । ०

तब बसन्त आदि ऋतुएँ, ऋतुके पदार्थ, लोक और दर्शनीय पदार्थ, मास, अर्धमास दिन और रात्रि उसके पीछे २ चले १७

३२० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

ऋतूनां च वै स आर्तवानां च लोकानां च लौक्यानां
च मासानां चार्धमासानां चाहोरात्रयोश्च प्रियं धाम
भवति य एवं वेद ॥ १८ ॥

ऋतूनाम् । च । वै । सः । आर्तवानाम् । च । लोकानाम् ।
च । लौक्यानाम् । च । मासानाम् । च । अर्धमासानाम् ।
च । अहोरात्रयोः । च । ॥ १८ ॥

जो इस बातको जानता है वह ऋतुओंका ऋतुओंके पदार्थों
का, लोकोंका लौक्योंका, मासोंका पक्षोंका तथा दिन और रात्रि
का प्रिय धाम होता है ॥ १८ ॥

सोनावृत्तां दिशमनु व्यचलत् ततो नावत्स्यन्नमन्यत ॥

सः । अनावृत्ताम् । दिशम् । अनु । वि । अचलत् । ततः । न ।

आवत्स्यन् । अमन्यत ॥ १९ ॥

वह अनावृता दिशाकी ओर चला और तहाँ नहीं रहना चाहिये
यह मानने लगा ॥ १९ ॥

तं दितिश्चादितिश्चेडां चेन्द्राणी चानुव्यचलन् २०

तम् । दितिः । च । अदितिः । च । इडा । च । इन्द्राणी । च ।

अनुव्यचलन् ॥ २० ॥

तब उसके पीछे दिति अदिति इडा और इन्द्राणी चलीं २०
दितेश्च वै सोदितेश्चेडायाश्चेन्द्राण्याश्च प्रियं धाम
भवति य एवं वेद ॥ २१ ॥

दितेः । च । वै । सः । अदितेः । च । इडायाः । च । इन्द्राण्याः ।
च । प्रियम् । ० ॥ २१ ॥

जो इस बातको जानता है वह दिति अदिति इडा और इन्द्राणी
का प्रियधाम होता है ॥ २१ ॥

स दिशोनु व्यचलत् तं विराडनु व्यचलत् सर्वे च
देवाः सर्वाश्च देवताः ॥ २२ ॥

सः । दिशः । अनु । वि । अचलत् । तम् । विराट् । अनु ।
वि । अचलत् । सर्वे । च । देवाः । सर्वाः । च । देवताः २२
वह दिशाओंके अनुकूल चला तब विराट् सकल देव और देवता
इसके अनुकूल चले ॥ २२ ॥

विराजश्च वै स सर्वेषां च देवानां सर्वासां च देवतानां
प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २३ ॥

विराजः । च । वै । सः । सर्वेषाम् । च । देवानाम् । सर्वासाम् ।
च । देवतानाम् । प्रियम् । ० ॥ २३ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह विराट्का सकल देवोंका और
देवोंके सकल गण देवताओंका प्रियधाम होता है ॥ २३ ॥

स सर्वानन्तर्देशाननु व्यचलत् ॥ २४ ॥

सः । सर्वान् । अन्तःऽदेशान् । अनु । वि । अचलत् ॥ २४ ॥

वह सब अन्तर्देशोंके अनुकूल चला ॥ २४ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चानुव्य-
चलन् ॥ २५ ॥

तम् । प्रजाऽपतिः । च । परमेऽस्थी । च । पिता । च । पितामहः ।
च । अनुऽव्यचलन् ॥ २५ ॥

तब प्रजापति परमेष्ठी पिता और पितामह उसके अनुकूल चले
प्रजापतिश्च वै स परमेष्ठिनश्च पितुश्च पितामहस्य
च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ २६ ॥

प्रजाऽपतेः । च । वै । सः । परमेऽस्थिनः । च । पितुः । च ।
पितामहस्य । च । प्रियम् । धाम । भवति । यः । ० ॥ २६ ॥

इति प्रथमेनुवाके षष्ठं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस प्रकार जानता है वह प्रजापतिका परमेष्ठीका पिता
का और पितामहका प्रियधाम होता है ॥ २६ ॥

प्रथम अनुवाकमें छठा पर्याय सूक्त समाप्त (५१८)

स महिमा सद्भूत्वान्तं पृथिव्या अगच्छत् स समु-
द्रो भवत् ॥ १ ॥

सः । महिमा । सद्भुः । भूत्वा । अन्तम् । पृथिव्याः । अगच्छत् ।
सः । समुद्रः । अभवत् ॥ १ ॥

वह सद्भु महिमा बनकर पृथ्वीके अन्तमें गया और वह समुद्र
होगया ॥ १ ॥

तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च
श्रद्धा च वर्ष भूत्वानुव्यवर्तयन्त ॥ २ ॥

तम् । प्रजाऽपतिः । च । परमेऽस्थी । च । पिता । च । पितामहः ।

च । आपः । च । श्रद्धा । च । वर्षम् । भूत्वा । अनुऽव्यवर्तयन्त ।

प्रजापति परमेष्ठी पिता पितामह जल और श्रद्धा वर्षा बनकर
उसके अनुकूल बर्ताव करने लगे ॥ २ ॥

ऐनमापो गच्छत्यैनं श्रद्धा गच्छत्यैनं वर्षं गच्छति य
एवं वेद ॥ ३ ॥

आ । एनम् । आपः । गच्छति । आ । एनम् । श्रद्धा । गच्छति ।

आ । एनम् । वर्षम् । गच्छति । यः ॥ ३ ॥

जो इस प्रकार जानता है उसको जल प्राप्त होता है, श्रद्धा
प्राप्त होती है और वर्षा प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

तं श्रद्धा च यज्ञश्च लोकश्चान्नं चान्नाद्यं च भूत्वाभिप
र्यावर्तन्त ॥ ४ ॥

तम् । श्रद्धा । च । यज्ञः । च । लोकः । च । अन्नम् । च । अन्नऽ-

अद्यम् । च । भूत्वा । अभिऽपर्यावर्तन्त ॥ ४ ॥

श्रद्धा यज्ञ लोक अन्न और अन्नाद्य अपनी सत्तामें प्रकट होकर
उसको घेर कर खड़े होगए ॥ ४ ॥

ऐनं श्रद्धा गच्छत्यैनं यज्ञो गच्छत्यैनं लोको गच्छ-
त्यैनमन्नं गच्छत्यैनमन्नाद्यं गच्छति य एवं वेद ५

आ । एनम् । श्रद्धा । गच्छति । आ । एनम् । यज्ञः । गच्छति ।

आ । ए॒नम् । लो॒कः । ग॒च्छ॒ति । आ । ए॒नम् । अ॒न्नम् ।

ग॒च्छ॒ति । आ । ए॒नम् । अ॒न्नऽअ॒द्यम् । ग॒च्छ॒ति । यः । ० ५

प्रथमेनुवाके सप्तमं पर्यायसूक्तम् ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

जो इस प्रकार जानता है उसको श्रद्धा प्राप्त होती है यज्ञ प्राप्त होता है लोक प्राप्त होता है अन्न और अन्नको पचानेका बल भी प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

प्रथम अनुवाकमें सप्तम पर्याय सूक्त समाप्त (५१९)

प्रथम अनुवाक समाप्त

सो॒रि॒ज्य॒त॒ ततो॑ रा॒ज॒न्यो॑ जा॒य॒त ॥ १ ॥

सः । अ॒र॒ज्य॒त॒ । ततः॑ । रा॒ज॒न्यः॑ । अ॒जा॒य॒त ॥ १ ॥

उसने रञ्जन किया तदनन्तर वह राजा हुआ ॥ १ ॥

सः वि॒शः स॒ब॒न्धू॒न॒न्म॒न्नाद्य॑म॒भ्यु॒द॒तिष्ठ॑त् ॥ २ ॥

सः । वि॒शः । स॒ऽब॒न्धू॒न् । अ॒न्नम् । अ॒न्नऽअ॒द्यम् । अ॒भिऽउ॒द॒तिष्ठ॑त् २

वह प्रजाओंके बंधुओंके अन्नके और अन्नको पचानेके बलके अनुकूल चला ॥ २ ॥

वि॒शां च॒ वै स॒ स॒ब॒न्धू॒नां चान्न॑स्य चान्नाद्य॑स्य च
प्रि॒यं धाम॑ भवति॒ य एवं वेद॑ ॥ ३ ॥

वि॒शाम् । च॒ । वै । सः । स॒ऽब॒न्धू॒नाम् । च॒ । अ॒न्नस्य॑ । च॒ ।

अ॒न्नऽअ॒द्यस्य॑ । च॒ । प्रि॒यम् । धाम॑ । भ॒वति॑ । यः । ० ॥ ३ ॥

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस प्रकार जानता है वह प्रजाओंका बंधुओंका अन्नका
और अन्नाद्यका प्रियधाम होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम पर्याय सूक्त समाप्त (५२०)

स विशो॑नु व्य॑चलत् ॥ १ ॥

सः । विशः । अनु । वि । व्य॒चल॒त् ॥ १ ॥

वह प्रजाओंके अनुकूल चला ॥ १ ॥

तं स॒भा च॒ समि॑तिश्च॒ सेना॑ च॒ सुरा॑ चानुव्य॑चलन् २

सम् । स॒भा । च॒ । सम् । इतिः । च॒ । सेना॑ । च॒ । सुरा॑ । च॒ ।
अनु॒व्य॑चलन् ॥ २ ॥

तब सभा समिति सेना और सुरा उसके अनुकूल चले ॥ २ ॥

स॒भायाश्च॒ वै स॒समि॑तेश्च॒ सेना॑याश्च॒ सुरा॑याश्च॒ प्रियं॑
धाम॑ भवति॒ य ए॒वं वेद॑ ॥ ३ ॥

स॒भायाः । च॒ । वै । सः । सम् । इतिः । च॒ । सेना॑याः । च॒ ।

सुरा॑याः । च॒ । प्रियम् । धाम॑ । भवति॒ । यः । ए॒वम् । वेद॑ ३

इति द्वितीयेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस प्रकार जानता है वह सभा समिति सेना और सुरा
का प्रिय होता है ॥ ३ ॥

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (५२१)

तद् यस्यै॒वं वि॒द्वान् ब्रा॒त्यो रा॒ज्ञोति॑थिर्गृ॒हाना॑गच्छेत् १

तत् । यस्य॑ । ए॒वम् । वि॒द्वान् । ब्रा॒त्यः । रा॒ज्ञः । अति॑थिः । गृ॒हान् ।

आ॒गच्छेत् ॥ १ ॥

ऐसा विद्वान् ब्राह्मण जिस राजाके घरमें अतिथिरूपमें आवे १
 श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते
 तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥

श्रेयांसम् । एनम् । आत्मनः । मानयेत् । तथा । क्षत्राय । न । आ ।
 वृश्चते । तथा । राष्ट्राय । न । आ । वृश्चते ॥ २ ॥

तो इस श्रेष्ठ पुरुषका अपने (पुरुषोंसे वा आप) मान करे, ऐसा करनेसे वह राष्ट्र और क्षात्रशक्तिका नाश नहीं करता है अर्थात् उसका क्षात्रबल और राष्ट्र अक्षुण्ण रहता है ॥ २ ॥

अतो वै ब्रह्म च क्षत्रं चोदातिष्ठतां ते अब्रूतां कं प्र विशा-
 वेति ॥ ३ ॥

अतः । वै । ब्रह्म । च । क्षत्रम् । च । उत् । अतिष्ठताम् । ते इति ।
 अब्रूताम् । कम् । प्र । विशाव । इति ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्मबल और क्षात्रबल उठते हैं और कहते हैं,
 कि-हम किसमें प्रवेश करें ॥ ३ ॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्रा विशात्विन्द्रं क्षत्रं तथा
 वा इति ॥ ४ ॥

०। बृहस्पतिम् । एव । ब्रह्म । प्र । विशात् । इन्द्रम् । क्षत्रम् । तथा ।
 वै । इति ॥ ४ ॥

तब (किसीने कहा कि-) बृहस्पतिमें ब्रह्मबल प्रवेश करे और क्षात्रशक्ति इन्द्रमें प्रवेश करे ॥ ४ ॥

अतो वै बृहस्पतिमेव ब्रह्म प्राविशदिन्द्रं क्षत्रम् ॥ ५ ॥

अतः । वै । बृहस्पतिम् । एव । ब्रह्म । म । अविशत् । इन्द्रम् ।
क्षत्रम् ॥ ५ ॥

तब बृहस्पतिमें ब्रह्मबलने प्रवेश किया और क्षात्रशक्तिने इन्द्र
में प्रवेश किया ॥ ५ ॥

इयं वा उ पृथिवी बृहस्पतिद्यौरैवेन्द्रः ॥ ६ ॥

इयम् । वै । ऊं इति । पृथिवी । बृहस्पतिः । द्यौः । एव । इन्द्रः ६
यह पृथिवी ही बृहस्पति है और द्यौ ही इन्द्र है ॥ ६ ॥

अयं वा उ अग्निर्ब्रह्मासावादित्यः क्षत्रम् ॥ ७ ॥

अयम् । वै । ऊं इति । अग्निः । ब्रह्म । असौ । आदित्यः । क्षत्रम् ७
यह अग्नि ही ब्रह्मबल है और यह आदित्य ही क्षत्रबल है ७

एनं ब्रह्म गच्छति ब्रह्मवर्चसी भवति ॥ ८ ॥

आ । एनम् । ब्रह्म । गच्छति । ब्रह्मवर्चसी । भवति ॥ ८ ॥

यः पृथिवीं बृहस्पतिमग्निं ब्रह्म वेद ॥ ९ ॥

यः । पृथिवीम् । बृहस्पतिम् । अग्निम् । ब्रह्म । वेद ॥ ९ ॥

जो पृथिवीको बृहस्पति और अग्निको ब्रह्म जानता है तो उसको
ब्रह्मबल प्राप्त होता है और वह वह ब्रह्मवर्चस्वी होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

एनमिन्द्रियं गच्छतीन्द्रियवान् भवति ॥ १० ॥

आ । एनम् । इन्द्रियम् । गच्छति । इन्द्रियवान् । भवति ॥ १० ॥

३२८

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

य आदित्यं क्षत्रं दिवमिन्द्रं वेद ॥ ११ ॥

यः । आदित्यम् । क्षत्रम् । दिवम् । इन्द्रम् । वेद ॥ ११ ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

जो आदित्यको क्षत्र और द्यौको इन्द्र जानता है तो इन्द्रियें उसके पास आती हैं अर्थात् अपने स्वरूपको प्रकट कर देती हैं और वह इन्द्रियवान् होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५२२)

तद् यस्यैवं विद्वान् ब्रात्योतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥१॥

० ब्रात्यः । अतिथिः । ० ॥ १ ॥

जिसके घरमें ऐसा विद्वान् ब्रात्य अतिथिके रूपमें आवे ॥१॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य् ब्रूयाद् ब्रात्य क्वावात्सीर्ब्रात्योदकं
ब्रात्य तर्पयन्तु ब्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु ब्रात्य
यथा ते वक्षस्तथास्तु ब्रात्य यथा ते निकामस्तथा-
स्त्विति ॥ २ ॥

स्वयम् । एनम् । अभिऽउदेत्य् । ब्रूयात् । ब्रात्य । क्व । अवात्सीः ।

ब्रात्य । उदकम् । ब्रात्य । तर्पयन्तु । ब्रात्य । यथा । ते । प्रियम् ।

तथा । अस्तु । ब्रात्य । यथा । ते । वक्षः । तथा । अस्तु ।

ब्रात्य । यथा । ते । निऽकामः । तथा । अस्तु । इति ॥ २ ॥

तब स्वयं इसको अभ्युत्थान देकर कहे, कि-ब्रात्य ! तुम कहाँ रहते हो, हे ब्रात्य ! यह जल है हे ब्रात्य ! हमारे घरके पुरुष

तुमको वृत्त करें, हे ब्रातय ! जो बात तुमको प्रिय हो वह वैसे ही हो, हे ब्रातय ! जैसा तेरा वश है तैसा हो हे ब्रातय ! जैसा तेरा निकाम हो तैसा हो ॥ २ ॥

यदे॒न॒मा॒ह ब्रा॒तय॒ क्वा॒ वा॒त्सी॒रिति॒ पथ॒ ए॒व ते॒न दे॒व॒॒याना॒नव॑ रु॒द्धे ॥ ३ ॥

यत् । ए॒नम् । आ॒ह । ब्रा॒तय॑ । क्वा॒ । अ॒वा॒त्सीः । इति॑ । प॒थः । ए॒व ।
ते॒न । दे॒व॒ऽयाना॑न् । अ॒व । रु॒द्धे ॥ ३ ॥

जो इससे यह कहता है, कि—हे ब्रातय ! आप कहाँ रहोगे तो इससे देवयानके मार्गोंको ही खोल लेता है ॥ ३ ॥

यदे॒न॒मा॒ह ब्रा॒तयो॑द॒कमि॒त्यप॒ ए॒व ते॒नाव॑ रु॒द्धे ॥ ४ ॥

० । ब्रा॒तय॑ । उ॒द॒कम् । इति॑ । अ॒पः । ए॒व । ते॒न । अ॒व । रु॒द्धे ४

जो इससे कहता है, कि—हे ब्रातय ! यह जल है तो जलको ही खोल लेता है ॥ ४ ॥

यदे॒न॒मा॒ह ब्रा॒तय॑ त॒र्पय॑न्ति॒वति॑ प्रा॒णमे॒व ते॒न वर्षी॑यांसं॒ कुरु॑ने ॥ ५ ॥

० । ब्रा॒तय॑ । त॒र्पय॑न्तु । इति॑ । प्रा॒णम् । ए॒व । ते॒न । वर्षी॑यांसम् ।
कुरु॑ने ॥ ५ ॥

जो कहता है, कि—हे ब्रातय ! यह हमारे पुरुष आपको वृत्त करें, उससे अपने प्राणको ही वर्षीयान् करता है ॥ ५ ॥

यदे॒न॒मा॒ह ब्रा॒तय॑ यथा॒ ते प्रि॒यं तधा॑स्ति॒वति॑ प्रि॒यमे॒व ते॒नाव॑ रु॒द्धे ॥ ६ ॥

यत् । ए॒नम् । आ॒ह । व्रा॒त्य । यथा । ते । प्रि॒यम् । तथा । अ॒स्तु ।

इति । प्रि॒यम् । ए॒व । तेन । अ॒थ । रु॒न्ध्रे ॥ ६ ॥

जो इससे कहता है, कि-हे व्रात्य ! जैसा आपको प्रिय होगा तैसा ही होगा तो उससे अपने प्रिय कार्योंको ही (प्राप्त करता है) खोलता है ॥ ६ ॥

ऐ॒नं प्रि॒यं गच्छ॑ति प्रि॒यः प्रि॒यस्य॑ भ॒वति॑ य ए॒वं वेद॑

आ । ए॒नम् । प्रि॒यम् । ग॒च्छति॑ । प्रि॒यः । प्रि॒यस्य॑ । भ॒वति॑ । यः । ए॒वम् ।

वेद॑ ॥ ७ ॥

जो ऐसा जानता है तो प्रिय पुरुषको प्राप्त होता है और प्रिय का प्रिय होता है । ७ ॥

यदे॒नमा॒ह व्रा॒त्य यथा॑ ते व॒शस्तथा॑स्ति॒वति॑ व॒शमे॒व

तेना॒व रु॒न्ध्रे ॥ ८ ॥

० ते व॒शः । । तथा । अ॒स्तु । इति॑ । व॒शम् । ए॒व । ० ॥ ८ ॥

जो कहता है, कि-हे व्रात्य ! जैसा तेरा वश है तैसा ही हो तो उससे वशको ही खोलता है-पाता है ॥ ८ ॥

ऐ॒नं व॒शो गच्छ॑ति व॒शी व॒शिनां॑ भ॒वति॑ य ए॒वं वेद॑ ६

आ । ए॒नम् । व॒शः । ग॒च्छति॑ । व॒शी । व॒शिनाम् । भ॒वति॑ । ० ६

जो इस प्रकार जानता है तो वश इसको प्राप्त होता है और यह वशियोंको भी वशमें रखने वाला होता है ॥ ८ ॥

यदे॒नमा॒ह व्रा॒त्य यथा॑ ते नि॒काम॑स्तथा॑स्ति॒वति॑ नि॒काम॑

मे॒व तेना॒व रु॒न्ध्रे ॥ १० ॥

यत् । ए॒नम् । आ॒ह । ब्रा॒त्य । यथा । ते । नि॒ऽकामः । तथा ।

अ॒स्तु । इति । नि॒ऽकामम् । ए॒व । तेन । अ॒व । रु॒द्धे ॥ १० ॥

जो इससे कहता है, कि-हे ब्रात्य ! जैसा तुम्हारा निकाम (अभिलाषा) हो तैसा ही हो तो उससे अपने लिये निकामको ही खोल लेता है ॥ १० ॥

ए॒नं नि॒कामो ग॑च्छति नि॒कामे नि॒कामस्य॑ भवति॒ य
ए॒वं वेद॑ ॥ ११ ॥

आ । ए॒नम् । नि॒ऽकामः । ग॑च्छति । नि॒ऽकामे । नि॒ऽकामस्य॑ ।

भ॒वति॒ । यः । ए॒वम् । वेद॑ ॥ ११ ॥

इति द्वितीयेनुवाके चतुर्थं पर्यायमुक्तम् ॥

जो इस प्रकार जानता है, निकाम उसको प्राप्त होता है ११

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (५२३)

तद् य॒स्यै॒वं वि॒द्वान् ब्रा॒त्य उ॒द्धृते॑ष्व॒ग्निष्व॒धि॒श्रिते॑ग्नि॒
हो॒त्रेति॑थिर्गृ॒हाना॑गच्छेत् ॥ १ ॥

० । ब्रा॒त्यः । उ॒द्धृते॑षु । अ॒ग्निषु॑ । अ॒धि॒ऽश्रिते॑ । अ॒ग्नि॒ऽहो॒त्रे ।

अ॒ति॒थिः । गृ॒हान् । आ॒गच्छेत् ॥ १ ॥

अग्नियोंके उद्धृत करने पर और अग्निहोत्रके अधिश्रित होने पर यदि ऐसा विद्वान् ब्रात्य इस अग्निहोत्रीके घर पर आजावे ? स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् ब्रात्यातिं सृज होष्यामीति

३३२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

स्वयम् । एनम् । अभिऽउदेत्य । ब्रूयात् ! ब्रात्य । अति । सृज ।
होष्यामि । इति ॥ २ ॥

तब इसको अपने आप अभ्युत्थान देकर कहे, कि-हे ब्रात्य !
आज्ञा दीजिये, मैं होम करूँगा ॥ २ ॥

स चातिसृजेज्जुहुयान्न चातिसृजेन्न जुहुयात् ॥३॥

सः । च । अतिऽसृजेत् । जुहुयात् । न । च । अतिऽसृजेत् । न ।
जुहुयात् ॥ ३ ॥

वह आज्ञा देवे तो आहुतिदेय, आज्ञा न देय तो आहुति न देवे
स य एवं विदुषा ब्रात्येनातिसृष्टे जुहोति ॥ ४ ॥

सः । यः । एवम् । विदुषा । ब्रात्येन । अतिऽसृष्टः । जुहोति ४

जो वह ऐसे विद्वान् ब्रात्यके कहने पर आहुति देता है ॥ ४ ॥

प्र पितृयाणं पन्थां जानाति प्र देवयानम् ॥ ५ ॥

प्र । पितृऽयानम् । पन्थाम् । जानाति । प्र । देवऽयानम् ॥ ५ ॥

तो पितृयानमार्गको और देवयानमार्गको जान जाता है ॥५॥

न देवेष्वामृश्वते हुतमस्य भवति ॥ ६ ॥

न । देवेषु । आ । मृश्वते । हुतम् । अस्य । भवति ॥ ६ ॥

और इसकी आहुति देवताओंसे छिन्न नहीं होती है देवताओं
को ही प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

पर्यस्यास्मिन्नलोक आयतनं शिष्यते य एवं विदुषा
ब्रात्येनातिसृष्टे जुहोति ॥ ७ ॥

परि । अस्य । अस्मिन् । लोके । आश्रयतनम् । शिष्यते । यः ।

एवम् । विदुषा । ब्राह्मणेन । अनतिसृष्टः । जुहोति ॥ ७ ॥

जो ऐसे विद्वान् ब्राह्मणके कहने पर आहुति देता है तो इसका आश्रयतन संसारमें चारों ओर अवशिष्ट रहता है ॥ ७ ॥

अथ य एवं विदुषा ब्राह्मणेनानतिसृष्टो जुहोति । ८ ।

अथ । यः । एवम् । विदुषा । ब्राह्मणेन । अनतिसृष्टः । जुहोति ८

और ऐसे विद्वान् ब्राह्मणके आज्ञा न देने पर भी आहुति देता है न पितृयाणं पन्थां जानाति न देवयानम् ॥ ८ ॥

न । पितृयानम् । पन्थाम् । जानाति । न । देवयानम् ॥ ८ ॥

तो वह न पितृयानमार्गको जान पाता है और न देवयानमार्ग को जान पाता है ॥ ८ ॥

आ देवेषु वृश्चते अहुतमस्य भवति ॥ ९ ॥

आ । देवेषु । वृश्चते । अहुतम् । अस्य । भवति ॥ ९ ॥

नास्यास्मिन्नल्लोक आश्रयतनं शिष्यते य एवं विदुषा ब्राह्मणेनानतिसृष्टो जुहोति ॥ ११ ॥

न । अस्य । अस्मिन् । लोके । आश्रयतनम् । शिष्यते । यः ।

एवम् । विदुषा । ब्राह्मणेन । अनतिसृष्टः । जुहोति ॥ ११ ॥

इति द्वितीयेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

जो ऐसे विद्वान् ब्राह्मणके आज्ञा न देने पर आहुति देता है तो इसका हुत अहुत होजाता है और यह देवताओंमें काटा जाता है

३३४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अर्थात् देवताओंके कोपका भाजन होता है और इस लोकमें इसका कोई आयतन (घर) भी बाकी नहीं रहता है ॥१०॥११॥

द्वितीय अनुवाकमें पञ्चमपर्याय सूक्त समाप्त (५२४)

तद् यस्यैवं विद्वान् ब्रातॄन् एकां रात्रिमतितिथिर्गृहे वसति

०। ब्रातॄन् । एकाम् । रात्रिम् । अतिथिः । गृहे । वसति ॥ १ ॥

ऐसा विद्वान् ब्रातृ जिसके घरमें एक रात्रि तक अतिथिके रूप में वसता है ॥ १ ॥

ये पृथिव्यां पुण्यां लोकास्तानेव तेनाव रुन्दे ॥२॥

ये । पृथिव्याम् । पुण्याः । लोकाः । तान् । एव । तेन । अव । रुन्दे

तो उस फलसे पृथ्वीमें जितने पुण्यलोक हैं उनको जीत लेता है तद् यस्यैवं विद्वान् ब्रातॄन् द्वितीयां रात्रिमतितिथिर्गृहे वसति ॥ ३ ॥

०। ब्रातॄन् । द्वितीयाम् । रात्रिम् । ० ॥ ३ ॥

और ऐसा विद्वान् ब्रातृ जिसके घरमें अतिथिके रूपमें दूसरी रात्रि रहता है ॥ ३ ॥

ये अन्तरिक्षे पुण्यां लोकास्तानेव तेनाव रुन्दे ॥४॥

ये । अन्तरिक्षे । पुण्याः । ० ॥ ४ ॥

तो उसके फलसे वह अन्तरिक्षके पुण्यलोकों (के द्वार) को खोल लेता है ॥ ४ ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् ब्रातॄन् तृतीयां रात्रिमतितिथिर्गृहे वसति

०। ब्रातॄन् । तृतीयाम् । रात्रिम् । ० ॥ ५ ॥

और ऐसा विद्वान् ब्राह्म्य जिसके घरमें अतिथिके रूपमें
तीसरी रात्रिमें रहता है ॥ ५ ॥

ये दिवि पुण्यां लोकास्तानेव तेनाव रुन्दे ॥ ६ ॥

ये । दिवि । पुण्याः । १० ॥ ६ ॥

तो उसके फलसे वह आँके पुण्यलोकों (के द्वार) को खोल
लेता है ॥ ६ ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् ब्राह्म्यश्चतुर्थी रात्रिमतिथिर्गृहे वसति

० । ब्राह्म्यः । चतुर्थीम् । रात्रिम् । अतिथिः । १० ॥ ७ ॥

और ऐसा विद्वान् ब्राह्म्य जिसके घरमें अतिथिके रूपमें चौथी
रात्रिमें रहता है ॥ ७ ॥

ये पुण्यानां पुण्यां लोकास्तानेव तेनाव रुन्दे ॥ ८ ॥

ये । पुण्यानाम् । पुण्याः । १० ॥ ८ ॥

तो उसके फलसे वह पुण्यात्माओंके पुण्यलोकों (के द्वार)
को खोल लेता है ॥ ८ ॥

तद् यस्यैवं विद्वान् ब्राह्म्योपरिमिता रात्रीरतिथिर्गृहे

वसति ॥ ९ ॥

तद् । यस्य । एवम् । विद्वान् । ब्राह्म्यः । अपरिमिताः । रात्रीः ।

अतिथिः । गृहे । वसति ॥ ९ ॥

और ऐसा विद्वान् ब्राह्म्य जिसके घरमें अतिथिके रूपमें अपरि-
मित रात्रियों तक रहता है ॥ ९ ॥

य एवापरिमिताः पुण्यां लोकास्तानेव तेनाव रुन्दे

ये। ए॒व। अ॒परिऽमिताः। पु॒ण्याः। लो॒काः। ता॒न्। ए॒व। ते॒न। अ॒व।
रु॒द्धे ॥ १० ॥

तो उसके फलसे वह अपरिमित पुण्यलोकोंके (द्वारको)
खोल लेता है ॥ १० ॥

अथ॒ यस्या॒वा॒त्यो वा॒त्यब्रु॒वो ना॒मवि॒भ्र॒त्यति॒थिर्गृ॒हाना॒-
गच्छे॒त् ॥ ११ ॥

अथ॒। यस्य॒। अ॒वा॒त्यः। वा॒त्यऽब्रु॒वः। ना॒मवि॒भ्र॒ती। अति॒थिः।
गृ॒हान्। आ॒गच्छे॒त् ॥ ११ ॥

और जिसके घरों वास्तवमें अवात्य तथा अपनेको वात्य
कहने वाला अतिथि आवे ॥ ११ ॥

कर्षे॒दे॒नं न चै॒नं कर्षे॒त् ॥ १२ ॥

कर्षे॒त्। ए॒नम्। न। च। ए॒नम्। कर्षे॒त् ॥ १२ ॥

तो उसको खदेड़ देय किंतु वास्तविक वात्यको न खदेड़े १२
अस्यै॒ दे॒वता॒या उ॒द॒कं या॒चामी॒मां दे॒वतां॑ वा॒सय॒ इमा॒-

मि॒मां दे॒वता॒ परि॑ वे॒वेष्मी॒त्ये॒नं परि॑ वे॒विष्या॒त् ॥ १३ ॥

अस्यै॒। दे॒वता॒यै॒। उ॒द॒कम्। या॒चामि॒। इ॒माम्। दे॒वता॒म्। वा॒सये॒।

इ॒माम्। इ॒माम्। दे॒वता॒म्। परि॑। वे॒वेष्मि॒। इति॑ ए॒नम्। परि॑
वे॒विष्या॒त् ॥ १३ ॥

मैं इस देवतासे जलकी प्रार्थना करता हूँ, मैं इस देवताको
वसाता हूँ और इस देवताको परोसता हूँ यह समझ कर परोसे १३

तस्यामेवास्य तद् देवतायां हुतं भवति य एवं वेद
 तस्याम् । एव । अस्य । तत् । देवतायाम् । हुतम् । भवति । यः । एवम्
 वेद ॥ १४ ॥

इति द्वितीयेनुवाके षष्ठं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस बातको जानता है वा जो इस बातको प्राप्त करता है
 उसका इस देवतामें हुत ही हुत होता है ॥ १० ॥

द्वितीय अनुवाकमें छठा पर्याय सूक्त समाप्त (५२५)

स यत् प्राचीं दिशमनु व्यचलन्मारुतं शर्धो भूत्वानु-
 व्यचलन्मनोन्नादं कृत्वा ॥ १ ॥

सः । यत् । प्राचीम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । मारुतम् ।

शर्धः । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । मनः । अन्नऽअदम् । कृत्वा

वह जब पूर्वदिशाके अनुकूल चला तब बल (वान्) होकर
 वायुके अनुकूल चला और उसने मनको अन्नाद बनाया ?

मनसान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २ ॥

मनसा । अन्नऽअदेन । अन्नम् । अत्ति । यः । १० ॥ २ ॥

जो इस बातको प्राप्त कर लेता है वह अन्नाद मनके द्वारा
 अन्नका भक्षण करता है ॥ २ ॥

स यद् दक्षिणां दिशमनु व्यचलदिन्द्रो भूत्वानुव्य-
 चलद् बलमन्नादं कृत्वा ॥ ३ ॥

०। यत् । दक्षिणाम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । इन्द्रः । भूत्वा ।
अनुऽव्यचलत् । बलम् । अन्नऽअदम् । कृत्वा ॥ ३ ॥

वह जब दक्षिण दिशाके अनुकूल चला तब बलको अन्नाद
बना कर और स्वयं इन्द्र बन कर चला ॥ ३ ॥

बलेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ४ ॥

बलेन । अन्नऽअदेन । अन्नम् । ०॥ ३ ॥

जो इस प्रकार जानता है वा जो इस बातको पा लेता है वह
अन्नाद बलके द्वारा अन्नका भक्षण कर लेता है ॥ ४ ॥

स यत् प्रतीचीं दिशमनु व्यचलद् वरुणो राजा भूत्वा-
नुव्यचलदपो न्नादीः कृत्वा ॥ ५ ॥

०। यत् । प्रतीचीम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । वरुणः ।
राजा । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । अपः । अन्नऽअदीः । कृत्वा ५

वह जब पश्चिम दिशाके समान चला तब जलको अन्नाद
(अन्न भक्षण करने वाला) कर राजा वरुण बन कर पश्चिम
दिशाके अनुकूल चला ॥ ५ ॥

अग्निर्न्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ ६ ॥

अत्ऽभिः । अन्नऽअदीभिः । अन्नम् । ०॥ ६ ॥

जो इस बातको जानता है वह अन्नभक्षक जलके द्वारा अन्न
का भक्षण करता है ॥ ६ ॥

स यदुदीचीं दिशमनु व्यचलत् सोमो राजा भूत्वा-
नुव्यचलत् सप्तर्षिभिर्हुत आहुतिमन्नादीं कृत्वा ॥ ७ ॥

०। यत् । उदीचीम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । सोमः ।
 राजा । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । सप्तर्षिऽभिः । हुने । आऽहु-
 तिम् । अन्नऽअदीम् । कृत्वा ॥ ७ ॥

वह जब उत्तर दिशाके अनुकूल चला तब सप्तर्षियोंसे होमी
 हुई आहुतिका अन्नका भक्षण करने वाली बना राजा सोमके अनु-
 कूल चला ॥ ७ ॥

आहुत्यान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥

आऽहुत्या । अन्नऽअद्या । अन्नम् । ० ॥ ८ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नका भक्षण करने वाली
 आहुतिके द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ ८ ॥

स यद् ध्रुवां दिशमनु व्यचलद् विष्णुर्भूत्वानुव्यच-
 लद् विराजमन्नादीं कृत्वा ॥ ९ ॥

०। यत् । ध्रुवाम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । विष्णुः । भूत्वा ।

अनुऽव्यचलत् । विऽराजम् । अन्नऽअदीम् । कृत्वा ॥ ९ ॥

वह जब ध्रुवदिशाके अनुकूल चला तब विराट्को अन्नाद बना
 विष्णु बन कर चला ॥ ९ ॥

विराजान्नाद्यान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १० ॥

विऽराजा । अन्नऽअद्या । अन्नम् । ० ॥ १० ॥

जो इस बातको जानता है वह अन्नभक्षक विराट्के द्वारा अन्न
 का भक्षण करता है ॥ १० ॥

३४० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

स यत् पशून्नु व्यचलद् रुद्रो भूत्वानुव्यचलदोषधी-
रन्नादीः कृत्वा ॥ ११ ॥

०। यत् । पशून् । अनु । विऽअचलत् । रुद्रः । भूत्वा । अनुऽव्य-
चलत् । ओषधीः । अन्नऽअदीः । कृत्वा ॥ ११ ॥

वह जब पशुओं (अज्ञानी जीवों) के अनुकूल चला तब
ओषधियोंके अन्नका भक्षण करनेवाली बना रुद्र बन कर अनुकूल
चला ॥ ११ ॥

ओषधीभिरन्नादीभिरन्नमत्ति य एवं वेद ॥ १२ ॥

ओषधीभिः । अन्नऽअदीभिः । अन्नम् । ० ॥ १२ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नका भक्षण करने वाली
ओषधियोंके द्वारा अन्नका भक्षण करता है ॥ १२ ॥

स यत् पितॄन्नु व्यचलद् यमो राजा भूत्वानुव्य-
चलत् स्वधाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १३ ॥

० । यत् । पितॄन् । अनु । विऽअचलत् । यमः । राजा । भूत्वा ।
अनुऽव्यचलत् । स्वधाऽकारम् । अन्नऽअदम् । कृत्वा ॥ १३ ॥

वह जब पितरोंके अनुकूल चला तब स्वधाकारको अन्नाद बना
यम राजा बनकर अनुकूल चला ॥ १३ ॥

स्वधाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १४ ॥

स्वधाऽकारेण । अन्नऽअदेन । अन्नम् । ० ॥ १४ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह स्वधाकार अन्नादके द्वारा अन्न
का भक्षण करता है ॥ १४ ॥

स यन्मनुष्याश्ननु व्यचलदग्निर्भूत्वानुव्यचलत् स्वा-
हाकारमन्नादं कृत्वा ॥ १५ ॥

०। यत् । मनुष्यान् । अनु । विऽअचलत् । अग्निः । भूत्वा । अनुऽ-
व्यचलत् । स्वाहाऽकारम् । अन्नऽअदम् । ० ॥ १५ ॥

वह जब मनुष्योंके अनुकूल चला तब स्वाहाकारको अन्नाद
बना स्वयं अग्नि होकर अनुकूल चला ॥ १५ ॥

स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १६ ॥

स्वाहाऽकारेण । अन्नऽअदेन । ० ॥ १६ ॥

जो इस बातको जानता है वह अन्नाद स्वाहाकारके द्वारा
अन्नका भक्षण करता है ॥ १६ ॥

स यद्ध्वादिशमनु व्यचलद् बृहस्पतिर्भूत्वानुव्यचलद्
वषट्कारमन्नादं कृत्वा ॥ १७ ॥

० । यत् । ऊर्ध्वाम् । दिशम् । अनु । विऽअचलत् । बृहस्पतिः ।
भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । वषट्कारम् । अन्नऽअदम् । ० ॥ १७ ॥

वह जब ऊर्ध्वा दिशाके अनुकूल चला तब वषट्कारको अन्नाद
बनाकर और बृहस्पति बन कर अनुकूल चला ॥ १७ ॥

वषट्कारेणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ १८ ॥

वषट्कारेण । अन्नऽअदेन । ० ॥ १८ ॥

जो इस बातको जानता है वह अन्नाद वषट्कारके द्वारा अन्न
का भक्षण करता है ॥ १८ ॥

३४२

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

स यद् देवाननुव्यचलदीशानो भूत्वानुव्यचलन्मन्यु-
मन्नादं कृत्वा ॥ १६ ॥

०। यत् । देवान् । अनु । विऽअचलत् । ईशानः । भूत्वा । अनुऽऽ-
व्यचलत् । मन्युम् । अन्नऽअदम् । ० ॥ १६ ॥

जब वह देवताओंके अनुकूल चला तब मन्यु (यज्ञ) को
अन्नाद बनाकर और ईशान बनकर देवताओंके अनुकूल चला १६

मन्युनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २० ॥

मन्युना । अन्नऽअदेन । ० ॥ २० ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नाद मन्युके द्वारा अन्नका
भक्षण करता है ॥ २० ॥

स यत् प्रजा अनुव्यचलत् प्रजापतिर्भूत्वानुव्यचलत्
प्राणमन्नादं कृत्वा ॥ २१ ॥

०। यत् । प्रऽजाः । अनु । विऽअचलत् । प्रजाऽपतिः । भूत्वा ।
अनुऽव्यचलत् । प्राणम् । अन्नऽअदम् । ० ॥ २१ ॥

वह जब प्रजाओंके अनुकूल चला तब प्राणको अन्नाद बना
कर प्रजापति बन कर अनुकूल चला ॥ २१ ॥

प्राणेनान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २२ ॥

प्राणेन । अन्नऽअदेन । ० ॥ २२ ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नाद प्राणके द्वारा अन्नका
भक्षण करता है ॥ २२ ॥

स यत् सर्वानन्तर्देशाननु वयचलत् परमेष्ठी भूत्वानु-
वयचलद् ब्रह्मान्नादं कृत्वा ॥ २३ ॥

सः । यत् । सर्वान् । अन्तःऽदेशान् । अनु । विऽअचलत् । परमेऽ-
स्थी । भूत्वा । अनुऽव्यचलत् । ब्रह्म । अन्नऽअदम् । कृत्वा ।

वह जब सब अन्तर्देशोंके अनुकूल चला तब तब ब्रह्मको अन्नाद
बनाकर और प्रजापति बन कर अनुकूल चला ॥ २३ ॥

ब्रह्माणान्नादेनान्नमत्ति य एवं वेद ॥ २४ ॥

ब्रह्मणा । अन्नऽअदेन । अन्नम् । अत्ति । यः । एवम् । वेद २४

इति द्वितीयेनुवाके सप्तमं पर्यायसूक्तम् ॥

जो इस प्रकार जानता है वह अन्नाद ब्रह्मके द्वारा अन्नका
भक्षण करता है ॥ २४ ॥

द्वितीय अनुवाकमें सप्तम पर्याय सूक्त समाप्त (५२६)

तस्य वात्यस्य ॥ १ ॥

तस्य । वात्यस्य ॥ १ ॥

सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः ॥ २ ॥

सप्त । प्राणाः । सप्त । अपानाः । सप्त । विऽआनाः ॥ २ ॥

उस वात्यके सात प्राण हैं, सात अपान हैं और सात व्यान हैं १।२

तस्य वात्यस्य । योस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं

सो अग्निः ॥ ३ ॥

३४४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

०। यः । अस्य । प्रथमः । प्राणः । ऊर्ध्वः । नाम । अयम् । सः ।
अग्निः ॥ ३ ॥

इस व्रात्यका जो ऊर्ध्व नामक प्रथम प्राण है वह यह अग्नि है
तस्य व्रात्यस्य । योस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ
स आदित्यः ॥ ४ ॥

०। अस्य । द्वितीयः । प्राणः । प्रऽऊढः । नाम । असौ । सः ।
आदित्यः ॥ ४ ॥

इस व्रात्यका जो प्रौढ नामक दूसरा प्राण है वह आदित्य है ४
तस्य व्रात्यस्य । योस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यू ढो नामासौ
स चन्द्रमाः ॥ ५ ॥

०। अस्य । तृतीयः । प्राणः । अभिऽऊढः । नाम । असौ । सः ।
चन्द्रमाः ॥ ५ ॥

इस व्रात्यका जो अभ्यूढ नामक तृतीय प्राण है वह यह
चन्द्रमा है ॥ ५ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं
स पवमानः ॥ ६ ॥

०। अस्य । चतुर्थः । प्राणः । विऽभूः । नाम । अयम् । सः । पव-
मानः ॥ ६ ॥

इस व्रात्यका जो विभू नामक चौथा प्राण है वह यह पवमान है

तस्य व्रात्यस्य । योस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता
इमा आपः ॥ ७ ॥

०। अस्य । पञ्चमः । प्राणः । योनिः । नाम । ताः । इमाः । आपः
इस व्रात्यका जो योनि नामक पञ्चम प्राण है वह यह जल है ७
तस्य व्रात्यस्य । योस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे
पशवः ॥ ८ ॥

अस्य । षष्ठः । प्राणः । प्रियः । नाम । ते । इमे । पशवः ॥ ८ ॥
इस व्रात्यका जो प्रिय नामक छठा प्राण है वह ये पशु हैं ८
तस्य व्रात्यस्य । योस्य सप्तमः प्राणोपरिमितो नाम
ता इमाः प्रजाः ॥ ९ ॥

०। अस्य । सप्तमः । प्राणः । अपरिमितः । नाम । ताः । इमाः ।
प्रजाः ॥ ९ ॥

इति द्वितीयेनुवाके अष्टमं पर्यायसूक्तम् ॥

इस व्रात्यका जो अपरिमित नामक सातवाँ प्राण है वह ये प्रजा हैं
द्वितीय अनुवाकमें अष्ट । पर्याय सूक्त समाप्त (५२७)

तस्य व्रात्यस्य । योस्य प्रथमोपानः सा पौर्णमासी १

०। प्रथमः । अपानः । सा । पौर्णमासी ॥ १ ॥

इस व्रात्यका जो प्रथम अपान है वह पौर्णमासी है ॥ १ ॥

तस्य व्रात्यस्य । योस्य द्वितीयोपानः साष्टका ॥ २ ॥

०। द्वितीयः । अपानः । सा । अष्टका ॥ २ ॥

इस व्रात्यका जो द्वितीय अपान है वह अष्टका है ॥ २ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योस्य तृतीयोपानः सामावास्या ॥ ३

० । तृतीयः । अपानः । सा । अमावास्या ॥ ३

इस व्रात्यका जो तृतीय अपान है वह अमावास्या है ॥ ३ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योस्य चतुर्थोपानः सा श्रद्धा ॥ ४ ॥

० । चतुर्थः । अपानः । सा । श्रद्धा ॥ ४ ॥

इस व्रात्यका जो चौथा अपान है वह श्रद्धा है ॥ ४ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योस्य पञ्चमोपानः सा दीक्षा ॥ ५ ॥

० । पञ्चमः । अपानः । सा । दीक्षा ॥ ५ ॥

इस व्रात्यका जो पाँचवाँ अपान है वह दीक्षा है ॥ ५ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योस्य षष्ठोपानः स यज्ञः ॥ ६ ॥

० । षष्ठः । अपानः । सः । यज्ञः ॥ ६ ॥

इस व्रात्यका जो छठा अपान है वह यज्ञ है ॥ ६ ॥
तस्य व्रात्यस्य । योस्य सप्तमोपानस्ता इमा दक्षिणाः

सप्तमः । अपानः । ताः । इमाः । दक्षिणाः ॥ ७ ॥

इति द्वितीयेनुवाके नवमं पर्यायसूक्तम् ॥

इस व्रात्यका जो सप्तम अपान है वह ये दक्षिणा हैं ॥ ७ ॥

द्वितीय अनुवाकमें नवम पर्याय सूक्त समाप्त (५२८) ॥

तस्य व्रात्यस्य । योस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥ १

० । अस्य । प्रथमः । विऽयानः । सा । इयम् । भूमिः ॥ १ ॥

इस ब्राह्मका जो प्रथम व्यान है वह यह भूमि है ॥ १ ॥

तस्य ब्राह्मस्य । योस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम्

० । अस्य । द्वितीयः । विज्ञानः । तत् । अन्तरिक्षम् ॥ २ ॥

इस ब्राह्मका जो द्वितीय व्यान है वह अन्तरिक्ष है ॥ २ ॥

तस्य ब्राह्मस्य । योस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ३

० । अस्य । तृतीयः । विज्ञानः । सा । द्यौः ॥ ३ ॥

इस ब्राह्मका जो तृतीय व्यान है वह द्यौ है ॥ ३ ॥

तस्य ब्राह्मस्य । योस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि

० । अस्य । चतुर्थः । विज्ञानः । तानि । नक्षत्राणि ॥ ४ ॥

इस ब्राह्मका जो चतुर्थ व्यान है वे नक्षत्र हैं ॥ ४ ॥

तस्य ब्राह्मस्य । योस्य पञ्चमो व्यानस्त ऋतवः ५

० । अस्य । पञ्चमः । विज्ञानः । ते । ऋतवः ॥ ५ ॥

इस ब्राह्मका जो पञ्चम व्यान है वे ऋतुएँ हैं ॥ ५ ॥

तस्य ब्राह्मस्य । योस्य षष्ठो व्यानस्त आर्तिवाः ६

० । अस्य । षष्ठः । विज्ञानः । ते । आर्तिवाः ॥ ६ ॥

इस ब्राह्मका जो छठा व्यान है वे आर्तिव हैं ॥ ६ ॥

तस्य ब्राह्मस्य । योस्य सप्तमो व्यानः स संवत्सरः ७

० । यः । अस्य । सप्तमः । विज्ञानः । सः । सम्संवत्सरः ॥ ७ ॥

इस ब्राह्मका जो सप्तम व्यान है वह सम्वत्सर है ॥ ७ ॥

तस्य व्रात्यस्य । समानमर्थं परि यन्ति देवा संवत्सरं
वा एतद्वृत्तवोऽनुपरियन्ति व्रात्यं च ॥ ८ ॥

समानम् । अर्थम् । परि । यन्ति । देवाः । सम्भवत्सरम् । वै ।

एतत् । ऋतवः । अनुपरियन्ति । व्रात्यम् । च ॥ ८ ॥

देवता इस व्रात्यके समान अर्थको प्राप्त होते हैं सम्भवत्सर और
ऋतु भी इसका परिगमन करते हैं ॥ ८ ॥

तस्य व्रात्यस्य । यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां
चैव तत्पौर्णमासीं च ॥ ९ ॥

०। यत् । आदित्यम् । अभिसंविशन्ति । अमावास्याम् । च ।

एव । तत् । पौर्णमासीम् । च ॥ ९ ॥

जो अमावास्या और पौर्णमासीको आदित्यमें प्रवेश करते हैं
(वे इस व्रात्यके प्रशंसक ही प्रवेश करते हैं) ॥ ९ ॥

तस्य व्रात्यस्य । एकं तदेषाममृतत्वमित्याहुतिरेव १०

एकम् । तत् । एषाम् । अमृतत्वम् । इति । आहुतिः । एव १०

इति द्वितीयेनुवाके दशमं पर्यायमुक्तम् ॥

वह यह एक आहुति ही इनका अमृतत्व है ॥ १० ॥

द्वितीय अनुवाकमें दशमपर्याय सूक्त समाप्त (५२९)

तस्य व्रात्यस्य ॥ १ ॥

तस्य । व्रात्यस्य ॥ १ ॥

यदस्य दक्षिणमक्षयसौ स आदित्यो यदस्य सव्यम-
क्षयसौ स चन्द्रमाः ॥ २ ॥

यत् । अस्य । दक्षिणम् । अक्षि । असौ । सः । आदित्यः । यत् ।

अस्य । सव्यम् । अक्षि । असौ । सः । चन्द्रमाः ॥ २ ॥

इस वात्यका जो दाहिना नेत्र है वह आदित्य है और बायाँ
नेत्र है वह चन्द्रमा है ॥ १ ॥ २ ॥

योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सोऽग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं
स पवमानः ॥ ३ ॥

यः । अस्य । दक्षिणः । कर्णः । अयम् । सः । अग्निः । यः ।

अस्य । सव्यः । कर्णः । अयम् । सः । पवमानः ॥ ३ ॥

और जो इसका दाहिना कान है वह अग्नि है और जो बायें
कर्ण है वह पवमान है ॥ ३ ॥

अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले सम्बत्सरः
शिरः ॥ ४ ॥

अहोरात्रे इति । नासिके इति । दितिः । च । अदितिः । च ।

शीर्षकपाले इति शीर्षकपाले । सम्बत्सरः । शिरः ॥ ४ ॥

दिन और रात्रि नासिका हैं दिति और अदिति शीर्षकपाल
हैं और सम्बत्सर शिर है ॥ ४ ॥

अद्वा प्रत्यङ् वात्यो रात्र्या प्राङ् नमो वात्याय ।५।

अद्वा । प्रत्यङ् । वात्यः । रात्र्या । प्राङ् । नमः । वात्याय ५

द्वितीयेनुवाक एकादशं पर्यायसूक्तम् ॥

द्वितीयोनुवाकः ॥

इति पञ्चदशं काण्डं समाप्तम् ॥

वात्य दिनके द्वारा प्रत्येकका पूजनीय होता है और रात्रिसे प्रकृष्टरूपमें पूजाका पात्र होता है ऐसे वात्यके लिये प्रणाम है ५

द्वितीय अनुवाकमें एकादश पर्याय सूक्त समाप्त (५३०)

द्वितीय अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका पञ्चदश काण्ड ऋ० कु०

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

सम्पादक ऋ० कु० प० रामचन्द्र

शर्मा कृत भाषानुवादसहित

समाप्त.



❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

षोडशं-काण्डम्

❀❀❀

भाषानुवाद सहित

कतिषुचित् कर्मसु शान्त्युदकं विहितम् । तेन हि आचमनप्रोक्षणावसेचनासेचनासावनानि कर्तव्यानि भवन्ति । तच्छान्त्युदकं कतिभिश्चच्छान्तिनामकैः सूक्तैः कर्तव्यं भवति । तत् कांस्यपात्रे कर्तव्यम् । तथाकरणात्पूर्वम् “अतिसृष्टो अपां वृषभः” इति सूक्तेन अपोतिसृज्य अवकरं विसर्जयति कांस्यपात्रे अपोवसिच्य ताभिस्तन्मध्यगतं मलं निर्गमयतीत्यर्थः । इति साम्प्रदायिकाः । सूत्रितं हि । “अतिसृष्टो अपां वृषभ इत्यपोतिसृज्य” इति [कौ० १. ६]॥

कुछ कर्मोंमें शान्त्युदक करनेका विधान है । उससे आचमन प्रोक्षण अवसेचन और आसावन आदि किये जाते हैं । यह शान्त्युदक कुछ शान्ति नामक सूक्तोंसे किया जाता है उसको कांस्यपात्रमें करना चाहिये । ऐसा करनेसे पहिले “अतिसृष्टो अपां वृषभः” सूक्तसे जलका अतिसर्जन करके अवकरका विसर्जन करे । कांस्यपात्रमें जलका अवसेचन करके उससे कांस्यपात्रके भीतरके मलको दूर करे, यह साम्प्रदायिकोंका मत है । इस विषय में सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“अतिसृष्टो अपां वृषभ इत्यपोऽतिसृज्य” इति (कौशिकसूत्र १ । ६) ॥

अतिसृष्टो अपां वृषभोतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः ॥ १ ॥

अतिऽसृष्टः । अपाम् । वृषभः । अतिऽसृष्टाः । अग्नयः । दिव्याः १

३५२

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

जलोंमें वृषभकी समान जल अतिसृष्ट होगया और दिव्य
अग्निमें भी अतिसृष्ट होगई ॥ १ ॥

रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन् ॥ २ ॥

रुजन् । परिरुजन् । मृणन् । प्रमृणन् ॥ २ ॥

प्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः ३

प्रो०कः । मनः०हा । खनः । निः०दाहः । आत्म०दूषिः । तनू०दूषिः

इदं तमति सृजामि तं माभ्यवनिक्षि ॥ ४ ॥

इदम् । तम् । अति । सृजामि । तम् । मा । अभि०अवनिक्षि ४

तेन तमभ्यतिसृजामो योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः

तेन । तम् । अभि०अतिसृजामः । यः । अस्मान् । द्वेष्टि ।

यम् । वयम् । द्विष्मः ॥ ५ ॥

जो भंग करता हुआ विशेषरूपसे भंग करता हुआ नाशक
(मल आदिको लेकर) जानेवाला, मनको दवाने वाला, खोदने
से मिलने वाला, दाह उत्पन्न करने वाला, आत्मदूषि तनूदूषि
जल है उसका अतिसर्जन करता हूँ, उसका मैं स्पर्श नहीं करूँगा
उससे मैं उसको संयुक्त करता हूँ जो हमसे द्वेष करता है और
हम जिससे द्वेष करते हैं ॥ २-५ ॥

अपामग्रमसि समुद्रं वोभ्यवसृजामि ॥ ६ ॥

अपाम् । अग्रम् । असि । समुद्रम् । वः । अभि०अवसृजामि ६।

तू जलोंका श्रेष्ठ भाग है मैं तुझको समुद्रकी ओर छोड़ता हूँ

यो॒ऽप्स्व॒॑ग्नि॒रति॑ तं सृ॒जामि॑ अ॒ग्नो॒कं॒ खनि॑ त॒नूद॑षि॒म् ७

यः । अ॒प्सु । अ॒ग्निः । अ॒ति । तम् । सृ॒जामि॑ । अ॒ग्नो॒कम् । ख॒निम् ।

त॒नू॒द॒षि॒म् ॥ ७ ॥

जो जलोंके भीतर शरीरके बलको अपहरण करके लेजाने वाला और कुरेदने वाला शरीरदूषक अग्नि है उसका मैं अति-सर्जन करता हूँ ॥ ७ ॥

यो व॑ आ॒पो॒ग्निरा॑वि॒वेश॒ स ए॒ष यद् वो॑ घो॒रं तदे॒तत् ८

यः । वः । आ॒पः । अ॒ग्निः । आ॒ऽवि॒वेश । सः । ए॒षः । यत् ।

वः । घो॒रम् । तत् । ए॒तत् ॥ ८ ॥

हे जलों ! तुममें जिस अग्निने प्रवेश किया है वह यह तुम्हारा घोर अंश ही है ॥ ८ ॥

इन्द्र॑स्य व इन्द्रि॒येणा॒भि पि॑ञ्चेत् ॥ ९ ॥

इन्द्र॑स्य । वः । इन्द्रि॒येण । अ॒भि । पि॑ञ्चेत् ॥ ९ ॥

तुम्हारा जो परमैश्वर्यसम्पन्न भाग है उसका इन्द्रियोंके द्वारा अभिषिञ्चन करे ॥ ९ ॥

अ॒रि॒प्रा॒ आपो॑ अ॒प रि॒प्रम॑स्मत् ॥ १० ॥

अ॒रि॒प्राः । आ॒पः । अ॒प । रि॒प्रम् । अ॒स्मत् ॥ १० ॥

जल पापको दूर करदे पाप हमसे दूर होजावे ॥ १० ॥

प्रा॒स्मदे॒नो वह॑न्तु प्र दु॒ष्वप॑न्यं वह॑न्तु ॥ ११ ॥

प्र । अ॒स्मत् । ए॒नः । वह॑न्तु । प्र । दुः॒ऽप॑न्यम् । वह॑न्तु ॥ ११ ॥

यह हमसे पापको बहाकर लेजावें, दुःष्वमको प्रकृष्टरूपसे बहा
कर लेजावें ॥ ११ ॥

शि॒वेन॑ मा॒ चक्षु॑षा पश्यतापः शि॒वया॑ तन्वो॒प॑ स्पृशत॒
त्वचं॑ मे ॥ १२ ॥

शि॒वेन॑ । मा॒ । चक्षु॑षा । प॒श्यत॑ । आ॒पः । शि॒वया॑ । तन्वा॑ । उप॑ ।

स्पृ॒शत॑ । त्वच॑म् । मे ॥ १२ ॥

हे जलों ! आप मुझको कृपादृष्टिसे देखिये और अपने कल्याण-
कारी शरीर-भाग-से मेरी त्वचाका स्पर्श करिये ॥ १२ ॥

शि॒वान॒ग्नीन॑प्सुषुदो॑ हवामहे मयि॑ क्षत्रं॒ वर्च॑ आ॒धत्त॑
दे॒वीः ॥ १३ ॥

शि॒वान् । अ॒ग्नीन् । अ॒प्सुऽसदः॑ । ह॒वाम॑हे । मयि॑ । क्ष॒त्रम् । वर्चः॑ ।

आ॒ । ध॒त्त॑ । दे॒वीः ॥ १३ ॥

इति प्रथमेनुवाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

हम जलमें रहने वाले कल्याणकारक अग्नियोंका आह्वान
करते हैं, यह दिव्य जल मुझमें क्षात्रशक्ति और बलको स्थापित करें

प्रथम अनुवाकमें प्रथम पर्याय सूक्त समाप्त (५३१)

मरणं व्यसनं चैव बन्धनं च विशेषतः ।

प्रणिपानोन्मत्तता वा दैवोपहतिरेव च ।

पुत्रादिधननाशश्च गृहेदोषान् बहूनपि ।

एतानि सर्वाणि कानिचिद्वा तेषां मध्ये यथा शत्रोर्भवन्ति तथो-
द्देशेन यत् कर्म तद् अभिचारकर्म । एतन्नामकः कर्मविशेषः ।
तादृशस्याभिचारकर्मणः समाप्तौ अवभृथं स्नात्वा “निर्दुर्मयः”

इति सूक्तेन सर्वौषधिभिर्नाम कैश्चिदोषधिविशेषैरात्मानम् अभिमृशति । तद् उक्तं कौशिकेन । “निर्दुर्मण्य इति संधाव्याभिमृशति” इति [कौ० ६. ३] अभिचारं कृत्वा कर्ता शान्तिमिमां करोतीत्यर्थः ॥

तथा उपनयनकर्मणि अनेन सूक्तेन कुङ्कुमचन्दनसर्वौषध्यादिना शरीरं समालभ्य आत्मानम् अभिमन्त्रयत आयुष्कामः । सूत्रितं हि । “निर्दुर्मण्य इति संधाव्य” इति [कौ० ७. ६] ॥

तथा चक्षुरादीन्द्रियदाढ्यकामः अरण्ये गत्वा अनेन सूक्तेन सर्वौषधिम् अभिमन्त्र्य अनुलोमं प्रलिम्पति । तथा च सूत्रम् । “निर्दुर्मण्य इति सर्वसुरभिचूर्णैररण्येऽप्रतीहारं प्रलिम्पति” इति [कौ० ७. ६] ॥

श्रोत्रं वाग् मनश्चक्षुर्दन्ता नासिका अन्यच्च सर्वं विकलेन्द्रियं दृढं भवति । यो विकलेन्द्रियस्तस्येदं कर्म ॥

जिस प्रकार शत्रुके यहाँ मरण व्यसन और विशेषतः बंधन, पतन, उन्मत्तता, प्रारब्धकी मार, पुत्र आदिका और धनका नाश इत्यादि घरके बहुतसे दोषोंमेंसे सब दोष वा कुछ दोष होजावें, इस उद्देश्य से किया जाने वाला कर्म अभिचार कर्म कहलाता है । ऐसे अभिचारकर्मकी समाप्तिमें अवभृथस्नानको करके “निर्दुर्मण्यः” सूक्त से सर्वौषधियोंके द्वारा अर्थात् कुछ औषधिविशेषोंके द्वारा अपना अभिमर्शन करे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—“निर्दुर्मण्य इति संधाव्याभिमृशति” (कौशिकसूत्र ६ । ३) अर्थात् कर्ता अभिचारको करके इस शान्तिको करे ॥

तथा आयुको चाहने वाला पुरुष उपनयन कर्ममें इस सूक्तसे कुङ्कुम चन्दन सर्वौषधि आदिसे शरीरका समालभन करके अपना अभिमन्त्रण करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“निर्दुर्मण्य इति संधाव्य” (कौशिकसूत्र ७ । ६) ॥

तथा नेत्र आदि इन्द्रियोंमें दृढ़ता चाहने वाला वनमें जाकर इस सूक्तसे सर्वौषधिका अभिमन्त्रण करके अनुलोम (ऊपरसे नीचेको) लेप करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—
“निर्दुर्मण्य इति सर्वसुरभिचूर्णैरण्येऽप्रतीहारं प्रलिम्पति”
(कौशिकसूत्र ७ । ६) ॥

ऐसा करनेसे कान बाणी मन नेत्र दाँत तथा नासिका और भी सब विकल इन्द्रियें दृढ़ हो जाती हैं । जो विकलेन्द्रिय होता है उसका यह कर्म है ॥

निर्दुर्मण्य) ऊर्जा मधुमती वाक् ॥ १ ॥

निः । दुःऽअर्मण्यः । ऊर्जा । मधुऽमती । वाक् ॥ १ ॥

मैं दूषित अक्षिरोग अर्मसे पूर्णरूपसे रहित रहूँ, मेरी बाणी बलसम्पन्न और मधुर रहे ॥ १ ॥

मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ॥ २ ॥

मधुऽमतीः । स्थ । मधुऽमतीम् । वाचम् । उदेयम् ॥ २ ॥

हे औषधियों! तुम मधुमती हो मैं मधुमती बाणीको प्राप्त करूँ २
उपहूतो मे गोपा उपहूतो गोपीथः ॥ ३ ॥

उपऽहूतः । मे । गोपः । उपऽहूतः । गोपीथः ॥ ३ ॥

मैं इन्द्रियोंके रक्षक मनका आह्वान करता हूँ और सोमपान करने वाले (मुख वा कण्ठ) का आह्वान करता हूँ ॥ ३ ॥

सुश्रुतौ कर्णौ भद्रश्रुतौ कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम् ॥

सुऽश्रुतौ । कर्णौ । भद्रऽश्रुतौ । कर्णौ । भद्रम् । श्लोकम् । श्रूयासम् ४

मेरे कान भली प्रकार सुन सकने वाले और कल्याणकी बातों को सुनने वाले हों, मैं कल्याणकी और प्रशंसाकी बातोंको सुनूँ ४

सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टां सौपर्णं चक्षुरजसं
ज्योतिः ॥ ५ ॥

सुश्रुतिः । च । मा । उपश्रुतिः । च । मा । हासिष्टाम् । सौपर्णम् ।
चक्षुः । अजसम् । ज्योतिः ॥ ५ ॥

भली प्रकार सुनना और पाससे सुनना मेरा त्याग न करे,
मेरा नेत्र सुपर्ण-गरुड़-के नेत्रकी समान हो, निरन्तर ज्योतिसे
सम्पन्न रहे ॥ ५ ॥

ऋषीणां प्रस्तरोऽसि नमोस्तु दैवाय प्रस्तराय ॥ ६ ॥

ऋषीणाम् । प्रस्तरः । असि । नमः । अस्तु । दैवाय । प्रस्तराय ६
इति प्रथमेनुवाके द्वितीयं पर्यायसूक्तम् ॥

तू ऋषियोंका प्रस्तर है दैव प्रस्तरके लिये प्रणाम प्राप्त हो ६
प्रथम अनुवाकमें द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (५३२)

उपनयने “मूर्धाहं” “नाभिरहम्” इति सूक्ताभ्याम् आयुर-
भिवृद्धयर्थं माणवक उद्यन्तम् आदित्यम् उपतिष्ठते । तद् उक्तं
कौशिकेन । “मूर्धाहम् [१६. ३] विषासहिम् [१७. १]
इत्युद्यन्तम् उपतिष्ठते” इत्यादि [कौ० ७. ६] ॥

बालक आयुकी वृद्धिके लिये उपनयनमें “मूर्धाहम्” और
“नाभिरहम्” इन दो सूक्तोंसे उदय होते हुए सूर्यका उपस्थान
करे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—“मूर्धाहम्
(१६ ३) विषासहिम् (१७. १) इत्युद्यन्तं उपतिष्ठते” (कौशिक-
सूत्र ७. ६) ॥

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

मूर्धा । अहम् । रयीणाम् । मूर्धा । समानानाम् । भूयासम् ॥ १ ॥

३५८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

मैं धनों का मूर्धा रहूँ अर्थात् मूर्धा का वियोग होने पर मूर्धा वाले का नाश अवश्य हो जाता है अतः धनों को मैं मूर्धा की समान परमप्रयोजनीय रहूँ, समान पुरुषों में मैं मस्तक रूप रहूँ ॥ १ ॥

रुजश्च मा वेनश्च मा हासिष्ठां मूर्धा च मा विधर्मा
च मा हासिष्ठाम् ॥ २ ॥

रुजः । च । मा । वेनः । च । मा । हासिष्ठाम् । मूर्धा । च । मा ।
विधर्मा । च । मा । हासिष्ठाम् ॥ २ ॥

रुज और यज्ञ मेरा त्याग न करें मूर्धा और विधर्मा भी मेरा त्याग न करें ॥ २ ॥

उर्वश्च मा चमसश्च मा हासिष्ठां धर्ता च मा धरुणश्च
मा हासिष्ठाम् ॥ ३ ॥

उर्वः । च । मा । चमसः । च । मा । हासिष्ठाम् । धर्ता । च ।
मा । धरुणः । च । ० ॥ ३ ॥

उर्व और चमस मेरा त्याग न करें, धरुण और धर्ता मेरा त्याग न करें ॥ ३ ॥

विमोकश्च मार्द्रिपविश्च मा हासिष्ठामार्द्रिदानुश्च मा मात-
रिश्वा च मा हासिष्ठाम् ॥ ४ ॥

विमोकः । च । मा । आर्द्रिपविः । च । मा । हासिष्ठाम् ।
आर्द्रिदानुः । च । मा । मातरिश्वा । च । मा । हासिष्ठाम् ४

विमोक और आर्द्रिपवि मेरा त्याग न करें आर्द्रिदानु और मात-
रिश्वा मेरा त्याग न करें ॥ ४ ॥

बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः ॥ ५ ॥

बृहस्पतिः । मे । आत्मा । नृमणाः । नाम । हृद्यः ॥ ५ ॥

हृदयको प्रसन्न करने वाले, भक्त मनुष्योंमें अनुग्रहप्रद मन को लगाने वाले बृहस्पति मेरी आत्मा हैं ॥ ५ ॥

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः समुद्रो अस्मि विधर्मणा
असम्स्तापम् । मे । हृदयम् । उर्वी । गव्यूतिः । समुद्रः । अस्मि ।

विधर्मणा ॥ ६ ॥

इति प्रथमेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

मेरा हृदय सन्तापरहित रहे, गव्यूति (दो कोस की) पृथिवी मेरी हो मैं, विधर्मा-विशेष धारक शक्तिके कारण समुद्रकी समान गंभीर रहूँ ॥ ६ ॥

प्रथम अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५३३) ॥

“नाभिरहम्” इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

इस सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है

नाभिरहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम् ॥ १ ॥

नाभिः । अहम् । रयीणाम् । नाभिः । समानानाम् । भूयासम् ?

मैं धनोंकी नाभि रहूँ, समान पुरुषोंकी नाभि रहूँ अर्थात् नाभिसे जैसे सारा शरीर बँधा रहता है इसी प्रकार मैं इनको घेरे बैठा रहूँ ?

स्वासदासि सूषा अमृतो मर्त्येष्वाम् ॥ २ ॥

सुआसत् । असि । सुउषाः । अमृतः । मर्त्येषु । आ ॥ २ ॥

सुन्दर उषा मरणधर्मी मनुष्योंमें अमृतरूप है भली प्रकार प्रतिष्ठित होने वाली है ॥ २ ॥

३६०

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

मा मां प्राणो हासीन्मो अपानो वहाय परां गात् ३

मा । माम् । प्राणः । हासीत् । मो इति । अपानः । अवऽहाय ।

परा । गात् ॥ ३ ॥

प्राण मेरा त्याग न करे, अपान मुझको त्याग कर दूर न जावे
सूर्यो माहः पात्वग्निः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षाद् यमो
मनुष्येभ्यः सरस्वती पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

सूर्यः । मा । अहः । पातु । अग्निः । पृथिव्याः । वायुः । अन्त-

रिक्षात् । यमः । मनुष्येभ्यः । सरस्वती । पार्थिवेभ्यः ॥ ४ ॥

सूर्य देवता दिनसे मेरी रक्षा करें, अग्निदेव पृथिवीसे मेरी
रक्षा करें, वायुदेव अन्तरिक्षसे मेरी रक्षा करें यम मनुष्योंसे मेरी
रक्षा करें और सरस्वतीदेवी पार्थिव पदार्थोंसे मेरी रक्षा करें ४

प्राणापानौ मा मां हासिष्टं मा जने प्र मेषि ॥ ५ ॥

प्राणापानौ । मा । मा । हासिष्टम् । मा । जने । प्र । मेषि ॥ ५ ॥

प्राण और अपान मेरा त्याग न करें मैं प्रकट रहूँ नष्ट न होऊँ
स्वस्त्यश्चोषसो दोषसश्च सर्व आपः सर्वगणो अशीय

स्वस्ति । अद्य । उषसः । दोषसः । च । सर्वः । आपः । सर्वऽ-
गणः । अशीय ॥ ६ ॥

आज उपः कालसे और रात्रिसे मेरा कल्याण हो मैं सब
प्रकारके जलोंका और सर्वगणका उपभोग करूँ ॥ ६ ॥

शक्वरी स्थ पशवो मोप स्थेषुभिन्नावरुणौ मे प्राणा-
पानावग्निर्मे दत्तं दधातु ॥ ७ ॥

शक्वरीः । स्थ । पशवः । मा । उप । स्थेषुः । मिन्नावरुणौ । मे ।

प्राणापानौ । अग्निः । मे । दत्तम् । दधातु ॥ ७ ॥

प्रथमेनुवाके चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ॥

इति प्रथमोनुवाकः ॥

हे पशुओं ! तुम भुजासम्पन्न हो, मेरे समीप स्थित हो, मित्र
और वरुण देवता मेरे प्राणापानोंको पुष्ट करें और अग्निदेव मेरे
बलको पुष्ट करें ॥ ७ ॥

प्रथम अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (५३४)

दुःस्वप्नदर्शने शान्तावेतत् पर्यायसूक्तं विनियुज्यते । तद्यथा ।
“विद्म ते स्वप्न” इत्येकेन पर्यायेण दुःस्वप्नं दृष्ट्वा सुखं विमार्ष्टि ॥
तथा अतिघोरं दुःस्वप्नं दृष्ट्वा अनेन सूक्तेन मैश्रधान्यं पुरोडाशं
जुहोति ॥

तथा “विद्म ते स्वप्न” इति सूक्तेन दुःस्वप्नं दृष्ट्वा पार्श्वेन द्विती-
येन भूयते । येन पार्श्वेन दुःस्वप्नो दृष्टस्ततोऽन्येन पार्श्वेन शेत इत्यर्थः

तथा अनेन सूक्तेन अन्नं स्वप्ने दृष्ट्वा निरीक्षते ॥

तद् उक्तं कौशिकेन । “विद्म ते स्वप्नेति सर्वेषाम् अप्ययः”
इति [कौ० ५. १०] ॥

दुःस्वप्नदर्शनकी शान्तिमें इस पर्यायसूक्तका विनियोग किया
जाता है । यथा “विद्म ते स्वप्न” इस एक पर्यायसे दुःस्वप्नको
देखकर सुखको शुद्ध करे ।

तथा दुःस्वप्नको देखकर इस सूक्तको पढ़ दूसरी करबटसे सोजावे

३६२

अथर्ववेदसंहिता-भाषानुवादसहित

तथा अतिघोर दुःस्वप्नको देख कर इस सूक्तसे मैश्रधान्य पुरोडाशकी आहुति देवे ।

तथा स्वप्नमें अन्नको देख कर इस सूक्तसे देखे ॥

इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—“विद्म ते स्वप्नेति सर्वेषां अप्ययः” (कौशिकसूत्र ५ । १०) ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं ग्राह्याः पुत्रोसि यमस्य करणः १

विद्म । ते । स्वप्न । जनित्रम् । ग्राह्याः । पुत्रः । असि । यमस्य ।
करणः ॥ १ ॥

हे स्वप्न ! हम तेरी उत्पत्तिको जानते हैं तू ग्राह्या पिशाचीका पुत्र है और यमका करण है ॥ १ ॥

अन्तकोसि मृत्युरसि ॥ २ ॥

अन्तकः । असि । मृत्युः । असि ॥ २ ॥

तू अन्तक है, मृत्यु है ॥ २ ॥

तं त्वां स्वप्न तथा सं विद्म स नः स्वप्न दुष्वप्यात् पाहि ३

तम् । त्वां । स्वप्न । तथा । सम् । विद्म । सः । नः । स्वप्न ।

दुःस्वप्यात् । पाहि ॥ ३ ॥

हे स्वप्न ! ऐसे आपको हम जानते हैं वह आप दुःस्वप्नसे हमारी रक्षा करिये ॥ ३ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्ऋत्याः पुत्रोसि यमस्य
करणः । ० । ० ॥ ४ ॥

० । जनित्रम् । निःऋत्याः । पुत्रः । ० ॥ ४ ॥

हे स्वप्नके अधिष्ठात्री देवता ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप निर्भूतिके पुत्र हैं यमके करण हैं ॥ ४ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रमभूत्याः पुत्रोऽसि ०।०।० ५

०। जनित्रम् । अभूत्याः । पुत्रः । ० ॥ ५ ॥

हे स्वप्नके अधिष्ठात्री देवता ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप अभूतिके पुत्र हैं यमके करण हैं ॥ ५ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं निर्भूत्याः पुत्रोऽसि ०।०।० ६

०। जनित्रम् । निर्भूत्याः । पुत्रः । ० ॥ ६ ॥

हे स्वप्न ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप निर्भूतिके पुत्र हैं, यमके करण हैं ० ॥ ६ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं पराभूत्याः पुत्रोऽसि ०।०।० ७

०। जनित्रम् । पराभूत्याः । पुत्रः । ० ॥ ७ ॥

हे स्वप्नके अधिष्ठातृ देव ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप पराभूतिके पुत्र हैं ० ॥ ७ ॥

विद्म ते स्वप्न जनित्रं देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य

करणः ॥ ८ ॥

विद्म । ते । स्वप्न । जनित्रम् । देवजामीनाम् । पुत्रः । असि ।

यमस्य । करणः ॥ ८ ॥

हे स्वप्न ! हम आपकी उत्पत्तिको जानते हैं आप देवजामियों के पुत्र हैं, यमके करण हैं ॥ ८ ॥

अन्तर्कोसि मृत्युरसि ॥ ९ ॥

अन्तःकः । असि । मृत्युः । असि ॥ ९ ॥

अन्तक है, मृत्यु है ॥ ९ ॥

तं त्वां स्वप्नं तथा सं विद्मः स नः स्वप्नं दुःस्वप्न्यात्
पाहि ॥ १० ॥

तम् । त्वा । स्वप्नम् । तथा । सम् । विद्मः । सः । नः । स्वप्नम् ।

दुःस्वप्न्यात् । पाहि ॥ १० ॥

इति द्वितीयेनुगाके प्रथमं पर्यायसूक्तम् ॥

हे स्वप्नके अधिष्ठात्री देवता ! ऐसे आपको हम भली प्रकार जानते हैं, आप हमको दुःस्वप्नसे बचाइये ॥ १० ॥

।द्वितीय अनुगाकम् प्रथम पर्याय सूक्त समाप्त (५३५)

अभिचारकर्मणि “अजैष्म” इत्यादिपर्यायसूक्तचतुष्टयेन शत्रुषु पाशान् बहुधा अभिमन्त्र्य निखनति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन पर्यायचतुष्टयेन “अगन्म स्वः” इति अवसानद्वयवर्जितेन पदेपदे पाशान् वृश्चति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि अनेन अवसानद्वयवर्जितेन अधिपाशान् बाधकान् शङ्कून् संक्षुब्ध भ्रष्ट्रेभ्यस्यति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि एतैश्चतुर्भिः पर्यायैः “अगन्म स्वः” इत्यवसानद्वयवर्जितै रक्तशालिनीरौदनम् अभिमन्त्र्य ददाति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि उक्तैरेव पर्यायैर्वृषभं संपातवन्तं कृत्वा शत्रुगृहान् अभि सृजति ॥

तथा तत्रैव कर्मणि उक्तैः पर्यायैर्गर्ते ध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं संपातान् आनयति ॥

सूत्रितं हि “अजैष्मेत्यधिपाशान् आदधाति । पदेपदे पाशान् वृश्चति । अधिपाशान् बाधकां छङ्कूस्तान् संक्षुब्ध संनह्य भ्रष्ट्रेभ्य-

स्यति । अशिशिषोः क्षीरौदनादीनि त्रीणि । गर्तेध्मावन्तरेणाव-
लेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं संपातान् अभ्यतिनयति” इति
[कौ० ६. ३] ॥

“अगन्म स्वः” इत्यवसानद्वयेन आदित्यम् ईक्षते सर्वेषु तन्त्रेषु ।
तदुक्तं कौशिकेन । “अगन्म स्वरित्यादित्यमीक्षते” इति [कौ० १. ६] ॥

अभिचारकर्ममें “अजैष्म” इत्यादि चार पर्याय सूक्तोंसे शत्रुओं
में पाशोंको बाँध अभिमन्त्रित करके निखनन करे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें “अगन्म स्वः” इस अवसानद्वयवर्जित
पर्यायचतुष्टयसे पद २ में पाशोंका छेदन करे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें अवसानद्वयवर्जितसे अधिपाश बाधक
शत्रुओंको संक्षुद्रन करके भ्रष्टमें अभ्यसन करे ।

तथा तहाँ ही कर्ममें “अगमन् स्वः” इन दो अवसानोंसे
वर्जित इन चार पर्यायसूक्तोंसे लाल सट्टीके चावलोंके दूध भात
को अभिमन्त्रित करके देदेय ।

तथा तहाँ ही कर्ममें इन ही पर्यायोंसे वृषभको सम्पातित करके
शत्रुके घरकी ओर छोड़े ।

तथा तहाँ ही कर्ममें उक्त पर्यायोंसे गड्डेके ईधनमें अन्तरसे
अवलेखनीको स्थाणुमें बाँध कर द्वादशरात्र सम्पातोंको लावे ।

सूत्रमें भी कहा है, कि—“अजैष्मेत्यधिपाशान् आदधाति । पदे
पदे पाशान् वृश्चति । अधिपाशान् बाधकांश्छंकुंस्तान् संक्षुद्र
संनह्य भ्रष्टेऽभ्यस्यति । अशिशिषोः क्षीरौदनादीनि त्रीणि । गर्ते-
ध्मावन्तरेणावलेखनीं स्थाणौ निबध्य द्वादशरात्रं संपातान् अभ्य-
तिनयति” (कौशिकसूत्र ६ । ३) ॥

सब तन्त्रोंमें “अगन्म स्वः” इन दो अवसानोंसे आदित्यको
देखे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है, कि—“अगन्म स्वरि-
त्यादित्यमीक्षते”—(कौशिकसूत्र १ । ६) ॥

अजैष्माद्यासनामाद्याभूमानागसो वयम् ॥ १ ॥

अजैष्म । अद्य । असनाम । अद्य । अभूम । अनागसः । वयम् १

हम अब जीतें, (भूमिको) प्राप्त करें और निष्पाप हों ॥ १ ॥

उषो यस्माद् दुष्वन्यादभैष्माप तदुच्छतु ॥ २ ॥

उषः । यस्मात् । दुःस्वन्यात् । अभैष्म । अप । तत् । उच्छतु

विवासन करने वाले दुःस्वन्यसे हम डर गए हैं वह भय दूर होजावे ॥ २ ॥

द्विषते तत् परां वह शपते तत् परां वह ॥ ३ ॥

द्विषते । तत् । परा । वह । शपते । तत् । परा । वह ॥ ३ ॥

जो हमसे द्वेष करता है, हे मन्त्रशक्तिके अधिष्ठाता देव ! उसके पास आप इस भयको लेजाइये, जो हमको कोसा करता है उसके पास इस भयको लेजाइये ॥ ३ ॥

यं द्विष्मो यच्च नो द्वेष्टि तस्मा एनद् गमयामः ४

यम् । द्विष्मः । यत् । च । नः । द्वेष्टि । तस्मै । एनत् । गमयामः ४

जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं उसके पास हम इस भयको भेजते हैं ॥ ४ ॥

उषा देवी वाचा संविदाना वाग्देव्युषसा संविदाना ५

उषाः । देवी । वाचा । सम्विदाना । वाक् । देवी । उषसा ।

सम्विदाना ॥ ५ ॥

उषादेवी वाणीसे एकमति-सम्मति-रखती हुई और वाणी उषासे सम्मति रखती हुई ॥ ५ ॥

उ॒ष॒स्प॒ति॒र्वा॒च॒स्प॒ति॒ना॒ सं॒वि॒दा॒नो॒ वा॒च॒स्प॒ति॒रु॒ष॒स्प॒ति॒ना॒
सं॒वि॒दा॒नः ॥ ६ ॥

उ॒षः । प॒तिः । वा॒चः । प॒ति॒ना । स॒म्वि॒दा॒नः । वा॒चः । प॒तिः ।

उ॒षः । प॒ति॒ना । स॒म्वि॒दा॒नः ॥ ६ ॥

उषस्पति वाचस्पतिसे एकमत होते हुए और वाचस्पति उष-
पतिसे एकमत होते हुए ॥ ६ ॥

ते॒श्मु॒ष्मै॒ परा॑ वह॒न्त्वा॒रा॒या॒न् दु॒र्ण॑म्नः स॒दान्वाः ॥ ७ ॥

ते । अ॒मु॒ष्मै । परा॑ । वह॒न्तु । अ॒रा॒या॒न् । दुः॒ऽना॒म॒नः । स॒दान्वाः ७

कु॒म्भी॒का दू॒षी॒काः पी॒य॒का॒न् ॥ ८ ॥

कु॒म्भी॒का । दू॒षी॒काः । पी॒य॒का॒न् ॥ ८ ॥

वे इस शत्रुके लिये दूषित नाम वाली सदा दुःख देने
वालीके अदानोंको, कुम्भीकोंको दूषीकोंको और पीयकोंको
प्रेरित करें । ७ । ८ ।

जा॒ग्र॒द्दु॒ष्व॒प॒न्यं॒ स्व॒प्ने॒दु॒ष्व॒प॒न्य॒म् ॥ ९ ॥

जा॒ग्र॒त्स्व॒प॒न्य॒म् । स्व॒प्ने॒स्व॒प॒न्य॒म् ॥ ९ ॥

अ॒ना॒ग॒मि॒ष्य॒तो॒ व॒रा॒न॒वि॒त्तेः॒ सं॒क॒ल्पा॒नमु॒च्य॑ा दु॒हः

पा॒शा॒न् ॥ १० ॥

अ॒ना॒ग॒मि॒ष्य॒तः । व॒रा॒न् । अ॒वि॒त्तेः । स॒म्क॒ल्पा॒न् । अ॒मु॒च्य॑ाः ।

दु॒हः । पा॒शा॒न् ॥ १० ॥

मैं जागते समयके, दुःस्वप्नोंसे मिलने वाले फलोंको, सोने
समयके, दुःस्वप्नसे मिलने वाले फलोंको, अत्रित्तिके भूतकालके
श्रेष्ठ २ संकल्पोंको और शत्रुके पाशोंको खोलता हूँ ॥६॥१०॥
तदमुष्मा अग्ने देवाः परा वहन्तु वधिर्यथासद् विथुरो
न साधु ॥ ११ ॥

तत् । अमुष्मै । अग्ने । देवाः । परा । वहन्तु । वधिः । यथा ।
असत् । विथुरः । न । साधुः ॥ ११ ॥

इति द्वितीयेनुवाके द्वितीयं पर्यायमूक्तम् ॥

हे अग्ने ! इन सबको देवता शत्रुके लिये लेजावे जिससे वह
षण्ड होजावे, भयभीत रहे, साधु न रह सके ११

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय पर्याय सूक्त समाप्त (५३६) ॥

तेनैनं विध्याम्यभूत्यैनं विध्यामि निर्भूत्यैनं विध्यामि
पराभूत्यैनं विध्यामि ग्राह्यैनं विध्यामि तमसैनं
विध्यामि ॥ १ ॥

तेन । एनम् । विध्यामि । अभूत्या । एनम् । विध्यामि । निः-
भूत्या । एनम् । विध्यामि । पराऽभूत्या । एनम् । विध्यामि ।
ग्राह्या । एनम् । विध्यामि । तमसा । एनम् । विध्यामि ॥१॥

मैं उस अभिचारकर्मसे इसको वींघता हूँ, अभूतिसे इसको
वींघता हूँ निर्भूतिसे इसको वींघता हूँ, पराभूतिसे इसको वींघता
हूँ, ग्राह्यासे इसको वींघता हूँ, और मृत्युरूप तमसे इसको
वींघता हूँ ॥ १ ॥

दे॒वाना॑मे॒नं घोरैः क्रूरैः प्रै॒षैर॑भि॒प्रेष्या॑मि ॥ २ ॥

दे॒वाना॑म् । ए॒नम् । घोरैः । क्रूरैः । प्र॒ऽएषैः । अ॒भि॒ऽप्रेष्या॑मि २

मैं इसको देवताओंकी भयंकर क्रूर घोर आज्ञाओंके अभिमुख प्रेषित करता हूँ ॥ २ ॥

वै॒श्वान॑रस्यै॒नं दंष्ट्र॑यो॒रपि॑ द॒धामि ॥ ३ ॥

वै॒श्वान॑रस्य । ए॒नम् । दंष्ट्र॑योः । अपि॑ । द॒धामि ॥ ३ ॥

मैं इसको वैश्वानरकी डाढ़ोंमें रखता हूँ ॥ ३ ॥

ए॒वाने॑वा॒व सा ग॑रत् ॥ ४ ॥

ए॒व । अ॒ने॒व । अ॒व । सा ग॑रत् ॥ ४ ॥

वह इसको अनकी समान निगल जावे ॥ ४ ॥

यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॑ तमा॒त्मा द्वेष्टु॑ यं व॒यं स द्वि॒ष्मः स
आ॒त्मानं॑ द्वेष्टु ॥ ५ ॥

यः । अ॒स्मान् । द्वेष्टि॑ । तम् । आ॒त्मा । द्वेष्टु॑ । यम् । व॒यम् । द्वि॒ष्मः ।

सः । आ॒त्मानम् । द्वेष्टु॑ ॥ ५ ॥

जो हमसे द्वेष करता है उससे आत्मा द्वेष करे और जिससे हम द्वेष करते हैं वह आत्मासे द्वेष करे ॥ ५ ॥

नि॒द्विष॑न्तं दि॒वो निः पृ॑थि॒व्या निर॑न्तरि॒क्षाद् भ॑जाम

निः । द्विष॑न्तम् । दि॒वः । निः । पृ॑थि॒व्याः । निः । अ॒न्तरि॑क्षात् ।

भ॒जाम ॥ ६ ॥

हम द्वेष करने वालेको झुलोकसे बाहर, पृथिवीलोकसे बाहर
और अन्तरिक्षलोकसे बाहर भेजते हैं ॥ ६ ॥

सुयामंश्चाक्षुष ॥ ७ ॥

सुऽयामन् । चाक्षुष ॥ ७ ॥

इदमहमांमुष्यायणेऽमुष्याः पुत्रे दुःस्वप्न्यं मृजे ॥ ८ ॥

इदम् । अहम् । आमुष्यायणे । अमुष्याः । पुत्रे । दुःस्वप्न्यम् । मृजे

हे सुयामन् चाक्षुष ! यह मैं अमुक गोत्र वाले अमुकीके पुत्रमें
दुःस्वप्न देखनेसे मिलने वाले कुफलको उतारता हूँ ॥ ७ ॥ ८ ॥

यददोऽदो अभ्यगच्छन् यद् दोषा यत् पूर्वा रात्रिम् ६

यत् । अदःऽअदः । अभिऽगच्छन् । यत् । दोषा । यत् । पूर्वाम् ।

रात्रिम् ॥ ६ ॥

यज्जाग्रद् यत् सुप्तो यद् दिवा यन्नक्तम् ॥ १० ॥

यत् । जाग्रत् । यत् । सुप्तः । यत् । दिवा । यत् । नक्तम् ॥ १० ॥

यदहरहरभिगच्छामि तस्मादेनमव दये ॥ ११ ॥

यत् । अहःऽअहः । अभिऽगच्छामि । तस्मात् । एनम् । अव । दये

जो पूर्व रात्रिमें अमुक २ कर्मको मैं प्राप्त हो चुका हूँ, जो
जागतेमें सोतेमें दिनमें वा रातमें वा प्रतिदिन (पापको) प्राप्त
होता हूँ उससे मैं इसको मारता हूँ ॥ ६ ॥ ११ ॥

तं जहि तेन मन्दस्व तस्य पृष्टीरपि शृणीहि ॥ १२ ॥

तम् । जहि । तेन । मन्दस्व । तस्य । पृष्टीः । अपि । शृणीहि ॥ १२ ॥

हे देव ! आप उस शत्रुको मारिये, उससे हर्षमें भरिये और इसकी पसलियोंको भी तोड़ डालिये ॥ १२ ॥

स मा जीवीत् तं प्राणो जहातु ॥ १३ ॥

सः । मा । जीवीत् । तम् । प्राणः । जहातु ॥ १३ ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं पर्यायसूक्तम् ॥

वह जीवित न रहे प्राण उसको त्याग देय ॥ १३ ॥

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय पर्याय सूक्त समाप्त (५३७)

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं
ब्रह्मास्माकं स्वर्गस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं
प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ १ ॥

जितम् । अस्माकम् । उत्भिन्नम् । अस्माकम् । मृतम् । अस्मा-
कम् । तेजः । अस्माकम् । ब्रह्म । अस्माकम् । स्वः । अस्माकम् ।

यज्ञः । अस्माकम् । पशवः । अस्माकम् । प्रजा । अस्माकम् ।

वीराः । अस्माकम् ॥ १ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं ॥ १ ॥

तस्मादमुं निर्भजामोमुमामुष्यायणमुष्याः पुत्रमसौ

यः ॥ २ ॥

तस्मात् । अमुम् । निः । भजामः । अमुम् । आमुष्यायणम् ।

अमुष्याः । पुत्रम् । असौ । यः ॥ २ ॥

अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोक से दूर करते हैं ॥ २ ॥

स ग्राह्याः पाशान्मा मोचि ॥ ३ ॥

सः । ग्राह्याः । पाशात् । मा । मोचि ॥ ३ ॥

वह ग्राह्याके पाशसे न छूट सके ॥ ३ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च

पादयामि ॥ ४ ॥

तस्य । इदम् । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि ।

इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ४ ॥

मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ४ ॥

जितम् ०।० । स निर्ऋत्याः पाशान्मा मोचि । ० ५

० । सः । निःऋत्याः । पाशात् । ० ॥ ५ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह निर्ऋतिके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ५ ॥

जितम् ०।० । सोभूत्याः पाशान्मा मोचि ।० ॥ ६ ॥

०। सः । अभूत्याः । पाशात् ।० ॥ ६ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह अभूति पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ६ ॥

जितम् ०।० । स निर्भूत्याः पाशान्मा मोचि ।० ७

०। सः । निर्भूत्याः । पाशात् ।० ॥ ७ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थसमूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह निर्भूति के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ७ ॥

जितम् ०।० । स पराभूत्याः पाशान्मा मोचि ।० ८

०। सः । पराभूत्याः । पाशात् ।० ॥ ८ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका

जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह पराभूति के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ८ ॥

जितम् ०।० । स देवजामीनां पाशान्मा मोचि । ० ६

०। सः । देवऽजामीनाम् । पाशात् । ० ॥ ६ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह देवजामिके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयु को लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ ६

जितम् ०।०। स बृहस्पतेः पाशान्मा मोचि । ० ॥ १० ॥

०। सः । बृहस्पतेः । पाशात् । ० ॥ १० ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह बृहस्पति के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १० ॥

जितम् ०।० । स प्रजापतेः पाशान्मा मोचि । ० ११

०। सः । प्रजाऽपतिः । पाशात् । ० ॥ ११ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं, अमुक गोत्रका अमुकी का जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह प्रजापतिके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥११॥

जितम् ०।० । स ऋषीणां पाशान्मा मोचि ।० १२

०। सः । ऋषीणाम् । पाशात् ।० ॥ १२ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह ऋषियों के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १२ ॥

जितम् ०।० । स आर्षेयाणां पाशान्मा मोचि ।०

०। आर्षेयाणाम् । पाशात् ।० ॥ १३ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह आर्षेयोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १३ ॥

जितम् ०।० । सोऽङ्गिरसां पाशान्मा मोचि ।० १४

०। सः । अङ्गिरसाम् । पाशात् ।० ॥ १४ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह अंगिराओं के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १४ ॥

जितम् ०।० । स आङ्गिरसानां पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । आङ्गिरसानाम् । पाशात् ।० ॥ १५ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकी का जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं, वह आंगिरसोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ १५ ॥

जितम् ०।० । सोथर्वणां पाशान्मा मोचि ।० १६

०। सः । अथर्वणाम् । पाशात् ।० ॥ १६ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं.

और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं, अमुक गोत्रका अमुकी का जो यह पुत्र है, उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं, वह अथर्वियोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥१६॥
जितम् ०।०। स आथर्वणानां पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । आथर्वणानाम् । पाशात् ।० ॥ १७ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं, अमुक गोत्रका अमुकी का जो यह पुत्र है, उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं, वह अथर्वणोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥१७॥

जितम् ०।० । स वनस्पतीनां पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । वनस्पतीनाम् । पाशात् ।० ॥ १८ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है, और वीर हमारे हैं, अमुक गोत्रका अमुकी का जो यह पुत्र है, उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं, वह वनस्पतियोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥१८॥

जितम् ०।० । स वानस्पत्यानां पाशान्मा मोचि ।०

३७८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

०। सः । वानस्पत्यानाम् । पाशात् । ० ॥ १६ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह वानस्पत्यों के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटना हूँ इसको औँचा मुख करके गिराता हूँ ॥ १६ ॥

जितम् ०।० । स ऋतूनां पाशान्मा मोचि । ० २०

०। सः । ऋतूनाम् । पाशात् । ० ॥ २० ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह ऋतुओं के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटना हूँ इसको औँचा मुख करके गिराता हूँ ॥ २० ॥

जितम् ०।० । स आर्तिवानां पाशान्मा मोचि । ० २१

०। सः । आर्तिवानाम् । पाशात् । ० । २१ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका

जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह ऋतुमें होने वाले पदार्थोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंथा मुख करके गिराता हूँ २१
जितम् ०।०। स मासानां पाशान्मा मोचि ।० २२

०। सः । मासानाम् । पाशात् ।० ॥ २२ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और मजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह मासोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंथा मुख करके गिराता हूँ ॥ २२ ॥

जितम् ०।०। सोऽर्धमासानां पाशान्मा मोचि ।० २३

०। सः । अर्धमासानाम् । पाशात् ।० ॥ २३ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और मजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह अर्धमासोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंथा मुख करके गिराता हूँ ॥ २३ ॥

जितम् ०।०। सोऽहोरात्रयोः पाशान्मा मोचि ।० २४

०। सः । अहोरात्रयोः । पाशात् ।० ॥ २४ ॥

३८० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह दिन और रातके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजकी वर्चको और आयु को लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २४ ॥

जितम् ०।० । सोहोः संयतोः पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । अहोः । सम्स्यतोः । पाशात् ।० ॥ २५ ॥

जीताहुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह रात दिन के दोनों संयत भागोंके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ

जितम् ०।० । स द्यावापृथिव्योः पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । द्यावापृथिव्योः । पाशात् ।० ॥ २६ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह द्यावापृथिवी के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २६ ॥

जितम् ०।०। स इन्द्राग्न्योः पाशान्मा मोचि ।० २७

०। सः । इन्द्राग्न्योः । पाशात् ।० ॥ २७ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह इन्द्र और अग्निके पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयु को, लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २७ ॥

जितम् ०।०। स मित्रावरुणयोः पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । मित्रावरुणयोः । पाशात् ।० ॥ २८ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं और प्रजा हमारी है वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह मित्र और वरुण के पाशसे न छूट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २८ ॥

जितम् ०।०। स राज्ञो वरुणस्य पाशान्मा मोचि ।०

०। सः । राज्ञः । वरुणस्य । पाशात् ।० ॥ २९ ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और

प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोकसे दूर करते हैं वह राजा वरुणके पाशसे न छट सके मैं उसके इस तेजको वर्चको और आयुको लपेटता हूँ इसको औंधा मुख करके गिराता हूँ ॥ २९ ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोस्माकं
ब्रह्मास्माकं स्वस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं
प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् ॥ ३० ॥

० । अस्माकम् । ऋतम् । अस्माकम् । तेजः । अस्माकम् । ब्रह्म ।
अस्माकम् । स्वः । अस्माकम् । यज्ञः । अस्माकम् । पशवः ।
अस्माकम् । प्रजाः । अस्माकम् । वीराः । अस्माकम् ॥ ३० ॥

जीता हुआ पदार्थ समूह हमारा है, शत्रुओंको विदारण करके लाया हुआ पदार्थ समूह हमारा है, सत्य हमारा है, तेजोमय पदार्थ हमारा है, ब्रह्म हमारा है, स्वर्ग हमारा है, पशु हमारे हैं, और प्रजा हमारी है और वीर हमारे हैं ॥ ३० ॥

तस्मादमुं निर्भजामोमुमामुष्यायणममुष्याः पुत्रमसौ
यः ॥ ३१ ॥

तस्मात् । अमुम् । निः । भजामः । अमुम् । आमुष्यायणम् ।
अमुष्याः । पुत्रम् । असौ । यः ॥ ३१ ॥

अमुक गोत्रका अमुकीका जो यह पुत्र है उसको हम इस लोक से दूर करते हैं ॥ ३१ ॥

स मृत्योः पद्वीशात् पाशान्मा मोचि ॥ ३२ ॥

सः । मृत्योः । पङ्क्तीशात् । पाशात् । मा । मोचि ॥ ३२ ॥

बह मृत्युके पादबन्धक पाशोंसे न छूटे ॥ ३२ ॥

तस्येदं वर्चस्तेजः प्राणमायुर्नि वेष्टयामीदमेनमधराञ्च
पादयामि ॥ ३३ ॥

तस्य । इदम् । वर्चः । तेजः । प्राणम् । आयुः । नि । वेष्टयामि ।

इदम् । एनम् । अधराञ्चम् । पादयामि ॥ ३३ ॥

इति द्वितीयेनुवाके चतुर्थं पर्यायसूक्तम् ॥

उसके इस वर्च तेज और आयुको मैं लपेटता हूँ और इसको
औंधे मुख गिराता हूँ ॥ ३३ ॥

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ पर्याय सूक्त समाप्त (५३८) ॥

जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्युष्टं विश्वाः पृतना
अरातीः ॥ १ ॥

जितम् । अस्माकम् । उत्भिन्नम् । अस्माकम् । अभिः । अस्थाम् ।

विश्वाः । पृतनाः । अरातीः ॥ १ ॥

जीता हुआ पदार्थसमूह हमारा है, विदारण करके लाया हुआ
पदार्थसमूह हमारा है मैं शत्रुओंकी सम्पूर्ण सेनाओं पर प्रतिष्ठित
होऊँ ॥ १ ॥

तदग्निराह तदु सोम आह पूषा मां धातु सुकृतस्य लोके

तत् । अग्निः । आह । तत् । ऊं इति । सोमः । आह । पूषा ।

मा । धातु । सुकृतस्य । लोके ॥ २ ॥

इसी वातको अग्निदेव कह रहे हैं, इसी वातको सोमदेव कह रहे हैं, पूषा देवता मुझको पुण्यलोकमें स्थापित करें ॥ २ ॥

अ॒ग॒न्म॒ स्व॑ः॒ स्व॑र्ग॒न्म॒ सं सूर्य॑स्य॒ ज्योति॑षागन्म ३
अ॒ग॒न्म॒ । स्वः॑ । स्वः॑ । अ॒ग॒न्म॒ । सम् । सूर्य॑स्य । ज्योति॑षा ।
अ॒ग॒न्म॒ ॥ ३ ॥

हम स्वर्गको प्राप्त हों, हम स्वर्गको प्राप्त हों, हम सूर्यकी ज्योति से भली प्रकार स्वर्गको प्राप्त हों ॥ ३ ॥

व॒स्यो॒भूया॑य॒ वसु॑मान् य॒ज्ञो वसु॑ वंशि॒षीय॒ वसु॑मान्
भूया॑सं वसु॒ मयि॑ धेहि ॥ ४ ॥

व॒स्यः॑भूया॑य । वसु॑मान् । य॒ज्ञः । वसु॑ । वंशि॒षीय॒ । वसु॑मान् ।
भूया॑सम् । वसु॑ । मयि॑ । धेहि॑ ॥ ४ ॥

द्वितीयेनुवाके पञ्चमं पर्यायसूक्तम् ॥

द्वितीयोनुवाकः ॥

इति षोडशं काण्डं समाप्तम् ॥

सत्कार पानेके योग्य धनवान् मैं परमधनी होनेके लिये धन को वशमें करूँ, धनवान् होऊँ, हे देव ! आप मुझमें धनको पुष्ट करिये ॥ ४ ॥

द्वितीय अनुवाकमें पञ्चम पर्याय सूक्त समाप्त (५३९)

द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका षोडश काण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत

भाषानुवादसहित

समाप्त.

३६६४

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

सप्तदशं-काण्डम्

❀❀❀

स्वायण्यभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निश्वासितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ।

निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥ १ ॥

वेद जिनके निःश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके अनुसार सम्पूर्ण जगत्की रचना की है, उन विद्यातीर्थ महेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

सप्तदशे काण्डे एकोऽनुवाकः । तत्र त्रीणि सूक्तानि । अयं “विषासहिम्” इत्यनुवाकः सलिलगणमध्ये पठितः । अतः “सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नाति । मन्थान्तानि” इति [कौ० ३. १] “सलिलैः सर्वकामः” [कौ० ३. ७] इत्यादौ चास्य विनियोगः ॥

उपनयनकर्मणि आचार्यः ब्रह्मचारिणो नाभिदेशं संस्पृश्य अमुम् अनुवाकं जपेत् । तद् उक्तं कौशिकेन । “दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशं संस्तभ्य जपति अस्मिन् वसु वसवो धारयन्तु” [१. ६] इत्यादि “प्राणाय नमः [११. ६] विषासहिम् [१७. १] इत्यनुमन्त्रयते” इत्यन्तम् [कौ० ७. ६] ॥

उपनयनकर्मण्येव ऋषिहस्ते “कर्मणे वाम्” इति हस्तपञ्चालनानन्तरम् आचार्यो प्राणवक्त्रम् अनेनानुवाकेन अभिमन्त्रयते । “ऋषिहस्तस्य कर्मणे वां वेशाय वाम्” इति प्रक्रम्य सूत्रितम् ।

“आ रभस्व [८. २] प्राणाय नमः [११. ६] विषासहिम् [१७. १] इत्यभिमन्त्रयते” इति [कौ० ७. ६] ॥

उपनयन एव आयुरभिवृद्धयर्थम् अनेनानुवाकेन माणवकस्त्रिकालम् आदित्यम् उपतिष्ठेत् । सूत्रितं हि । “उदस्य केतवः [१३. २] मूर्धाहम् [१६. ३] विषासहिम् [१७. १] इत्युद्यन्तम् उपतिष्ठते मध्यन्दिने अस्तं यन्तम्” इति [कौ० ७. ६] ॥

तथा आदित्यग्रहरूपान्द्रुते तच्छान्त्यर्थम् अनेनानुवाकेन आज्यं जुहुयात् । “अथ यत्रैतद् आदित्यं तपो गृह्णाति तत् जुहुयात्” इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । “विषासहिं सहमानम् इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् । सा तत्र प्रायेश्चित्तिः” इति [कौ० १३. ७] । सूक्तेन । अर्थसूक्तेनेत्यर्थः । अतः कृत्स्नस्याप्यनुवाकस्य ग्रहणशान्तौ विनियोग इत्यवसीयते ॥

तथा चन्द्रग्रहरूपान्द्रुते तच्छान्त्यर्थम् अनेनानुवाकेन उपस्थानं कुर्यात् । “अथ यदेतच्चन्द्रमसम् उपस्रवति” इति [कौ० १३. ८] प्रक्रम्य सूत्रितम् । “रोहितैरुपतिष्ठते” इति ॥

अस्यानुवाकस्य आयुष्यगणे षाठाद् उपाकर्मणि अनेनानुवाकेन आज्यं जुहुयात् । “अभिजिति शिष्यान् उपनीय” इति प्रक्रम्य कौशिकेन सूत्रितम् । “विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्” इति [कौ० १४. ३] ॥

अस्य सूक्तस्य सलिलगणे षाठात् “आदित्यां श्रुततेजोधनायुष्कामस्य” इति [न० क० १७] विहितायाम् आदित्याख्यायां महाशान्तौ अस्यानुवाकस्य विनियोगः । तद् उक्तं नक्षत्रकल्पे । “सलिलगण आदित्यायाम्” इति [न० क० १८] ॥

तथा कोटिहोमे अस्यानुवाकस्य विनियोगः । कोटिहोमं प्रक्रम्य उक्तम् अथर्वपरिशिष्टे ।

जुहुयुः शान्तवृत्तस्य समिधो घृतसंयुताः ।

स्वयं चापि यजेद् ब्रह्मा सवितारं दिनेदिने ॥

पाकयज्ञविधानेन मन्त्राश्च स्युर्विषासहिः ॥

शान्तिकामो यवैः कुर्यात् तिलैः पापापनुत्तये । इत्यादि
[प० ३१. ६] ॥

तथा भास्करप्रीत्यर्थं क्रियमाणे आदित्यमण्डलदाने अस्यानु-
वाकस्य मण्डलाकारापूपाभिमन्त्रणे विनियोगः । तद् उक्तम्
अथर्वपरिशिष्टे । “अथ यः कामयेत सर्वेषां नृणाम् उत्तमः स्याम्
इति स भास्करायापूपं दद्यात् । तस्य कल्पः ।” इत्यादि “सुवर्ण-
शकलं चोपरिष्ठान्निधायार्चयेद् रक्तकुसुमैर्विषासहिम् इत्यभिमन्त्र्य
ब्राह्मणाय निवेदयेत्” इति [प० १२. १] ।

अत्र “त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः” इत्यनेन मन्त्रेण दर्शष्टौ माहेन्द्रं
हविर्नुमन्त्रयेत् । तद् उक्तं वैताने । “सांनाय्यस्यैन्द्रं माहेन्द्रं वा
इन्द्रेणम् [६. ५. २] त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः [१७. १८]” इति
[वै० १. ३] ॥

सत्रहर्वे काण्डमें एक अनुवाक है । उसमें तीन सूक्त हैं ।
“अयं विषासहिम्” इस अनुवाकका सलिलगणमें पाठ है । अतः
“सलिलैः क्षीरौदनं अश्नाति । मन्थान्तानि” (कौशिकसूत्र
३ । १) और “सलिलैः सर्वकामः” (कौशिकसूत्र ३ । ७)
इत्यादिमें इसका विनियोग होता है ।

आचार्य उपनयनकर्ममें ब्रह्मचारीके नाभिदेशका स्पर्श करके
इस अनुवाकका जप करे । इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा है,
कि—‘दक्षिणेन पाणिना नाभिदेशं संस्तभ्य जपति अस्मिन् वसु
वसवो धारयन्तु’ (१ । ६) इत्यादि “प्राणाय नमः (११ । ६)
विषासहिम् (१७ । १) इत्यनुमन्त्रयते’ इत्यन्तम् (कौशिकसूत्र
७ । ६) ॥

आचार्य उपनयनकर्ममें ही ऋषिहस्तसे “कर्मणे वाम्” प्रज्ञा-

लनके अनन्तर बालकका इस अनुवाकसे अभिमन्त्रण करे । सूत्र में 'ऋषिहस्तस्य कर्मणे वां वेशाय वाम्' का आरंभ करके कहा है, कि—“आ रभस्व (८ । २) प्राणाय नमः (११ । ६) विषासहिम् (१७ । १) इत्यभिमन्त्रयते” (कौशिकसूत्र ७ । ६) ॥

बालक उपनयनमें ही आयुकी वृद्धिके लिये इस अनुवाकसे त्रिकालमें आदित्यका उपस्थान करे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“उदस्य केतवः (१३ । २) मूर्धाहम् (१६ । ३) विषासहिम् (१७ । १) इत्युद्यन्तं उपतिष्ठते मध्यन्दिने अस्तं यन्तम्” (कौशिकसूत्र ७ । ६) ॥

तथा सूर्यग्रहरूप अद्भुतमें उसकी शांतिके लिये इस अनुवाक से घृतकी आहुति देय । “अथ यत्रैतद् आदित्यं तपो गृह्णाति तत्र जुहुयात् ।—जब यह राहु सूर्यको ग्रहण करे उस समय आहुति देय” का आरम्भ करके सूत्रमें कहा है, कि—“विषासहिं सहमानं इत्येतेन सूक्तेन जुहुयात् सा तत्र प्रायश्चित्तिः ।—विषासहिं सहमानं सूक्तसे आहुति देय यही तहाँ प्रायश्चित्त है” (कौशिकसूत्र १३ । ७) ॥ अत एव इस पूर्णसूक्तका ग्रहणकी शांतिमें विनियोग होता है । यह निश्चित है ।

तथा चन्द्रग्रहरूप अद्भुतमें उसकी शांतिके लिये इस अनुवाकसे उपस्थान करे । “अथ यत्रैतद् चन्द्रमसं उपसवति” का आरम्भ करके कौशिकसूत्र १३ । ८ में कहा है, कि—“रोहितैरुपतिष्ठते” ॥

इस अनुवाकका आयुष्यगणमें पाठ है अत एव उपाकर्ममें इस अनुवाकसे घृतकी आहुति देय “अभिजिति शिष्यानुपनीय” का आरंभ करके कौशिकसूत्र १४ । ३ में कहा है, कि—“विश्वकर्मभिरायुष्यैः स्वस्त्ययनैराज्यं जुहुयात्” ॥

इस सूक्तका सलिलगणमें पाठ है, अत एव “आदित्यां श्रुत-

तेजोधनायुष्कामस्य ।—अत तेज धन और आयुको चाहने वालेके लिये आदित्या शान्तिको करे” इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित आदित्या नाम वाली महाशान्तिमें इस अनुवाकका विनियोग होता है । इसी बातको नक्षत्रकल्प १८ में कहा है, कि—“सलिल-गण आदित्यायाम्” ॥

तथा कोटिहोममें भी इस अनुवाकका विनियोग होता है । कोटिहोमका आरंभ करके परिशिष्टमें कहा है, कि—“शान्तवृत्तकी घृतमें भीगी हुई समिधाओंकी आहुति देवों, और ब्रह्मा अपने आप भी प्रतिदिन सवितादेवताका यजन करे । पाकयज्ञविधानके अनुसार विषासहि आदि मन्त्र यहाँ पढ़े जावेंगे । शान्ति 'चाहने वाला पुरुष पापको दूर करनेके लिये यव और तिलोंसे होम करे” (अथर्वपरिशिष्ट ३१ । ६) ॥

सूर्यदेवकी प्रीतिके लिये किये जाने वाले आदित्यमण्डलदान के मण्डलाकार अपूपके अभिमन्त्रणमें भी इस अनुवाकका विनियोग होता है । इसी बातको अथर्वपरिशिष्टमें कहा है, कि—“जो यह कामना करे, कि—मैं सब पुरुषोंमें उत्तम होजाऊँ वह सूर्य-देवके लिये अपूपको देवे । उसका कल्प यह है” इत्यादि “सुवर्णके टुकड़ेको ऊपरसे रख कर लाल पुष्पोंसे पूजन करे और विषा-सहिम्से अभिमन्त्रण करके ब्राह्मणको देदेय” ॥ (अथर्वपरिशिष्ट १२ । १) ॥

यहाँ “त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः” इस मन्त्रसे दर्शेष्टिमें माहेन्द्र हवि का अनुमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्र १ । ३ में कहा है, कि—“सानाय्यस्यैन्द्रं माहेन्द्रं वा इन्द्रेमं (६ । ५ । २) त्वमिन्द्र-स्त्वं महेन्द्रः (१७. १८)” ॥

तत्र प्रथमा ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।

३६० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनजितम् ।

ईड्यं नाम ह इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥ १ ॥

विस्सहिम् । सहमानम् । ससहानम् । सहीयांसम् ।

सहमानम् । सहऽजितम् । स्वऽजितम् । गोऽजितम् । संधनऽजितम् ।

ईड्यम् । नाम । हे । इन्द्रम् । आयुष्मान् । भूयासम् ॥ १ ॥

अत्र सूर्यादित्यादिपदलिङ्गानाम् अश्रवणैपि कृत्स्नस्याप्यनु-
वाकस्य उक्तप्रकारेण कृत्स्नेषु सौर्येषु कर्मसु प्रायेण विनियोगात्
सूर्यपरतया मन्त्रा व्याख्येयाः । अथ वा परमैश्वर्ययोगात् “इन्द्र
इरां दृणातीति वा इरां दारयतीति वा इरां धारयतीति वा”
[नि० १०. ८] इत्यादिनिरुक्तकारोक्तानाम् अवयवार्थानां वृष्टि-
द्वारा सर्वेषां भूतानाम् आत्मत्वात् सूर्ये संभवाच्च ईड्यं नाम ह इन्द्रम्
इति इन्द्रशब्द आदित्यम् अभिधत्ते । अथ वा “विदस्वदिन्द्रयुताः”
इति “इन्द्रश्च विस्वांश्चेत्येते” इति [तै० आ० १. १३. ३] च
द्वादशादित्यमध्ये इन्द्रस्यापि श्रुतत्वात् स्मृतत्वाच्च इन्द्रः साक्षाद्
आदित्य एव । तथा तैत्तिरीयश्रुतिः । “ऐन्द्रीम् आवृतम् अन्वा-
वर्ते । असौ वा आदित्य इन्द्रः । तस्यैवावृतम् अनु पर्यावर्तते”
इति [तै० सं० १. ७. ६. ३] । अतः उक्तरीत्या आदित्येन्द्रयो-
रेकत्वेन “सपत्नानां विषासहिम्” [ऋ० १०. १६६. १] “अषाढम्
उग्रं सहमानम्” [तै० ब्रा० २. ८. ५. ८] इत्यादिषु इन्द्रविशे-
षणतया प्रसिद्धानि विषासहिम् इत्यादीनि सूर्येपि अविरुद्धानि ।
ईड्यम् स्तुत्यम् आरोग्याद्यर्थिभिः सर्वैः प्राणिभिः सर्वदा स्तोतव्यं
नाम सर्वेषां नामकम् । अथ वा नामेति प्रसिद्धौ । ईड्यत्वेन प्रसि-
द्धम् इन्द्रम् आदित्यं हे हुवे इति संग्रहार्थः । ❀ ह्यतेर्लाटि “बहुलं

छन्दसि” इति संप्रसारणम् । छान्दसो यण् ॐ । कीदृशम् इन्द्रम्
 इति तं विशिनष्टि विषासहिम् इत्यादिना । विषासहिम् विशेषेण
 सोढारम् । यथा शत्रवो न पुनरुद्भवन्ति तथा नाशयितारम्
 इत्यर्थः । ॐ षह अभिभवे । अस्माद् यङन्तात् “सहिवहिचलि-
 पतिभ्यो यङन्तेभ्यः किकिनौ वक्तव्यौ” इति किप्रत्ययः ॐ ।
 तदेव उपपादयति सहमानम् इति । सहनशीलम् । “इन्द्रो यातू-
 नाम् अभवत् पराशरः” [ँ. ४. २१] इत्यादिश्रुतिभ्य इन्द्रस्य
 सहनशीलं प्रसिद्धम् । यस्य यादृक् स्वभावः स तादृशं करोतीति
 प्रसिद्धम् । अतः शत्रुहननस्वाभाव्याद् विषासहित्वं तस्य युक्तम्
 इत्यर्थः । ॐ सहेर्लटश्चानश् ॐ । न केवलम् इदानीमेव तच्छीलत्वं
 प्रागपि तथैत्याह । सासहानम् पूर्वमपि अभिभवितारम् । अतः
 शत्रुहननस्वभावता सिद्धा । ॐ लिटः कानच् । एत्वाभ्यासलोप-
 योरभावश्छान्दसः ॐ । ननु सन्त्यन्ये सोढारः कोस्यातिशय इति
 तत्राह सहीयांसम् इति । सोढ् ऋणां मध्ये अतिशयेन सोढारम् ।
 ॐ सोढ् ऋशब्दात् “तुश्छन्दसि” इति ईयसुन् । “तुरिष्टेमेयःसु”
 इति वृत्तोपः ॐ । उक्तविशेषणचतुष्टयसिद्धम् अर्थं पुनरनुवदति
 क्रियासंबन्धाय सहमानम् इति । उक्तोस्यार्थः । ॐ सहेश्चानश् ॐ ।
 एवंमहानुभावम् इन्द्रशब्दाभिधेयम् आदित्यं हुवे । इत्थं शत्रु-
 सहनद्वारेण इन्द्रं प्रशस्य अथ तेषां सह आदिजेतृत्वद्वारेणापि प्रशं-
 सति । सहोजितम् सहः परेषाम् अभिभावुकं तस्य जेतारं शत्रुतेजः
 बलापहर्तारम् । स्वर्जितम् । स्वर् इति सुखनाम । शत्रूणां यत्
 सुखं तस्य जेतारं नाशयितारम् स्वर्गस्य वा जेतारम् । तथा गोजि-
 तम् गोशब्दो महिष्यजाविकरितुरगोष्ठादेरुपलक्षकः । शत्रूणां ये
 गवाद्याः सन्ति तेषां जेतारम् । यद्वा गावः उदकानि तेषां जेता-
 रम् । तथा संधनजितम् सम्पग्धनस्य सुवर्णरजतमणिमुक्तादि-
 लक्षणस्य जेतारम् । यद्वा सहआदिजयः स्वोपासकार्यो द्रष्टव्यः ।

३६२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

स्वभक्तेभ्यः सहःस्वर्गगोधनानां लम्भकम् इत्यर्थः । “अर्वाश्वम्
इन्द्रम् अमुतो हवामहे यो गोजिह्व धनजिह्व अश्वजिह्व यः” [५.
३. ११] इत्यादिमन्त्रान्तरेषु इन्द्रस्य गवादिजेतृत्वं प्रसिद्धम् ।
❀ संधनाजितम् इति । सांहितिको दीर्घः ❀ । उक्तगुणविशिष्ट-
स्येन्द्रस्य आह्वाने प्रयोजनम् आह । आयुष्मान् भूयासम् इति ।
आह्वानोपलक्षितैस्त्रैकालिकोपस्थानादिलक्षणैः कर्मभिः परितुष्टस्य
इन्द्रशब्दवाच्यस्य भगवतः सूर्यस्य प्रसादाद् अहम् आयुष्मान् शत-
संवत्सरलक्षणेन आयुष्येण उपेतो भवेयम् । अत एव आयुष्मत्-
प्रार्थनानलिङ्गाद् अस्यानुवाकस्य आयुरभिवृद्धयर्थं माणवकस्य
त्रिकालम् आदित्योपस्थाने विनियोग उक्तः ॥

[यहाँ सूर्य आदित्य आदि पदलिङ्गोंका श्रवण न होने पर भी,
सकल अनुवाकका पूर्वोक्तरीतिसे प्रायः सूर्यसम्बन्धी सकल कर्मों
में विनियोग होनेसे मन्त्रोंकी सूर्यपरक ही व्याख्या करनी चाहिये ।
अथवा परमेश्वर्यके योगसे “इन्द्र इरां दृणाति वा इरां दारयति
वा इरां धारयति” इत्यादि निरुक्त १० । ८ में कहे हुए अवय-
वार्थोंका वृष्टिके द्वारा, और सब भूतोंकी आत्मा होनेके कारण
सूर्यमें संभव होनेसे भी ‘ईड्यं ह्व नाम इन्द्रम्’ आदिमें इन्द्रशब्द
सूर्यको ही कहता है ॥ अथवा—“विवस्वदिन्द्रयुताः” और “इन्द्रश्च
विवस्वांश्चेत्येते” (तैत्तिरीय आरण्यक) १ । १३ । ३ में बारह
आदित्योंके मध्यमें इन्द्रका भी श्रवण होनेसे और स्मृत होनेसे
भी इन्द्र साक्षात् आदित्य ही है । इसी बातको तैत्तिरीयश्रुतिमें
कहा है, कि—“ऐन्द्रीं आवृतं अन्वावर्ते । असौ वा आदित्य इन्द्रः ।
तस्यैवावृतं अनु पर्यावर्तते” तैत्तिरीय संहिता १ । ७ । ६ । ३)
अत एव उक्तरीतिसे आदित्य और इन्द्रके एक होनेसे “सपत्नानां
विषासहिम्” (ऋग्वेदसंहिता १० । १६६ । १ और “अषाढं
उग्रं सहमानम्” (तैत्तिरीय ब्राह्मण २ । ८ । ५ । ८) आदिमें

इन्द्रके विशेषणरूपसे प्रसिद्ध विषासहिम् आदि पद सूर्यमें भी अवि-
रुद्ध हैं, अत एव] आरोग्य आदिकी प्रार्थना करने वाले सब
प्राणियोंसे सदा स्तुति पाने वाले सबको नमाने वाले सूर्यदेवका
मैं आह्वान करता हूँ, वह सूर्यदेव विशेषरूपसे सोढा है अर्थात्
जिस प्रकार शत्रु फिर न उठ सकें तिस प्रकार दबाने वाले हैं ।
और यह इन्द्र सहनशील है “इन्द्रो यातूनाम्” (८ । ४ । २१)
आदि श्रुतियोंमें इनका सहनशील अर्थात् दबानेका स्वभाव प्रसिद्ध
है और जिसका जैसा स्वभाव होता है वह तैसा करता है अत
एव शत्रुहन्तका स्वभाव होनेसे उनका विषासहित्व ठीक ही है ।
उनका स्वभाव अब ही ऐसा नहीं होगया है किन्तु यह पहिले
भी शत्रुओंको बारम्बार दबाते रहते थे अतः शत्रुहन्तस्वभाव
सिद्ध ही है । दूसरोंकी समान यह साधारण दबाने वाले नहीं
हैं किन्तु दबाने वालोंमें परमोत्तम हैं । ऐसे धर्षणशील सूर्यका मैं
आह्वान करता हूँ, दूसरोंको दबाने वाले तेजका नाम सह है उस
को शत्रुओंमेंसे खेचने वाले शत्रुओंके सुख वा स्वर्गके जीतने
वाले शत्रुओंके गौ भैंस बकरी भेड़ घोड़े आदिको जीतने वाले
अथवा जलके जेवा अथवा इन सबको वशमें करके अपने भक्तों
को देने वाले सूर्यको मैं त्रैकालिक उपस्थानादि रूप आह्वानोंके
द्वारा आह्वान करता हूँ, उन भगवान् सूर्यदेवके प्रसादसे मैं आयु-
ष्मान् होऊँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।

सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनजितम् ।

ईडयं नाम ह इन्द्र प्रियो देवानां भूयासम् ॥ २ ॥

विऽससहिम् । सहमानम् । ससहानम् । सहीयांसम् ।

सहमानम् । सहऽजितम् । स्वऽजितम् । गोऽजितम् । संधनऽजितम्
ईड्यम् । नाम । हे । इन् म् । प्रियः । देवानाम् । भूयासम् ॥२॥

पूर्ववद् व्याख्येयम् । आयुष्मान् इत्यस्य स्थानं प्रियो देवानाम् इति विशेषः । इन्द्रस्य सर्वदेवाधिपतित्वात् तदात्मकस्य सूर्यस्यापि “एकैव वा महान् आत्मा देवता । स सूर्य इत्याचक्षते सर्वभूतात्मा” इति प्रतिज्ञाय अनुक्रमणिकाकारेण स्वोक्तेर् “सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च” इति [ऋ० १. ११५. १] उदाहृतत्वात् तथा “तद्विभूतयो न्या देवताः” इति प्रतिज्ञाय “तदप्येतद् ऋषिणोक्तम् । इन्द्रं मित्रं वरुणम् अग्निम् आहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद् विषा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिरवानम् आहुः” [ऋ० १. १६४. ४६] इति [स० अ० परि० २] प्रदर्शितत्वाच्च एकस्यैव भगवतः सूर्यस्य सर्वदेवतामयत्वात् तस्मिन् एकस्मिन् प्रीते इतरेषां देवानां प्रियो भवतीत्यभिप्रायः । इतरथा येषां प्रियभावः प्रार्थनीयस्त एव पृथक्पृथग् उपास्याः स्युः । न च वाच्यम् एकेनैव प्रीतेनादित्येनालम् किम् इतरदेवानां प्रियभादप्रार्थनयेति । फलानभिघाताय इतरेषां स्वाधीनी करणस्यापि अपेक्षितत्वात् । यथा लोके प्रीतेपि राजनि तत्परतन्त्राणामपि अमात्यादीनां प्रीत्यर्थम् उपाधावनदर्शनात् ॥

मैं विषासहि सहमान सासहान सहीयान् सहोजित् स्वर्जित् गोजित् संधनजित् (इन प्रथममन्त्रमें वर्णित अर्थ वाले) पूजनीय सर्वदेवाधिपति इन्द्रात्मक सूर्यका आह्वान करता हूँ, मैं उन भगवान् सूर्यदेवके प्रसादसे देवताओंका प्रिय होऊँ । [अनुक्रमणिका कारने कहा है, कि—“एकैव वा महान् आत्मा देवता । स सूर्य इत्याचक्षते सर्वभूतात्मा ।—आत्मा ही एक महान् देवता है

उनको सूर्य कहते हैं” इस बातकी प्रतिज्ञा करनेके अनन्तर ऋग्वेदसंहिता १ । ११५ । १ का उदाहरण दिया है, कि—“सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।—सूर्यदेव जंगम और स्थावर जगत्की आत्मा है” । फिर प्रतिज्ञा की है, कि—“तद्विभूतयोऽन्या देवता । और देवता उनकी विभूतियों हैं ।” इसके अनन्तर ऋग्वेदसंहिता १ । १६४ । ४६ का प्रमाण दिया है, कि—“तदप्येतद् ऋषिणोक्तम् इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निं आहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद् विषा बहुधा वदन्त्यग्निम् यमं मातरिश्वानमाहुः ।— इसी बातको मन्त्रद्रष्टा ऋषिने कहा है, कि—जिनको इन्द्र मित्र वरुण और अग्नि कहते हैं वह दिव्य सुपर्ण गरुत्मान् आत्मा है । उनके एक होने पर भी ब्राह्मण उनको अग्नि यम वायु कहते हैं” (सर्वानुक्रमणिकापरिभाषा ऋग्वेदसंहिता २) इस प्रकार एक ही भगवान् सूर्यके सर्वदेवमय होनेसे उन एकके ही प्रसन्न होने पर दूसरे देवताओंका प्रिय होजाता है । और जिनके प्रियभाव की प्रार्थना करनी हो उनकी पृथक् २ भी उपासना कर सकते हैं । यहाँ पर यह शंका नहीं करनी चाहिये कि—एक सूर्यदेवके प्रसन्न होने पर दूसरोंके प्रसन्न होनेकी प्रार्थना करनेकी क्या आवश्यकता है ? क्योंकि—फलमें अभिघात न पड़े इस लिये दूसरों को भी अपना बनानेकी आवश्यकता है । जैसे, कि—संसारमें राजाके प्रसन्न होने पर भी उसके आधीन रहने वाले मन्त्री आदिको प्रसन्न करनेके लिये मनुष्य दौड़ते फिरते हुए दीखते हैं] २

तृतीया ॥

विपासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।

सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।

ईडयं नाम ह इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम् ॥ ३ ॥

(३६६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

विऽससहिम् । सहमानम् । ससहानम् । सहीयांसम् ।

सहमानम् । सहऽजितम् । स्वऽजितम् । गोऽजितम् । संधनऽजितम् ।

ईड्यम् । नाम । हे । इन्द्रम् । प्रियः । प्रऽजानाम् । भूयासम् ३

प्रकर्षेण जायन्त इति प्रजाः पुत्राद्या भृत्यादयश्च । तासां प्रियो भूयासम् । ता यथा विधेयाः सत्यः स्वात्मानं पूजयन्ति तथाविधो भूयासम् इति आशास्ते ॥

विषासहि सहमान सासहान सहीयान् सहोजित स्वर्जित् गो-जित् और संधनजित् पूजनीय सर्वोंसे स्तुत्य इन्द्रात्मक सूर्यदेव का मैं प्रकृष्टतासे होने वाले पुत्र भृत्य आदिका प्रिय बननेके लिये आह्वान करता हूँ अर्थात् वह जिस प्रकार मेरा सत्कार करें मैं तैसा होजाऊँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।

सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।

ईड्यं नाम ह इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम् ॥ ४ ॥

विऽससहिम् । सहमानम् । ससहानम् । सहीयांसम् ।

सहमानम् । सहऽजितम् । स्वऽजितम् । गोऽजितम् । संधनऽजितम् ।

ईड्यम् । नाम । हे । इन्द्रम् । प्रियः । पशूनाम् । भूयासम् । ४ ।

पशवो गोमहिष्यजाविकाद्याः करितुरगोष्ठादयश्च । “चतुष्पादाः पशवः” इति श्रुतेः [ऐ० ब्रा० ५. १६] । सत्सु तेषु तेषां प्रियभात्रप्रार्थनौचित्यात् तल्लाभं तदानुकूल्यं चाशास्ते ॥

मैं विषासहि सहमान सासहान सहीयान् सहोजित स्वर्जित
गोजित् संधनजित्, पूजनीय और जिनको सब नमन करते हैं
सूर्यदेवका आह्वान करता हूँ मैं (ऐतरेय ब्राह्मण ५ । १६ की
श्रुतिमें वर्णित चतुष्पादाः पशवः ।-चार पैर वाले गौ भैंस बकरी
भेड़ हाथी घोड़ा ऊँट आदि) पशुओंका प्रिय होजाऊँ । अर्थात्
उनके होने पर उनके प्रियभावकी प्रार्थना करना उचित है अतः
एव उनके लाभ और अनुकूलताकी प्रार्थना की है ॥ ४ ॥

इत्थम् आयुष्याभावे कृत्स्नस्यापि लाभस्य वैयर्थ्यात् प्रथमम्
आयुष्यम् आशास्य तत्सिद्धये देवतानुकूल्यमपि आशास्य पुत्रा-
द्यभावे स्वात्मन एव अकात्स्न्यात् प्रजासमृद्धिम् आशास्य तद-
नन्तरं पशुलाभं प्रार्थ्य अथ तैः सर्वः संपन्नः स्वसमानेषु श्रेष्ठ-
भावम् आशास्ते ॥

इस प्रकार आयुके अभावमें सब वस्तुओंका लाभ निष्फल
है पहिले आयुकी प्रार्थना की, फिर उसकी सिद्धिके लिये देव-
ताओंके अनुकूल रहनेकी प्रार्थना की फिर पुत्र आदिके अभावमें
पुरुष स्वयं भी अधूरा रहता है अतः प्रजासमृद्धिकी प्रार्थना की
तदनन्तर पशुप्राप्तिकी प्रार्थना कर अब उनसे सम्पन्न रहते हुए
अपनी समान पुरुषोंमें श्रेष्ठताकी प्रार्थना करते हैं, कि-

पञ्चमी ॥

विषासहि सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।

सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।

इदं नाम ह इन्द्रं प्रियः समानानां भूयांसम् ॥५॥

विऽससहिम् । सहमानम् । ससहानम् । सहीयांसम् ।

सहमानम् । सहऽजितम् । स्वऽजितम् । गोऽजितम् । संधनऽजितम् ।

ईडचम् । नाम । हे । इन्द्रम् । प्रियः । समानानाम् । भूयासम् ५

कुलजातिवोधनविद्याकर्मादिभिः स्वसदृशाः समानाः । तेषां प्रियो भूयासम् । तेषामपि श्रेष्ठत्वेन उपजीव्यो भूयासम् इत्यर्थः । सत्सु स्वसदृशेषु अन्येषु स्वस्य श्रेष्ठ्याभावाद् “अहं भूयासम् उत्तमः समानानाम्” [तै० सं० ३. ५. ५. १] । “समानानाम् उत्तमश्लोको अस्तु” [तै० सं० ५. ७. ४. ३] इत्यादिश्रुतिषु तेषामपि श्रेष्ठ्यप्रार्थनादर्शनात् । इत्थम् आयुष्यादिसर्वकामप्रार्थना-लिङ्गाद् अस्यानुवाकस्य च सलिलगणे पाठात् “सलिलैः सर्व-कामः” इत्यादिको गणप्रयुक्तो विनियोग उक्त इति द्रष्टव्यम् । अत एव प्रियः प्रजानां भूयासम् प्रियः समानानां भूयासम् इति लिङ्गाद् भास्करप्रीतिकरापूषदाने “अथ यः कामयेत सर्वेषां नृणाम् उत्तमः स्याम्” इति प्रक्रम्य “विपासहिम् इति अभिमन्त्र्य ब्राह्म-णाय निवेदयेत्” इति अस्यानुवाकस्य विनियोग उक्त इति ज्ञातव्यम् ।

मैं विपासहि सहमान सासहान सहीयान् सहमान सहोजित् स्वर्जित् गोजित् संधनजित् पूजनीय प्रणम्य सूर्यका आह्वान करता हूँ, कि-मैं समान पुरुषोंमें प्रिय होऊँ [कुल जाति अवस्था धन विद्या कर्म आदिमें जो पुरुष अपने सदृश होते हैं वे समान कह-लाते हैं, उनका प्रिय होनेका अभिप्राय यह है, कि-उनमें श्रेष्ठ होनेसे मैं उनका उपजीव्य होऊँ । अब यह शंका होती है, कि-अपनी सदृश दूसरोंके होने पर अपनी श्रेष्ठताका अभाव ही होना चाहिये तो कहते हैं, कि-“अहं भूयासम् उत्तमः समानानाम् ।-मैं समान पुरुषोंमें उत्तम होऊँ” (तैत्तिरीयसंहिता ३ । ५ । ५ । १) “समानानां उत्तमश्लोको अस्तु ।-समान पुरुषोंमें उत्तम कीर्ति वाला हो” (तैत्तिरीयसंहिता ५ । ७ । ५ । ३) इत्यादि श्रुतियों में भी श्रेष्ठताकी प्रार्थना दीखती है अत एव श्रेष्ठता होसकती है ।

इस प्रकार आयु आदि सब कामनाओंकी प्रार्थनाओंके लिङ्गसे इस अनुवाकका सलिलगणमें पाठ होनेसे “सलिलैः सर्वकामः ।— सलिलगणके सूक्तोंसे सर्वकाम प्रार्थना करे” इत्यादि गणप्रयुक्त विनियोग कहा है, यह समझना चाहिये। अतएव “प्रियः प्रजानां भूयासम् । प्रियः समानानां भूयासम् ।” इस लिंगसे सूर्यदेवको प्रसन्न करने वालोंके अपूपदानमें इस अनुवाकका विनियोग कहा है, कि—“अथ यः कामयेत सर्वेषां नृणामुत्तमः स्यात्” इति प्रक्रम्य “विषासहिम् इत्यभिपन्थ्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्” ॥] ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

उदि॒ह्युदि॒हि सूर्य॑ वर्च॒सा मा॒भ्युदि॒हि ।

द्विषंश्च॒ मह्यं॑ र॒ध्यतु॑ मा॒ चाहं॑ द्विष॒ते र॒धं तवेद् वि॒ष्णो
बहु॒धा वीर्या॑णि ।

त्वं नः॑ पृ॒णीहि॑ प॒शुभिर्वि॒श्वरूपैः॑ सु॒धायां॑ मा॒ धेहि॑
पर॒मे व्यो॑मन् ॥ ६॥

उत् । इ॒हि । उत् । इ॒हि । सूर्य॑ । वर्च॒सा । मा॒ । अ॒भिऽउ॒दि॒हि ।

द्वि॒षन् । च॒ । मह्यम् । र॒ध्यतु॑ । मा॒ । च॒ । अ॒हम् । द्वि॒षते॑ । र॒धम् ।

तव॑ । इत् । वि॒ष्णो इति॑ । बहु॒धा । वीर्या॑णि ।

त्वम् । नः॑ । पृ॒णीहि॑ । प॒शुभिः॑ । वि॒श्वरूपैः॑ । सु॒धायाम् । मा॒ ।

धेहि॑ । पर॒मे । वि॒ऽओमन् ॥ ६ ॥

सरति गच्छति संततम् इति वा सुवति प्रेरयति स्वोदयेन सर्वं प्राणिजातं स्वस्वव्यापारे इति वा सूर्यः । ❀ सतेः सुवतेर्वा

कपि “राजसूर्यसूर्य०” इत्यादिना निपातितः । तस्य संबो-
 धनम् ॐ । हे सूर्य त्वम् उदिहि उदिहि । वीप्सया उदयविषया
 त्वरा द्योत्यते । स्वयमेव उदेष्यतः सूर्यस्य उदयविषयप्राथेनं
 मन्देहाद्य सुरकृतोदयप्रतिबन्धम् अन्तरेण उदयाशंसनार्थम् । तथा
 च तैत्तिरीयश्रुतिः सूर्यस्य राक्षसकृतम् उदयप्रतिबन्धं तत्परि-
 हारं च दर्शयति । “तस्माद् उत्तिष्ठन्तं हवा तानि रक्षां-
 स्यादित्यं योधयन्ति यावद् अस्तम् अन्वगात् । तानि हवा
 एतानि रक्षांसि गायत्रियाभिमन्त्रितेनाम्भसा शाम्यन्ति । तदु हवा
 एते ब्रह्मवादिनः पूर्वाभिमुखाः संध्यायां गायत्र्याभिमन्त्रिता अप
 ऊर्ध्वं विक्षिपन्ति । ता एता आपो वज्रीभूत्वा तानि रक्षांसि मन्दे-
 हारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति” इति [तै० आ० २. २. १] । उदिह्येव
 तव राक्षसकृत उदयप्रतिबन्धो मा भूद् इत्यभिप्रायः । उदयं विशि-
 नष्टि । वर्चसा सर्वस्य आवर्जकेन तेजसा सह मा मां प्रति अभ्यु-
 दिहि । अनेन नीहारादितिरोधानाभावः प्रार्थितः । अथ वा वर्चसा
 हेतुना मम वर्चोलाभाय अभ्युदिहि । सूर्ये उदिते सर्वस्यापि पदार्थ-
 स्य वर्चःप्राप्तिः सुप्रसिद्धैव । यद्यपि सर्वं भूतजातं प्रति उदेति
 तथापि उपासकस्य स्वस्य अभिमतप्राप्तिलक्षणप्रयोजनसद्भावात्
 माभ्युदिहि इति प्रार्थयते । श्रुतिश्च भवति । “तस्मात् सर्व एव मन्यते
 मां प्रत्युदगाद् इति” इति [तै० सं० ६. ५. ४. २] । उदय-
 प्रार्थनायाः प्रयोजनम् आह द्विषंश्चेत्यादिना । हे सूर्य अप्रतिबन्धेन
 उदितस्य तव अनुग्रहात् द्विषन् मयि द्वेषं कुर्वन् शत्रुः । ॐ “द्विषोऽ-
 मित्रे” इति शत्रुप्रत्ययः ॐ । मह्यं रभ्यतु मम वशं प्राप्नोतु । मम
 पादाक्रान्तो भवतु । ॐ रथ हिंसासंराद्धयोः । दिवादित्वात्
 शयन् ॐ । यथा मद्द्वेषी स्वाधीनो भविष्यति एवं स्वयमपि तदा-
 धीनः कदाचिदपि स्याम् इत्याशङ्क्य व्यतिरेकाभावम् आशास्ते
 मा चाहं द्विषते रथम् । अहं त्वदुपासकस्त्वत्पसादाद् द्विषते मयि

द्वेषं कुर्वते शत्रवे रधम् वशो मा भूवम् । अयम् अर्थो मन्त्रान्तरेपि स्पष्टम् उक्तः ।

उदगाद् अयम् आदित्यो विश्वेन सहसा सह ।

द्विषन्तं मम रन्धयन् मो अहं द्विषतो रधम् । [तै० ब्रा० ३. ७. ६. २३] इति । द्विषंश्च मा चाहम् इति चकारौ परस्परसमुच्चयार्थौ । सत्यपि भोग्ये शत्रुसद्भावे भोगासंभवात् तत्स्वाधीनीकरणलक्षणं फलम् आशास्य इदानीम् ऐहिकामुष्मिकलोकसाधनलक्षणं फलम् आशास्ते तवेद् द्विषणो बहुधेत्यादिना । आदौ भोगदानसामर्थ्यसद्भावं दर्शयति तवेद् इति । हे विष्णो व्याप्नोति स्वरश्मिभिः सर्वं ब्रह्माण्डान्तरालम् इति विष्णुरादित्यः । अथ वा द्वादशादित्यमध्ये “दिवाकरो मित्रो विष्णुश्च” इति श्रुतौ स्मृतौ च विष्णोरपि परिगणनाद् विष्णुरादित्यः । तादृशविष्णुशब्दाभिधेयादित्य तवेत् तत्रैव वीर्याणि बहुधा बहुप्रकाराणि नान्यस्य देवतान्तरस्य । यतस्त्वं विष्णुः अतस्तव वीर्याणि अनन्तानीत्यभिप्रायः । विष्णुत्वोपाधौ तु

विष्णोर्जुं कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ॥

यो अस्कभायद् उत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ।

[ऋ० १. १५४. १] इत्यादिमन्त्रश्रुतिषु पुराणेतिहासागमादिषु च प्रसिद्धानि । साक्षात् सूर्यस्य भगवतो वीर्याण्यपि जगदन्धकारनिर्हरणसकलपदार्थप्रकाशननिखिललौकिकवैदिककर्मनिर्वर्तनसमय-वृष्टिप्रदानारोग्यकरणमोक्षप्रदानादीनि लोकप्रसिद्धान्येव । यतस्तव सर्वप्राण्युपकारकाणि बहुविधानि वीर्याणि सन्ति अतस्त्वं नः अस्मान् विश्वरूपैः गोमहिष्यजाविकुस्त्रुरगोष्ठादिलक्षणैः पशुभिः पृणीहि पूरय । ❀ क्रयादित्वात् आ । “ष्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वत्वम् ❀ । तथा मा माम् एतद्देहाव-

साने परमे निरतिशये व्योमन् व्योमनि विशेषेण अवतीति व्योम
तस्मिन् ब्रध्नस्य विष्टपे स्थाने ।

यत्र ज्योतिरजसं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम् ।

तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोक अक्षिते ।

इति [ऋ० ६. ११३. ७] मन्त्रोक्तलक्षण इत्यर्थः । तथा-
विधे लोके स्वधायाम् । अन्ननामैतत् । यत्सेवया जुत्तृष्णाशोक-
मोहजरामरणादयो न भवन्ति तथाविधे अन्ने अमृते मा मां धेहि
स्थापय । तद्भोगार्हं कुर्वित्यर्थः । उक्तलक्षणे स्थाने स्वधासद्भावो
मन्त्रान्तरे । “स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माम् अमृतं कृधि” इति
[ऋ० ६. ११३. १०] । ❀ धेहीति । दधातेर्लोटि “ध्वसो-
रेद्धावभ्यासलोपश्च” इति एत्वाभ्यासलोपौ ❀ ।

निरन्तर सरण (गमन) करने वाले वा अपने उदयसे सब
प्राणियोंको अपने २ कर्ममें प्रवृत्त करने वाले सूर्यदेव ! आप उदय
हूजिये उदय हूजिये [बारम्बार] कहनेसे उदयविषयक त्वरा प्रकट
की है, सूर्यदेव स्वयं ही उदय हो रहे थे फिर भी सूर्यके उदयकी
प्रार्थना मन्देह आदि असुरोंके किये हुए उदयविघ्नके विना ही
उदय होनेके लिये है । तैत्तिरीयश्रुतिने सूर्यके राक्षस कृत
उदयप्रतिबन्ध और उसके परिहारको दिखाया है, कि—“तस्माद्
उत्तिष्ठन्तं ह वा तानि रक्षांसि आदित्यं योधयन्ति यावद् अस्तं
अन्वगात् । तानि ह वा एतानि रक्षांसि गायत्रियाभिमन्त्रिते-
नाम्भसा शाम्यन्ति । तदु ह वा एते ब्रह्मवादिनः पूर्वाभिमुखाः
सन्ध्यायां गायत्र्याभिमन्त्रिता अप ऊर्ध्वं विक्षिपन्ति । ता एता
आपो वज्रीभूत्वा तानि रक्षांसि मन्देहारुणे द्वीपे प्रक्षिपन्ति—अर्थात्
तैत्तिरीय-आरण्यक २ । २ । १ में कहा है, कि—उठते हुए सूर्य-
देवसे राक्षस उनके अस्त होने तक लड़ते रहते हैं । ये राक्षस
गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलसे शान्त हो जाते हैं । ये जो ब्रह्मवादी

पूर्वाभिमुख होकर संध्यामें गायत्रीसे अभिमन्त्रित जलको ऊपर को फेंकते हैं तो यह जल वज्ररूप होकर उन राक्षसोंको मन्देहारुणद्वीपमें फेंक देता है ।” तात्पर्य यह है, कि—आप उदय हूजिये, राक्षसोंका किया हुआ प्रतिबंध काम न कर सके । अब उदय की विशिष्टता दिखाते हैं, कि—] सबको दबाने वाले अपने तेज के साथ आप मेरे सामने उदय हूजिये (इससे नीहार आदिसे तिरोधनाके अभावकी प्रार्थनाकी है) अथवा मुझको वर्च प्राप्त करानेके लिये उदित हूजिये [सूर्यके उदित होने पर सकल पदार्थों की वर्चःप्राप्ति सुप्रसिद्ध ही है, यद्यपि सूर्यदेव सब प्राणियोंके प्रति उदित होते हैं तथापि उपासकको अपने अभिमतका प्राप्ति का प्रयोजन होनेसे मेरी ओर उदय हूजिये, यह प्रार्थनाकी है । इस विषय में श्रुतिका प्रमाण भी है, कि—“तस्मात् सर्व एव मन्यते मां प्रत्युदगात् ।—इस कारण सब यही मानते हैं, कि—यह मेरी ओर उदय होवें” (तैत्तिरीयसंहिता ६ । ५ । ४ । २) अब उदय होने की प्रार्थना करनेके प्रयोजनको कहते हैं, कि—] हे सूर्य ! अप्रतिबंधभावसे उदय हुए आपके अनुग्रहके कारण मुझसे द्वेष रखने वाला शत्रु मेरे वशमें होजाय, [जैसे मेरा द्वेषी मेरे आधीन हो जावेगा इसी प्रकार मैं भी कभी उसके आधीन न होजाऊँ इस लिये प्रार्थना करता है, कि—मैं आपका उपासक आपके प्रसादसे अपने शत्रुके आधीन कभी न होऊँ [यही बात दूसरे मन्त्रमें भी स्पष्टरूपसे कही है, कि—“उदगात् अयं आदित्यो विश्वेन सहसा सह । द्विषन्तं मम रन्धयन् मो अहं द्विषतो रधम् ।—यह सूर्यदेव अपने पूर्णधर्षक बलके साथ मेरे शत्रुको मेरे वशमें करते हुए उदय हो रहे हैं, मैं शत्रुके वशमें कभी न पड़ूँ” (तैत्तिरीयब्राह्मण ३ । ७ । ६ । २३) । भोग्यके होने पर भी शत्रुके होनेसे भोग असंभव होजाता है अत एव उसको वशमें करनेके फलकी प्रार्थना

करके अब इस लोक और परलोकके साधनरूप फलकी प्रार्थना करते हैं, और उसमें पहिले भोगप्रदान करनेकी शक्तिको दिखाते हैं, कि—] हे अपनी किरणोंसे सब ब्रह्माण्डको व्याप्त करने वाले विष्णो आदित्य ! [वा बारह आदित्योंमें, “दिवाकरो मित्रो वरुणश्च ।-दिवाकर मित्र और वरुण” इस प्रकार विष्णुकी भी गिनती है अत एव हे ऐसे विष्णोः ।] आपके ही अनेक प्रकारके पराक्रम हैं दूसरे देवतामें ऐसे प्रभाव नहीं होसकते । तात्पर्य यह है, कि—आप विष्णु हैं अत एव आपके वीर्य अनन्त हैं [विष्णु-त्वोपाधिके लिये “विष्णोर्नुकम् वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि वि ममे रजांसि । यो अस्कभायद् उत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधो-रुगायः ।” (ऋग्वेदसंहिता १ । १५४ । १) इत्यादि मन्त्रश्रुतियों और पुराण इतिहास शास्त्र आदिमें भी विष्णुके अनन्त पराक्रम प्रसिद्ध हैं । साक्षात् सूर्य भगवान्के भी, जगत्के अन्धकार को दूर करना, सब पदार्थोंको प्रकाशित करना सम्पूर्ण लोकों के वैदिककर्मको पूर्ण करना, सामयिक वृष्टि प्रदान करना, आरोग्य देना और मोक्ष देना, आदि कर्म लोकमें प्रसिद्ध ही हैं] जब आपके सब प्राणियोंका उपकार करने वाले अनेक प्रकारके पराक्रम हैं अतः आप हमको सब प्रकारके रूप वाले गौ भैंस भेड़ बकरी घोड़े और ऊँट आदि पशुओंसे पूरित करिये तथा मुझको इह देहके अन्तमें विशेषरूपसे रक्षा करने वाले [“यत्र ज्योतिरजसं यस्मिन्लोके स्वरहितम् । तस्मिन् मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षिते ॥—जहाँ ज्योति निरन्तर रहती है और जिसमें स्वर्ग स्थित है, उस पवमान अमृत अक्षुण्ण लोकमें मुझको स्थापित करिये” ऋग्वेदसंहिता ६ । ११३ । ७ इत्यादि मन्त्रोंमें प्रसिद्ध] लोकमें और जिसका सेवन करनेसे क्षुधा तृष्णा शोक मोह जरा मरण आदि नहीं होते हैं ऐसे स्वधारूप अन्नमें हमको स्थापित

करिये अर्थात् हमको उसका उपभोग करने योग्य करिये ।
 ऋग्वेदसंहिता ६ । ११३ । १० में भी कहा है, कि—“स्वधा च
 यत्र तृप्तिश्च तत्र मां अमृतं कृधि ।—जहाँ स्वधा और तृप्ति है तहाँ
 मुझको अमृत करिये] ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

उदिह्युदिहि सूर्यं वर्चसा माभ्युदिहि ।

यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद्
 विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
 परमे व्योमन् ॥ ७ ॥

उत् । इहि । उत् । इहि । सूर्यं । वर्चसा । मा । अभिऽउदिहि ।

यान् । च । पश्यामि । यान् । च । न । तेषु । मा । सुऽमतिम् ।

कृधि । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा । वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वरूपैः । सुऽधायाम् ।

मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ ७ ॥

उदिह्युदिहीति मन्त्रभागः पूर्ववद् व्याख्येयः । यान् प्राणिनः
 पश्यामि चक्षुषा विषयीकरोमि देशादिभिरव्यवहितान् यांश्च प्राणिनः
 देशादिव्यवधानवतो न पश्यामि तेषु द्विविधेषु प्राणिषु विषयभूतेषु
 मा मां सुमतिम् शोभनबुद्धियुक्तं कृधि कुरु । तेषु द्रोहरहितचित्तं
 कुर्वित्यर्थः । ❀ “बहुलं छन्दसि” इति विकरणस्य लुक् ।
 “श्रुशृणुपृकृष्टभ्यश्छन्दसि” इति हेर्धिरादेशः ❀ । तादृशी बुद्धिः

४०६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

स्वात्मशत्रुमित्रेषु समदर्शिन एव जायते । तथाविधा दृष्टिः परमेश्वरप्रीतये भवति ।

समत्वम् आराधनम् अच्युतस्य ॥

सममतिरात्मसुहृद्विपक्षे ।

न हरति न च हन्ति किञ्चिद् उच्चैः ।

[त्रि० ३. ७. २०] ॥

इति स्मरणात् । किं च अद्रोह एव पुरुषार्थसाधनेषु प्रथमतो निर्दिष्टः “अहिंसा सत्यम् अस्तेयम्” [भा० ११. १७. २०] इति । ईदृशीं बुद्धिं मन्त्रान्तरे महर्षिर्विष्णुं प्रार्थयामास । “त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्याम् अप्रयुताम् एवयात्रो मतिं दाः” इति [ऋ० ७. १००. २] । हे विष्णो तवेह इत्यादि गतम् । यतस्तव वीर्याणि बहुधा अतो मां सुमतिं कुरु ॥

हे सूर्यदेव ! आप उदय हूजिये उदय हूजिये, मुझको सब दबाने वाले तेजसे सम्पन्न करते हुए उदय हूजिये, मैं जिन प्राणियों को देश आदि रुकावटसे रहित होनेके कारण चक्षुसे देखता हूँ और देश आदिके व्यवधान (रुकावट) के कारण जिनको नहीं देखता हूँ उन दोनों प्रकारके प्राणियोंमें आप मुझको शोभन बुद्धि वाला करिये अर्थात् उनमें द्रोहरहित चित्त वाला करिये [ऐसी बुद्धि, अपनी आत्मा शत्रु और मित्रोंमें समान दृष्टि रखने वाले समदर्शीकी ही होती है, और वह परमेश्वरको प्रसन्न करने वाली होती है । विष्णुपुराण ३ । ७ । २० में कहा है, कि— “समत्व ही विष्णुका आराधन है एकसी बुद्धि रखने वाला पुरुष अपने लिये मित्रोंके लिये और शत्रुके लिये न किसी वस्तुका हरण करता है और न किसीको मारता है” और भागवत एकादशस्कंध ११ । १७ । २० में अद्रोह ही पुरुषार्थसाधनोंमें पहिले निर्दिष्ट किया गया है, कि— “अहिंसा सत्यम् अस्तेयम्—अहिंसा

सत्य और अस्तेय” ऐसी बुद्धिकी ही महर्षिने दूसरे मन्त्रमें विष्णुसे प्रार्थना की है, कि—“त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्याम् अप्रयुतां एवयावो मतिं दाः” (ऋग्वेदसंहिता ७ । १००।२) हे विष्णो ! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं दूसरे देवताओंमें ऐसे प्रभाव नहीं हैं, आप मुझको अनेक रूपों वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मुझको परम व्योममें स्वधामें स्थापित करिये ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

मा त्वां दभन्तसलिले अप्स्व॑न्तर्ये पाशिन॑ उपतिष्ठ॑-
न्त्यत्र॑ ।

हित्वाश॑स्ति दिव॑मारु॒क्ष ए॒तां स नो॑ मृ॒ड सु॒मतौ ते॑
स्याम॑ तवेद् वि॒ष्णो बहु॑धा वी॒र्याणि॑ ।

त्वं नः॑ पृणीहि प॒शुभिर्वि॒श्वरूपैः सु॒धायाम्॑ मा धेहि
पर॑मे व्यो॒मन् ॥ ८ ॥

मा । त्वा । द॒भन् । स॒लिले । अप्सु॑ । अन्तः । ये । पा॒शिनः ।
उप॑तिष्ठन्ति । अत्र॑ ।

हित्वा । अश॑स्तिम् । दिव॑म् । आ । अ॒रुक्षः । ए॒ताम् । सः ।
नः । मृ॒ड । सु॒मतौ । ते । स्या॑म । तव॑ । इत् । वि॒ष्णो इति॑ ।
बहु॑धा । वी॒र्याणि॑ ।

त्वम् । नः । पृणी॑हि । प॒शुभिः । वि॒श्वरूपैः । सु॒धायाम् ।
मा । धेहि॑ । पर॑मे । वि॒ओमन् ॥ ८ ॥

४०८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सलिले सलिलम् अन्तरिक्षम् तस्मिन् अप्सवन्तः अन्तरिक्ष-
स्थानाम् अपां मध्ये हे सूर्य त्वा त्वां मा दधन् दध्मन् हिंसां मा
कार्षुः प्रच्छन्नचारिणो राक्षसाः । ❀ दन्धु दम्भे । गाडि लुडि
“दम्भेश्चेति वक्तव्यम्” इति च्लेः अङ् ❀ । अप्सु सूर्यस्य हिंस-
कानां कः प्रसङ्ग इति तत्राह ये पाशिन इति । अत्र अप्सु ये पा-
शिनः पाशहस्ता गतिनिरोधसाधनवन्त उपतिष्ठन्ति मायाविनो
राक्षसाः । “उत्तिष्ठन्तं ह वा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति यावद्
अस्तम् अन्वगात्” [तै० आ० २. २. १] इत्यादिना गतिप्रति-
बन्धकसद्भावः प्रदर्शितः प्राक् ॥ इत्थं गतिप्रत्यूहाभावम् आशास्य
सुखेन ग्राम् आरूढं दृष्ट्वा आह हित्वेति । हे सूर्य एताम् अश-
स्तिम् । अशस्तिर्निन्दा । पराख्यब्रह्मणः सगुणमूर्तिभूतस्य भग-
वतः सूर्यस्य राक्षसा गतिं प्रत्यबध्नन् किल इत्येवंरूपा निन्दां
हित्वा तैरप्रतिबद्धो भूत्वा दिवम् ग्राम् अन्तरिक्षम् आरूढः आरू-
ढवान् असि । ❀ “शल इगुपधाद् अनिटः कसः” इति कस-
प्रत्ययः ❀ । स तादृशस्त्यक्ताशस्तिस्त्वं नः अस्मान् मृड सुखय ।
ते सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहबुद्धौ स्याम भवेम । देवताया अनु-
ग्रहबुद्धौ सत्यां यद् अभीष्टं प्रार्थयते तत् सु तर्भं भवतीत्यभिप्रायेण
आदौ सैव प्रार्थयते ॥ तत्रेह इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे सूर्यदेव ! जलोंके भीतर पाशको धारण करके आपकी गति
को रोकने वाले ‡ प्रच्छन्नचारी राक्षस आपको अन्तरिक्षके जलों
में हिंसित न कर सकें । [इस प्रकार गतिविघ्नके अभावकी
प्रार्थना करके सूर्यदेवको सुखपूर्वक ब्रलोकमें चढ़ा हुआ देखकर

‡ “उत्तिष्ठन्तं ह वा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति यावद् अस्तं
अन्वगात् ।—उठते हुए सूर्यदेवसे अस्त होने तक राक्षस लड़ते
रहते हैं” (तैत्तिरीय आरण्यक २ । २ । १) इत्यादिसे सूर्य
की गतिको रोकनेका वर्णन पहिले दिखाया जा चुका है ।

कहता है, कि—] हे सूर्य! आप अपनी निन्दाको त्याग कर अन्तरिक्षमें आरूढ़ हुए हैं अर्थात् परब्रह्म जब सगुणमूर्तिमें सूर्यके रूप में आये तब उनकी गतिको राक्षसोंने रोक लिया उस निन्दाको त्याग कर अर्थात् उनसे प्रतिबद्ध न होकर अन्तरिक्षमें चढ़ गए हैं, हे ऐसे त्यक्तनिन्द सूर्यदेव ! आप हमको सुख दीजिये हम आपकी अनुग्रहात्मिका शोभना बुद्धिमें रहें [देवताकी अनुग्रह बुद्धि होने पर जो अभीष्टकी प्रार्थना की जाती है वह सुलभ होती है, इस अभिप्रायसे आदिमें उसकी ही प्रार्थनाकी है] हे सूर्य ! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं आप हमको अनेक रूपों वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मरणके अनन्तर परमव्योममें और स्वधामें हमको स्थापित करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तु-
भिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमिन् ॥ ९ ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । महते । सौभगाय । अदब्धेभिः । परि । पाहि ।
अक्तुऽभिः । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।
त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वरूपैः । सुधायाम् । मा ।
धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ ९ ॥

हे इन्द्र परमेश्वर सूर्य त्वं नः अस्माकं महते निरतिशयाय

४१० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सौभगाय शोभनो भगो यस्य स सुभगः सुभगस्य भावः सौभगं
सौभगाय सौभाग्याय ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।

ज्ञानवैराग्ययोश्चैव पण्णां भग इतीरणा ।

[वि० ६. ५. ७०] ॥

इत्युक्तलक्षणारूपप्रभूतस्य ऐश्वर्यादेः सिद्धयर्थम् इत्यर्थः । तद-
र्थम् । अदब्धेभिः अदब्धैः अहिंस्यैर्व्याधिसर्पाग्नि तस्करादिजनित-
हिंसारहितैः अक्तभिः । रात्रिनामैतत् । रात्र्युपलक्षितैर्बहुभिर्दिव-
सैर्निमित्तभूतैः परि पाहि सर्वतो रक्ष । अथ वा प्रायेण रात्रावेव
व्याधितस्करभूतरक्षः पिशाचादिपीडासंभवाद् विशेषेण रात्रिषु
रक्षा प्राथ्यते ॥ तवेद् इत्यादि गतम् ॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्यदेव ! विष्णुपुराण ६ । ५ । ७०
में कहे हुए “ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञान-
वैराग्ययोश्चैव पण्णां भग इतीरणा ॥—पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश,
लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य इन छः का नाम भग है” परम शोभन
भग-सौभाग्य-ऐश्वर्यकी सिद्धिके लिये आप व्याधि सर्प अग्नि
तस्कर आदिकी हिंसासे शून्य रात्रि और दिनोंके द्वारा हमारी
रक्षा करिये, हे सूर्य ! आपके ही अनन्त प्रकारके प्रभाव हैं, आप
हमको सब आकृतियों वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मुझको
रक्षाके परमस्थान परमव्योम स्वर्गमें लुधातृषा आदिको दूर करने
वाले अन्न स्वधामें स्थापित करिये ॥ ६ ॥

दशमी ॥

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव ।

आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा

स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ १० ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । ऊ॒तिऽभिः । शि॒वाभिः । शम्॑ऽतमः । भ॒व ।
आ॒रोह॑न् । त्रि॒दि॒वम् । दि॒वः । गृ॒णानः । सोम॑ऽपीतये । प्रियऽ-
धामा । स्व॒स्तये । तव । इत् । वि॒ष्णो इति । बहु॑ऽधा । वी॒र्या॑णि ।
त्वम् । नः । पृ॒णीहि । प॒शुभिः । वि॒श्वरूपैः । सु॒धायाम् ।
मा । धे॒हि । प॒रमे । वि॒ओमन् ॥ १० ॥

हे इन्द्र त्वं नः अस्माकं शंतमो भव । शम् इति सुखनाम ।
सुखतमो भव । सुखयितृ तमो भवेत्यर्थः । न हि असुखस्य सुख-
यितृत्वम् अस्ति । कैः साधनैरित्युच्यते । शिवाभिः मङ्गलाभिः
ऊ॒तिभी रक्षाभिः । याभी रक्षाभी रक्षितः पुनः पुनर्जननमरणादि-
क्लेशभाङ् न भवति तादृश्यो रक्षाः शिवा इत्युच्यन्ते । किं कुर्वन् ।
दिवः अन्तरिक्षस्य संबन्धिनं त्रिदिवम् । तिसृणां द्यावां समाहार-
स्त्रिदिवः । “तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्” [ऋ० ७. ८७.
५] “तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून्” [ऋ० २. २७. ८]
“त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः” [ऐ० ब्रा० २. १७] इत्यादिश्रुतिभ्यो
द्युलोकस्य त्रैविध्यम् । अथ वा भूलोकापेक्षया तृतीया द्यौर्द्युलोक-
स्त्रिदिवः । तम् आरोहन् । तथा सोमपीतये सोमपानाय । सोम-
पानं तु सोमयागम् अन्तरेण न संभवति तं देवेभ्यो हुत्वा शेष-
भक्षणविधानात् अग्नौ हुतस्य सोमस्य पानाय वा अतो यागादि-
कर्मसिद्धये गृणानः अस्त्राभिः स्तूयमानः । ❀ कर्मणि कर्तृ-
प्रत्ययः ❀ । आरोहणं किमर्थम् इति उच्यते । स्वस्तये जगतः
क्षेमाय । उदयति सवितरि अन्धकारापगमेन सकलव्यवहारसिद्धेः

४१२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सर्वप्राणिनां क्षेमं भवतीति सुप्रसिद्धम् । कीदृशस्त्वम् । प्रियधामा प्रियस्थानः । द्युस्थाने प्रीतिमान् इत्यर्थः । न हि सूर्यस्य इतरदेव-
वद् यदृच्छया स्थानान्तरसंक्रमणम् अस्ति । अथ वा धाम तेजः ।
प्रियतेजा इत्यर्थः । न हि स्वतेजः स्वस्याप्रियम् अतः सत्यमेव ।
अथ वा यस्य धाम लोकस्य प्रियं स प्रियधामा । एवं कुर्वन् स्वस्तये
भवेति शेषम् अध्याहृत्य वा योज्यम् । तवेत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

इति प्रथमं सूक्तम् ।

हे परमेश्वर्यसम्पन्न सूर्य ! आप हमको बड़ा भारी सुख देने
वाले बनिये [जिसके पास सुख नहीं है वह दूसरों को किस प्रकार
सुख देसकता है अतः सुखके साधनों का वर्णन करते हैं, कि-]
आप अपनी मङ्गलकारिणी रक्षाओंसे हमको सुख दीजिये, आप
की उन रक्षाओंसे रक्षित पुरुष बारम्बार जन्म मरणके क्लेशको
नहीं भोगता है अत एव वे रक्षायें शिवा—मङ्गलकारिणी—कह-
लाती हैं । आप पृथ्वी की अपेक्षा तीसरे अलोकमें आरोहण करते
हुए अग्निमें हुन सोमका पान करते हुए और हमसे याग आदि
कर्मकी सिद्धिके लिये स्तुति पाते हुए जगत्का कल्याण करते
हुए अपनी कल्याणकारिणी रक्षाओंसे हमारी रक्षा करिये ।
आपको आना स्थान द्यस्थान प्रिय है अर्थात् और देवताओंकी
समान सूर्यदेव अन्य स्थानों पर संक्रमण नहीं करते हैं अथवा
आपको अपना तेज प्रिय है, क्योंकि—किसीको भी अपना तेज
अप्रिय नहीं होता है । हे सूर्यदेव ! आपके ही प्रभाव अपरिमित
हैं, आप हमको अनेक आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और
मुझको इस देहके अन्तमें परमव्योममें स्थापित करिये और जिस
का सेवन करनेसे लुब्धा तृष्णा शोक मोह जरा मरण आदि नहीं
होते हैं उस स्वधान्नके भक्षण करनेका पात्र बनाइये १० (१)

प्रथम सूक्त समाप्त

द्वितीये सूक्ते प्रथमा ॥

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र ।
 त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते
 स्याम तवद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।
 त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
 व्योमन् ॥ ११ ॥

त्वम् । इन्द्र । असि । विश्वजित् । सर्ववित् । पुरुहूतः । त्वम् । इन्द्र ।
 त्वम् । इन्द्र । इमम् । सुहवम् । स्तोमम् । आ । ईरयस्व । सः ।
 नः । मृड । सुमतौ । ते । स्याम । तव । इत् । विष्णो इति ।
 बहुधा । वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुभिः । विश्वरूपैः सुधायाम् । मा ।
 धेहि । परमे । विओमन् ॥ ११ ॥

हे इन्द्र परमेश्वर्य विशिष्ट सूर्य । इन्द्र एव वा संबोध्यते सूर्य-
 मूर्त्यन्तरभूतः । पुरुहूत इत्यसाधारणविशेषणात् । त्वं विश्वजित्
 विश्वस्य जेता वशीकर्ता अधिपतिरसीत्यर्थः । तथा सर्ववित् सर्व-
 प्रेरकत्वात् सर्वात्मकत्वाच्च । तथा त्वं च “असावादित्यो ब्रह्म”
 [तै० आ० २. २, २] “स त्रेधात्मानं व्यकुरुत । अग्निं तृतीयं
 वायुं तृतीयम् आदित्यं तृतीयम्” [बृ० आ० १. २. ३] इत्यादि-
 श्रुतेः परमेश्वराद् अभिन्नत्वात् सिद्धम् । तथा हे इन्द्र त्वं पुरु-
 हूतोऽसि पुरुभिर्दुभिर्जमानैः स्वस्वयागसिद्धये आहूतोसि । यत
 एवंप्रमहिमासि अतो हे इन्द्र त्वं इमम् इदानीं क्रियमाणप्रकारं

सुहवम् शोभनाह्वानसाधनं स्तोमम् स्तवम् आ सर्वतः ईरयस्व प्रेरय । स्तोमेन तुष्टः सन् एवमेव स्तुहीति प्रेरयेत्यर्थः । अथ वा ईरयतिरत्र प्रेरणापूर्वके स्वीकारे वर्तते प्रेर्य स्वीकुर्वित्यर्थः । स नो मृलेति पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्यदेव ! वा सूर्यकी ही दूसरी मूर्ति इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण विश्वको वशमें करने वाले विश्वजित् हैं, तथा सर्वप्रेरक सर्वात्मक होनेसे सर्ववित् हैं [और आपमें तथात्व भी है, क्योंकि-तैत्तिरीय आरण्यक २ । २ । २ में कहा है, कि-“असावादित्यो ब्रह्म-यह आदित्य ही ब्रह्म है” और बृहदारण्यक १ । २ । ३ में कहा है, कि-“स त्रेधात्मानं व्यकुरुत । अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयम् आदित्यम् तृतीयम् ।-उन्होंने अपनेको तीन भागों में विभक्त किया तृतीय भागसे अपनेको अग्नि बनाया तिहाईसे वायु और तिहाईसे सूर्य बनाया” इत्यादि श्रुतियोंसे सूर्यदेवका परमेश्वरसे अभिन्नत्व सिद्ध है] तथा हे इन्द्र ! आप पुरूहूत हैं अर्थात् बहुतसे यजमान अपने २ यागकी सिद्धिके लिये आपका आह्वान करते हैं, आप ऐसी महिमा वाले हैं अतः हे सूर्य ! आप इस समय किये जाते हुए शोभन आह्वानसे सम्पन्न स्तोत्रको प्रेरित करके स्वीकृत करिये, ऐसे आप हमको सुख दीजिये हम आपकी अनुग्रहात्मिका बुद्धिमें रहें, हे सूर्य ! आपके ही अपरिमित प्रभाव हैं आप हमको अनेक आकार वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और देहपात होने पर परमव्योममें स्वधाका पात्र बना कर स्थापित करिये ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

अद्व्यो दिवि पृथिव्यामुतासि न तं आपुर्महिमान-
मन्तरिक्षे ।

अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि पञ्चमं
यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ १२ ॥

अदब्धः । दिवि । पृथिव्याम् । उत । असि । न । ते । आपुः ।
महिमानम् । अन्तरिक्षे ।

अदब्धेन । ब्रह्मणा । वावृधानः । सः । त्वम् । नः । इन्द्र । दिवि ।
सन् । शर्म । यच्छ । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा । वीर्याणि ।
त्वम् । नः । पृणीहि । पशुभिः । विश्वरूपैः । सुधायाम् । मा ।
धेहि । परमे । विश्वोमन् ॥ १२ ॥

हे इन्द्र त्वं दिवि द्यलोके अदब्धः केनापि राक्षसादिना अहिं-
सितोसि । उत अपि च पृथिव्याम् भुवि भूचरैः कैश्चदपि अदब्धः
अहिंसितोसि । तथा अन्तरिक्षेऽपि ते तव महिमानं नापुः सोढुं शक्ता
नाभवन् । अतिकठोरतेजस्त्वात् लोकत्रयेऽपि तव संतापलक्षणं
महिमानम् आप्तुमपि अशक्ताः किल किमु वक्तव्यं तव हिंसां
कर्तुम् अशक्ता इति इत्यभिप्रायः । ईदृशो महिम्नः प्राप्तौ कार-
णम् आह अदब्धेनेति यतस्त्वम् अदब्धेन अहिंस्येन अकुण्ठित-
सामर्थ्येन ब्रह्मणा मन्त्रेण गायत्रीलक्षणेन वावृधानः भृशं वर्ध-
मानः । हिंसकानां रक्षां गायत्र्यभिमन्त्रितेनोदकेन निरस्तत्वेन
संकोचाभावाद् इति भावः । निरसनप्रकारः “तस्माद् उत्तिष्ठन्तं
इवा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति” [तै० आ० २. २. १]

इत्यादिना प्रदर्शितः । यद्वा ब्रह्मणा “विषासहिं सहमानम्” इत्यादिकेन कृत्स्नेनानुवाकेन स्तुतिरूपेणेत्यर्थः । “भुवस्त्वम् इन्द्र ब्रह्मणा महान्” [ऋ० १०. ५०. ४] “एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व” [ऋ० १. ३१. १८] इत्यादिश्रुतेर्देवताया ब्रह्मणा महत्त्वप्राप्तिरभिवृद्धिश्च प्रसिद्धे । अथवा ब्रह्मणा परिवृढेन कर्मणा उपस्थानादिरूपेण वावृधानः । यतस्त्वं ब्रह्मणा वर्धसे अतस्त्वं सर्वत्र अदब्धः अन्यैरप्राप्तमाहात्म्यश्च भवसीत्यर्थः । स तादृशस्त्वम् हे इन्द्र नः अस्माकं दिवि द्यलोके शर्म सुखं यच्छ देहि । स्वधायामा धेहि परमे व्योमन्निति ह्युक्तम् । तवेद् इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे सूर्य देव ! आप द्यलोकमें किसी राजस आदिसे हिंसित नहीं होते हैं और न पृथिवीमें किसी भूचरसे दबते हैं और अंतरिक्षमें भी कोई आपकी महिमाको प्राप्त नहीं होसकता, अर्थात् परम कठोर तेज वाले होनेसे तीन लोकोंमें भी आपकी सन्तापरूप महिमाको कोई नहीं छूसकता फिर आपकी हिंसा करना तो दूरकी बात है । [ऐसी महिमाका कारण बताते हैं, कि—] क्योंकि—आप अकुण्ठित शक्ति वाले गायत्रीरूप मन्त्रसे बहुत बढ़ते रहते हैं ऐसे हे सूर्य ! आप हमको द्यलोकमें कन्याण दीजिये, स्वधामें मुझको स्थापित करिये आपके ही अमित पराक्रम हैं, आप हमको अनेक आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि ।

ययेन्द्र तन्वा३न्तरि३क्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वा३शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ १३ ॥

या । ते । इन्द्र । तनूः । अप्सु । या । पृथिव्याम् । या । अन्तः ।

अग्नौ । या । ते । इन्द्र । पवमाने । स्वः । विदि ।

यथा । इन्द्र । तन्वा । अन्तरिक्षम् । विश्वः । अपिथ । तया । नः ।

इन्द्र । तन्वा । शर्म । यच्छ । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा ।

वीर्याणि ।

त्वं । नः । पृणीहि । पशुभिः । विश्वरूपैः । सुधायाम् ।

मा । धेहि । परमे । विश्वोमन् ॥ १३ ॥

इत्थं मण्डलाभिमानिनः सूर्यस्य माहात्म्यम् उपवर्ण्य बहु-
विधं स्वाभीष्टमपि अर्थयित्वा इदानीं पञ्चसु महाभूतेषु सूर्यस्य
या मूर्तयः सन्ति तन्मुखादपि स्वाभीष्टम् अर्थयते । हे इन्द्र पर-
मैश्वर्ययुक्त सूर्य प्रसिद्धेन्द्र वा या ते तव तनूः मूर्तिः अप्सु
उदकेषु अस्ति तया तन्वा मूर्त्या अवधिष्ठितदेवतोपाधिनापि शर्म
सुखम् अप्सु विद्यमानं तत्सारभूतामृतभैषज्यादिजन्यं सुखं यच्छ
देहि । अप्सु अमृतभैषज्यादिसद्भावो मन्त्रान्तरेषु श्रयते । “अप्स्व-
न्तरमृतम् अप्सु भेषजम्” [ऋ० १. २३. १६] “यो वः शिव-
तमो रसः” [ऋ० १०. ६. २] “अप्सु मे सोमो अब्रवीद् अन्त-
र्विश्वानि भेषजा” [ऋ० १०. ६. ६] इत्यादिना । तथा पृथि-
व्याम् हे इन्द्र या तव तनूरस्ति पृथिव्यभिमानिदेवतामूर्तिर्विद्यते
तयापि तन्वा नः अस्माकं शर्म सुखं पृथिवीविकारभूतान्नादिसंभवं
यच्छ । एवम् अन्तरङ्गनौ तेजसि या तव तनूः । “चत्वारि शृङ्गा

त्रयो अस्य पादाः” [ऋ० ४. ५८, ३] इत्याद्युक्तलक्षणा तथा तन्वा मूर्त्यापि नः शर्म यच्छ । दाहपाकप्रकाशादिजन्यं सुखं प्रयच्छेत्यर्थः । तथा स्वर्विदि स्वर्गस्य सुखस्य वा लम्भके ज्ञातरि वा पवमाने । ❀ पञ्चतिर्गतिकर्मा ❀ । सर्वदा अनुपरतगते वायौ हे इन्द्र या [ते] तव तनूः मूर्तिरस्ति तथापि नः शर्म यच्छ । बहिरनुकूलस्पर्शजन्यम् अन्तःप्राणादिवायूनां चिरकालसंचारजन्यं च सुखं प्रयच्छेत्यर्थः । किं च हे इन्द्र यथा तन्वा मूर्त्या अन्तरिक्षं व्यापिथ व्याप्तवान् असि तथा अन्तरिक्षव्यापिन्या मूर्त्या शर्म सुखम् अन्तरिक्षजन्यं वृष्ट्यादिसाध्यं यच्छ । अनेन पञ्चभूतव्यतिरेकेण सुखसाधनवस्त्वन्तराभावात् सर्वविषयं सुखं प्रार्थितं भवति । तथा पञ्चमहाभूतव्यतिरेकेण अन्यस्य कस्यचिदपि पदार्थान्तरस्याभावात् तेषु व्याप्त्यभिधानेन इन्द्रशब्दाभिधेयस्य सूर्यस्य भगवतः सर्वात्मकत्वम् उक्तं भवति । अनेनैवाभिप्रायेण “सूर्य आत्मा जगत्तस्तथुषश्च” [ऋ० १. ११५. १] इत्यादिका श्रुतिः सूर्यस्य सर्वात्मकताम् आह ॥ तवेत् इत्यादि पूर्ववत् ।

[इस प्रकार मण्डलाभिमानि सूर्य के माहात्म्यका वर्णन कर के और अनेक प्रकारके अपने अभीष्टकी प्रार्थना करके अब जो पञ्चमहाभूतोंमें सूर्यदेवकी मूर्तिये हैं उनसे भी अपने अभीष्टकी सिद्धिकी प्रार्थना करते हैं, कि—] हे परमेश्वर्यसम्पन्न सूर्यदेव ! (वा इन्द्र !) जलोंमें जो आपकी मूर्ति (अंश) है उस अपनी मूर्तिसे अर्थात् जलाधिष्ठित देवतोपाधिसे भी आप हमको सुख दीजिये जलोंमें विद्यमान उनके साररूप अमृत भैषज्य आदि से होने वाले सुखको हमें दीजिये [जलमें अमृत भैषज्य आदि का होना दूसरे मन्त्रोंमें भी प्रसिद्ध है, यथा—“अप्स्वन्तरममृतं अप्सु भेषजम् ।—जलोंके भीतर अमृत है जलमें भेषज है” (ऋग्वेदसंहिता १ । २३ । १६) “यो वः शिवतमो रसः ।—जो आपका

परम कल्याणमय रस है” (ऋग्वेदसंहिता १०।६।२)
 और “अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।—सोमदेवताने
 मुझसे कहा है, कि—जलमें सब औषधियाँ हैं” (ऋग्वेदसंहिता
 १०।६।६)] तथा हे परमैश्वर्यविशिष्ट सूर्य ! पृथिवीमें भी जो
 आपकी पृथिव्यभिमानि देवतामूर्ति रहती है उस शरीरसे आप
 हमको पृथिवीके विकारसे होने वाले अन्नआदिका सुख दीजिये,
 और अग्निके भीतर भी आपका जो “चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य
 पादाः” ऋग्वेदसंहिता ४।५८।२ में प्रसिद्ध शरीर है उस
 शरीरसे भी आप हमको दाह पाक प्रकाश आदिसे होने वाला
 सुख दीजिये तथा सुखदायक सर्वदा अविश्रान्तभावसे चलने वाले
 वायुमें जो आपकी मूर्ति है उससे भी बाहरी स्पर्शसे मिलने वाले
 सुख, और भीतरी प्राण आदि वायुओंके चिरकाल तक संचा-
 लनसे होने वाले सुखको दीजिये ; और हे परमैश्वर्यविशिष्ट सूर्य !
 जिस मूर्तिसे आप अन्तरिक्षमें व्याप्त हो रहे हैं उस अन्तरिक्षव्या-
 पिनी मूर्तिसे अन्तरिक्षसे होने वाले दृष्टि आदिसुखको हमको
 दीजिये [इन पञ्चभूतोंके अतिरिक्त सुखकी साधन दूसरी वस्तु
 का होना असंभव है अतः इस प्रकार सब विषयोंके सुखकी प्रार्थना
 कर ली । तथा पञ्चमहाभूतके अतिरिक्त और किसी पदार्थके न
 होनेसे उनमें व्याप्ति होनेसे इन्द्रशब्दाभिधेय सूर्य भगवान्का सार्व-
 त्मकत्व कहकर दिखा दिया । इसी अभिप्रायसे “सूर्य आत्मा जगत्-
 स्तस्थुषश्च ।—सूर्यदेव स्थावर और जंगम जगत्की आत्मा है” इस
 ऋग्वेदसंहिता १।११५।१ में अतिने सूर्यकी सर्वात्मकताका
 वर्णन किया है । हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके अनेक प्रकारके
 प्रभाव हैं, इस लिये आप हमको सब आकारों वाले पशुओंसे
 पूर्ण करिये और देहपातके अनन्तर मुझको परमव्योममें स्थापित
 करिये और मुझको स्वधाका उपभोग करने योग्य बनाइये॥१३॥

चतुर्थी ॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्त्रं निषेदुऋषयो नाध-
मानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमिन् ॥ १४ ॥

त्वाम् । इन्द्र । ब्रह्मणा । वर्धयन्तः । सत्त्रम् । नि । सेदुः । ऋषयः ।

नाधमानाः । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा । वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुभिः । विश्वरूपैः । सुधायाम् ।

मा । धेहि । परमे । विओमिन् ॥ १४ ॥

हे इन्द्र सूर्य त्वाम् ऋषयः पूर्वे अङ्गिरःप्रभृतयो नाधमानाः अभि-
मतं फलं याचमानाः ब्रह्मणा मन्त्रेण स्तोत्रशस्त्रादिरूपेण अथ वा
परिवृढेन सोमपशवादिरूपेण हविषा वर्धयन्तः अभिवृद्धं कुर्वन्तः
सन्तः सत्त्रं गवामयनादिरूपं [निषेदुः] निषण्णा निष्पादयितुं
नियमैर्न अवस्थिता आसन् । अन्यतिष्ठन्नित्यर्थः ॥ तवेत् इत्यादि
पूर्ववत् ॥

हे परमैश्वर्यसम्पन्न सूर्यदेव ! अंगिरा आदि प्राचीन ऋषि
अभीष्ट फलकी याचना करते हुए स्तोत्र शस्त्र आदि-रूप मन्त्र
से आपको बढ़ाते हुए गवामयन आदि यज्ञको निष्पन्न करनेके
लिये नियमपूर्वक बैठे थे, हे व्यापक सूर्यदेव ! अनेक प्रकारके
प्रभाव हैं आप हमको नाना रूप वाले पशुओंसे पूर्ण रखिये और
देहपातके अनन्तर परमव्योममें स्वधाका पात्र बना कर स्थापित
करिये ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ १५ ॥

त्वम् । तृतम् । त्वम् । परि । एषि । उत्सम् । सहस्रधारम् ।
विदथम् । स्वःऽविदम् । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा ।
वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुभिः । विश्वरूपैः । सुधायाम् ।
मा । धेहि । परमे । विओमन् ॥ १५ ॥

हे इन्द्र त्वं तृतम् विस्तीर्णम् अन्तरिक्षं पर्येषि व्याप्नोषि । अथ
वा तृतम् आच्छन्नं मेघैरावृतम् उदकं पर्येषि । तत्रापि त्वम् उत्सम्
उत्स्यन्दतीति उत्सः उदकनिष्यन्दस्तं पर्येषि । उत्सो विशेष्यते ।
सहस्रधारम् अपरिमिताभिर्धाराभिरुपेतम् विदथम् । विदथो
यज्ञः । ओषधिवनस्पत्यभिवृद्धिद्वारा यज्ञसाधनत्वाद् उत्सो विदथ
इत्युच्यते । अथ वा विदथं ज्ञानम् “विदथानि प्रचोदयन्” इत्यादि-
दर्शनात् [ऋ० ३. २७. ७] । सर्वेषां प्रज्ञापयितारम् इत्यर्थः ।
सत्यां वृष्टौ सर्वेषां पदार्थानाम् अभिव्यक्तेः । तथा स्वर्विदम् स्व-
र्गस्य सुखस्य वा लम्भयितारम् ॥ तवेत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे परमेश्वर्यसम्पन्न सूर्यदेव ! आप विस्तीर्ण अन्तरिक्षमे व्याप्त
होजाते हैं, तहाँ पर भी आप मेघको प्राप्त होते हैं यह मेघ अपरि-
मित धाराओं वाला है और औषधि वनस्पति आदिकी वृद्धि करने

के कारण यज्ञका साधन होनेसे यज्ञ ही है और यह सुखका साधन है । और हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं आप हमको सब प्रकारकी आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मुझको परमव्योममें स्वधा भक्षणका पात्र बना कर स्थापित करिये ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

त्वं रक्षसे प्रदिशश्च तस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासी ।

त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि

विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे

व्योमन् ॥ १६ ॥

त्वम् । रक्षसे । प्रदिशः । चतस्रः । त्वम् । शोचिषा । नभसी इति ।

वि । भासि ।

त्वम् । इमा । विश्वा । भुवना । अनु । तिष्ठसे । ऋतस्य । पन्थाम् ।

अनु । एषि । विद्वान् । तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा ।

वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुभिः । विश्वरूपैः । सुधायाम् ।

मा । धेहि । परमे । विव्योमन् ॥ १६ ॥

हे सूर्य त्वं प्रदिशः प्रकृष्टा दिशः प्रागाद्याश्चतस्रः रक्षसे रक्षसि पालयसि । विभजस इत्यर्थः । यत्रोदेति सा प्राची इत्येवं दिग्विभागकल्पनाहेतुत्वात् । अथ वा दिक्षु अवस्थितानां प्राणिनां रक्षैव

दिशां रक्षेत्यभिप्रायेण एवम् उक्तम् । तथा त्वं शोचिषा रोचिषा प्रकाशेन नभसी अन्तरिक्षं दिवं च अथ वा द्यावापृथिव्यौ विभासि प्रकाशयसि । अल्पं इदम् उच्यते । त्वम् इमा इमानि विश्वा विश्वानि भुवना भुवनानि अनुलक्ष्य तिष्ठसे प्रकाशसे । समस्तानां लोकानां भूतानां वा एकाएव प्रकाशसे । एवम् ऋतस्य यज्ञस्य उदकस्य वा पन्थाम् पन्थानं मार्गम् अन्वेषि अनुक्रमेण व्याप्नोषि । कीदृशः सन् । विद्वान् ऋतस्य अवस्थितिं जानन् । न हि कश्चित् कंचित् पदार्थम् अजानन् अजानन् तम् अन्वेतुम् अर्हति ॥ तथेत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे सूर्यदेव ! आप पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण इन चारों श्रेष्ठ दिशाओंकी रक्षा करते हैं [अर्थात् उनका विभाग करते हैं, क्योंकि—जहाँ सूर्य उदित होते हैं वह पूर्व दिशा होती है इत्यादि—अथवा—दिशाओंमें स्थित प्राणियोंकी रक्षा करना ही दिशाओंकी रक्षा करना है] तथा आप अपने प्रकाशसे द्युलोक और पृथिवी लोकको प्रकाशित किया करते हैं अधिक क्या ? इन सकल भुवनोंको ही प्रकाशित करते हैं, इस प्रकार आप यज्ञ वा जलको जानते हुए जल वा यज्ञके मार्गमें अनुक्रमसे व्याप्त होजाते हैं । हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं अतः आप हमको सब प्रकारकी आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मुझको परमव्योममें स्वधा प्राशनके योग्य बनाकर स्थापित करिये सप्तमी ॥

पञ्चभिः पराङ्मुतपस्येकयावाङ्मशस्तिमेभि सुदिने बाध-
मानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां माधेहि परमे
व्योमन् ॥ १७ ॥

४२४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

पञ्चऽभिः । पराङ् । तपसि । एकया । अर्वाङ् । अशस्तिम् । एषि ।

सुऽदिने । बाधमानः । तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याऽस्ति
त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् । मा ।

धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १७ ॥

हे सूर्यत्वं पञ्चभिः दीधितिभिर्मरीचिभिः पराङ् ऊर्ध्वमुखः सन्
तपसि प्रकाशसे उपरितनान् लोकान् । तथा एकया दीधित्या
अर्वाङ् अधोमुखः सन् तपसि । अन्तरिक्षस्थस्य सूर्यस्य ऊर्ध्व
प्रकाशयानां स्वर्महर्जनस्तपःसत्याख्यानां लोकानां पञ्चसंख्याक-
त्वात् पञ्चभिरित्युक्तम् । तथा अन्तरिक्षस्थितस्य सूर्यस्य अधः
प्रकाशयस्य भूलोकस्य एकत्वात् एकयार्वाङ् इत्युक्तम् । एवं कुर्वन्
सुदिने शोभनदिवसे नीहारमेघाद्युपद्रवरहिते दिवसे निमित्तभूते
सति नाधमानः तदर्थं याच्यमानः सन् अशस्तिम् एकयैवार्वाङ्-
तपसीत्येवंरूपां निन्दाम् एषि प्राप्नोषि ॥ अथ वा पञ्चभिरंशैः पराङ्
तपसि एकेनैवांशेन अर्वाङ् तपसि । चक्षुर्गम्यं तेजः एकदेश एव
उपरितनं तेजः निरवधिकम् इत्येवं स्तुतिं प्राप्नोषीत्यर्थः ॥ तवेत्
इत्यादि पूर्ववत् ॥

हे सूर्यदेव ! आप पाँच किरणोंसे ऊर्ध्वमुख होकर ऊपरके
लोकोंको प्रकाशित करते हैं तथा एक किरणसे नीचेको मुख करके
प्रकाश फैलाते हैं [अन्तरिक्षमें स्थित सूर्यदेवके द्वारा ऊपरके प्रका-
शित होने वाले स्वर् महर् जन तप और सत्य लोकोंके पाँच होने
से पाँच किरणोंका वर्णन किया और अन्तरिक्षमें स्थित सूर्य देव
से नीचेके प्रकाशित होने वाले भूलोकके एक होनेसे एक किरण
का वर्णन किया] इस प्रकार करते हुए आप कुहरा मेघ आदिके
उपद्रवसे रहित सुदिनमें प्रार्थित होकर इस निन्दाको पाते हैं, कि-

एकसे ही नीचेके लोकको प्रकाशित करते हैं, तात्पर्य यह है, कि-चतुर्गम्य तेज एक देशमें ही होता है और उपरितन तेज निरवधिक होता है । हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके ही अनेक प्रकार के प्रभाव हैं, आप हमको सब प्रकारकी आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और देहावसानमें परमव्योममें-स्वधामें स्थापित करिये ॥ १७ ॥

अष्टमी ॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।

तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुहति जुहंतस्तवेद् विष्णो
बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे
व्योमन् ॥ १८ ॥

त्वम् । इन्द्रः । त्वम् । महाऽइन्द्रः । त्वम् । लोकः । त्वम् । प्रजाऽपतिः ।

तुभ्यम् । यज्ञः । वि । तायते । तुभ्यम् । जुहति । जुहंतः । तव ।

इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुभिः । विश्वरूपैः । सुधायाम् ।

मा । धेहि । परमे । विऽओमन् ॥ १८ ॥

हे सूर्य त्वम् इन्द्रः स्वर्गाधिपतिः “सहस्राक्षो गोत्रभिद् वज्र-
बाहुः” [तै० सं० २. ३. १४. ४] इत्यादिमन्त्रोक्तस्वरूप इन्द्र-
स्त्वमेव । तथा महेन्द्रस्त्वमेव महत्त्वगुणविशिष्ट इन्द्रोपि त्वमेव ।
वस्तुतो देवतैक्येपि विशेषणभेदाद् देवताभेदम् इच्छन्ति तान्त्रिकाः ।

“यद् अग्नये पवमानाय ❀ ❀ ❀ । यद् अग्नये पाव-
 काय ❀ ❀ ❀ । यद् अग्नये शुचये ❀ ❀ ❀ ।”
 [तै० ब्रा० १. १. ५. १०] इत्यत्र यथा अग्नेरेकत्वेऽपि पवमा-
 नादिगुणभेदेन भेदः एवम् अत्रापि द्रष्टव्यम् । इन्द्रस्य महत्त्वगुण-
 योगः “इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महान् अभवत्” [ऐ० आ० १. १]
 इत्यादिश्रुतेर्वृत्रवधाद्यसाधारणपराक्रमजन्यः । तथा त्वमेव लोकः
 सुकृतिभिः प्राप्यो लोकः स्वर्गादिलक्षणस्त्वमेव । अथ वा परब्रह्म-
 स्वरूपत्वात् सर्वलोकात्मकस्त्वमेव । एवं प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा
 देवस्त्वमेव । यत एवम् अतस्तुभ्यं तव प्रीतये यज्ञो ज्योतिष्टोमादिः
 वि तायते विस्तार्यते यजमानैः । तथा जुह्वतः होमं कुर्वन्तः सर्वेऽपि
 तुभ्यं त्वदर्थमेव जुह्वति होमं कुर्वन्ति । याज्यापुरोनुवाक्यापुरःसरं
 हूयमाना यागाः तद्रहिता होमाः इति तयोर्विवेकः ॥ तवेत् इत्यादि
 पूर्ववत् ॥

हे सूर्य ! आप स्वर्गाधिप इन्द्र हैं [“सहस्राक्षो गोत्रभिद् वज्र-
 बाहुः” तैत्तिरीयसंहिता २ । ३ । १४ । ३ आदि मन्त्रमें कहे हुए
 इन्द्र आप ही हैं] तथा महत्त्वगुणसम्पन्न इन्द्र भी आप ही हैं
 [तान्त्रिक पुरुष वास्तवमें देवताके एक होने पर भी विशेषणभेदसे
 भिन्न भिन्न देवता मानते हैं तैत्तिरीय आरण्यक १ । १ । ५ । १०
 में कहा है, कि—“यद् अग्नये पवमानाय ❀ ❀ ❀ । यद् अग्नये
 पावकाय ❀ ❀ ❀ । यद् अग्नये शुचये ❀ ❀ ❀ ।” यहाँ
 अग्निके एक होने पर भी पवमान आदि गुणभेदसे भेद है ऐसे
 ही यहाँ पर भी समझना चाहिये । इन्द्रदेवके महत्त्वगुणका
 योग “इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महान् अभवत् । इन्द्रदेव वृत्रको
 मार कर महान् हुए” (ऐतरेय आरण्यक १ । १) आदि
 श्रुतियोंके अनुसार वृत्रवध आदि असाधारण पराक्रमोंके लिये
 है] और आप ही पुण्यात्माओंको मिलने वाले स्वर्ग आदि

लोक हैं अथवा परब्रह्मस्वरूप होनेसे सर्वलोकात्मक आप ही हैं। इसी प्रकार प्रजाओंके स्रष्टा देव भी आप ही हैं। इसी कारण आपकी प्रीतिके लिये ज्योतिष्टोम आदि यज्ञोंको यजमान किया करते हैं। तथा होम करते हुए भी सब आपके लिये ही होम करते हैं [याज्यापुरोवाक्याके साथ जिनमें आहुति दीजाती है वे याग कहलाते हैं और याज्यापुरोवाक्यासे रहित होम कहलाते हैं] हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके अनेक प्रकारके प्रभाव हैं, आप हमको सब प्रकारके आकार वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और मरणके अनन्तर परम व्योममें स्वधाका पात्र बनाकर स्थापित करिये १८

नवमी ॥

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् ।

भूतं ह भव्य आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो

बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे

व्योमिन् ॥ १६ ॥

असति । सत् । प्रतिऽस्थितम् । सति । भूतम् । प्रतिऽस्थितम् ।

भूतम् । ह । भव्ये । आऽहितम् । भव्यम् । भूते । प्रतिऽस्थितम् ।

तव । इत् । विष्णो इति । बहुऽधा । वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुऽधायाम् ।

मा । धेहि । परमे विऽओमन् ॥ १६ ॥

असति । अत्र असच्छब्देन नामरूपादिराहित्यात् असत्प्रायं

४२८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

निरस्तसमस्तोपाधिकं सन्मात्रं ब्रह्म अभिधीयते । यथा दृश्यपदार्था
नामरूपादिघटितत्वेन सद्यवहारम् अर्हन्ति एवं नामरूपाद्यभावेन
चक्षुराद्यविषयत्वेन द्रष्टुम् अनर्हत्वाद् ब्रह्म असद् इत्युच्यते । सच्छ-
ब्देन च असतः प्रपञ्चस्य सत्त्वेनावभासकत्वात् स्वयं च तद्रूपेण
सत्त्वेनावभासात् अनृतनीहारमायाद्यपरपर्यायम् अज्ञानम् अभि-
धीयते । यद्यपि वस्तुतः सच्छब्देन ब्रह्म अभिधातव्यम् “सदेव
सोम्येदम् अग्र आसीत्” [छा० उ० ६ २. १] “सत्यं ज्ञानम्
अनन्तं ब्रह्म” [तै० आ० ८. १] इत्यादिश्रुतेः तथा असच्छ-
ब्देन अब्रह्म [अज्ञानम्] अभिधातव्यम् सद्विलक्षणत्वात् भ्रान्ति-
बाधयोर्विषयत्वाच्च “अतोऽन्यद् आर्तम्” इति [बृ० आ० ३. ५.
१] श्रुतेः तथापि प्रतीत्यनुसारेण एवम् उक्तम् । तस्मिन्नसति
ब्रह्मणि सत् अज्ञानं प्रतिष्ठितम् आश्रितम् अध्यस्तम् । यथा इद-
मंशे शुक्तौ रजतम् रज्ज्वां सर्पधारादि एवं ब्रह्मणि अज्ञानं प्रति-
ष्ठितम् । सति उक्तलक्षणे अज्ञाने चैतन्याप्रतिबिम्बवति अज्ञाने
भूतम् भूतकालावच्छिन्नं पृथिव्यादिभूतपञ्चकं सकलसृष्ट्युपादान-
भूतं प्रतिष्ठितम् तद् आश्रित्य वर्तते । तत् उत्पद्यत इत्यर्थः । यद्यपि
“आत्मन आकाशः संभूतः” [तै० आ० ८. १] इत्यादिश्रुते-
र्ब्रह्मतो भूतानाम् उत्पत्तिर्न मायातः तथापि अविक्रियस्य केवलस्य
सन्मात्रस्य अकार्यत्वात् अकारणत्वात् मायात एव तेषाम्
उत्पत्तिः । तदधिष्ठानत्वाद् ब्रह्मत उत्पत्त्यभिधानश्रुतिः ।

भ्रमाधिष्ठानतास्माभिः प्रकृतित्वम् उपेयते ।

इति हि स्मरन्ति । अथ वा असच्छब्देन सांख्यशास्त्रप्रसिद्धम्
अनुद्धूतोद्भवाभिभवं गुणत्रयसाम्यावस्थालक्षणं प्रधानम् उच्यते ।
तस्य विकृतिरूपताऽभावात् असच्छब्दव्यवहारः । तस्मिन्नसति
सत् उद्धूतोद्भवाभिभवम् अन्तरुदितत्रिभेदं महत्तत्त्वं प्रतिष्ठितम् ।
महत्तत्त्वस्य प्रधानविकारत्वात् सच्छब्देन व्यवहारः । तस्मिन् सति

महत्तत्वे भूतम् भूतपञ्चकं प्रतिष्ठितम् । तच्च भूतम् भूतपञ्चकं सर्वस्य
कार्यप्रपञ्चस्य उपादानभूतं भव्ये कार्यजाते आहितम् अनुगतम् ।
तच्च भव्यम् कार्यजातं भूते स्वकारणभूते भूतपञ्चके प्रतिष्ठितम्
नियतं वर्तते । कारणव्यतिरेकेण पृथगवस्थानाभातात् । एवमात्मनः
प्रपञ्चावस्थानस्य परमेश्वरमहिमायत्तत्वात् तवेह विष्णो बहुधा
वीर्याणीत्युच्यते ॥ गतम् अन्यत् ॥

असत्तमे अर्थात् ब्रह्ममे सत् अर्थात् दृश्यप्रपञ्च प्रतिष्ठित है
[तात्पर्य यह है, कि—नाम रूप आदि रहित होनेके कारण असत्
प्राय समस्त उपाधियोंसे शुन्य सन्मात्र ब्रह्मको यहाँ असत् शब्द
से कहा है । जैसे दृश्य पदार्थ नामरूप आदिसे वर्णित होनेके
कारण सत् कहलाते हैं इसी प्रकार नाम रूप आदिके अभावके
कारण चक्षु आदिके विषयत्वसे देखने योग्य न होनेसे ब्रह्मको
यहाँ असत् कहा है ॥ और सत्-शब्दसे भी असत् प्रपञ्चके
सत्त्वसे अवभासक होनेसे अनृत कुहरा माया आदि पर्यायोंसे
अभिहित होने वाले अज्ञानका ग्रहण किया है ॥ यद्यपि वास्तव
में ब्रह्मको कहना चाहिये । क्योंकि—“सदेव सौम्येदमग्र आसीत् ।-
हे सौम्य ! पहिले यह सब सत् ही था” (छान्दोग्य उपनिषत्
६ । २ । १) “सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म” (तैत्तिरीय आरण्यक
८ । १) आदि श्रुतियोंके अनुसार असत्-शब्दसे अब्रह्म (अज्ञान)
लेना चाहिये, क्योंकि—यह सत्से विलक्षण और भ्रान्ति तथा बाध
का विषय है तथा “अतोऽन्यद् आर्तम् ।-इससे भिन्न असार है”
(बृहदारण्यक ३ । ५ । १) की श्रुतिसे भी यही बात सिद्ध
होती है, तथापि प्रतीतिके अनुसार ऐसा कहा है ॥ ऐसे असत्-
ब्रह्ममें सत् अर्थात् अज्ञान प्रतिष्ठित है अर्थात् अभ्यस्त है । जैसे
इदम्-अंश सीपीमें चाँदी और रस्सीमें सर्प प्रतिष्ठित होता है
इसी प्रकार ब्रह्ममें अज्ञान प्रतिष्ठित है । पूर्वोक्त लक्षण वाले]

सत्में अर्थात् चैतन्याप्रतिबिम्ब वाले अज्ञानमें भूत प्रतिष्ठित है अर्थात् भूतकालावच्छिन्न पृथिवी आदि पाँच भूतोंका समूह जो सकल सृष्टिका उपादान कारण है वह प्रतिष्ठित है अर्थात् उससे उत्पन्न होता है । [यद्यपि “आत्मन आकाशः संभूतः ।-आत्मा से आकाश प्रकट हुआ” (तैत्तिरीय आरण्यक ८ । १) इत्यादि श्रुतियोंमें ब्रह्मसे भूतोंकी उत्पत्तिका वर्णन मिलता है मायासे भूतोंकी उत्पत्तिका वर्णन नहीं मिलता है, तथापि अविक्रिय केवल सन्मात्रके कार्यत्व और कारणत्वसे रहित होनेके कारण मायासे ही इनकी उत्पत्ति कही है और श्रुतिमें उस मायाका अधिष्ठान होनेसे ब्रह्मसे भूतोंकी उत्पत्ति कही है । कहा भी है, कि-भ्रमाधिष्ठानतास्माभिः प्रकृतित्वं उपेयते ।” अथवा-असत् शब्दसे यहाँ साङ्ख्यशास्त्रमें प्रसिद्ध अनुद्भूत उद्भव अभिभव वाला, तीन गुणोंकी साम्यावस्थारूप प्रधानका ग्रहण करना चाहिये, उसमें विकृतिरूपताके अभावसे असत्-शब्दका व्यवहार हो सकता है । ऐसे असत्में सत्-अर्थात् जिसमें उद्भव और अभिभव उद्भूत होगए हैं और जिसमें भीतर तीन भेद उदित होगए हैं ऐसा-महत्तत्त्व प्रतिष्ठित है । महत्तत्त्वके प्रधान विकार होनेसे सत्-शब्दसे उसका व्यवहार किया है । ऐसे सत्-महत्तत्त्वमें पञ्चभूतोंका समूह प्रतिष्ठित है] वह भूत-समूह सब कार्यप्रपञ्चके उपादानभूत भव्य (आगेको होने वाले) कार्यसमूहमें अहित है और वह भव्य कार्यसमूह अपने कारणभूत भूतसमूहमें नियतरूपसे रहता है, क्योंकि-कारणके बिना कोई भी अलग नहीं रह सकता । इस प्रकार प्रपञ्चावस्थान आत्माके परमेश्वरकी महिमाके आधीन होनेसे हे व्यापक सूर्यदेव ! आपके ही अनेक प्रकारके प्रभाव हैं, ऐसे आप हमको सब प्रकारकी आकृति वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और देहपातके अनन्तर मुझको परमव्योम में स्वधा भक्षण करने योग्य बना कर प्रतिष्ठित करिये ॥ १६ ॥

दशमी ॥

शुक्रो॑सि॒ भ्राजो॑सि ।

स॒ यथा॒ त्वं भ्राज॑ता भ्राजो॒स्येवा॑हं भ्राज॑ता भ्राज्यासम् ॥

शुक्रः । असि । भ्राजः । असि ।

सः । यथा । त्वम् । भ्राजता । भ्राजः । असि । एव । अहम् ।

भ्राजता । भ्राज्यासम् ॥ २० ॥

हे सूर्य त्वं शुक्रोसि शुक्रः अतिविशदः स्वच्छः प्रकाशः तद्रूपस्त्वम् असि । यद्वा शुक्रशब्दोत्र धर्मिपरः । शुक्रगुणयुक्तोसि । अत्यन्तनिर्मलस्वरूपोसीत्यर्थः । अनेन कलुषलेशेनापि असंस्पृष्टस्वरूपता उक्ता । तथा भ्राजोसि भ्राजते दीप्यत इति भ्राजः । ❀ पचाग्रच् ❀ । दीप्तोसि सकललौकिकप्रकाशकेन तेजसा युक्त इत्यर्थः । अस्तु किं तत इत्यत आह स यथा त्वम् इति । हे सूर्य स तादृशस्वं [यथा] भ्राजता सकललोकप्रकाशकेन तेजोमयेन रूपेण भ्राजोसि भ्राजनस्वभावो भवसि । “विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृशे” इति [ऋ० १०. १७०. ३] मन्त्रान्तरम् । एव एवम् अहम् उक्तस्वरूपोपासकः भ्राजता दीप्तेन रूपेण शरीरकान्त्या भ्राज्यासम् दीप्तो भूयासम् । तेजोगुणकस्य सूर्यस्य उपासनया उपासकस्यापि तेजोगुणयुक्तत्वं युक्तमेव ॥

इति सप्तदशकाण्डे द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे सूर्यदेव ! आप शुक्र हैं अर्थात् परमविशद स्वच्छ प्रकाश-स्वरूप हैं वा ऐसे प्रकाशसे सम्पन्न हैं तथा आप दमकते रहते हैं, तथा आप दीप्त हैं अर्थात् सकल लौकिक प्रकाशक तेजोंसे सम्पन्न हैं, हे सूर्य ! ऐसे आप जैसे सकल लोकप्रकाशक तेजोमय रूपसे दमकते रहते हैं ऐसे ही उक्तस्वरूपका उपासक मैं भी

दमकते हुए रूपसे दीप्ति वाला होजाऊँ [तेजोगुणक सूर्यदेवकी उपासनासे उपासकका भी तेजोगुणयुक्तत्व ठीक ही है] ॥ २० ॥

अत्र वै काण्डमें द्वितीय सूक्त समाप्त

अथ तृतीयसूक्ते प्रथमा ॥

रुचिरांसि रोचोसि ।

स यथा त्वं रुच्या रोचोस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्च-
सेन च रुचिषीय ॥ २१ ॥

रुचिः । असि । रोचः । असि ।

सः । यथा । त्वम् । रुच्या । रोचः । असि । एव । अहम् । पशुभिः ।

च । ब्राह्मणवर्चसेन । च । रुचिषीय ॥ २१ ॥

हे सूर्य त्वं रुचिरसि रुचिर्दीप्तिस्तद्रूपस्त्वम् असि । यद्वा रुचि-
शब्देन रुचिमान् अभिधीयते । प्रकृष्टरुचिरसि । तथा रोचोसि रोच-
यति दीपयतीति रोचः । तादृशत्वम् असि । अत्र रुचिरसीत्यनेन
दीप्तिमत्त्वमात्रम् उक्तम् । रोचोसीत्यनेन तु सकललोकदीपकत्वम्
इति विवेकः । इत्थं स्वापेक्षितगुणविशिष्टत्वेन स्तुत्वा स्वाभिमतम्
आशास्ते स यथा त्वम् इति । स तादृशस्त्वं रुच्या विश्वप्रकाशिकया
दोप्त्या रोचोसि भवसि रोचको भवसि । ❀ पचाद्यच् ❀ । एव
एवं भवानिव अहमपि पशुभिश्च । चशब्दो वक्ष्यमाणब्रह्मवर्चसेन
समुच्चयार्थः । पशवो गोमहिषाश्वादयः सैश्च ब्राह्मणवर्चसेन च ।
अत्र चशब्दः पशुभिः समुच्चयार्थः । ब्राह्मणानाम् उचितं श्रुताध्य-
यनतप आदिजन्यं तेजः ब्राह्मणवर्चसम् । उभाभ्यां रुचिषीय दीप्तो
भवेयम् । यथा ब्रह्मवर्चसलक्षणेन तेजसा दीप्यते लोके एवं बहुभिः
पशूनां धनैरपि आढ्यः सन् दीप्यते इति पशूनां दीप्तिसाधन-

त्वाभिधानम् । लोके धनाढ्यः प्रकाशत इति प्रसिद्धमेव ।
 ❀ अत्र “ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः” इति विहितः समासान्तः अच्-
 प्रत्ययो ब्राह्मणशब्दात् परस्यापि वर्चसो भवति ❀ ॥ अत्र ब्राह्म-
 णवर्चसेन रुचिषीयेति ब्रह्मवर्चसप्रार्थनालिङ्गात् माणवकस्य ब्रह्म-
 वर्चसापेक्षत्वाद् उपनयनकर्मणि माणवकस्य नाभिदेशं संस्पृश्य
 जपेत् । तस्मिन्नेव कर्मणि माणवकाभिमन्त्रणे च अस्यानुवाकस्य
 विनियोग उक्त इति मन्तव्यम् ॥

हे सूर्यदेव ! आप रुचि हैं अर्थात् दीप्तिरूप हैं वा दीप्ति वाले
 हैं, रोच हैं—दमकाने वाले हैं [पहिले पदसे दीप्तिमत्त्व मात्र कहा
 और दूसरे पदसे सकल लोकोंका दीपकत्व कहा, इस प्रकार
 अपने अभिलषितगुणसम्पन्नत्वसे स्तुति करके प्रार्थना करता है,
 कि—] जैसे आप विश्वप्रकाशिका दीप्ति से दमकते रहते हैं इसी
 प्रकार मैं गौ भैंस घोड़े आदि पशुओंसे, और नाह्यलोचित वेदा-
 ध्ययन तप आदिसे होने वाले तेजसे दमकता रहूँ [जैसे प्राणी
 संसारमें ब्रह्मतेजसे दमकता है इसी प्रकार पशु आदि धनसे धना-
 ढ्य होकर भी दमकता है यह बात प्रसिद्ध ही है इस प्रकार
 दीप्तिसाधन होनेसे यहाँ पशुओंका वर्णन किया है ॥ यहाँ “ब्राह्मण-
 वर्चसेन रुचिषीय—ब्रह्मतेजसे दमकूँ” इस ब्रह्मवर्चसप्रार्थनालिङ्ग
 में, माणवकके लिये ब्रह्मतेजकी आवश्यकताके कारण उपनयन-
 कर्ममें आचार्यको चाहिये, कि—इस अनुवाकका बालककी नाभि
 का स्पर्श करके जप करे, इसी कर्ममें माणवकके अनुमन्त्रणमें भी
 इस अनुवाकका विनियोग होता है] ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

उद्यते नमः उदायते नमः उदिताय नमः ।

विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २२ ॥

उत्स्यते । नमः । उत्स्रायते । नमः । उत्सृताय । नमः ।

विराजे । नमः । स्वराजे । नमः । सम्राजे । नमः ॥ २२ ॥

हे सूर्य उद्यते उदयैरुदेशं गच्छते तुभ्यं नमः नमस्कारोस्तु ।
तथा उदायते ऊर्ध्वमृषद्वच्छते । अर्धोदितायेत्यर्थः । तादृशाय तस्मै
नमः । एवम् उदिताय ऊर्ध्वं सम्यक् प्राप्ताय संपूर्णोदयाय नमः ।
❀ अत्र उद्यते उदायत इत्युभयत्र उत्पूर्वात् उदाङ्पूर्वाच्च इण् गतौ
इत्यस्मान्प्रत्ययः शत्रादेशो “इणो यण्” इति यण् आदेशः ❀ । अथ
यथोक्तावस्थात्रयनिबन्धनास्तिस्रो मूर्तीः पृथक्पृथक् नमस्करोति
विराजे नम इत्यादिना । उद्यते विराजे नमः विविधं राजत इति
विराट् तस्मै एकदेशोदिताय विराडात्मकाय नमः । स्वराजे नमः
स्वयं राजत इति स्वराट् स्वाधीनप्रकाशाय उदायदवस्थाय अर्धो-
दिताय स्वराण्मूर्तये नमः । सम्राजे नमः सम्यक् अतिशयेन राज-
मानाय उदितावस्थाय नमः ॥ अथ वा अवस्थानम् अन्तरेणैव
विराट्स्वराट्सम्राजः परमेश्वरस्य सोपाधिकास्तिस्रो मूर्तयः । तासु
विराट् नाम परमेश्वरस्य यत् सकललोकात्मकं स्थूलशरीरं तद-
भिमानि पुरुषशब्दवाच्यो देवः । तथा स्मर्यते ।

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ।

स्वांशेन त्रिष्टुः पुरुषाभिधानम् अवाप नारायण आदिदेवः ॥

विराजम् असृजत् प्रभुः ।

इति च । स्वराट् नाम भूतपञ्चकसारात्मकं परमेश्वरस्य सर्व-
समष्टिरूपं यत् सूक्ष्मशरीरं तदभिमानि “स ब्रह्मा । स शिवः ।
स हरिः । सोत्तरः परमः स्वराट्” [तै० आ० १०. ११. २]
इत्यादिश्रत्युक्तो हिरण्यगर्भः । सम्राट् नाम परमेश्वरः कारण-
शरीराभिमानि सकलभूतभौतिकप्रपञ्चस्रष्टा मायोपाधिक ईश्वरः ॥

“ब्रह्म प्रपद्ये । ब्रह्मकोशं प्रपद्ये” [तै० आ० २. १६. १] “य एषोन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते” [छा० १. ६. ६] “हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् । तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः” [सु० २. २. ६] इत्यादिश्रुतेः सूर्यमण्डलाभिमानिनो देवस्य परमेश्वरत्वाद् विराडादयः सूर्यात्मकस्य देवस्य मूर्तय एव । अतस्ताभ्यः पृथक्पृथक् नमस्करोति ॥ यद्वा विराट्स्वराट्सम्राजः अग्निवाय्वादित्याख्याः परमेश्वरस्य तिस्रो मूर्तयः ताभ्यः पृथक्पृथक् नमस्कारं करोति ॥

हे सूर्य ! उदयके एक देशको प्राप्त होते हुए आपके लिये प्रणाम है, कुछ उदय हुए अर्थात् आधे उदय हुए आपके लिये प्रणाम है और सम्पूर्णरूपसे उदित हुए आपके लिये प्रणाम है (अब इन तीनों अवस्थाओंकी मूर्तियोंको पृथक् २ प्रणाम करते हैं, कि -) एकदेशोदित विराट्के लिये प्रणाम है, स्वाधीनप्रकाश अर्धोदित स्वराट्मूर्तिके लिये प्रणाम है, सम्पूर्णोदित स्वराट्मूर्तिके लिये प्रणाम है । अथवा अवस्थानके अतिरिक्त जो परमेश्वर की विराट् स्वराट् और सम्राट् नामकी सोपाधिक तीन मूर्तियाँ हैं उनके लिये प्रणाम है [इनमें परमेश्वरके सकल लोकात्मक स्थूलशरीरके अभिमानी पुरुष-शब्द-वाच्य देवका नाम विराट् है । भागवतमें कहा है, कि—“भूतैर्पदापञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् । स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानं अवाप नारायण आदिदेवः ॥—जब सबके कारणभूत नारायणने, अपने ही उत्पन्न किये हुए आकाश आदि पञ्चमहाभूतोंसे ब्रह्माण्डरूप देहको उत्पन्न करके उसमें अपने अंशसे प्रवेश किया तब वह पुरुष नामको प्राप्त हुए” (भागवत एकादश स्कन्ध चतुर्थ अध्याय तृतीय श्लोक) अन्यत्र भी सुना जाता है, कि—“विराजमसृजत् प्रभुः ।—प्रभुने विराट्की सृष्टि की” ॥ जो पञ्चभूतसारात्मक परमेश्वरके

सर्वसमष्टिरूप सूक्ष्मशरीरका अभिमानी देवता है उसको स्व-
राट् कहते हैं । तैत्तिरीय आरण्यक १० । ११ । २ में कहा है,
कि-“स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सोत्तरः परमः स्वराट् ।-वही
ब्रह्मा है, वही शिव है, वही हरि है, वही परम उत्तर है, वही स्व-
राट् है” इत्यादि श्रुतियोंमें वर्णित हिरण्यगर्भ ही स्वराट् है सम्राट्
नाम परमेश्वरका है वह कारणशरीरका अभिमानी है, सकल
भूत भौतिक प्रपञ्चका स्रष्टा है और मायोपाधिक ईश्वर है॥-ब्रह्म
प्रपद्ये । ब्रह्मकोशं प्रपद्ये ॥-ब्रह्मकी शरण लेता हूँ, ब्रह्मकोश
को प्राप्त होता हूँ” (तैत्तिरीय आरण्यक २ । १६ । १) “य
एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते ।-यह जो सूर्यके
भीतर हिरण्यमय पुरुष दीखता है” (छान्दोग्य १ । ६ । ६)
हिरण्यमये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् । तच्छुभ्रं ज्योतिषां
ज्योतिः । हिरण्यमय परकोशमें विरज निष्कल ब्रह्म है, वह शुभ्र
है और ज्योतियोंकी भी ज्योति है” (मुण्डकोपनिषत् २ । २ । ६)
इत्यादि श्रुतियोंके अनुसार मण्डलाभिमानी देवके परमेश्वर होने
से विराट् आदि सूर्यात्मक देवकी ही मूर्तियों हैं । अतएव उनको
पृथक् २ नमस्कार किया है] अथवा-परमेश्वरकी विराट् स्वराट्
और सम्राट् अर्थात् अग्नि वायु तथा आदित्य नामक जो तीन
मूर्तियों उनको प्रणाम प्राप्त हो ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

अस्तंयते नमोस्तमेष्यते नमोस्तमिताय नमः ।

विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २३ ॥

अस्तम्यते । नमः । अस्तमेष्यते । नमः । अस्तम्यताय । नमः ।

विराजे । नमः । स्वराजे । नमः । सम्राजे । नमः ॥ २३ ॥

अस्तंयते अस्तम् अस्ताचलं गच्छते । ईषदस्तमितायेत्यर्थः ।
एवम् अस्तमेव्यते गमिष्यते अर्धमस्तमिताय नमः । अस्तमिताय
अस्तं संपूर्णं प्राप्ताय नमः । विराजे नम इत्याद्या पूर्ववद् व्या-
ख्येयाः । अस्त गच्छतोपि सूर्यस्य उक्तलक्षणवस्थात्रयनिबन्धना
विराडादिसंज्ञाः सन्ति । अस्तंयदवस्थायां किंचिदूनकृत्स्नप्रकाश-
संभवाद् विराट् भवति । अर्धमस्तमितस्यापि अर्धोदितवत् स्वराट्-
त्वम् अस्त्येव । अस्तमितस्यापि “अग्निं वाचादित्यः सायं प्रवि-
शति । तस्माद् अग्निर्दूरान्तं ददृशे । उभे हि तेजसी संपद्यते
[तै० ब्रा० २. १. २. ६] इति श्रुतेः अग्न्यात्मनावस्थानात्
सम्प्राट्त्वं न हीयते ॥ अथ वा सर्वदा मेरुं परिभ्रमतः सूर्यस्य
स्वत उदयास्तमयाभावाद् अस्मदादिदर्शनतिरोधानतास्तस्याद्
उदयास्तमयव्यादेशः । अतः उदयास्तमययोस्त्रैविध्येन विराडादि-
मूर्तयः उपासनार्थं शास्त्रे निर्दिष्टाः ॥ मध्यन्दिनस्यापि उदिता-
वस्थायाम् अन्तर्भावात् उक्तलिङ्गेन माणवकस्य आयुरभिवृद्धयर्थं
त्रिकालम् आदित्योपस्थाने अस्यानुवाकस्य विनियोग उक्तः ॥

अस्ताचलको जाते हुए अर्थात् कुछ अस्त हुए सूर्यदेवके लिये
प्रणाम है । अस्तको प्राप्त होते हुए अर्थात् आधे अस्त हुए
आदित्यदेवके लिये प्रणाम है, और पूर्णरूपसे अस्तको प्राप्त हुए
अस्तमित सूर्यदेवके लिये प्रणाम है । कुछ अस्त हुए विराट् सूर्य-
देवके लिये नमस्कार है आधे अस्त हुए स्वराट् भानुदेवके लिये
प्रणाम है, पूर्णरूपसे अस्त हुए सम्राट् भानुदेवके लिये प्रणाम है
[अस्तको प्राप्त होते हुए सूर्यदेवकी भी पूर्वोक्त तीनों अवस्थाओं
के कारण विराट् आदि संज्ञायें होती हैं अस्तको प्राप्त होनेकी
दशामें कुछ कम पूर्ण प्रकाश होनेसे यह विराट् होते हैं । अर्धस्तमित
का भी अर्धोदितकी समान स्वराट्त्व है ही । और पूर्णरूपसे
अस्त हुका भी सम्राट्त्व क्षीण नहीं होता है, क्योंकि-तैत्तिरीय-

४३८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

रीय ब्राह्मण २ । १ । २ । ६ में कहा है, कि—“अग्निं वाचादित्यः सायं प्रविशति । तस्मादग्निर्दूरान्नक्तं ददृशे । उभे हि तेजसी संपद्येते ।—सूर्यदेव सायंकालके समय अग्निमें प्रवेश कर जाते हैं । इसी कारण रात्रिमें अग्नि दूरसे ही दीखती है, क्योंकि—दोनों तेज मिल जाते हैं” ॥ अथवा सदा मेरुकी परिक्रमा करने वाले सूर्यदेवका स्वतः उदय और अस्त नहीं होता है और हमारे दर्शन वा तिरोधानकी न्यूनाधिकतासे उदय और अस्तका व्यवहार चलता है अत एव उदय और अस्तके तीन प्रकारका होनेसे विराट् आदि मूर्तियोंका शास्त्रमें उपासनाके लिये वर्णन किया है । मध्यन्दिनका भी उदितवस्थामें अन्तर्भाव होनेसे उक्तलिंगसे माणवककी आयुर्वृद्धिके लिये तीनों समयके आदित्योपस्थानमें इस अनुवाकका विनियोग कहा है] ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह ।

सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विपते रधं तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि ।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि
परमे व्योमन् ॥ २४ ॥

उत् । अगात् । अयम् । आदित्यः । विश्वेन । तपसा । सह ।

सपत्नान् । मह्यम् । रन्धयन् । मा । च । अहम् । द्विपते । रधम् ।

तव । इत् । विष्णो इति । बहुधा । वीर्याणि ।

त्वम् । नः । पृणीहि । पशुऽभिः । विश्वऽरूपैः । सुधायां ।

मा । धेहि । परमे । विऽओषन् ॥ २४ ॥

अयं सूर्यः परिदृश्यमान आदित्यः उदगात् उदितवान् । कीदृशः सन् । विश्वेन कृत्स्नेन तपसा सकललोकसंतापकेन रश्मिनिचयेन सह । अपतिवद्धम् उदयतः सूर्यस्य रश्मीनां राक्षसादिकृतन्यूनताकरणाभावाद् विश्वेनेति विशेषितम् ॥ उद्यन्तम् आदित्यम् उपतिष्ठमान आह । मह्यं मदर्थं सपत्नान् शत्रून् रन्धयन् वशं प्रापयन् । उदयन्नेव सपत्नान् मम वशं गमयत्वित्यर्थः । अहं च द्विषते अप्रियं कुर्वते द्वेषे मा रधम् तस्य वशो मा भूवम् । हे सूर्य उदयतस्तवानुग्रहाद् इति शेषः ॥ तवेद् विष्णो बहुधा इत्यादेर्मन्त्रशेषस्य व्याख्या पूर्ववद् द्रष्टव्या ॥

यह सूर्यदेव सकल लोकोंको भली प्रकार तपाने वाल अपने पूर्ण किरणजालके साथ मेरे शत्रुओंको मेरे वशमें करते हुए उदय होगए हैं अर्थात् यह उदय होते ही शत्रुओंको मेरे वशमें कर देते हैं । हे सूर्यदेव ! उदय होते हुए आपके अनुग्रहसे मैं द्वेष करने वाले शत्रुके वशमें न होऊँ, हे व्यापक सूर्यदेव आपके अनेक प्रकारके प्रभाव हैं, ऐसे आप हमको सब आकारों वाले पशुओंसे पूर्ण करिये और देहपातके अनन्तर मुझको परमव्योम में स्वधान्नके भक्षण करने योग्य बना कर स्थापित करिये २४ पञ्चमी ॥

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये ।

अहर्मात्यपीपरो रात्रि सत्राति पारय ॥ २५ ॥

आदित्य । नावम् । आ । अरुक्षः । शतऽअरित्राम् । स्वस्तये ।

अहः । मा । अति । अपीपरः । रात्रिम् । सत्रा । अति । पारय २५

४४० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हे आदित्य त्वं नावम् रथलक्षणम् आरुक्षः आरुढोसि आका-
शाख्यस्य समुद्रस्य तरणाय । नौर्विशेष्यते । शतारित्राम् उदका-
कर्षणसाधनानि काष्ठानि अरित्राणीत्युच्यन्ते । अनेकैर्नौगतिसा-
धनैरुपेताम् । अत्र ग्रहमण्डलाकर्षका वायव एव अरित्राणि ।
आरोहणप्रयोजनम् आह । स्वस्तये सर्वेषां प्राणिनां क्षेमाय । अथ
स्वाभिमतम् आशास्ते । एवंपां नावम् आरुढस्त्वं मा माम् अह-
रत्यपीपरः अत्यपारयः । आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकलक्ष-
णत्रिविधापापपरिहारेण अहः पारं प्रापितवान् असि । एवमेव
रात्रिमपि सत्रा सहैव अह्ना सह मध्ये व्यवधानम् अकृत्वा माम्
अति पारय रात्रेः पारं गमय । अहोरात्रयोः संधौ मरणादिभय-
शङ्कया आह सत्रेति । अनेन ज्वरशिरोव्यथादिपरिहारेण आयु-
रभिवृद्धिः प्रार्थिता भवति ॥ अथ वा एवं व्याख्येयम् । हे
आदित्य नावम् त्वामेव नौरूपम् आरुक्षः आरुक्षम् आरोहम्
आरुढश्च त्वया अहः पारं प्रापितवान् अस्मीति व्याख्येयम् । यथा
नौः स्वस्मिन्नधिष्ठितं यथाभिमतदेशं गमयति एवं नयसीति [त्वं]
नौः । ❀ आरुहेर्लुङि “शल इगुपधाद् अनिटः कसः” इति
कसः ❀ । तस्मिन् पक्षे शतारित्राम् इति शतशब्दः अपरिमित-
वचनः । अपरिमितरश्मिरूपारित्रोपेताम् इत्यर्थः किमर्थम् आरो-
हणम् इति । स्वस्तये क्षेमाय सर्वोपद्रवराहित्येन चिरकालजीव-
नाय । स्वस्तिशब्दार्थं विशिनष्टि । अहर्मात्यपीपर इत्यादिना ।
अहनि रात्रौ च सुखेन अवस्थानमेव क्षेमः । ❀ अपीपर इति ।
पारयतेर्लुङि चङि रूपम् ❀ ॥

हे सूर्यदेव ! आप आकाशरूपी समुद्रको तरनेके लिये ग्रह-
मण्डलके आकर्षक वायुरूपी अनेक बल्ली पतवारोंके साथ रथ-
रूपी नौकामें जगत्का कल्याण करनेके लिये चढ़ गए हैं । ऐसी
नौका पर विराजमान आप मुझको आध्यात्मिक आधिदैविक

और आधिभौतिक इन तीनों प्रकारके विघ्नोंसे बचा कर दिनके पार उतार चुके हैं, इसी प्रकार दिनके साथ कुछ व्यवधान न रख कर साथ ही साथ रात्रिके भी पार पहुँचा दीजिये [दिन और रात्रिकी संधिमें परण आदिकी आशङ्का होती है अत एव दिनके साथ ही कहा है । इस मन्त्रसे ऊपर शिरोव्यथा आदिको दूर करते हुए आयुर्वृद्धिकी प्रार्थना की है । अथवा इस प्रकार भी व्याख्या की जा सकती है, कि-हे आदित्य ! मैं नौकारूप आप पर ही आरूढ़ होगया और आरूढ़ होने पर आपने मुझको नौकाकी समान दिनके पार उतार दिया है आपमें वत्लीरूप अनन्त किरणें हैं, मैं सब उपद्रवोंसे रहित रह कर चिरकालतक जीवित रहनेके लिये आप पर आरूढ़ हुआ हूँ आप मुझको दिन के और रातके पार पहुँचा दीजिये] ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

सूर्य नावमारुक्ष शतारित्रां स्वस्तये ।

रात्रिं मात्यपीपरोहः सत्राति पारय ॥ २६ ॥

सूर्य । नावम् । आ । अरुक्षः । शतऽअरित्राम् । स्वस्तये ।

रात्रिम् । मा । अति । अपीपरः । अहः । सत्रा । अति । पारय ॥

पूर्ववदेव व्याख्या । अहरित्यस्य स्थाने रात्रिम् इति रात्रिम् इत्यस्य स्थाने अहरिति व्यत्ययमात्रं विशेषः । पूर्वमन्त्रे अहनि सूर्यानुग्रहेण सुखेन जीवनं सिद्धवत्कृत्य रात्रौ तद्विषये संदिहानो रात्रिं सत्राति पारयेति प्रार्थितवान् । अस्मिस्तु मन्त्रे रात्रौ सूर्यानुग्रहेण रात्रेः पारं प्राप्य प्रबुद्धः सन् आह । हे सूर्य रात्रिं मा अत्यपीपरः रात्रिपारं प्रापितवान् असि । एवमेव अहः अहरपि सत्रा रात्र्या सह तयोर्मध्ये व्यवधानराहित्येन अति पारय । एवं

४४२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

मन्त्रद्वयेन दिनद्वयेपि सांतत्येन सुखेन जीवनं प्रार्थितं भवति ॥
 एवं प्रतिदिनं त्रिषु कालेषु अनेनानुवाकेन सूर्योपस्थानं कृत्वा
 माणवकादेः शतसंवत्सरलक्षणं दीर्घम् आयुर्भवति । अतः एव-
 मादिलिङ्गाद् आयुष्कामस्य कालत्रये सूर्योपस्थाने अस्यानुवा-
 कस्य त्रिनियोग उक्तः ॥ आदित्यसूर्ययोः पर्यायत्वं गमयितुम्
 उत्तरमन्त्रे सूर्यं नावम् इति निर्दिष्टम् ॥

हे सूर्यदेव ! आप ग्रहमण्डलाकर्षक अनन्त वायुओंरूप पतवार
 पाली रथरूपी नौकामें आकाशरूपी समुद्रको तरनेके लिये जगत्का
 कल्याण करनेकी भावनासे बैठ गए हैं। आपने मुझको रात्रिके पार
 पहुँचा दिया है इसके साथ ही आप मुझको दिनके पार पहुँचाइये
 [पूर्वमन्त्रमें दिनमें सूर्यके अनुग्रहसे सुखसे जीवनको सिद्धवत् कर
 के रात्रिमें आशंकासे रातके पार उतारनेकी प्रार्थना की थी और
 इस मन्त्रमें सूर्यके अनुग्रहसे रात्रिके पार पहुँचकर जागकर प्रार्थना
 की है, कि—हे सूर्य ! आपने मुझे रात्रिके पार उतार दिया अब
 दिनके भी पार उतारिये । इस प्रकार दो मन्त्रोंसे दोनों दिनोंमें
 अनवच्छिन्नरूपसे सुखसे जीवनकी प्रार्थना की । इस प्रकार प्रति-
 दिन त्रिकालमें आदित्योपस्थान करने वाले माणवक आदिकी
 सौ वर्ष तककी दीर्घायु होती है । इन ही चिह्नोंसे आयुष्कामके
 त्रिकालके सूर्योपस्थानमें इस अनुवाकका त्रिनियोग कहा है ।
 आदित्य और सूर्य पर्यायवाची शब्द हैं इस बातको जतानेके
 लिये पूर्वमन्त्रमें आदित्य और इस मन्त्रमें सूर्य शब्द दिया है] २६

सप्तमी ॥

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा
 वर्चसा च ।

जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् २७

प्रजाऽपतेः । आऽवृतः । ब्रह्मणा । वर्मणा । अहम् । कश्यपस्य ।

ज्योतिषा । वर्चसा । च ।

जरत्ऽअष्टिः । कृतऽवीर्यः । विऽहायाः । सहस्रऽआयुः । सुऽकृतः ।

चरेयम् ॥ २७ ॥

प्रकाशवृष्ट्यादिना प्रजानां पालनात् प्रजापतिः आदित्यः ।
अथ वा संवत्सरकालनिर्वाहकत्वात् तस्य च प्रजापतिरूपत्वात्
सूर्यः प्रजापतिः । तस्य ब्रह्मणा परिवृढेन रूपेण । कीदृशेन ।
वर्मणा । वर्म तनुत्रम् तद्रूपेण सूर्यस्य तेजोमयेन स्वरूपेण आवृतः
वेष्टितः । अथ वा प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा हिरण्यगर्भः । “स
त्रेधात्मानं व्यकुरुत । अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयम् आदित्यं तृती-
यम्” इति [बृ० आ० १. २. ३] श्रुत्या प्रजापतेर्मृत्यन्तरभूत
आदित्यः । स एव ब्रह्म “असावादित्यो ब्रह्म” इति [तै० आ०
२. २. २] श्रुतेः । तदेव ब्रह्म स्वोपासकस्य वर्मवद् आच्छाद-
कत्वाद् वर्म इत्युच्यते । तेन आवृतो वेष्टितोहम् । अथ वा प्रजापतेः
आदित्यस्य ब्रह्मणा मन्त्रमयेन वर्मणा । तत्स्वरूपनिरूपकत्वेन
संबन्धाद् ब्रह्मणो मन्त्रस्य तदीयत्वम् । तेन परिवृतः । रक्षित
इत्यर्थः । किं च कश्यपस्य । “कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं
परिपश्यति” इति [तै० आ० १. ८. ८] श्रुतेः कश्यपः सूर्यस्य
मृत्यन्तरभूतः । तथा च श्रुत्यन्तरम् । “आरोगो भ्राजः पटरः
पतङ्गः । स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः । ते अस्मै सर्वे दिवम्
आतपन्ति । ते सर्वे कश्यपाञ्ज्योतिर्लभन्ते” इति [तै० आ० १.
७. २] । “कश्यपोष्टमः । स महामेहं न जहाति” इति च [तै०
आ० १. ७. १] । तादृशस्य कश्यपस्य प्रकाशमयस्य ज्योतिषा ।
द्योतत इति ज्योतिः । तेन प्रकाशेन । ❀ द्यु त दीप्तौ इत्यस्माद्
द्यतेरिसिन् आदेश्च जः [उ० २. १०६] इति इसिन् आदेश्च

४४४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अथ ❀ । तथा तस्य वर्चसा च ज्योतिरित्यस्य व्याख्यानम् वर्च-
 सेति । वर्चः तमस आवर्जकं तेजः । ❀ वर्च दीप्तौ इति धातुः ❀ ।
 चक्षारो ब्रह्मणा सह समुच्चयार्थः । अथ वा ज्योतिः स्वरूपप्र-
 काशः । वर्चो रश्मिप्रकाशः । चशब्दो ज्योतिषा समुच्चयार्थः ।
 ज्योतिषा आवृतो वर्चसा च आवृतोहम् इत्यर्थः । तथा च तैत्ति-
 रीयकम् । “परीवृतो वरीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं तेजसा कश्य-
 पस्य” [तै० आ० २. १६] इति ॥ अथ वा एवं व्याख्येयम्
 कश्यपाद् उदिताः सूर्याः “कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते” इत्यादिश्रुतेः ।
 कश्यपः इतरेषां सूर्याणां मुख्यः । स एवात्र प्रजापतिशब्देनोच्यते ।
 तस्य ब्रह्मणा वर्मणा आवृतः इत्यस्य व्याख्यानं कश्यपस्य ज्यो-
 तिषा वर्चसा चेति । अस्मिन् पक्षेपि चशब्दः अस्य ज्योतिषा सह
 समुच्चयार्थः ॥ बाह्यापायपरिहाराय वर्मणा आवरणम् आशास्य
 अथ भोगम् आशास्ते जरदष्टिरित्यादिना । जरदष्टिः । ❀ जरत्
 इति । जीर्यतेर्भूतकालावच्छिन्नार्थे अतृन् ❀ । जीनः सन्नपि अष्टिः
 अशनं भोजनं यस्य स जरदष्टिः । अनेन अरोगदृढगात्रः सन् बहु-
 विधान् भोगांश्चिरकालं भुञ्जानो भवेयम् इति प्रार्थना कृता भवति ।
 तथा शतवीर्यः अपरिमितैर्वीर्यैः शारीरैर्बलैर्युक्तः अनेकपुत्राद्यु-
 त्पादनसामर्थ्योपेतो वा । विहायाः विविधगमनः । सर्वत्र अप्रति-
 बद्धगतिरित्यर्थः । ❀ ओहाङ् गतौ । वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि [उ०
 ४. २२०] इति असुन् । तत्र णिदित्यनुवृत्तेर्णिद्वद्भावाद् “आतो
 युक् चिण्” इति युगागमः ❀ । तथा सहस्रायुः अपरिमिता-
 युष्यः । सुकृतः सुष्ठु संस्कृतः सर्वसंपूर्णः सन् । अथ वा लौकिकं
 वैदिकं च यत् कर्तव्यजातम् अस्ति तद् येन सुष्ठु कृतं स सुकृतः ।
 कृतकृत्य इत्यर्थः । तादृशः सन् । यद्वा सुकृतः सुकृतवान् सुकृतं
 धर्मस्तद्वान् चरेयम् सर्वत्र पृथिव्यां गच्छेयम् । एतत् सर्वम् हे सूर्य
 तवानुग्रहात् संपादयामीति आशास्ते ॥

प्रकाश वृष्टि आदिसे प्रजाओंका पालन करने वाले प्रजापति आदित्य हैं, अथवा संवत्सरकालनिर्वाहक होनेसे प्रजापतिरूप सूर्य प्रजापति हैं, उनके दृढ़तेजोरूप कवचसे अर्थात् सूर्यके तेजोमय स्वरूपसे आच्छादित हुआ मैं [अथवा—“स त्रेधात्मानं व्यकुरुत । अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयं आदित्यं तृतीयम् ।—उन प्रजापतिने अपनेको तीन रूपोंमें विभक्त किया, एक तृतीयभागको अग्नि बनाया, दूसरे तृतीयांशको वायु बनाया और तीसरे तृतीयांशको आदित्य बनाया” (बृहदारण्यक १ । २ । ३) इस श्रुति के अनुसार आदित्य प्रजापतिकी दूसरी मूर्तिरूप है । वही ब्रह्म है, क्योंकि—तैत्तिरीय आरण्यक २ । २ । २ की श्रुतिमें कहा है, कि—“असावादित्यो ब्रह्म ।—यह आदित्य ब्रह्म है” वही ब्रह्म अपने उपासकके कवचकी समान आच्छादक होनेसे वर्म (कवच) कहलाते हैं उनसे आवृत मैं, अथवा प्रजापति आदित्यके मन्त्रमय वर्मसे आच्छादित मैं] और तैत्तिरीय आरण्यक १ । ८ । ८ की श्रुतिमें कहा है, कि—“कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति । कश्यपका अर्थ द्रष्टा है जो सबको भली भाँति देखते हैं” इस श्रुति के अनुसार कश्यप सूर्यकी एक मूर्ति हैं । दूसरी श्रुतिमें भी कहा है, कि—“आरोगो भ्राजः पटरः पतङ्गः । स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः । ते अस्मै सर्वे दिवम् आतपन्ति । ते सर्वे कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते । —आरोग भ्राज पटर पतङ्ग स्वर्णर ज्योतिषीमान् और विभास ये सब सूर्य इनके लिये द्यलोकको प्रकाशित करते हैं और ये सब कश्यपसे ज्योतिको पाते हैं” “कश्यपोऽष्टमः समहामेरुं न जहाति ।—इनमें कश्यप अष्टम हैं वह महामेरुको नहीं त्यागते हैं” (तैत्तिरीय आरण्यक १ । ७ । १) ऐसे प्रकाशमय कश्यपकी ज्योतिसे और धर्षक तेजसे ढका हुआ मैं वा स्वरूप-प्रकाश ज्योतिसे और रश्मिप्रकाश वर्चसे आच्छादित मैं [तैत्ति-

रीय आरण्यक २ । १६ में कहा है, कि “परीवृतो वरीवृतो ब्रह्मणा
वर्मणाहं तेजसा कश्यपस्य ।—मैं कश्यप नामक सूर्यके मन्त्रात्मक
कवचसे आच्छादित हूँ” इस प्रकार बाहरी विघ्नोंको दूर करनेके
लिये कवचसे आवरण करनेकी प्रार्थना करके अब भोगकी प्रार्थना
करते हैं, कि—] मैं जीर्ण होने पर भी रोगरहित दृढ़ अङ्गोंवाला
रहता हुआ चिरकाल तक अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता रहूँ
अपरिमित शारीरिक बलोंसे सम्पन्न रहूँ वा बहुतसे पुत्रोंको
उत्पन्न करनेकी शक्तिसे सम्पन्न रहूँ, मेरी गति कहीं न रुके,
अपरिमित आयुको पाऊँ, लौकिक वैदिक सकल अनुष्ठानोंको
भली प्रकार करके कृतकृत्य होऊँ, हे सूर्य ! इन सबको मैं आप
के प्रसादसे प्राप्त करूँ यह मेरी प्रार्थना है ॥ २७ ॥

अष्टमी ॥

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय
परिवृतः । ब्रह्मणा । वर्मणा । अहम् । कश्यपस्य । ज्योतिषा ।
वर्चसा । च ।

मा । मा । प्र । आपन् । इषवः । दैव्याः । याः । मा । मानुषीः ।
अवसृष्टाः । वधाय ॥ २८ ॥

परीवृत इत्यादि वर्चसा च इत्यन्तं पूर्ववद् व्याख्येयम् । यतोहं
ब्रह्मणा वर्मणा ज्योतिषा वर्चसा च परीवृतः अतो दैव्याः
देवप्रेरिताः । ❀ “देवाद् यज्वं” इति प्राग्दीव्यतीयो यञ्
प्रत्ययः ❀ । या इषवः बाणाः सन्ति तां मा मां मा प्रापन् ।
इषवो विशेष्यन्ते । वधाय मम हननाय अवसृष्टाः प्रेरिताः मा

प्रापन् । मा प्राप्नुयुः । एवं मानुषीः मानुष्यः मनुष्यैर्वधाय प्रेषिता
अपि इषवो मा मां प्रापन् ॥

मैं “कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते ।—कश्यपसूर्यसे अन्य सूर्य ज्योति
को पाते हैं” इस श्रुतिके अनुसार मुख्य सूर्य कश्यपके मन्त्ररूप
कवचसे तथा उनके स्वरूपप्रकाश और रश्मिप्रकाशसे रक्षित रहूँ
अतएव मेरे वधके लिये छोड़े हुए देवताओंके बाण और मनुष्यों
के बाण मुझ तक न पहुँच सकें ॥ २८ ॥

नवमी ॥

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम्
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेहं सलिलेन
वाचः ॥ २९ ॥

ऋतेन । गुप्तः । ऋतुभिः । च । सर्वैः । भूतेन । गुप्तः । भव्येन ।
च । अहम् ।

मा । मा । प्र । आपत् । पाप्मा । मा । उत । मृत्युः । अन्तः ।
दधे । अहम् । सलिलेन । वाचः ॥ २९ ॥

अहम् ऋतेन । ऋतुम् यथार्थम् । सत्यम् इत्यर्थः । तेन गुप्तः
रक्षितः । अथ वा ऋतं ब्रह्म आदित्याख्यम् तेन गुप्तः । तथा
सर्वैः ऋतुभिः वसन्ताद्यैश्च रक्षितः । तथा भूतेन पूर्वकालम्
उत्पन्नेन पदार्थजातेन गुप्तः । एवं भव्येन उत्पत्स्यमानेन च पदार्थ-
जातेन गुप्तो रक्षितः । यत एवम् अतो हेतोः पाप्मा पापं नरक-
हेतुभूतं मा मां मा प्रापत् मा प्राप्नुयात् । उत अपि च मृत्युः मरण-
कर्ता देवोपि मा प्रापत् । अहं तु वाचो मन्त्रात्मिकायाः सलिलेन
उदकेन रक्षाकामः अन्तर्दधे अन्तर्धानं करोमि । यथा लोके सलि-

लेनान्तर्हितः प्राणी न केनापि दृश्यते एवम् अहं मन्त्रमयेन सल्लि-
लेन पापादिबाधराहित्याय आत्मानं गोपयामीत्यर्थः ॥

मैं सत्यसे रक्षित रहूँ—आदित्यात्मक ब्रह्मसे रक्षित रहूँ, वसन्त
आदि सब ऋतुओंसे रक्षित रहूँ, पूर्वकालमें उत्पन्न हुए सकल
पदार्थोंसे रक्षित रहूँ और उत्पन्न होने वाले संपूर्ण पदार्थोंसे रक्षित
रहूँ अत एव नरकका कारण पाप गुणको प्राप्त न होवे, और मरण-
कर्ता देव मृत्यु भी गुणको प्राप्त न होवें, मैं अपनेको मन्त्ररूपा
वाणीके जलसे अन्तर्धान करता हूँ अत एव जैसे लोकमें जलमें
छिपे हुए प्राणीको कोई नहीं देख पाता, इसी प्रकार पाप आदि
की बाधासे रहित रहनेके लिये मैं मन्त्रमय जलसे अपनेको रक्षित
करता हूँ ॥ २६ ॥

दशमी ॥

अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां
मृत्युपाशान् ।

व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्रं प्राणा मय्या यत-
न्ताम् ॥ ३० ॥

अग्निः । मा । गोप्ता । परि । पातु । विश्वतः । उद्यन् । सूर्यः ।
नुदताम् । मृत्युपाशान् ।

विउच्छन्तीः । उषसः । पर्वताः । ध्रुवाः । सहस्रम् । प्राणाः । मयि ।
आ । यतन्ताम् ॥ ३० ॥

अग्निः अङ्गनादिविशिष्टो देवो गोप्ता स्वाश्रितरक्षकः अथ वा
मम भयेभ्यो गोप्ता सन् विश्वतः सर्वतः यतोयतो भयं भवति
तेभ्यः सर्वेभ्योपि मा परि पातु परितो रक्षतु । तथा सूर्यो

देवः उद्यन् उदयसमय एव मृत्युपाशान् मृत्योर्मारकस्य देवस्य ये
पाशाः सर्पाग्निव्याघ्रकण्टकादिरूपा वितताः सन्ति तान् सर्वान्
नुदताम् अपसारयतु । यथा ते मां न स्पृशन्ति तथा करोतु । अत्र
उद्यन्सूर्यो नुदताम् इत्यभिधानात् अग्निर्मा गोप्ता परि पात्विति
अग्निविषयपरिपालनप्रार्थना उदयात्पूर्वकालीनरात्रिविषया वेदि-
तव्या । तथा व्युच्छन्तीः व्युच्छन्त्यः । ❀ उद्धी विवासे । विवासो
वर्जनम् ❀ । नैशस्य तमसो निवारयिष्य उषसः उषोदेवता उदयात्
पूर्वकालाभिमानिन्यः । ❀ दिवसानां बाहुल्यम् अपेक्ष्य उषस
इति बहुवचननिर्देशः ❀ । तथा ध्रुवाः निश्चलाः स्थिराः पर्वताः
पर्ववन्तः शैला हिमवदादयश्च । मृत्युपाशान् नुदन्ताम् इति यो-
ज्यम् । माम् अनुगृह्णन्तिवति वा शेषोऽध्याहर्तव्यः । तेषाम् अग्न्या-
दीनाम् अनुग्रहात् सहस्रं प्राणाः । सहस्रम् इति अपरिमितनाम ।
प्राणस्य व्यापारभेदेन आनन्त्याद् अपरमितत्वम् । ते मयि आयु-
ष्कामे आ सर्वतो यतन्ताम् चेष्टां कुर्वन्तु । अथ वा प्राणसंवाद-
श्रुतिषु इन्द्रियाणामपि प्राणशब्दव्यवहार्यत्वश्रवणात् “सप्त प्राणाः
प्रभवन्ति” [तै० आ० १०. १०. १] “नव वै प्राणा नाभिर्दशमी”
[तै० ब्रा० १. ३. ७. ४] इत्यादौ च चक्षुरादीन्द्रियाणा-
मपि प्राणशब्दव्यवहारात् तेषामपि स्थैर्यस्य मुख्यप्राणवदेव आशा-
स्यत्वात् तज्यापारबाहुल्यमपि अपेक्ष्य सहस्रं प्राणा मया यतन्ताम्
इत्युक्तम् ॥

श्रीमद्राजाधिराजराज-परमेश्वर-श्रीबीहरिहरमहाराजसा-

आज्यधुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते अथर्ववेदार्थ-

प्रकाशे सप्तदशकाण्डं समाप्तम् ॥

अग्निदेव अपने आश्रितकी रक्षा करने वाले हैं, वह जहाँ २
से भय प्राप्त होनेकी आशंका हो तहाँ चारों ओरसे मेरी रक्षा
करें, और सूर्यदेव उदय होते समय ही मारक मृत्युदेवके सर्प अग्नि

४५० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

व्याघ्र कण्टक आदि फैले हुए पाशोंको दूर कर दें [यहाँ उदय होते समय विशेषण होनेसे अग्निकी प्रार्थना उदयसे पहिले समय रात्रिकी समझनी चाहिये] रात्रिके अन्धकारको दूर करनेवाली उदयसे पूर्व, समयकी अभिमानिनी देवता उषा देवता, निश्चल हिमवान् आदि पर्वत मृत्युके पाशोंको दूर करें वा मुझ पर अनुग्रह करें, इन अग्नि आदिके अनुग्रहसे प्राण सहस्रों बार व्यापार करता हुआ मुझ आयुष्काममें चेष्टा करता रहे । अथवा—[प्राण-सम्वाद श्रुतियोंमें इन्द्रियोंका भी प्राण शब्दसे व्यवहार किया है, यथा—“सप्त प्राणाः प्रभवन्ति ।—सात प्राण प्रकट होते हैं” (तैत्तिरीय आरण्यक १० । १० । १) और “नव वै प्राणा नाभिर्दशमी । प्राण नौ हैं नाभि दशमी है” (तैत्तिरीयब्राह्मण १ । ३ । ७ । ४) इत्यादिमें चक्षु आदि इन्द्रियोंका प्राण शब्दसे उल्लेख किया है और उनकी स्थिरताकी भी मुख्य प्राणकी समान ही आवश्यकता है अत एव उनके सहस्रों व्यापारोंको लक्ष्यमें रख कर कहा है, कि वे] इन्द्रियों सहस्रों बार मुझमें चेष्टा करती रहें ३०

तृतीय सूक्त समाप्त

प्रथम अनुवाक समाप्त (५४०)

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका सप्तदशकाण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

संपादक ऋ० कु० प० रामचन्द्रशर्माकृत

भाषानुवादसहित

समाप्त.

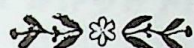
इति सप्तदशं काण्डं समाप्तम् ॥

—*—

❀ श्रीहरिः ❀

अथर्ववेदसंहिता

अष्टादश-काण्डम्



सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निश्वासितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत्।

निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

वेद जिनके निःश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके अनुसार सकल जगत्की सृष्टि की है, मैं उन विद्यातीर्थ महेश्वरको प्रणाम करता हूँ ॥

“ओ चित् सखायम्” इति अष्टादशकाण्डे चत्वारोऽनुवाकाः। तत् काण्डं सकलं पितृमेधे शवदाहे अग्निप्रदानानन्तरं समनवैकादशादिविषमसंख्याका ब्राह्मणा पूर्वाभिमुखोपविष्टा जपेयुः ॥

तत्रैव कर्मणि सारस्वतहोमानन्तरं सर्वे बान्धवा अनेन काण्डेन सकलेन प्रेतम् उपतिष्ठेरन् । तथा च कौशिकेन सूत्रितम् । [“सर्वैरुपतिष्ठन्ति” इति । कौ० ११. २]

तत्र प्रथमेऽनुवाके षट्सूक्तानि । आदितश्चतुर्णां सूक्तानां काण्ड-प्रयुक्त एव विनियोगः । तेषु प्रथमेन सूक्तेन द्वितीये च सूक्ते “अथा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्” इत्यन्तेन च वैवस्वतयोर्यमयम्योः संभोगार्थः संवादः प्रतिपादितः । तत्र यमी मिथुनार्थं स्वभ्रातरं यमं बहुप्रकारं प्रार्थितवती । स च स्वभगिनीगमनस्य अत्यन्तम् अनुचित्वाद् नानाविधाभियुक्तिभिस्तां प्रत्याचख्यौ । तयोर्यम-

४५२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

यम्योः सरण्यां विवस्वतः सकाशाद् युगलभावेनोत्पत्तिः उपरि-
ष्ठात् “त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति” [५३] इत्याख्यायिकया
प्रपञ्चयिष्यते ॥

“ओ चित् सखायम्” इस अष्टादश काण्डमें चार अनुवाक
हैं। इस सारे कांडका पितृमेधके शवदाहमें अग्निप्रदानके अनन्तर
सात नौ ग्यारह आदि विषम संख्याके ब्राह्मण पूर्वकी ओर मुख
कर बैठ कर जप करें।

तहाँ ही कर्ममें सारस्वत होमके अनन्तर सब बांधव इस पूर्ण
काण्डसे प्रेतके समीप बैठें। इसी बातको कौशिकसूत्रमें कहा
है, कि— “सर्वैरुपतिष्ठन्ति” (कौशिकसूत्र ११ । २) ॥

इसके प्रथम अनुवाकमें छः सूक्त हैं। आरम्भसे चार सूक्तोंका
काण्डप्रयुक्त विनियोग होता है। इनमें प्रथम सूक्तसे और दूसरे
सूक्तमें “अथा कृणुष्व सम्बिदं सुभद्राम्” मन्त्र तक विवस्वानकी
सन्तान यम और यमीके संभोगार्थ सम्वादका वर्णन किया गया
है। इनमें यमीने मिथुनभावके लिये अपने भ्राता यमसे अनेक
प्रकारसे प्रार्थना की है। और उसने स्वभगिनीगमनके अत्यन्त
अनुचित होनेसे अनेक प्रकारकी युक्तियोंसे उससे निषेध किया
है उन यम यमीकी सरण्युमें विवस्वानसे युगलभावमें उत्पत्ति
“त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति” (५३) से कही जावेगी।

तत्र प्रथमसूक्ते प्रथमा ॥

ओ चित् सखायं सख्या वष्ट्यां तिरः पुरु चिदण्वं
जगन्वान् ।

पितुर्नपातमादधीत वेधा अधि क्षमिं प्रतरं दीध्यानः १

ओ इति । चित् । सखायम् । सख्या । वष्ट्याम् । तिरः । पुरु ।
चित् । अण्वम् । जगन्वान् ।

पितुः । नपातम् । आ । दधीत । वेधाः । अधि । क्षमि । प्रजा-
रम् । दीध्यानः ॥ १ ॥

इदं यस्या वचनम् । अहं सखायम् समानेख्यानं यमम् । यैव
विष्वत्पुत्रलक्षणा ख्यातिर्यमस्य सैव यस्या अपीति ख्याते
समानत्वात् सखित्वं यमस्य । अथ वा गर्भवासप्रभृति युगलत्वेन
अवस्थानात् सखित्वम् । तादृशं यमं सखा सखित्वेन संभोग-
विषयैरुपनस्कृतलक्षणेन निमित्तेन ओ चित् । चिदिति पूरणः ।
आ उ इति निपातद्वयसमुदायात्मकम् ओ इत्येकं पदम् । आ वृ-
त्याम् आवर्तयामि । अस्मदनुकूलं करोमीत्यर्थः । अथ वा स्वम-
नीषितस्य अविहितरूपत्वात् लज्जया स्वयं तम् आवर्तयितुम्
अशक्नुवाना ब्रूते सखाया आह्वानोपायभूतया आ वृत्याम् इति ।
इदानीं संभोगोचितान्तर्हितप्रदेशप्रदर्शनपूर्वकं तत्संभोगम् आशास्ते-
तिरः पुरु विद् इत्यादिना । तिरस्तिरोहितं पुरु विस्तीर्णम् अर्ण-
वम् मेघं समुद्रं वा जगन्वान् गच्छन् । अत्र समुद्रशब्देन तन्मध्य-
वर्ती द्वीपो वा लक्षयितव्यः । संभोगस्य अन्तर्हितदेशाभावेन यमः
प्रतिपेत्स्यतीति बुद्ध्या एवम् आह । एवं लब्धाभिमतप्रदेशो यमः
पितुर्विष्वतो नपातम् नप्तारं पौत्रं यस्याम् उत्पन्नः पुत्रस्तत्पितु-
र्विष्वतो नप्ता भवति । अथ वा नपातम् न पातयितारं कुलस्य
प्रवर्तकम् इत्यर्थः । तादृशं पुत्रं वेधाः विधाता पुत्रस्य उत्पादको
यमो मयि आ दधीत गर्भं किम् आदध्यात् । गर्भम् आधातुं भ्रात्रैव
भाव्यम् इति को निर्वन्ध इत्याशङ्क्य तस्यातिशयम् आह अधि
क्षमीति । ❀ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ❀ । क्षमायाम् इत्यर्थः ।
प्रतरम् प्रकृष्टतरं दीध्यानः दीप्यमानः । न केवलं स्वकीय एव
लोके तस्य प्रकाशः किं तु भूमावपि अतिशयितप्रकाश इत्यर्थः ।
सर्वपाणिसंहाराधिकारावस्थितत्वाद् भूलोके तस्य ख्यातिः सर्व-

४५४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

प्राणिप्रसिद्धा । यद्वा दीध्यानः मयि गर्भम् आधातुम् उपायं
 ध्यायन्निति व्याख्येयम् । ❀ वृत्त्याम् इति । वृत्तु वर्तने । अस्मात्
 लिङ् । व्यत्ययेन परस्मैपदम् । “बहुलं छन्दसि” इति शपः श्लुः ।
 यद्वा अस्माद् यङ्लुगन्तात् लिङि “चर्करीतं पदम् अदादिवच्च
 द्रष्टव्यम्” इति परस्मैपदम् । जगन्वान् । गमेर्लिटः क्वसुः । “विभाषा
 गमहनविदविशाम्” इति इटो विकल्पितत्वाद् अत्र इडभावः ।
 “म्बोश्च” इति मकारस्य नत्वम् ❀ ॥

[यह यमीका वाक्य है] मैं समान ख्याति वाले सखा + यम
 को [संभोगविषयैकमनस्कत्वरूप] सखिभावसे अपने अनुकूल
 करती हूँ [अथवा-अपने मनोरथके अविहित होनेसे लज्जासे
 स्वयं उसको न कह सकती हुई आह्वानके उप यरूप मित्र शब्द
 का उच्चारण करती हूँ, अब संभोगोचित अन्तर्हित प्रदेशको
 दिखाती हूँ] कि-तिरोहित विस्तीर्ण समुद्रतटवर्ती द्वीपमें जाते
 हुए यम पिताका पतन करने वाले पुत्रको मुझमें स्थापित करें
 आपकी ख्याति अपने ही लोकमें नहीं है, किन्तु सर्वप्राणिसंहा-
 रकके अधिकार पर स्थित होनेसे भूमि पर भी है अत एव आप
 प्रकृष्टरूपसे दमकते रहते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न ते सखां सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विष्टुरूपा
 भवति ।

महस्पुत्रामो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि
 ख्यन् ॥ २ ॥

+ विवस्वानके पुत्ररूपमें जो प्रसिद्धि यमकी है वही विवस्वत्पुत्री
 होनेसे यमीकी है । अथवा गर्भवास आदिमें युगलरूपसे अवस्थान
 के कारण सखित्व है ।

अष्टादशं काण्डम्

४५५)

न । ते । सखा । सख्यम् । वष्टि । एतत् । सल्लक्ष्मा । यत् ।

विषुरूपा । भवति ।

महः । पुत्रासः । असुरस्य । वीराः । दिवः । धर्तारः । उर्विया ।

परि । खचन् ॥ २ ॥

इदं यमस्य वाक्यम् । ते सखा त्वया सह समानोदरोत्पन्नत्वेन सखिभूतो यमः एतत् उक्तलक्षणं भ्रातृस्वस्रोः संभोगात्मकं सख्यं न वष्टि न कामयते । सख्यं कुतो वा न कामयत इति तत्र कारणम् आह । यत् यस्मात् सल्लक्ष्मा समानम् एकमेव लक्ष्म एकोदरत्वलक्षणं यस्याः सा तथोक्ता सहजा सती विषुरूपा स्वसूरूपं परित्यज्य भार्यात्वलक्षणरूपवती भवति भवेत् अतो न वष्टीति संबन्धः । यद्वा वाक्यद्वयम् । यत् यतः सल्लक्ष्मा अतो न सख्यं वष्टि । लोके विषुरूपैव भवति भवति । भार्येति शेषः । यत एवम् अत इति पूर्वत्र संबन्धः । न केवलं मम कामनाभावः किं तु देवा अपि निराकरिष्यन्तीत्याह महस्पुत्रास इत्यादिना । महः महतो महत्त्वोपेतस्य असुरस्य प्रकृष्टासोर्वलवतो रुद्रस्य पुत्रासः पुत्रा मरुतः । ते विशेष्यन्ते । वीराः विविधम् ईरयन्ति प्रेरयन्ति शत्रून् इति वीराः विक्रमवन्तः । दिवः अलोकस्य धर्तारः धारकाः पालकाः उर्विया उरवो महान्तो व्याप्ताः ते परि खचन् परिवदन्ति । निराकरिष्यन्तीत्यर्थः । ❀ खचाप्र कथने । “अस्यतिवक्तिखचातिभ्योङ्” इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ ॥

[यह यमका वाक्य है, कि—] मैं समान उदरसे उत्पन्न होने के कारण तेरा मित्र हूँ परन्तु यह मित्र भाई बहिनके संभोगात्मक मित्रभावकी कामना नहीं करता है, उसका कारण यह है, कि—तू एक उदर रूप समान लक्षण वाली होकर भार्यात्व लक्षणवाली

वनना चाहती है अतः मैं ऐसे मित्रभावकी कामना नहीं करता,
[अब यह कहना है, कि-मैं ही केवल कामना नहीं करता हूँ
यह बात नहीं है, किन्तु देवता भी इस बातकी निंदा करेंगे] महत्त्व-
गुण युक्त प्रकृष्ट प्राणवली रुद्रके पुत्र कि-जो अनेक प्रकारसे
शत्रुओंको खदेड़ते हैं द्युलोकको धारण करते वे पालक महान्
मरुत् भी इस बातकी निन्दा करेंगे ॥ २ ॥

तृतीया ॥

उ॒श॒न्ति॑ घा॒ ते अ॒मृ॒ता॒स ए॒तदे॒कस्य॑ चि॒त्त्य॒जसं॑ म॒र्त्यस्य॑
नि॒ ते॒ मनो॑ मन॒सि धा॒य्यस्मे॑ ज॒न्युः पति॑स्त॒न्वमा
वि॒विश्याः॑ ॥ ३ ॥

उ॒श॒न्ति॑ । घा॒ । ते । अ॒मृ॒ता॒सः । ए॒तत् । ए॒कस्य॑ । चि॒त् । त्य॒ज॒स॒म् । म॒र्त्यस्य॑ ।

नि॒ । ते॒ । मनः॑ । मन॒सि । धा॒यि । अ॒स्मे इति॑ । ज॒न्युः । पतिः॑ ।
त॒न्व॒म् । आ । वि॒वि॒श्याः॑ ॥ ३ ॥

इदं यमीवचनम् । हे यत् रुद्ररूपुत्रा निराकरिष्यन्तीति मा
वादीः । किं तु ते अमृतासः अमृता देवा मरुतः एतत् मया प्रार्थ्य-
मानं कर्म उशन्ति घ । घेति प्रसिद्धौ । कामयन्त एव । एतच्छ-
ब्दार्थम् आह । एकस्य असाधारणस्य मर्त्यस्य मनुष्यस्य पुत्रस्य
त्यजसम् त्यागंगर्भान्निर्गमनम् उत्पत्तिम् उशन्तीति संबन्धः । यत्
एवम् अतस्ते मनः अस्मे अस्माकं मनसि नि धायि निधीयताम् ।
आवयोर्मनः एकमेवास्त्वित्यर्थः । अनन्तरं जन्युः अपत्यस्य जन-
यिता त्वं पतिः । भूत्वेति शेषः । भ्रातृभावं परित्यज्य पतिः सन्
तन्वम् तनूं मामकीनाम् आ विविश्याः आविश प्रविश । यद्वा

तत्र तनूं मयि आवेशय । संभोगं कुर्वित्यर्थः । ❀ विश प्रवेशने ।
लिङि “बहुलं छन्दसि” इति शपः श्लुः ❀ ॥

[यह यमीका वचन है, कि-हे यम! रुद्रके पुत्र निन्दा करेंगे यह मत कहो क्योंकि-] वे अमृत देवता मरुत् मेरे प्रार्थित इस कर्मकी कामना करते हैं अर्थात् वे असाधारण मर्त्यके त्यागकी-गर्भसे उत्पत्तिकी-कामना करते हैं, अत एव आप अपने मनको मुझमें स्थापित करिये । अर्थात् हमारा मन एक होजावे । तदनन्तर आप सन्तानके उत्पादक पति बन कर भ्रातृभावको त्याग कर मेरे शरीरमें प्रवेश करिये अर्थात् संभोग करिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

न यत् पुरा चक्रुः कद्ध नूनमृतं वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्सव्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि
तन्नौ ॥ ४ ॥

न । यत् । पुरा । चक्रुः । कत् ह । नूनम् । ऋतम् । वदन्तः । अनृतम् । रपेम ।

गन्धर्वः । अप्सु । अप्या । च । योषा । सा । नौ । नाभिः ।
परमम् । जामि । तत् । नौ ॥ ४ ॥

इदं यमस्य वाक्यम् । यत् यस्मात् कारणात् पुरा इतः पूर्वस्मिन् काले न चक्रुः एतादृशं कर्म भगिनीसंभोगलक्षणं न चक्रुः न कृतवन्तः स्मः अतः कद्ध कस्मात् खलु कारणात् नूनं निश्चयम् । किमर्थं करिष्याम इति शेषः । तदेव प्रकारान्तरेणाह । ऋतम् सत्यं यथार्थं वदन्तः ब्रुवाणा वयम् अनृतम् असत्यम् अयथार्थं कथं रपेम स्पष्टं ब्रूमः । “यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा

वदति तत् कर्मणा करोति" इति [तै० सं० ६. १. ७. ४] श्रुतेः असत्याभिधाने अङ्गीकृते पश्चात् तदाचरणमपि भवेदेवेति बुद्ध्या असत्यवदनमपि न कुर्म इति प्रतिज्ञाया अभिप्रायः । अथ वा संभोगो मास्तु तद्विषयं शृङ्गारकवचनं वा कर्तव्यम् इत्याशङ्क्य तदपि निराक्रियते ऋतम् इत्यादिना । उक्तनिषेधसिद्धये निषिध्यमानस्यार्थस्य प्रतिकूलताम् आह गन्धर्व इत्यादिना । गाम् उदकं धारयतीति गन्धर्वः आदित्यः अप्सु । अन्तरिक्षनामैतत् । अनाश्रये स्थाने अस्य शब्दस्य व्यवहारः । अन्तरिक्षे । साक्षित्वेन वर्तत इति शेषः । तथा अप्या [अन्तरिक्षस्था सा प्रसिद्धा योषा] च आदित्यभार्या च अन्तरिक्षे वर्तते । सा भार्या नौ आवयोः नाभिः उत्पत्तिस्थानम् उभयोरपि तत् एवोत्पत्तेः । तत् मिथुनं परमं निरतिशयं नौ आवयोः जामि बन्धुभूतम् । अत्र भार्याया नाभित्वेभिहिते तत्पतिर्विस्वानपि उक्त एव अतस्तस्य पुनरभिधानं न । यद्वा मातुरुदरादेव गर्भनिर्गमात् सा नौ नाभिरिति तस्या एवाभिधानम् । इतरेषां बन्धुत्वस्य मातापितृसंबन्धतत्त्वपेक्षत्वात् तयोर्वन्धुत्वस्य परमत्वम् । यतः पितरावभिन्नौ तौ च संनिहितौ अतस्त्वदभीष्टं न कार्यम् इति तात्पर्यम् ॥

[यह यमका वाक्य है, कि—] जिस भगिनीसंभोगरूप कर्मको हमने पहिले नहीं किया है तो अब किस कारणसे उसको करें [इसी बातको दूसरी रीतिसे कहते हैं, कि—] हम सत्य बोलने वाले हैं तो फिर अयथार्थ बातको किस प्रकार स्पष्टरूपसे कहें । तात्पर्य यह है, कि—“यद्धि मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति ।—जिस बातका मनसे चिंतन करता है, उसी को वाणीसे कहता है और उसीको कर्मरूपमें करता है” (तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । ७ । ४) की श्रुतिके अनुसार असत्य बात के अङ्गीकार करने पर उसका आचरण भी हो सकता है अतः

हम बाणीसे भी इस बातको नहीं कह सकते । और एक बात है, कि-जलको धारण करने वाले सूर्यदेव अन्तरिक्षमें साक्षीरूप में विराजमान हैं और आदित्यकी भार्या भी अन्तरिक्षमें है वह हम दोनोंका उत्पत्ति स्थान है और वे हमारे परमबन्धु हैं अत एव अभिन्न माता पिता वाले होनेके कारण और माता पिताके सामने होनेसे तेरा अभीष्ट सिद्ध नहीं होसकता ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

गर्भे नु नौ जनिता दंपती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्व-
रूपः ।

नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेदनावस्य पृथिवी उत
द्यौः ॥ ५ ॥

गर्भे । नु । नौ । जनिता । दंपती इति दम्पती । कः । देवः ।

त्वष्टा । सविता । विश्वऽरूपः ।

नकिः । अस्य । प्र । मिनन्ति । व्रतानि । वेद । नौ । अस्य ।
पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ५ ॥

यस्या वचनम् इदम् । एवम् एकयोनिजत्वेन दांपत्ये निराकृ-
तेपि तत् पूर्वमेव सिद्धम् इत्याह । नौ आवां गर्भे नु गर्भ एव जनिता
जनयिता अपत्यस्य स्रष्टा देवः दंपती दांपत्यवन्तौ कः अकः कृत-
वान् ॥ करोतेर्लुङि “मन्त्रे घस०” इत्यादिना च्छेर्लुक् ॥
क इति आकाङ्क्षायां आह । त्वष्टा मानुदरस्थितस्य रेतसः
अवयवसंनिवेशकर्ता विश्वकर्मा देवः सविता प्रसविता सर्वस्य
अनुज्ञाता विश्वरूपः विश्वं रूप्यते येन सः विश्वस्रष्टा विश्वा-
त्मको वा । एवं महानुभावो देवः । दंपती करिति पूर्वत्र

संबन्धः । यस्माद् उक्तमहिमोपेतः अतः अस्य त्वष्टुः सवितुः व्रतानि तत्कृतानि कर्माणि नकिः प्र मिनन्ति न हिंसन्ति न केपि अतिक्रामन्ति । ❀ मीज् हिंसायाम् । “प्वादीनां ह्रस्वः” इति ह्रस्वः । “श्राभ्यस्तयोरातः” इति आकारलोपः । ❀ एतत् सर्वं स्वकार्यार्थं कल्पितम् इति आशङ्क्यायाम् आह वेद नौ इति । नौ आवयोः अस्य । ❀ कर्मणि षष्ठी ❀ । इदं कर्म गर्भ एव दंपतित्वलक्षणम् । यद्वा अस्य त्वष्टुर्देवस्य कर्म दंपतिकरणलक्षणं कर्म । पृथिवी देवी उत अपि च द्यौर्देवता वेद उभे अपि जानीतः । तस्माद् एतद् यथार्थम् इत्यर्थः ॥

[यह यमीका वचन है, कि-इस प्रकार एकयोनिज होनेके कारण दाम्पत्यके निराकृत होने पर भी वह पहिलेसे ही बना हुआ है यथा-] अपत्यकी सृष्टि करने वाले देवने गर्भमें ही हम दोनोंको दाम्पत्यसम्बन्ध वाला कर दिया है, और माताके उदर में स्थित वीर्यको अवयवरूपमें बनाने वाले विश्वकर्मा सर्वभेरक त्वष्टा देवताने भी हमको दाम्पत्यबन्धनमें बाँध दिया है, ऐसे देवके किये हुए कर्मोंको कौन मेट सकता है [इस सबकी तू अपने कार्यकी सिद्धिके लिये कल्पना कर रही है, इस आशंकासे कहती है, कि-] हमारे इस त्वष्टादेवके गर्भमें ही दम्पतिकरणरूप कर्मको पृथिवी देवी और द्यौ देवता ये दोनों जानते हैं अत एव यह यथार्थ है ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो
दुर्हणायून् ।

आसन्निषून् ह्रस्वसो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत्
स जीवात् ॥ ६ ॥

कः । अत्र । युङ्क्ते । धुरि । गाः । ऋतस्य । शिमीवतः । भामिनः ।
दुःहृणायून् ।

आसन्ऽइषून् । हृत्सुऽअसः । मयऽभून् । यः । एषाम् । भृत्याम् ।
ऋणधत् । सः । जीवात् ॥ ६ ॥

इदं यमस्य वाक्यम् । यस्या असत्यमेवोक्तम् इत्यभिप्रेत्य
सत्याभिधानस्य दुर्लभताम् आह । अत्र इदानीम् अस्मिन् काले
ऋतस्य सत्यस्य धुरि वहनव्यापारे गाः बलीवर्दस्थानीया वाचः
स्वीयाः को युङ्क्ते को योजयति । न कोपीत्यर्थः । गोशब्दस्य
लिङ्गद्वयसाधारणत्वाद् उत्तरत्र गोविशेषणानि सर्वाण्यपि पुंलिङ्ग-
तया निर्दिष्टानि । शिमीवतः । शमीति कर्मनाम । छान्दसम्
इत्थम् । कर्मवतः कार्यपर्यवसायिनः । केवलायाः सत्योक्तेः सु-
लभत्वात् । भामिनः तेजस्विनः लोके सत्यवादा एव जयन्ति
“सत्यमेव जयति नानृतम्” इत्यादिश्रुतेः [मु० ३. १. ६] ।
दुर्हृणायून् । ❀ हृणीयतिः क्रोधकर्मा ❀ । क्रोधरहितान् इत्यर्थः ।
यद्वा लज्जारहितान् न हि सत्यवदनविषये क्रोधलज्जे स्तः ।
❀ हृणीङ् । लज्जायाम् कण्ठ्वादित्वाद् यक् । अस्माद् उण् प्रत्ययः ।
अतो लोपे सति वर्णव्यापत्त्या आकारः । मृग्यवादिर्वा द्रष्टव्यः ❀ ।
आसन्निषून् आसन् आस्ये इष्यमाणान् तस्मात् प्रेर्यमाणान् सर्वदा
सत्यविषयसंकल्पवतोपि मुखतः सत्यं वक्तुम् अशक्यम् इत्यभि-
प्रायेण एवम् उच्यते । ❀ “पदन्०” इत्यादिना आस्यशब्दस्य
आसन् आदेशः । इष गतौ इत्यस्मात् इषेः किञ्च [उ० १. १३]
इति उपत्ययः । स च कित् ❀ । हृत्स्वसः हृदयेषु हृदयेभ्यः
अस्यमानान् श्रोतॄणां हृदयेषु क्षिप्यमाणान् वा कण्ठाद् उपरि नि-
र्गच्छन्तः शब्दाः संमता लोके हृदयपूर्वकास्तु दुर्लभा इत्यभिप्रायेण

हृत्स्वस इत्युक्तम् । ❀ असेर्व्यत्ययेन कर्मणि क्विप् “तत्पुरुषे कृति बहुलम्” इति सप्तम्या अलुक् ❀ । मयोभून् । मय इति सुख-
नाम । सुखस्य भावयितृन् सत्याभिर्वाग्भिः सुखं सर्वेषां भवति
असत्याभिस्तु असुखं भवतीति लोके सुप्रसिद्धम् एतत् । यः पुरुषो
महान् एषाम् उक्तविशेषणयुक्तानां गवां भृत्याम् भृतिं भरणम् ।
❀ “भृजोऽसंज्ञायाम्” इति क्यप् । तुगागमः ❀ । ऋणधत् बर्ध-
येत् । सत्यवचनम् अभिवृद्धं कुर्यात् । ❀ ऋधु वृद्धौ । अस्मात्
लेटि अडागमः ❀ । स जीवात् चिरकालं जीवति सत्याभिधान-
स्य माहात्म्यात् । ❀ जीवात् । लेटि आडागमः ❀ ॥

[यह यमका वाक्य है, यमीने असत्य ही कहा है, इस
वातको लक्ष्यमें रखकर उन्होंने सत्य भाषणकी दुर्लभताका वर्णन
किया है, कि-] आज कल सत्यके बोझमें अपनी वाणीरूप
बैलोंको कौन लगाता है अर्थात् कोई भी सत्य नहीं बोलता है ।
[कार्यको पूर्ण करने वाले] कर्मवान्, [“सत्यमेव जयति
नानृतम् ।—सत्यकी ही विजय होती है असत्यकी जय नहीं
होती” इस मुण्डक ३ । १ । ६ के अनुसार सत्यवादी ही
विजय पाते हैं अत एव] तेज देने वाले तेजस्वी, [सत्य कहनेमें
क्रोध और लज्जा नहीं आती अत एव] क्रोध और लज्जासे
शून्य [सत्य संकल्प करने वाला भी मुखसे सत्य नहीं कह
सकता अत एव] मुखसे प्रेरित अपने हृदयसे कहे जानेके
कारण श्रोताओंके हृदयको प्राप्त होने वाले और सुख देने वाले
[क्योंकि—सत्य वचनोंसे सबको सुख मिलता है और असत्य
वचनोंसे दुःख मिलता है, यह बात लोकमें प्रसिद्ध ही है] सत्य
वचनोंके भरणको जो पुरुष बढ़ाता है, वह सत्यभाषणके माहात्म्य
से चिरकाल तक जीवित रहता है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

को अस्य वेद प्रथमस्याहः क ई ददर्श क इह प्र वोचत् ।

बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कटुं ब्रव आहनो वीच्या नृन्

कः । अस्य । वेद । प्रथमस्य । अहः । कः । ईम् । ददर्श । कः ।

इह । प्र । वोचत् ।

बृहत् । मित्रस्य । वरुणस्य । धाम । कत् । ऊं इति । ब्रवः ।

आहानः । वीच्या । नृन् ॥ ७ ॥

इदं यस्या वचनम् । अस्य प्रथमस्य अहः । ❀ कर्मणि पठ्यौ ❀ । प्रथमम् अहः । आवयोः संगमदिवसम् इत्यर्थः । तत् को वेद जानाति । न कोपीत्यर्थः । किं च ईम् इदं कर्म इदानीं वा को ददर्श पश्येत् । न कश्चित् पश्यतीत्यर्थः । तथा इह एतद्विषये कः पुमान् दृष्टम् अर्थं प्र वोचत् प्रब्रूयात् दृष्टम् अर्थम् अन्यस्मै कथयेत् । सोऽपि नास्त्येव । ज्ञाता नैव किल । द्रष्टा कथयिता च दूरापास्तावित्यभिप्रायः । ज्ञानदर्शनप्रवचनानाम् अविषयं कालं संभावयति बृहदित्यादिना । मित्रस्य देवस्य धाम स्थानम् । अहरित्यर्थः । तद् बृहत् प्रभूतम् । तथा वरुणस्य तमोवारकस्य देवस्य धाम रात्र्याख्यम् तच्च बृहत् । अहोरात्रयोर्मध्ये कतमश्चन समयः संयोगाय संपत्स्यत इत्यभिप्रायः । तस्मात् हे आहनः । ❀ आङ्पूर्वात् हन्तेः असुन् ❀ । आहन्तः अस्मदभिमतस्य अकरणेन क्लेशकारिन् कत् कथं वीच्याः विविधम् अश्रन्तः गच्छन्तः संचरन्तो नृन् नराः । ❀ जसः स्थाने शस् ❀ । ते सन्तीति कथं ब्रवः ब्रूयाः ब्रवीषि ॥

[यमी कहती है, कि—] प्रथम दिनको अर्थात् हमारे सङ्गमके

४६४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

दिनको कौन जानरह है कोई नहीं जान सकता, और इस हमारे कर्मको कौन देख रहा है अर्थात् कोई नहीं देख रहा है । फिर कौन पुरुष इस देखी हुई बातको दूसरेसे कहेगा अर्थात् जब कोई जानने वाला नहीं है तो देखने और कहने वाला कहाँसे आवेगा । और दिन तो भिन्न देवताका स्थान है वह भी विशाल और रात्रि तमोनिवारक देवका स्थान है वह भी विशाल है, अभिप्राय यह है, कि-दिन और रात्रिके समयमेंसे कोई समय भोगके लिये हो ही जावेगा । अत एव हे मेरी अभिलाषाको न करनेसे मुझे क्लेश देने वाले यम ! तुम अनेक प्रकारसे विचरण करने वाले मनुष्योंके विषयमें कैसे कहते हो ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

यमस्य॑ मा॒ यम्ये॑१ काम॒ आगन्त॑समाने॒ योनौ॑ सह॒
शेय्या॑य ।

जाये॑व॒ पत्ये॑ तन्व॑ रि॒रि॒च्यां॒ वि चि॑द् वृ॒हेव॑ र॒थ्ये॑व च॒क्रा ८
यमस्य॑ । मा । यम्य॑म् । कामः॑ । आ । अगन् । समा॒ने । यो॒नौ ।
सह॑ऽशेय्याय ।

जाया॑ऽइव । पत्ये॑ । तन्व॑म् । रि॒रि॒च्याम् । वि । चि॒त् । वृ॒हेव॑ ।
र॒थ्या॑ऽइव । च॒क्रा ॥ ८ ॥

इदमपि यमीवचनम् । मा मां यम्यम् यमीं यमस्य कामः यमविषयोभिलाषः आगन् आगमत् । ❀ यम्यम् इति । “वा छन्दसि” इति पूर्वरूपत्वाभावे यण् आदेशः । “उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य” इति यणः स्वरितत्वम् । आगन्निति । गमेलुङि “मन्त्रे घस०” इति च्लेलुक् । “हन्ड्या०” इत्यादिना

तिलोपे “मो नो धातोः” इति नत्वम् ❀ । कामं विशिनष्टि ।
 समाने साधारणे योनौ एकस्मिन् शयने सहशय्याय सहशयना-
 र्हाय । ❀ शयं शयनम् । “अचो यत्” इति भावे यत् । “तद्
 अर्हति” इति यत् ❀ । यद्वा शय्याम् अर्हतीति शय्यः तस्मै ।
 ❀ “तद् अर्हति” इति यत् । एकारोपजनश्छान्दसः ❀ । तदर्थं
 तन्वम् तनूं मामकीनारिरिच्याम् पृथक् कुर्याम् । तदधीनां कुर्याम्
 इत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः जायेव पत्ये इति । यथा स्वकीयाय
 भर्त्रे जाया पत्नी स्वकीयां तनुं पत्यधीनां करोति एवम् इत्यर्थः ।
 तस्मिन् यथा विस्रम्भेण कामोपभोगः एवं करोमीत्यर्थः । अन-
 न्तरं वि वृहेव आवां संश्लेषं करवाव । इतरेतरयोः संश्लेषो
 विवर्हा । तत्रापि दृष्टान्तोभिधीयते । रथ्येव चक्रा रथ्यया रथयो-
 ग्यया पदव्या सह चक्रा चक्राणि यथा वृहन्ति तद्वत् ।
 ❀ रथ्येति । “तद् वहति रथयुगप्रासङ्गम्” इति यत् ❀ । अथ
 वा रथ्येव रथाधाराणि चक्राणि अक्षेण सह विवर्हा कुर्वन्ति
 तद्वद् इति व्याख्येयम् ॥

[यह भी यमीका वचन है, कि-] मुझ यमीको यमकी अभि-
 लाषा होगई है, मैं साधारण शय्या पर एक साथ शयन करने
 योग्य यमके लिये जैसे जाया अपने पतिके लिये शरीरको अर्पण
 कर देती है इसी प्रकार, अपने शरीरको उनके अर्पण करूँ फिर
 जैसे रथके चलने योग्य मार्गमें पहिये संश्लेष करते हैं इसी प्रकार
 परस्पर संश्लिष्ट होऊँ ॥ ८ ॥

नवमी ॥

न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पर्श इह ये चरन्ति ।
 अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ६

४६६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

न । तिष्ठन्ति । न । नि । मिषन्ति । एते । देवानाम् । स्पशः ।

इह । ये । चरन्ति ।

अन्येन । मत् । आहनः । याहि । तूयम् । तेन । वि । वृह । रथ्या-

ऽइव । चक्रा ॥ ६ ॥

इह अस्मिन् लोके ये देवानां स्पशः चराः चरन्ति भ्रमन्ति
तेषां मध्ये एके केचनापि न तिष्ठन्ति एकत्र स्थितिं न कुर्वन्ति ।
तथा न नि मिषन्ति । पद्मसंकोचनं निमेषः । तदपि न कुर्वन्ति ।
न निद्रान्तीत्यर्थः । सर्वदैव स्पशा जागरूका वर्तन्त इत्यर्थः ।
❀ स्पश इति । जसः सुः । निवन्वा द्रष्टव्यः ❀ । यत एवम्
अतः हे आहनः मत् मत्तः अन्येन सह । ❀ “एकवचनस्य
च” इति पञ्चम्या अत् आदेशः ❀ । तेन सह । रमस्वेति शेषः ।
तदर्थं तूयम् तूर्णं याहि गच्छ । तेन सह वि वृह संश्लेषं कुरु ।
रथ्येव चक्रेति दृष्टान्तवचनं व्याख्यातम् ॥

[यम कहते हैं, कि—] इस लोकमें जो देवताओंके दूत घूमते
हैं उनमें एक भी एक ही स्थान पर नहीं बैठा रहता अर्थात् वे
सर्वत्र विचरण करते हैं । और वे पलक भी नहीं मारते हैं सदा
सावधान रहते हैं अतः हे मेरे धर्ममय मनोरथको नष्ट करना चाहने
वाली ! तू मुझे छोड़ कर दूसरेके साथ रमण कर उसके पास
शीघ्रतासे जा और जैसे पहिये रथमार्गसे लिपटते हैं वा रथके
आधार चक्र जैसे अक्षसे विवर्हा करते हैं तिस प्रकार उससे
संश्लेषण कर ॥ ६ ॥

दशमी ॥

राश्रीभिस्समा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुसन्मि-
मीयात् ।

दिवा पृथिव्या मिथुना सवन्धू यमीर्यमस्य विवृहाद-
जामि ।

रात्रीभिः । अस्मै । अहःभिः । दशस्येत् । सूर्यस्य । चक्षुः । मुहुः ।
उन्मिमीयात् ।

दिवा । पृथिव्या । मिथुना । सवन्धू इति सऽवन्धू । यमीः । यमस्य ।
विवृहात् । अजामि ॥ १० ॥

इदं यमीवचनम् । अस्मै यमाय रात्रीभिः तथा अहभिः अहोभिः ।
रात्रिषु अहःसु चेत्यर्थः । सर्वदा दशस्येत् । ❀ दशस्यतिर्दान-
कर्मा ❀ । प्रयच्छतु । यजमानो हविरिति शेषः । तथा सूर्यस्य देवस्य
चक्षुः प्रकाशकं तेजः मुहुः अन्वहम् उन्मिमीयात् ऊर्ध्वं गच्छेत् ।
अस्मा अर्थायेति शेषः । सूर्योदयोपि अस्य भोगायास्त्वित्यभि-
प्रायः । ❀ दुमिञ् प्रक्षेपणे । व्यत्ययेन श्लुः दीर्घश्च ❀ । किं च
दिवा पृथिव्या च दिवा सह पृथिवी पृथिव्या सह ग्रौश्च मिथुना
मिथुने परस्परं मिथुने अविश्लिष्टे सवन्धू समानबन्धने यथा एक-
मनस्के एवं यमीः यमी । ❀ सोः सुः ❀ । यमस्य अजामिः अ-
वन्धुः स्वसृरूपबन्धुत्वरहिता सती वि वृहात् विवृहणं कुर्यात् इति
परोक्षत्वेन आत्मनो व्यपदेशः ॥

। इति अष्टादशकाण्डे प्रथमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

[यह यमीका वचन है, कि—] यजमान इन यमके लिये दिन
और रात हवि देंगे । और सूर्यदेवका प्रकाशक तेज इनके लिये
प्रतिदिन उदय होवे अर्थात् सूर्योदय भी इनके संभोगके लिये हो ।
और ब्रुलोकके साथ पृथिवीलोक जैसे परस्पर संश्लिष्ट हैं और
सवन्धु हैं इसी प्रकार यमी भी यमकी बहिनरूप बन्धुत्वसे रहित
होती हुई परस्पर संश्लेषण करे ॥ १० ॥ (१)

अठारहवें काण्डके प्रथम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त

४६८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

“आ घा ता” इति द्वितीयं सूक्तम् ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्न-
जामि ।

उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्

आ । घ । ता । गच्छान् । उत्तरा । युगानि । यत्र । जामयः ।

कृणवन् । अजामि ।

उप । बर्बृहि । वृषभाय । बाहुम् । अन्यम् । इच्छस्व । सुभगे ।

पतिम् । मत् ॥ ११ ॥

इदं यमवाक्यम् । घ इति पादपूरणः । ता तानि उत्तरा उत्तराणि युगानि अहोरात्रयोर्युगलानि । आगामिनो दिवसाः इत्यर्थः । आ गच्छान् आगच्छेयुः । ननु दिनानि आगच्छन्त्येव किमिति आशास्यत इत्याशङ्क्यायाम् उत्तराणि दिवसानि विशिनष्टि । यत्र येषु आगामिषु दिवसेषु जामयः बन्धवः स्वसृभूताः अजामि अबन्धुत्वं भार्यात्वं कृणवन् कुर्युः । ❀ कृवि हिंसाकरणयोश्च । “ध्रिन्विकृण्वोर च” इति उपत्ययः ❀ । यस्माद् एवं तस्मात् हे यमि त्वं वृषभाय सेक्रे संभोगं कुर्वते अन्यस्मै बाहुम् स्वीयं भुजम् उप बर्बृहि अतिवृद्धं कुरु । ❀ बृहेर्यङ्लुगन्तात् लोटि “सेह्यपिच्च” इति हिः । तस्य ङित्वाद् गुणाभावः । धातोरन्त्यलोपशब्दान्दसः ❀ । तदर्थम् हे सुभगे कामिनि मत् मत्तः । ❀ “एकवचनस्य च” इति पञ्चम्या अत् आदेशः ❀ । अन्यं पतिम् इच्छस्व कामयस्व ॥

[यह यमका वाक्य वाक्य है, कि—] वे दिन रात अर्थात् दिन आगे आवेंगे जब कि—वहिनरूप बन्धु अबन्धुत्व-भार्यात्व—को करने लगेगी, इस कारण हे यमि ! तू सेचन कर सकने वाले दूसरे पुरुषके लिये अपने हाथको बड़ा इस प्रकार हे सुभगे ! तू मुझको छोड़कर अन्य किसीको पति बनानेकी इच्छा कर ॥११॥

द्वितीया ॥

किं भ्रातासद् यदनाथं भवति किमु स्वसा यन्नि-
ऋतिर्निगच्छात् ।

काममूता बहुश्चतद् रपामि तन्वा मे तन्वं १ सं पिपृग्धि

किम् । भ्राता । असत् । यत् । अनाथम् । भवति । किम् । ऊ

इति । स्वसा । यत् । निःऽऋतिः । निऽगच्छात् ।

कामऽमूता । बहु । एतत् । रपामि । तन्वा । मे । तन्वम् । सम् ।

पिपृग्धि ॥ १२ ॥

इदं यमीवचनम् स किं भ्राता असत् भ्राता भवेत् न भवत्येव । स भ्राता क एवं निन्द्यत इति तम् आह । यत् यदि भ्रातरि विद्यमाने स्वसा अनाथं नाथरहितम् अपेक्षितकामशून्यं भवति भवेत् । स किं भ्रातासद् इति पूर्वत्रान्वयः । एवं भ्रातरं निन्दित्वा स्वसारं निन्दति । सा किम् स्वसा असत् स्वसा भवेत् न भवत्येव । कैवं निन्द्यत इति तां विशिनष्टि । यत् यदि स्वसृभू-
तायां विद्यमानायां भ्रातरं निऽऋतिः दुःखं निगच्छात् प्राप्नुयात् । सा किमु स्वसेति संबन्धः । यतोहं सनाथा अतः काममूता कामेन मूर्छिता बहुविधकामोपेता बहु अधिकम् एतत् इदानीम् एतेन कारणेन वा रपामि प्रलापं करोमि । ❀ बहुतत् इत्यत्र संहितायां

४७० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

“स्वरितो वानुदात्ते पदादौ” इति उदात्तयणः परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वम् ❀ । अतो मम प्रलापस्य सार्थकत्वाय मे मम तन्वा शरीरेण सह हे भ्रातः तन्वम् तनं तावकं शरीरं सं पिपृग्धि संपर्चय । ❀ पृची संपर्के । व्यत्ययेन श्लुः । “बहुलं छन्दसि” इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀ ।

यह यमीका वचन है, कि-वह क्या भाई है, कि-जिस भाई के विद्यमान रहने पर बहिन अपेक्षित कामसे शून्य रह जावे और वह भी कैसी बहिन, कि-जिसके रहते हुए भाईको दुःख मिले, किंतु मैं सनाथ हूँ इस कारण कामसे मूर्छित होकर बहुतसा प्रलाप कर रही हूँ, अत एव मेरे प्रलापको सार्थक करनेके लिये मेरे शरीरके साथ अपने शरीरको संयुक्त करिये ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वां सं पृ-
च्याम् ।

अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे
वष्टयेतत् ॥ १३ ॥

न । ते । नाथम् । यमि । अत्र । अहम् । अस्मि । न । ते । तनूम् ।
तन्वा । सम् । पृच्याम् ।

अन्येन । मत् । प्रमुदः । कल्पयस्व । न । ते । भ्राता । सुभगे ।
वष्टि । एतत् ॥ १३ ॥

इदं यमवाक्यम् । हे यमि अत्र अस्मिन् विषये ते तव अहं नाथम् अभिमतार्थसंपादको भ्राता नास्मि न भवामि । किं च ते तव तन्वा शरीरेण सह नूनम् निश्चयं न सं पृच्याम् संपर्क

न करोमि । तस्मात् मत् मत्तः अन्येन पुरुषान्तरेण सह प्रमुदः
प्रमोदान् संभोगजनितान् कल्पयस्व साधय । ते तव भ्राता अयं
जनः हे सुभगे संभोगार्थिनि एतत् जायापत्यलक्षणं कर्म न वष्टिन
कामयते ॥

[यह यमका वचन है, कि-] हे यमि ! मैं इस विषयमें तेरी
कामनाको पूर्ण करने वाला नाथ नहीं बन सकता और तेरे
शरीरसे किसी प्रकार सम्पर्क नहीं कर सकता अतएव तू मुझको
छोड़ कर और किसी पुरुषके साथ संभोगसे होने वाले आनन्दों
को साध । हे सुभगे ! तेरा यह भाई इस जायापत्यरूप कर्मकी
अभिलाषा नहीं करता ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

न वा उ ते तनुं तन्वां सं पृच्छ्यां पापमाहुः स्वसारं
निगच्छात् ।

असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने
यच्छयीय ॥ १४ ॥

न । वै । ऊं इति । ते । तनुम् । तन्वा । सम् । पृच्छ्याम् ।

पापम् । आहुः । यः । स्वसारम् । निगच्छात् ।

असम्पद्यत् । एतत् । मनसः । हृदः । मे । भ्राता । स्वसुः । शयने ।

यत् । शयीय ॥ १४ ॥

इदमपि यमवाक्यम् । पूर्वमन्त्रोक्तमेव निषेधम् अत्यन्तपापतया
पुनर्द्रवयति । हे यमि ते तव तन्वा सह तनुम् मदीयां न वै
सं पृच्छ्याम् नैव संपर्चयामि । संपर्काभावे हेतुम् आह । स्वसा-
रम् भगिनीं निगच्छात् भ्राता संभोगं कुर्यात् इति यत् एतत् पापं

४७२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

निषिद्धम् आहुः ब्रुवते धर्मरहस्यविदः । न केवलं पारलौकिकं पापमेव अपि तु दृष्टवाधायस्त्येति । एतत् वक्ष्यमाणं कर्म मे मम मनसः हृदः हृदयाच्च अथवा मनसा हृदयेन च सह असुम् प्राणम् । अपहरेत् इति शेषः । एतच्छब्दार्थम् आह । भ्राता सन् स्वसुर्भगिन्याः शयने । शय्यते अत्रेति शयनम् । एकस्यां शय्यायां शयीय शयनं कुर्याम् इति यद् एतद् इति पूर्वत्रान्वयः ।

[यह भी यमका वचन है, इसमें पूर्वोक्त निषेधको ही परम पाप होनेसे फिर दृढ़ किया है, कि-] हे यमि ! तेरे शरीरसे मैं अपने शरीरका किसी प्रकार स्पर्श नहीं करूँगा [सम्पर्क न करनेका कारण यह है, कि-] धर्मके रहस्यको जानने वाले पुरुष, भाई बहिनसे संभोग करे. इसको पाप कहते हैं [पारलौकिक ही पाप नहीं होगा, किंतु दृष्टवाधा भी है, कि-] जो मैं भाई होकर बहिनकी शय्या करूँ तो यह कर्म मेरे हृदयको मनको और प्राण को भी नष्ट कर डालेगा ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम् ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि प्वजातै लिबु-
जेव वृत्तम् ॥ १५ ॥

बतः । बत । असि । यम । न । एव । ते । मनः । हृदयम् । च ।
अविदाम् ।

अन्या । किल । त्वाम् । कक्ष्येव । युक्तम् । परि । प्वजातै ।
लिबुजाइव । वृत्तम् ॥ १५ ॥

इदं यमीवाक्यम् । हे यम त्वं बतसि बलाद् अतीतो भवसि

दुर्बलो जातोसि बत । खेदानुकम्पयोर्वतशब्दः अत्र खेदे वर्तते ।
यमस्य पराधीनतया दौर्बल्यं यस्याः खेदाय संपद्यते । स्वाभिमत-
कार्यस्य तत्रासंभवात् खेदश्च । नैव ते मनः तव मनो मयि ना-
स्त्येव । मयि उदासीनो भवसीत्यर्थः । किं च तव हृदयम् अवि-
दाम ज्ञातवन्तः स्मः । बहुवचनं पूजार्थम् । हृदयस्य स्वाधीनताया
अभावात् खेदेनेदम् । उच्यते । हृदयपरिज्ञानप्रकारं प्रकटयति
अन्या किलेति ; अन्या मत्तः अपरा कामिनी त्वां परि ष्वजातै
परिष्वङ्गं कृतवती तस्मात् माम् अवमन्यसे । अत एव च पराधीन-
त्वाद् दुर्बलश्च भवसीत्यर्थः । अत्र दृष्टान्तद्वयम् । कक्ष्येवेति एकः ।
अश्वस्य कक्षप्रदेशस्था रज्जुः कक्ष्या । सा यथा युक्तम् स्वसं-
बद्धम् अश्वं परिष्वजति श्लिष्टा भवति तद्वत् । दुर्दान्तोऽप्यश्वः
कक्ष्यया सम्बद्धो यथा स्वाच्छङ्ख्येन वर्तितुं न शक्नोति तद्वदिति ।
लिबुजेव वृक्षम् इति द्वितीयो दृष्टान्तः । लिबुजा व्रततिर्भवति
[नि० ६. २८] इति निरुक्तम् । सा यथा गाढं वृक्षम् आ-
दित आरभ्य अग्रम् आलिङ्गति तद्वत् त्वाम् अन्या सर्वात्मना स्वा-
धीनं चकार । एरुदेशसंश्लेषस्य सर्वाङ्गसंश्लेषस्य च क्रमेण
दृष्टान्त द्वयम् । ❀ अत्र बतो बलाद् अतीतो भवति दुर्बलो बतासि
[नि० ६. २८] इत्यादि निरुक्तम् अनुसंधेयम् ❀ ॥

[यह यमीका वचन है, कि—] हे यम ! तुम दुर्बल हो इसका
मुझको खेद है, तुम्हारा मन मुझमें नहीं है अत एव तुम उदा-
सीन हो और मैं आपके हृदयको नहीं समझ सकी हूँ, किसी
दूसरी स्त्रीने तुमको आलिङ्गन किया है इसी कारण तुम मेरा
अपमान कर रहे हो अत एव ही आप पराधीन होनेसे दुर्बल हो
रहे हैं । जैसे घोड़ेकी बगलमें पड़ी हुई रस्सी उसको लिपटी रहती
है और उससे लिपटा हुआ दुर्दान्त अश्व भी कहीं नहीं जा
सकता और जैसे व्रतति वृक्षसे लिपटी हुई होती है इसीप्रकार
अन्य स्त्रीके जकड़ने पर तुम दुर्बल होगए हो ॥ १५ ॥

४७४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

षष्ठी ॥

अन्यम् पु यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजातै लिबुजेव वृक्षम् ।
 तस्य वा त्वं मन इच्छास वा तवाधा कृणुष्व संविदं
 सुभद्राम् ॥ १६ ॥

अन्यम् । ऊं इति । सु । यमि । अन्यः । ऊं इति । त्वाम् ।
 परि । स्वजातै । लिबुजाऽइव । वृक्षम् ।

तस्य । वा । त्वम् । मनः । इच्छ । सः । वा । तव । अथ । कृणुष्व ।
 सम् । विदम् । सुभद्राम् ॥ १६ ॥

इदं यमवाक्यम् । हे यमि त्वम् अन्यम् पु । उशब्दः एकार्थे ।
 अन्यमेव सुष्ठु परि ष्वजातै अन्य उ त्वां त्वामपि अन्यः परि
 ष्वजातै । एवं परस्परं कुरुतम् इत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः । लिबुजेव
 वृक्षम् । गतम् एतत् । संश्लेषस्य उभयव्यापारजत्वाद् व्यतिहारे-
 णाभिधानम् । परस्परसंश्लेषः समानमनस्कत्वम् अन्तरेण न घटत
 इत्यभिप्रेत्य आह तस्य वा त्वम् इति । हे यमि तस्य वा मन-
 स्त्वम् इच्छ । वाशब्दश्चार्थे । तस्य मनसे यद् रोचते तदेव त्वम्
 अनुसरेत्यभिप्रायः । स वा तव । मन इच्छत्विति शेषः । तव
 मनस आनुकूल्यं भजताम् । अथ अथ परस्परानुकूल्यानन्तरं सु-
 भद्राम् अत्यन्तकल्याणां संविदम् संवित्तिं सुखानुभवं तेन सह
 कृणुष्व कुरु ॥

[यह यमका वचन है, कि-] हे यमि ! जैसे रस्सी घोड़ेका
 आलिंगन करती है और व्रतति जैसे वृक्षको जकड़ लेती है इसी
 प्रकार तू दूसरे पुरुषका आलिंगन कर और दूसरा पुरुष
 तेरा आलिंगन करे, तू उसके मनके अनुकूल चल और वह तेरे

मनके अनुकूल चले, परस्पर अनुकूल होनेके अनन्तर तू उसके साथ परम कल्याण देने वाले सुखका अनुभव कर ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्व-
चक्षणम् ।

आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवनं आर्पितानि
त्रीणि । च्छन्दांसि । कवयः । वि । येतिरे । पुरुऽरूपम् । दर्श-
तम् । विश्वऽचक्षणम् ।

आपः । वाताः । ओषधयः । तानि । एकस्मिन् । भुवने । आर्पि-
तानि ॥ १७ ॥

कवयः क्रान्तमज्ञा ज्ञानिनः पूर्वे महर्षयः देवा वा त्रीणि च्छन्दांसि ।
अत्र छादनाच्छन्दांसीति व्युत्पत्त्या छन्दःशब्देन वक्ष्यमाणा अवा-
दयस्त्रयो गृह्यन्ते । तानि वि येतिरे यत्नं कृतवन्तः । जगन्निर्वाहा-
येति शेषः । तेषु एकैकं विशिनष्टि । तेषु मध्ये आपः अमृत्त्वं पुरु-
रूपम् नानारूपम् अन्विकारत्वात् सर्वेषां रूपाणाम् दर्शतम् दर्श-
नीयं स्पृहणीयत्वेन प्रियदर्शनम् विश्वचक्षणम् विश्वस्य द्रष्टु । एवं
वाताः वायुतत्त्वमपि प्राणात्मना पुरुरूपं भवति दर्शनीयं च भवति ।
सूत्रात्मतया विश्वद्रष्टृपि । एवम् ओषध्यात्मकमपीति द्रष्टव्यम् ।
यद्वा समुदायाभिप्रायेण एकवचनम् । तद् अवादित्रयं पुरुरूप-
त्वादिधर्मकम् इत्यर्थः । त्रीणि च्छन्दांसीति उक्तम् । कानि तानि
त्रीणीति तत्राह आपो वाता ओषधय इति । अवादीनां भुवना-
च्छादकत्वं प्रसिद्धम् एव । तेषां भुवनैकप्रयोजकताम् । आह
तानीति । भवन्ति अत्र प्राणिनः अप्राणिनश्चेति भुवनं भूलोकः ।
तत्र तन्निर्वाहार्थम् आर्पितानि स्थापितानि सृष्ट्यादौ ॥

४७६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

पहिले बुद्धिमान् देवताओंने संसारका आच्छादन करनेवाले जल आदि तीनको जगत्का आच्छादन करनेके लिये यज्ञ किया था । इनमें जलतत्त्व अनेक रूप वाला है, क्योंकि-सब रूप जल के ही विकार हैं और यह जलतत्त्व स्पृहणीय होनेसे प्रियदर्शन है और विश्वका द्रष्टा है । इसी प्रकार वायुतत्त्व भी प्राणात्मारूपसे अनेक प्रकारका होता है और दर्शनीय भी होता है और सूत्रात्मारूपसे विश्वद्रष्टा भी होता है । इसी प्रकार औषधि भी अनेक रूप वाली, दर्शनीय और सकल रोगोंकी द्रष्टा होती है । इन जल वायु और औषधिको देवताओंने (जिसमें प्राणी और अप्राणी होते हैं उस) भूलोकमें निर्वाहके लिये स्थापित किया है॥

अष्टमी ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि य्हो अदितेर-
दाभ्यः ।

विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजति
यज्ञियाँ ऋतून् ॥ १८ ॥

वृषा । वृष्णे । दुदुहे । दोहसा । दिवः । पयांसि । य्हः । अदितेः ।
अदाभ्यः ।

विश्वम् । सः । वेद । वरुणः । यथा । धिया । सः । यज्ञियः ।
यजति । यज्ञियान् । ऋतून् ॥ १८ ॥

वृषा कामानाम् अपां च वर्षिता अग्निः वृष्णे आज्यपयआदे-
वर्षित्रे प्रयच्छते यजमानाय तद्धोगार्थं दोहसा दोहनसाधनेन यज्ञा-
दिना दिवः सकाशात् पयांसि उदकानि दुदुहे वर्षितवान् । की-

दृशो वृषा । यहः महन्नामैतत् । महान् । अथ और्विशेष्यते ।
 अदिते । अखण्डनीयायाः । न हि द्यौः केनचित् खण्ड्यते । अदा-
 भ्य इति वृष्णो विशेषणम् । कैरपि रक्तः प्रभृतिभिः अहिंसितः ।
 स तादृशोऽग्निः विश्वम् सर्वं धिया प्रज्ञानेन वेद जानाति साक्षात्-
 करोति । तत्र दृष्टान्तः । वरुणो देवो यथा धिया वेत्ति तद्वत् । स
 च यज्ञियः यज्ञार्होऽग्निः । ❀ “यज्ञत्विग्भ्याम्” इति घः ❀ ।
 यज्ञियान् यज्ञार्हान् यष्टव्यान् ऋतून् अभिगन्तून् यद्वा यज्ञियान्
 यज्ञियेषु ऋतुषु कालेषु तत्तद्विहितकाले यष्टव्यान् देवान् यजतीति
 व्याख्येयम् ॥

कामनाओंकी और जलकी वर्षा करने वाले तथा राक्षस आदि
 से अहिंसित महान् अग्निदेव घृत दुग्ध आदिकी वर्षा करनेवाले
 यजमानके लिये दोहन साधन यज्ञ आदिके द्वारा अखण्डनीय
 ब्रह्मलोकसे जलोंकी वर्षा करते हैं । ऐसे यह अग्निदेव अपनी बुद्धि
 से सबको इस प्रकार जान जाते हैं, जिस प्रकार वरुणदेव अपनी
 बुद्धिसे सबको जानते हैं । और वही यज्ञके योग्य अग्नि यज्ञकी
 ऋतुमें पूजा करने योग्य देवताओंकी पूजा करते हैं ॥ १८ ॥

नवमी ॥

रपद् गन्धर्वीरण्यां च योषणा नदस्य नादे परि पातु
 नो मनः ।

इष्टस्य मध्ये अदितिर्निधातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो
 वि वोचति ॥ १९ ॥

रपत् । गन्धर्वीः । अरण्या । च । योषणा । नदस्य । नादे । परि ।

पातु । नः । मनः ।

४७८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

इष्टस्य । मध्ये । अदितिः । नि । धातु । नः । आता । नः ।

ज्येष्ठः । प्रथमः । वि । वोचति ॥ १६ ॥

गन्धर्वीः गन्धर्वस्य उदकधारकस्य भरतस्य, आदित्यस्य स्व-
भूता भारती अप्या योषणा च अप्संबन्धिनी अप्स्थायिनी युवतिः
सरस्वती च रपत् रपतु स्पष्टं वक्तुं मद्बद्धा आग्निं स्तोतु । नदस्य
नादे स्तोतुर्मम स्तोत्ररूपे नादे कर्तव्ये ध्वनौ नो मनः मम मनः
परि पातु परितो रक्षतु । भारती सरस्वती चेति शेषः । अनन्त-
रम् इष्टस्य फलस्य यागस्य वा मध्ये नः अस्मान् अदितिः देवमाता
देवी नि धातु स्थापयतु इष्टं योजयतु । आता भरणकर्ता आतृ-
वत् हितकारी ज्येष्ठः गुणैः प्रशस्यः प्रथमोग्निः । ❀ प्रथम इति
मुख्यनाम । प्रथमो भवति [नि० २. २२] इति निरुक्तम् ❀ ।
वि वोचति विवक्तुं साधु यष्टा अयम् इति मयि ब्रवीत्वित्यर्थः ।
❀ विवोचति । “लिङ्याशिष्यङ्” इति विहितोऽङ् प्रत्ययो व्यत्य-
येनात्र न प्राप्तः । “वच उम्” इति अङ् प्रत्ययनिबन्धन उमागमः ❀ ॥

जलको धारण करने वाले सूर्यकी स्वभूता भारती और अन्त-
रिक्षमें विचरण करने वाली युवती सरस्वती मेरे द्वारा अग्निकी
स्पष्टरूपसे स्तुति करें और मुझ स्तोताके स्तोत्ररूप नादमें मेरे मन
की रक्षा करें, इसके अनन्तर देवमाता अदिति फल वा यागमें
मुझको स्थापित करें और भाईकी समान हित करने वाले गुणों
में ज्येष्ठ यह मुख्य अग्नि भी मेरे लिये कहें, कि-यह बहुत अच्छा
यजमान है ॥ १६ ॥

दशमी ॥

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्व-
र्वती ।

यदीमु॒शन्तमु॒शता॒मनु॒ क्रतु॑म॒ग्निं॑ हो॒तारं॑ वि॒दथा॑य
जी॒जनन् ॥ २० ॥

सो॒ इति॑ चि॒त् । नु॒ । भ॒द्रान् जु॒ऽमती॑ । यश॑स्वती । उ॒षाः । उ॒वा॒स ।
मन॑वे । स्वः॑ऽवती ।

यत् । ई॒म् । उ॒शन्त॑म् । उ॒शता॑म् । अ॒नु । क्रतु॑म् । अ॒ग्निम् ।
हो॒तार॑म् । वि॒दथा॑य । जी॒जनन् ॥ २० ॥

सो चित् सैव खलु भद्रा भन्दनीया कल्याणी जुमती मन्त्ररूप-
शब्दवती । प्रातरनुवाकादौ बहुभिरुपस्यसूक्तैः शस्यमानत्वात् ।
अथ वा तस्मिन् काले पद्यादीनां प्रबुद्धानां शब्ददर्शनात् जुमती ।
यशस्वती । यश इति अन्ननाम । अन्नवती मनुष्योपभोगार्थेन अन्नेन
हविल्लक्षणेन वा तद्वती । तथा स्वर्वती स्वः आदित्यः । तद्वती ।
तदविनाभावात् । ❀ “छन्दसीवनिपौ०” इति मतुपो वत्वम् ❀ ।
एवंरूपा उषाः मनवे मनुष्याय । ❀ जातावेकवचनम् ❀ । मनु-
ष्याणां व्यवहाराय यजमानाय वा तस्याग्निहोत्राद्यर्थाय उवास
मादुरभूत् । तमो निराचकारेत्यर्थः । यत् यदा ईम् एनम् उश-
न्तम् कामयमानं होतारम् देवानाम् आह्वतारं होमनिष्पादक वा
अग्निम् उशताम् यज्ञार्थं कामयमानानां यजमानानां तेषां विदथाय
यज्ञाय देवानां हविःप्रापणाय अनु क्रतुम् तत्रतत्र क्रतौ तत्तत्क्र-
त्वर्थं जीजनन् अजीजनन् उदपादयन् अध्वर्यवः ॥

[इति] अष्टादशकाण्डे प्रथमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

जब अध्वर्युओंने इन इच्छा करते हुए देवताओंका आह्वान
करके अग्निदेवको यज्ञके लिये कामना करने वाले यजमानोंके
यज्ञोंमें देवताओंको हवि पहुँचानेके लिये क्रतुओंके लिये प्रकट

क्रिया उसी समय यह कल्याणी मन्त्ररूप शब्द वाली हविरूप अन्न वाली और सूर्यसे संपन्न उषा यजमानोंके अग्निहोत्र आदि के व्यवहारको सिद्ध करनेके लिये प्रकट होती है—अन्धकारको दूर करती है ॥ २० ॥ (२)

अठारहवें काण्डके प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त ।

अथ तृतीयं सूक्तम् ॥

तत्र प्रथमा ॥

अथ त्यं द्रप्सं विभ्वं/ विचक्षणं विराभरदिषिरः श्येनो
अध्वरे ।

यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीर-
जायत ॥ २१ ॥

अथ । त्यम् । द्रप्सम् । विभ्वम् । विचक्षणम् । विः । आ ।

अभरत् । इषिरः । श्येनः । अध्वरे ।

यदि । विशः । वृणते । दस्मम् । आर्याः । अग्निम् । होतारम् ।

अथ । धीः । अजायत ॥ २१ ॥

अथ अथ अनन्तरं त्यम् तम् । “तृतीयस्याम् इतो दिवि सोम आसीत्” [तै० ब्रा० ३. २. १. १] इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धम् । द्रप्सम् देवैर्मनुष्यैश्च भक्षणीयं सोमम् । कीदृशम् । विभ्वम् महन्ना-
मैतत् । महान्तं विचक्षणम् विद्वष्टारम् एवंलक्षणं सोमम् इषिरः प्रकृष्टगमनः एषणां प्राप्तः अग्न्यादिदेवैः प्रार्थितो वा श्येनः शंस-
नीयगतिः सौपर्णो विः पक्षी अध्वरे यज्ञे निमित्तभूते सति आभ-
रत् आहरत् आहृतवान् । गायत्री सुपर्णरूपं धृत्वा द्युलोकात् सोमम्

आहरद् इत्येतद् आख्यानम् “तृतीयस्याम् इतो दिवि सोम आसीत्। तं गायत्र्याहरत् । तस्य पर्णम् अच्छिद्यत्” [तै० ब्रा० ३. २. १. १] “कद्रूश्च वै सुपर्णी चास्पर्धेताम्” [तै० सं० ६, १. ६. १] इत्यादिश्रुतिषु प्रसिद्धम् । एवम् आहूते सोमे यदि यदा आर्याः सर्वैरभिगन्त० वा विशः प्रजाः यजमाना दस्मम् दर्शनीयम् अग्निं होता-रम् होमनिष्पादकम् । ❀ जुहोतेर्होतेत्यौर्णवाभः इति निरुक्तम् [नि० ७. १५] ❀ । होतृत्वेन वृणते वरणं कुर्वन्ति पुरस्कुर्वन्ति अध अथ अनन्तरं सोमस्य अग्नेश्च सिद्धत्वाद् धीः । कर्मनामैतत् । अग्निष्टोमादिलक्षणं कर्म अजायत निर्वृत्ता भवति । अग्निम् अन्तरेण कस्यचिदपि कर्मणः असिद्धेः यदी विशो वृणते अध धीरजायतेति अग्नेर्होतृत्वोपयोगित्वेन स्तुतिः ॥

इसके अनन्तर “तृतीयस्यां इतो दिवि सोम आसीत्-इस भूलोकसे तीसरे लोक द्युलोकमें सोम था” इस तैत्तिरीय आरण्यक ३।२।१।१ की श्रुतिमें प्रसिद्ध देवता और मनुष्योंसे भक्षणीय महान् द्रष्टा सोमको अग्नि आदि देवताओंसे प्रार्थित प्रशंसनीय गति वाले सुपर्ण पक्षी यज्ञके लिये लाये थे [गायत्री सुपर्णका रूप बनाकर द्युलोकसे सोमको लाई थी, यह आख्यान निम्नलिखित श्रुतियोंमें है । “तृतीयस्यां इतो दिवि सोम आसीत् । तं गायत्र्याहरत् । तस्य पर्णम् अच्छिद्यत् ।” तैत्तिरीयसंहिता ३।२।१।१ और कद्रूश्च वै सुपर्णी अस्पर्धेताम् ।—कद्रू और सुपर्णीने परस्पर स्पर्धा की” तैत्तिरीयसंहिता ६।१।६।१] इस प्रकार सोमके लाने पर जब आर्यप्रजा इन दर्शनीय अग्निका होम निष्पादकरूपमें वरण करती हैं तब सोमके और अग्निके सिद्ध होने पर अग्निष्टोम आदि कर्म सम्पन्न होता है तात्पर्य यह है, कि—अग्निके अभावमें कोई भी कर्म सिद्ध नहीं हो सकता अत एव यजमान आदि इसका वरण करते हैं तो कर्म चलता है अत एव होतृत्वमें उपयोगी होनेसे यह अग्निकी स्तुति हुई ॥ २१ ॥

४८२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

द्वितीया ॥

सदा॑सि र॒णवो॑ यव॒सेव॑ पु॒ष्यते॑ हो॒त्राभि॑र॒ग्ने मनु॑षः स्व॒ध्वरः
विप्र॑स्य वा यच्छ॒शमा॑न उ॒क्थ्यो॑ ३ वाजं॑ स॒सवाँ॑ उप॒-
यासि॑ भूरि॒भिः ॥ २२ ॥

सदा॑ । अ॒सि । र॒णवः । यव॑साऽइव । पु॒ष्यते । हो॒त्राभिः । अ॒ग्ने ।
मनु॑षः । सु॒ध्वरः ।

विप्र॑स्य । वा । यत् । श॒शमा॑नः । उ॒क्थ्यः । वाज॑म् । स॒स॒वान् ।
उप॒यासि॑ । भूरि॑भिः ॥ २२ ॥

हे अग्ने स्वध्वरः शोभनयागः सुतुः यागस्य निर्वर्तकस्त्वं मनुषः मनुष्यस्य स्वभूताभिः होत्राभिः होमसाधनाभिः आज्यादिभिः पुष्यते पोषयित्रे यजमानाय तदर्थं सदा सर्वदा रणवः रमणीयः दर्शनीयोसि । तत्र दृष्टान्तः । यवसेव यवसा हरिततृणादिना गवादिरिव । स यथा पुष्यते स्वामिने रमणीयो भवति तद्वत् । यत् यस्त्वं शशमानः शंसन् यजमानं प्रशंसन् उक्थ्यः स्तोतव्यश्च सन् विप्रस्य मेषाविनो यजमानस्य वाजम् अन्नं हविर्लक्षणं ससवान् संभजमानः भूरिभिः बहुभिः कामैः सहितस्त्वं बहुभिर्देवैः सहितो वा उपयासि उपगच्छसि । यत एवं करिष्यसि अतस्त्वं यजमानस्य सदा रणवोसीति संबन्धः ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञको सुन्दरतासे निष्पन्न करने वाले हैं और जैसे हरित तृण आदिसे पुष्ट होने वाला पशु अपना पोषण करने वाले पशुपालकको रमणीय दीखता है, इसी प्रकार आप भी होमके साधन घृत आदिसे अपनेको पुष्ट करने वाले यजमान

के लिये सदा दर्शनीय होते हैं, क्योंकि—आप यजमानकी प्रशंसा करते हुए और स्तुतिके योग्य होते हुए मेधावी यजमानके हविरूप अन्नका सेवन करते हुए बहुतसी कामनाओंके साथ उसको लेकर देवताओंके समीप पहुँचते हैं ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

उदीरय पितरां जार आ भगमियच्छति हर्यतो हत्त
इष्यति ।

विवक्ति वह्निः स्वपस्येन मखस्तविष्यते असुरो वेपते
मती ॥ २३ ॥

उत् । ईरय । पितरां । जारः । आ । भगम् । इयच्छति । हर्यतः ।
हत्तः । इष्यति ।

विवक्ति । वह्निः । सुऽअपस्येन । मखः । तविष्यते । असुरः । वेपते ।
मती ॥ २३ ॥

हे अग्ने त्वं पितरा पितरौ मातापितरौ । ❀ “पिता मात्रा” इत्येकशेषः ❀ । अत्र आवापृथिव्यौ गृह्यंते । “द्यौः पितः पृथिवि मातः” [तै० ब्रा० २. ८. ६. ५] “द्यौः पिता पृथिवी माता” [तै० ब्रा० ३. ७. ५. ४] इत्यादिश्रुतिषु तथा श्रवणात् । तौ उदीरय उद्गमय यज्ञं प्रति प्रेरय । यद्वा तावकं तेजः पितरौ प्रति उदीरय उद्गमय । अत्यन्तं प्रज्वलितो भवेत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः जार आ भगम् । जारः आदित्यः रात्रेर्जरयिता । ❀ जार इव भगम् आदित्योत्र जार उच्यते रात्रेर्जरयितेति यास्कः [त्रि० ३. १६] ❀ । आ इति इवार्थे । जार इव आदित्य इव । स यथा भगम् भजनीयं स्वप्रकाशं आवापृथिव्यौ प्रति प्रेरयति तद्वत् ।

४८४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

लौकिको जारो भगम् योनिमिव इत्ययं दृष्टान्तस्तु स्पष्टं प्रतीयत
 एव । अथ वा जरा स्तुतिः । तत्कस्त्वेन तत्संबन्धी जारः स्तोता ।
 स च भगम् भजनीयं त्वाम् आ । ह्वयति इत्यध्याहारः । अत
 उदीरयेति संबन्धः ॥ अथ परोक्षम् आह । इयत्तति यष्टुम् इच्छति
 यान् देवान् यजमानः । ❀ यजतेः सन् । अभ्यासस्य छान्दसं
 संप्रसारणम् ❀ । तान् हर्यतः कमनीयः स्पृहणीयोगिनः हृत्तः हृद-
 यात् हृदयेनैव इष्यति इच्छति । स्वयं कर्तुम् इति शेषः ॥ किं च
 वह्निः हविषां वोढाग्निः मखः मखसाधनो मंहनीयो वा स्वपस्यते
 शोभनकर्म कर्तुम् इच्छते । ❀ “सुप् आत्मनः क्यच्” । “नः क्ये”
 इति नियमात् पदसंज्ञाया अभावाद् रुत्वाभावः ❀ । यजमानाय
 विवक्तिं ब्रवीति । अभिलषितं तवेष्टं दास्यामीति भाषत् इत्यर्थः ।
 तथा तविष्यते । ❀ तविषिष्ट्वद्व्यर्थः ❀ । वर्धिष्यते यजमानाय
 असुरः बलवान् अग्निः मती मत्या कर्मणा यागेन निमित्तेन वेपते
 कम्पतेचलति आगच्छति ॥

हे अग्निदेव ! आप युलोकरूप पिताको और पृथिवीरूप माता
 को यज्ञके प्रति प्रेरित करिये व अपने तेजको माता पिता की
 ओर प्रेरित करिये । परम प्रदीप्त हूजिये, जैसे आदित्य अपने
 भजनीय प्रकाशको युलोक और पृथिवी-लोककी ओर प्रेरित
 करता है इसी प्रकार आप अपने तेजको प्रेरित करिये । और
 यह यजमान जिन देवताओंका पूजन करना चाहता है उनको
 यह स्पृहणीय अग्नि हृदयसे स्वयं ही चाहता है । यह हविका
 वहन करने वाले पूजनीय अग्नि शोभन कर्म करना चाहते हुए
 यजमानसे कहते हैं, कि-मैं तेरे अभिलषित पदार्थको दूँगा और
 अपनेको बढ़ाने वाले यजमानके पास भी यह बलवान् अग्नि
 यागनिमित्तक कर्मसे आरहे हैं ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अरुयत् सहसः सूनो अति

स प्र शृणवे ।

इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति

द्युन् ॥ २४ ॥

यः । ते । अग्ने । सुऽमतिम् । मर्तः । अरुयत् । सहसः । सूनो

इति । अति । सः । प्र । शृणवे ।

इषम् । दधानः । वहमानः । अश्वैः । आ । सः । द्युमान् ।

अमऽवान् । भूषति । द्युन् ॥ २४ ॥

हे अग्ने ते तव सुमतिम् शोभनां बुद्धिम् अनुग्रहलक्षणां यो मर्तः मरणधर्मा मनुष्यो यजमानः अरुयत् कथयति परस्मै । स्वयं प्राप्तो भवतीत्यर्थः । हे सहसः सूनो बलस्य पुत्र बलेन पथ्यमानो जायत इति तादृशाग्ने स त्वयानुगृहीतो यजमानः अभि आभिमुख्येन सर्वतः प्र शृणवे प्रकर्षेण श्रूयते । ❀ शृणोतेतिटि “छन्दस्युभयथा” इति लिटः सार्वधातुकत्वात् “श्रुवः शृ च” इति श्रुप्त्ययः ❀ । सर्वत्र विश्रतो भवति । किं च स त्वयानुगृहीतो यजमानाः इषम् सर्वैरेषणीयम् अन्नं दधानः धारयन् बहन्नः सन् तथा अश्वैर्बहुभिर्वहमानः अश्वैरुह्यमानो रथगामी भूत्वा द्युमान् दीप्तिमान् अमवान् बलवान् सन् द्युन् । अहर्नामैतत् । बहून् दिवसान् आ भूषति आभवति । सर्वम् अधिष्ठाय वर्तते । यद्वा भूषति बुभूषति द्युमान् अमवांश्च भवितुम् इच्छति । ❀ भवतेः सनि “सनि ग्रहगृहोश्च” इति इडभावः “इको भल्” इति कित्वाद् गुणाभावः । सर्वविधीनां छन्दसि विकल्पितत्वाद् द्वित्वाभावः ❀ ॥

४८६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हे अग्ने ! जो यजमान पुरुष आपकी अनुग्रहरूपा शोभना बुद्धिका दूसरेसे वर्णन करता है अर्थात् आपके अनुग्रहको पाकर दूसरेसे कहता है, हे बलपूर्वक मथनेसे उत्पन्न होने वाले बलके पुत्र ! वह आपसे अनुगृहीत हुआ यजमान सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाता है और वह आपसे अनुगृहीत यजमानसबके चाहने योग्य अन्नको धारण करता हुआ तथा बहुतसे घोंड़ोंकी सवारी खाता हुआ दीप्तिमान् और बली रहता हुआ चिरकाल तक प्रतिष्ठित रहता है ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युच्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह
स्याः ॥ २५ ॥

श्रुधि । नः । अग्ने । सदने । सधस्थे । युच्व । रथम् । अमृतस्य ।
द्रवित्नुम् ।

आ । नः । वह । रोदसी इति । देवपुत्रे इति देवपुत्रे । माकिः ।
देवानाम् । अप । भूः । इह । स्याः ॥ २५ ॥

हे अग्ने त्वं नः अस्माकम् आह्वानं श्रुधि शृणु । कुत्रेति उच्यते ।
सदने सीदत्यत्रेति सदनं गृहं तत्र । कीदृशे सधस्थे सहस्थाने ।
❀ “सध मादस्थयोश्छन्दसि” इति सहस्य सधादेशः ❀ । देवानां
साधारणे यागगृहे । तदर्थम् अमृतस्य उदकस्य द्रवित्नुम् द्रावकं
रथं युच्व योजय । किं च त्वं नः अस्माकम् अर्थाय रोदसी द्यावा-
पृथिव्यौ । कीदृश्यौ । देवपुत्रे देवाः पुत्रा ययोस्ते तादृश्यौ तदुप-
जीव्यत्वात् तत्पुत्रत्वोपचारः । ते देवते आ वह यज्ञार्थम् । किं च त्वं

देवानां संघे माकिरप भूः मा भूः मा गच्छ । किं तु इह अस्मदीये
यागगृह एव स्याः भव । सर्वकर्मार्थं सर्वदा संनिहितो भवेत्यर्थः ।
यद्वा देवानां मध्ये एकोपि देवो माकिरप भूः अप भूत् अपगतो
मा भूत् । किं तु सर्वोपीह स्याः स्यात् ॥ “निङां तिङो भवन्ति”
इति प्रथमपुरुषस्थाने मध्यमः ॥

हे अग्निदेव ! आप देवताओंके एकत्र बैठनेके स्थान यागगृहमें
हमारे आह्वानको सुनिये कि—उन देवताओंके लिये आप जलके
द्रावक रथको जोड़िये और देवता जिनमें पालित होनेसे जिनके
पुत्र हैं, उन आवापृथिवीको लाइये, देवताओंमें ऐसा कोई भी न
बचे जो यहाँ न आवे ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

यद॑ग्न ए॒षा स॑मि॒तिर्भ॑वा॒ति दे॒वी दे॒वेषु॑ य॒जता॑ य॒जत्र ।
रत्ना॑ च॒ यद् वि॒भजा॑सि स्वधा॒वो भा॒गं नो॒ अत्र॑
वसु॑मन्तं वी॒तात् ॥ २६ ॥

यत् । अ॒ग्ने । ए॒षा । स॒मृ॒द्धिः । भ॒वा॒ति । दे॒वी । दे॒वेषु॑ । य॒जता॑ ।
य॒जत्र ।

रत्ना॑ । च॒ । यत् । वि॒भ॒जा॒सि । स्व॒धा॒वः । भा॒गम् । नः॑ ।

अत्र॑ । वसु॑मन्तम् । वी॒तात् ॥ २६ ॥

हे यजत्र यष्टव्य अग्ने यत् यदा एषा पुरोभाविनी समितिः
समाजः । संहतिरित्यर्थः । भवति भवति । स्तुतानां हविषां च
समितिर्यदा भवति । कीदृशी । देवी दैवी देवसंबन्धिनी दीप्ता वा ।
कुत्र देवेषु मध्ये । पुनः कीदृशी सा । यजता यष्टव्या पूजनीया ।
हे स्वधावः अन्नवः अन्नवन् अग्ने यत् यदा च रत्नारत्नानि रम-

४८८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

णीयानि धनानि विभजासि स्तोतृभ्यो विभजसि प्रयच्छसि अत्र
विभागसमये नः अस्माकमपि वसुमन्तम् प्रभूतेन वसुना युक्तं
भागम् अंशं वीतात् । ❀ वी गत्यादिषु । अत्र गत्यर्थः ❀ ।
वीहि । प्रयच्छेत्यर्थः ॥

हे पूजनीय अग्निदेव ! जब यह संहति और स्तोत्र तथा हवियों
की देवी पूजनीया संहति देवताओंमें हो, उस समय हे अन्नवान्
अग्ने ! जब आप रमणीय रत्नोंको स्तोताओंको देवों तब विभाग
के समय हमको बहुतसा धनका भाग दीजिये ॥ २६ ॥

“अन्वग्निः” इति सप्तमी “प्रत्यग्निः” इति अष्टमी च पूर्वत्र
व्याख्याते [७. ८७. ४. ५] । तयोः पाठस्तु ।

सप्तमी ॥

अन्व॒ग्निरु॒षसा॒मग्र॑म॒ख्यद॒न्वहानि॑ प्रथ॒मो जा॒तवे॑दाः ।

अनु॒ सूर्य॑ उ॒षसो॒ अनु॒ रश्मी॑ननु॒ द्यावा॑पृथि॒वी आ॒ विवेश॑

अनु । अ॒ग्निः । उ॒षसा॑म् । अग्र॑म् । अ॒ख्यत॑ । अनु॑ । अ॒हानि॑ ।

प्रथ॑मः । जा॒तवे॑दाः ।

अनु॑ । सूर्यः॑ । उ॒षसः॑ । अनु॑ । र॒श्मीन् । अनु॑ । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ ।

आ । वि॒वेश॑ ॥ ७ ॥

अंगनादिगुणसम्पन्न अग्निदेव प्रतिदिन उषःकालके प्रादुर्भाव
के साथ ही प्रकाशित होते हैं—दीखते हैं, यह अग्नि पहिले उषः-
कालके आरम्भमें प्रकाशित होते हैं और यह अग्निदेव दिनोंके साथ
में भी प्रकाशित होते हैं और यह मुख्य जातवेद अग्नि सूर्य
बन कर † उषाको प्रकाशित है फिर किरणोंको प्रकाशित करते

† इस मन्त्रसे उत्तरार्धमें सूर्यरूप अग्निकी स्तुति की गई है ।

हैं, इस क्रमसे यह सूर्यात्मक अग्नि आवापृथिवीमें सर्वत्र व्याप्त होकर प्रकाश फैलाते हैं ॥ २७ ॥

अष्टमी ॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।

प्रति सूर्यस्य पुरुधा च रश्मीन् प्रति आवापृथिवी आ
ततान ॥ २८ ॥

प्रति । अग्निः । उषसाम् । अग्रम् । अख्यत् । प्रति । अहानि ।

प्रथमः । जातवेदाः ।

प्रति । सूर्यस्य । पुरुधा । च । रश्मीन् । प्रति । आवापृथिवी

इति । आ । ततान ॥ २८ ॥

अङ्गनादिगुणसम्पन्न अग्निदेव प्रत्येक उपःकालके प्रादुर्भाव में प्रकाशित होते हैं और यह अग्निदेव प्रत्येक दिनोंके साथ ही प्रकाशित होते हैं और मुख्य जातवेदा सूर्यात्मक अग्निदेव अनेक रूप होनेसे अनेक प्रकारसे प्रवृत्त सूर्यकी किरणोंमें भी स्वयं ही प्रकाशित होते हैं (क्योंकि—अग्नि और सूर्यमें अत्यन्त भेद नहीं है) इस प्रकार यह आवापृथिवी आदि सबमें अपने प्रकाशका विस्तार करते हैं ॥ २८ ॥

नवमी ॥

आवा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्चावे भवतः सत्यवाचा

तैत्तिरीय ब्राह्मण २ । १ । २ । १० में कहा भी है, कि—“उद्यन्तं वावादिन्यं अग्निरनुसमारोहति तस्माद् धूम एवाग्नेर्दिवा ददृशे ।—उदय होते हुए सूर्यदेव पर अग्निदेव अनुसमारोहण करते हैं । इस कारण दिनमें अग्निदेवका धुआँ ही दीखता है” ।

देवो यन्मर्तान् यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्व-
मसुं यन् ॥ २६ ॥

द्यावा । ह । क्षामा । प्रथमे इति । ऋतेन । अभिश्रावे । भवतः ।
सत्यवाचा ।

देवः । यत् । मर्तान् । यजथाय । कृण्वन् । सीदत् । होता । प्रत्यङ् ।
स्वम् । असुम् । यन् ॥ २६ ॥

अत्र द्यावापृथिव्यौ यष्टुम् इच्छन् तयोर्यागस्य अग्निसव्यपेक्ष-
त्वाद् अग्निं स्तोति । द्यावा । ❀ “दिवो द्यावा” इति द्यावादेशः ❀ ।
द्यौः तथा क्षामा क्षमा पृथिवी द्यावापृथिव्यौ । ❀ व्यवहितप्रयो-
गश्छान्दसः । यद्वा द्योशब्दस्य द्विवचनं द्यावेति । द्यावौ । क्षामा-
शब्दस्य द्विवचनं क्षामेति । क्षामे । द्वन्द्वस्य युगपदधिकरण-
वचनत्वात् परस्परापेक्षया उभयोरपि द्विवचनत्वम् ❀ । द्यावापृ-
थिव्यौ । ह इति प्रसिद्धौ । प्रथमे ह मुख्ये खलु सत्यवाचा
सत्यवाचौ सत्यस्तुतिके । सर्वदेवमनुष्याद्याश्रयत्वात् सर्वोपकार-
कत्वाच्च तद्विषया स्तुतिरूपा वाक् सर्वापि सत्यैव विद्यमानगुणैव ।
ते ऋतेन यज्ञेन निमित्तन यज्ञार्थम् अभिश्रावे अभितः श्रूयते इति
अभिश्रावे स्तोतु श्रवणयोग्ये भवतः । कदेति उच्यते । यत् यदा
देवः द्योतमानोऽग्नः मर्तान् मनुष्यान् यजथाय यागाय यज्ञार्थं कृण्वन्
कुर्वन् होता होमनिष्पादको देवानाम् आह्वाता वा प्रत्यङ् यजमा-
नाभिमुखं स्वम् स्वीयम् असुम् प्रज्ञां यागविषयां बलं वा ज्वाला-
लक्षणं यन् गच्छन् प्राप्नुवन् सीदत् निपीदसि । तदा अभिश्रावे
भवत इति संबन्धः ॥

[अब यजमान द्यावापृथिवीका याग करना चाहता है और
इनका याग, अग्निकी अपेक्षा रखता है इस कारण वह अग्निकी

स्तुतिकरता है, कि—] आवा और पृथिवी मुख्य हैं और सत्यवाक् हैं अर्थात् सब देव और मनुष्यों का आश्रय होनेसे तथा सबका उपकारक होनेसे उनकी जो कुछ भी स्तुति की जाय वह ठीक ही है । जिस समय द्योतमान अग्नि मनुष्यों के पास यज्ञके लिये होम-निष्पादकरूपमें यजमानके अभिमुख अपनी ज्वालारूप बुद्धिको चलाते हुए बैठें उस समय वे आवापृथिवी यज्ञके कारण स्तोता की स्तुतिको सुनने योग्य हों ॥ २६ ॥

दशमी ॥

दे॒वो दे॒वान् परि॒भूः ऋ॒तेन॒ वह॑ नो ह॒व्यं प्रथ॒मश्चि॑कि॒-
त्वान् ।

धूम॑केतुः समि॒धा भा॑ऋ॒जीको म॒न्द्रो हो॒ता नित्यो॑ वा॒चा
यजी॑यान् ॥ ३० ॥

दे॒वः । दे॒वान् । परि॒भूः । ऋ॒तेन॑ । वह॑ । नः । ह॒व्यम् । प्रथ॒मः ।
चि॒कि॒त्वान् ।

धूम॑केतुः । समि॒धः । भाः॑ऋ॒जीकः । म॒न्द्रः । हो॒ता । नित्यः ।
वा॒चा । यजी॑यान् ॥ ३० ॥

हे अग्ने देवः द्योतमानः प्रकृष्टज्वालस्त्वम् ऋतेन यज्ञेन देवान् यष्टव्यान् परिभूः परिभवन् स्वाधीनान् कुर्वन् प्रथमः मुख्यः सन् चिकित्वान् एतेत्र यष्टव्या इति जानन् नः अस्माकं हव्यम् हविः वह प्रापय देवान् प्रति गमय । अथ अग्निं बहुधा प्रशंसति । धूम-केतुः धूमेन प्रज्ञायमानः समिधा समिन्धनसाधनेन काष्ठादिना भाऋजीकः भासमानदीप्तिः प्रकृष्टज्वालः मन्द्रः मोदमानः मादयिता वा होता देवानाम् आह्वाता नित्यः अविनाशी वाचा स्तुति-

४६२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

रूपया यजीयान् अतिशयेन यष्टा यष्टव्यो वा । उक्तमहिमोपेतः
सन् हव्यं वहेति संबन्धः ॥

इत्यष्टादशकाण्डे प्रथमोनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे प्रकृष्ट ज्वाला वाले अग्निदेव ! आप यज्ञके द्वारा पूजनीय
देवताओंको अपने आधीन करते हुए और प्रधान बन कर इन
देवताओंका इस अवसर पर पूजन करना चाहिये यह समझते
हुए उन देवताओंके पास हमारी हवि पहुँचाइये हे अग्निदेव !
आप धूमसे जाननेमें आने वाले धूमकेतु हैं और समिधाओंसे
आपकी ज्वाला दीप्त होती है और आप प्रसन्न करने वाले हैं,
देवताओंका आह्वान करने वाले हैं, स्तुतिरूपा वाणीसे पूजा करने
के पात्र हैं और अविनाशी हैं अतः आप हमारी हविको
पहुँचाइये ॥ ३० ॥ (३)

अठारहवें काण्डके प्रथम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त

चतुर्थसूक्ते प्रथमा ॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं
रोदसी मे ।

अहा यद् देवा असुनीतिमायन् मध्वा नो अत्र पितरा
शिशीताम् ॥ ३१ ॥

अर्चामि । वाम् । वर्धाय । अपः । घृतस्नू इति घृतस्नू । द्यावाभूमी
इति । शृणुतम् । रोदसी इति । मे ।

अहा । यत् । देवाः । असुनीतिम् । आयन् । मध्वा । नः । अत्र ।
पितरा । शिशीताम् ॥ ३१ ॥

हे घृतस्नू उदकस्य सारयिष्यौ द्यावापृथिव्यौ वाम् युवयोः अपः

कर्म वर्धाय अभिवृद्धये । ❀ वृधेर्घञन्तत्वाद् आद्युदात्तः ❀ ।
 अर्चामि स्तौमि । तदर्थम् हे आवाभूमी आवापृथिव्यौ रोदसी रोध-
 यित्र्यौ आवापृथिव्योर्मध्ये सर्वेषां प्राणिनां निरोधात् । अथवा
 रोधयित्र्यौ वृष्टिफलयोः प्रतिबन्धेन । एवंरूपे आवापृथिव्यौ मे
 षम शृणुतम् । स्तुतिम् इति शेषः ॥ अथ परोक्षम् आह । यत् येषु
 अहा अहस्सु देवाः । दीव्यतिरत्र स्तुत्यर्थः । युवयोः स्तोतारः
 ऋत्विजः असुनीतिम् असूनां बलानां नयनम् आयन् अग-
 च्छन् स्वकीयं बलं यज्ञार्थम् अकुर्वन् । अत्र एषु दिवसेषु पितरा
 पितरौ मातापितरौ आवापृथिव्यौ नः अस्माकं मध्वा । ❀ द्विती-
 यार्थे तृतीया ❀ । मधु उदकं शिशीताम् संस्कुरुतां प्रयच्छताम् ।
 यद्वा मध्वा मधुना उदकेन नः अस्मान् शिशीताम् संस्कुरुताम् ।
 उदकप्रदानेन वर्धयताम् इत्यर्थः । अग्निसाहचर्याद् अनयोः स्तुतिः ।
 ❀ शिशीताम् इति । शो तनूकरणे । लोटि छान्दसं रूपम् ❀ ॥
 हे जलके सारक आवापृथिवीके अधिष्ठात्री देवताओं ! मैं
 आपके जलकर्मकी वृद्धिके लिये आपकी स्तुति करता हूँ, इस
 कारण हे वृष्टिरूप फलके रोधक आवा पृथिवी ! तुम मेरी स्तुतिको
 सुनो और जिन दिनोंमें स्तुति करने वाले ऋत्विज अपने बल
 को यज्ञके लिये लगावें उन दिनोंमें हे माता पिता आवापृथिवी !
 तुम हमको जल प्रदान करके बढ़ाओ ॥ ३१ ॥

द्वितीया ॥

स्वावृग् देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी
 विश्वे देवा अनु तत् ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वा
 स्वावृक् । देवस्य । अमृतम् । यदि । गोः । अतः । जातासः ।

धारयन्ते । उर्वी इति ।

४६४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

विश्वे । देवाः । अनु । तत् । ते । यजुः । गुः । दुहे । यत् । एनी ।
 दिव्यम् । घृतम् । वाः ॥ ३२ ॥

देवस्य द्योतमानस्य अग्नेः स्वावृक् सुष्ठु आवर्जकं सर्वप्राण्या-
 वर्जकं स्वाधीनकर्तुं अमृतम् अमृतवद् उपकारकम् उदकं यदि
 यदा गोः रश्मेः सकाशाद् उत्पद्यते अतः अस्माद् अमृताद् वृष्ट्यु-
 दकात् जातासः जाता ओषधयः उर्वी उर्व्यौ महत्यौ द्यावापृथिव्यौ
 धारयन्ते आधारयन्त । भूमिष्ठानां द्युस्थानां च प्राणिनां तिल-
 व्रीह्याद्यौषध्युपजीवित्वात् तल्लोकनिवासिनां धारणेन तद्धारकत्वो-
 पचारः किंच यत् यदा एनी श्येता तव दीप्तिः । ❀ “वर्णाद्
 अनुदात्तात्” इति एत शब्दात् डीप् तकारस्य नकारश्च ❀ ।
 दिव्यम् दिवि भवं घृतम् क्षरद् वाः सर्वलोकाच्छादकम् उदकं दुहे
 दुग्धे हे अग्ने ते तव तद् यजुः । युज्यत इति यजुः कर्म तत् कर्म-
 जनितम् उदकं विश्वे सर्वे देवा अनु गुः अनुगच्छन्ति । उदका-
 भिवृद्धानां व्रीह्यादीनाम् अनुगतिरेव उदकानुगतिरित्युच्यते । यद्वा
 इज्यत इति यजुः । ❀ यजिरत्र दानार्थः ❀ । तव तद् दानम्
 उदकविषयं विश्वे सर्वे देवाः । ❀ दीव्यतिरत्र स्तुत्यर्थः ❀ ।
 स्तोतार ऋत्विजः अन्वगुः अनुयान्तीति व्याख्येयम् ॥

द्योतमान अग्निदेवका सब प्राणियोंको स्वाधीन करने वाला
 और अमृतकी समान उपकारक जल जब किरणोंसे प्रकट होता
 है तब इस वृष्टिजलरूप अमृतसे उत्पन्न हुई औषधियें द्यावापृथिवी
 को धारण करती हैं [भूमिके तथा द्युलोकके सब प्राणी तिल
 व्रीहि आदि औषधियोंसे जीवित रहते हैं अत एव औषधियें धारण
 करती हैं—कहा है] और जब आपकी यह श्वेत दीप्ति अन्तरिक्ष
 में होने वाले क्षरणशील सर्वलोकाच्छादक जलको दुहती है तब
 हे अग्ने ! आपके कर्मसे प्रकट हुए जलका सब स्तोता अनुगमन
 करते हैं अर्थात् जलसे बढ़े हुए धान आदिका उपभोग करते हैं

तृतीया ॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चक्रमा को
वि वेद ।

मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवांश्चलोको न यातामपि
वाजो अस्ति ॥ ३३ ॥

किम् । स्वित् । नः । राजा । जगृहे । कत् । अस्य । अति ।
व्रतम् । चक्रम् । कः । वि । वेद ।

मित्रः । चित् । हि । स्म । जुहुराणः । देवान् । श्लोकः । न ।
याताम् । अपि । वाजः । अस्ति ॥ ३३ ॥

राजा देवेषु मध्ये क्षत्रियजातिर्यमो नः अस्माकं संबन्धि किं-
चिद्धविरादकं किं स्वित् जगृहे गृह्णाति । कत् कदा अस्य यमस्य
प्रीणनं व्रतम् कर्म यमप्रीतिकरं नित्यनैमित्तिकरूपं कर्म अति चक्रम्
अतिक्रमं कृतवन्तः स्मः । को विवेद तत् को जानाति । अविद्य-
मानं ज्ञातुं कः शक्नोति । यमविषयापराधपरिहारोस्तीत्याह ।
देवान् द्वातव्यान् जुहुराणः आह्वयन् । ॐ ह कौटिल्ये । कानचि
रूपम् । धातूनाम् अनेकार्थत्वाद् अत्र द्वयत्यर्थः ॐ । मित्रः मित्र-
वद्वित्तकारी अग्निर्विद्यते । चित् हि स्म इति पादपूरणः । सर्वं स
एव परिहरिष्यतीत्यर्थः । यातान् देवानभिगच्छतो नः अस्मान्
रक्षितुं श्लोको न । नेति उपमार्थे । श्लोकः स्तुतिः । स्तुतिर्यथास्ति
एवं वाजोपि हविर्लक्षणम् अन्नं च विद्यते । अस्मान् रक्षितुं स्तुत्या
हविषा च अग्निं परितोष्य तज्मुखाद् यमस्यापराधं परिहरिष्याम
इत्यभिप्रायः ॥

देवताओंमें क्षत्रिय जाति वाला राजा यम हमारी कुछ हविको ग्रहण कर लेवे क्योंकि-कभी हमने यमको प्रसन्न करने वाले नित्य नैमित्तिक कर्मका अतिक्रमण कर लिया हो, परन्तु यह शंका होती है, कि-अविद्यमानको जाननेके लिये कौन समर्थ होसकता है कि-यमका अपराध क्षमा होगया या नहीं तब कहते हैं, कि-देवताओंका आह्वान करने वाले, मित्रकी समान हितकारी अग्निदेव विद्यमान हैं वही सब दूर कर देंगे। देवताओं की शरणमें जाते हुए हमारे पास स्तुतिकी समान हवि भी है अत एव अपनी रक्षा करनेके लिये हम स्तुति और हविसे अग्नि को सन्तुष्ट करके उनके द्वारा यमके अपराधको क्षमा करा लेंगे ३३ चतुर्थी ॥

दुर्मन्त्रत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति
यमस्य यो मनवते सुमन्त्रश्चे तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन्

दुःसमन्तु । अत्र । अमृतस्य । नाम । सलक्ष्मा । यत् । विषु-
रूपा । भवाति ।

यमस्य । यः । मनवते । सुसमन्तु । अग्ने । तम् । ऋष्व । पाहि ।

अप्रयुच्छन् ॥ ३४ ॥

पूर्वत्र “सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति” [२] इत्यत्र यमेन स्वसृभृताया यम्याः या संभोगप्रार्थना निराकृता तां स्मारयन्नाह । अत्र अस्मिन् । कृते सतीति शेषः । यद्वा अत्र यम्याः संभोगविषये अमृतस्य अमरणस्य यमस्य नाम नामधेयं दुर्मन्तु दुर्मननं दुर्वचम् । भवतीति शेषः । कथं भवतीत्याशङ्क्य तत्र कारणम् आह सलक्ष्मेति । यत् यस्मात् कारणात् यमस्य यमीम् इच्छतः । अथ वा यत् यस्मै संभोगम् अङ्गीकुर्वते यमाय इति व्याख्येयम् । स-

लक्ष्मा समानोदरा स्वसा यमी संभोगानन्तरं विपुरूपा भिन्नरूपा
भार्यारूपा भवति भवेत् । अतः स्वभगिनीभर्तेति यमस्य दुर्वचं
नाम भवेद् इत्यर्थः ॥ तथा सति यश्च पुमान् यमस्य राज्ञो नाम
सुमन्तु सुवचं नाम मनवते मनुते स्तौति । ❀ मनु अवबोधने । लेटि
तनादित्वाद् उपत्ययः । “लेटोडाटौ” इति अडागमः । आगमस्य
अनुदात्तत्वेन विकरणस्वरः ❀ । तं स्तोतारम् हे ऋषे दर्शनीय
अग्ने त्वम् अप्रयुच्छन् अमाद्यन् विस्मरणम् अकुर्वाणः पाहिरक्ष ।
एवं यमस्य निन्दानुकीर्तनदोषपरिहारप्रार्थनारूपेण अग्नेः स्तुतिः ॥

यहाँ यमका नाम लेना अच्छा नहीं लगता दुर्वच है, क्योंकि—
इनकी बहिनने इनको अपना पति बनाना चाहा था ऐसी दशामें
भी जो पुरुष इन यमराजके नामको लेरहा है इनकी स्तुति कर
रहा है, उस स्तोताकी हे दर्शनीय अग्ने ! आप इन निन्दाका
विस्मरण करते हुए उस की रक्षा करिये ॥ ३४ ॥

पञ्चमी ॥

यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदन धारयन्ते
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यः । अक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजसा
यस्मिन् । देवाः । विदथे । मादयन्ते । विवस्वतः । सदने । धारयन्ते ।
सूर्ये । ज्योतिः । अदधुः । मास । अक्तून् । परि । द्योतनिम् ।

चरतः । अजसा ॥ ३५ ॥

यस्मिन् अग्नौ सति यज्ञनिर्वर्तकत्वेन अग्नौ विद्यमाने सति
देवा इन्द्राद्याः विदथे यज्ञे मादयन्ते माद्यन्ति । यस्मिन् सति मनु-
ष्या विवस्वतः सूर्यस्य सदने स्थाने सूर्यलोके धारयन्ते वर्तन्ते ।
कर्मफलम् उपभुञ्जानाः सुखेन अवतिष्ठन्ते । येन वा अग्निना देवाः

४६८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सूर्ये ज्योतिः लोकत्रयप्रकाशकं तेजः अदधुः स्थापितवन्तः । एवं मासि मास्यते परिमीयत इति माश्वन्द्रः । ❀ “पदन्नोमास्” इत्यादिना मासशब्दस्य मासभावः ❀ । तस्मिन् अक्तून् व्यञ्जकान् तमोनिवर्तकान् रश्मीन् अग्नेः सकाशाद् आहृत्य देवाः स्थापितवन्तः । यद्वा अक्तवो रात्रयः । चन्द्रमसि रात्रीः स्थापितवन्तः । यस्माद् एवं तस्माद् द्योतनिम् द्योतमानम् अग्निं तौ चन्द्र-सूर्यौ अजस्रम् सततं परि चरतः ॥

जिन अग्निदेवके यज्ञको सम्पन्न करने वालेके रूपमें विद्यमान होने पर देवता प्रसन्न होते हैं और जिनके होने पर मनुष्य सूर्य-लोकमें रहते हैं अर्थात् सूर्यलोकमें कर्मफलका उपभोग करते हुए सुखपूर्वक रहते हैं और जिस अग्निके द्वारा देवताओंने सूर्यमें तीनों लोकोंके प्रकाशक तेजको स्थापित किया है और देवताओं ने जिनके पाससे तमोनिवर्तक किरणोंको लेकर चन्द्रमामें स्थापित किया है ऐसे द्योतमान अग्निकी चन्द्रमा और सूर्य निरन्तर सेवा करते हैं ॥ ३५ ॥

षष्ठी ॥

यस्मिन् देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म मित्रो नो अत्रादितिस्नागान्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥ ३६ ॥

यस्मिन् । देवाः । मन्मनि । सम्चरन्ति । अपीच्ये । न । वयम् । अस्य । विद्म ।

मित्रः । नः । अत्र । अदितिः । अनागान् । सविता । देवः । वरुणाय । वोचत् ॥ ३६ ॥

यस्मिन् मन्मनि मन्तव्ये स्थाने वरुणाख्ये देवाः यष्टव्याः सं-
चरन्ति । कीदृशे स्थाने । अपीच्ये । अन्तर्हितनामैतत् । अस्य
वरुणस्य तत् स्थानं न वयं विद्वन् न जानीमः । अत्र अन्तर्हितस्थाने
स्थिताय देवसंचारास्पदाय वरुणाय नः अस्मान् अनागान् अना-
गसः सविता देवः अदितिः देवमाता द्यौः मित्रश्च हे अग्ने त्वदनु-
ग्रहाद् । वोचत् ब्रवीतु । वोचद् इति प्रत्येकं संबध्यते ॥

जिस मननीय वरुणके अन्तर्हित स्थानमें पूजनीय देवता
विचरण करते हैं उस स्थानको हम नहीं जानते हैं, इस अन्तर्हित
स्थानमें स्थित वरुणदेवसे देवता हमको निरपराध बतावें, सविता
देवता, देवमाता अदिति द्युलोक और मित्रदेवता भी हे अग्ने !
आपके अनुग्रहसे हमको निरपराध बतावें ॥ ३६ ॥

सप्तमी ॥

सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

स्तुष ऊं पु नृतमाय धृष्णवे ॥ ३७ ॥

सखायः । आ । शिषामहे । ब्रह्म । इन्द्राय । वज्रिणे ।

स्तुषे । ऊं इति । सु । नृतमाय । धृष्णवे ॥ ३७ ॥

हे सखायः सखिभूताः परस्परं प्रेमवन्तः वयं वज्रिणे वज्रो-
पेताय । अनेन अतिशयितवीर्यत्वम् अस्य उक्तं भवति तेन च तस्य
अवश्ययष्टव्यतावगम्यते । तादृशाय इन्द्राय देवाय ब्रह्म परिवृढं
कर्म आ शिषामहे आशास्महे । कर्तुम् इति शेषः । ❀ आङः
शासु इच्छायाम् । लेटि आडागमः । “शास इदङ्ङ्लोः” इति
विहितम् इत्त्वम् अत्र व्यत्ययेन भवति । “शासिवसिघसीनां च”
इति षत्वम् ❀ । अथ वा अयम् अर्थः । सखायो वयम् । यज-
माना इति शेषः । अस्मिन् पक्षे सखायः इन्द्रस्य सखिभूता इत्यर्थः ।

५०० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तत्सखित्वं च हविःप्रदानाभिमतफलप्रदानाभ्याम् इति मन्तव्यम् ।
 उ अपि च नृतमाय नेतृतमाय । नृणां मध्य इति शेषः । सर्वेषां
 देवानां मुख्यायेत्यर्थः । धृष्णवे धर्षकाय शत्रूणां प्रच्यावकाय एवं
 रूपाय इन्द्राय तत्प्रीणनाय स्तुषे स्तौमि । अथ वा एकमेव वाक्यम् ।
 उक्तविशेषोपेताय इन्द्राय स्तुषे स्तोतुम् । ❀ ष्टुञ् स्तुतौ ।
 तुमर्ये कसेप्रत्ययः ❀ । ब्रह्म स्तुतिसाधनं मन्त्रजातम् आ शिषा-
 मह इच्छाम इति योजना ॥

परस्पर प्रेम रखने वाले मित्ररूप हम वज्रधारी इन्द्रदेवके निमित्त
 दृढ़ कर्मको करनेकी आशा रखते हैं, मैं परमनेता और शत्रुओंके
 धर्षक इन्द्रदेवकी स्तुति करता हूँ ॥ ३७ ॥

अष्टमी ॥

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।

मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ ३८ ॥

शवसा । हि । असि । श्रुतः । वृत्रहत्येन । वृत्रहा ।

मघैः । मघोनः । अति । शूर । दाशसि ॥ ३८ ॥

पूर्वमन्त्रे वज्रिणे ब्रह्म आ शिषामह इत्युक्तम् । अनेन मन्त्रेण
 तस्य महत्त्वं वर्णयन् स्वाभिमतम् आशास्ते । हे इन्द्र वृत्रहा वृत्रस्य
 हन्ता बलवतोऽसुरस्य हन्ता त्वं वृत्रहत्येव वृत्रहननेनेव यथा त्वं
 श्रुतः एवं शवसा । बलनामैतत् । बलेन गोत्रभेदनबलनमुच्याद्य-
 सुरविनाशकरणादिरूपसामर्थ्येन श्रुतः विख्यातोसि तेन युक्तो
 भवसि । यस्माद् एवम् अतो मघैः मंहनीयैर्वहुविधैर्धनैः मघोनः
 धनवतः बहुविधैर्धनैराढ्योहम् इति मन्यमानस्य आढ्यस्य ।
 धनम् इति शेषः । हे शूर विक्रान्त त्वं तद्धनम् अति दाशसि
 अतिप्रयच्छसि । मह्यम् इति शेषः । त्वदर्थं यागम् अकुर्वाणस्य

धनं तव यष्टे मह्यं प्रयच्छेत्यर्थः । “अयज्वनो विभजन्नेति वेदः”
[ऋ० १. १०३. ६] । “आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदः” [ऋ०
३. ५३. १४] इत्यादिश्रुतेः ॥

[पूर्वमन्त्रमें इन्द्रदेवका स्तुतिरूप दृढ़कर्म करनेकी आशा दिखाई
अब इस मन्त्रसे उनके महत्त्वका वर्णन करते हुए अपने अभि-
मतको प्रकाशित करते हैं, कि—] हे इन्द्रदेव ! आप वृत्रासुरके
मारने वाले हैं, जैसे आप वृत्रासुरको मारनेके लिये प्रसिद्ध हैं
इसी प्रकार अपने बलसे अर्थात् नमुचि बल आदिका नाश करने
वाले बलके कारण प्रसिद्ध हैं अत एव अनेक प्रकारके धनोंके
कारण अपनेको धनी मानने वालेके धनको आप मुझको दीजिये
अर्थात् आपके निमित्त याग न करने वालेके धनको मुझ आपका
यज्ञ करने वालेको दीजिये । [ऋग्वेदसंहिता १ । १०३ । ६ में
कहा है, कि—“अयज्वनो विभजन्नेति वेदः ।—यज्ञ न करने वालेके
धनको बाँटता हुआ आता है” और ऋग्वेदसंहिता ३।५३।१४में
कहा है, कि—“आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदः”] ॥ ३८ ॥

नवमी ॥

स्तेगो न क्षामत्येषि पृथिवीं मही नो वाता इह वान्तु
भूमौ ।

मित्रो नो अत्र वरुणो युज्यमानो अग्निर्वने न व्यसृष्ट
शोकम् ॥ ३६ ॥

स्तेगः । न । क्षाम् । अति । एषि । पृथिवीम् । मही इति । नः ।

वाताः । इह । वान्तु । भूमौ ।

मित्रः । नः । अत्र । वरुणः । युज्यमानः । अग्निः । वने । न ।

वि । असृष्ट । शोकम् ॥ ३६ ॥

स्त्यायति संघातेन बाहुन्येन शब्दं करोति वर्षास्विति स्तेगो मण्डूकः । स यथा क्षाम् क्षियन्ति निवसन्त्यत्रेति क्षा मही तां यथा अत्येति । वर्षाकाले भुवं परित्यज्य अप्सु सवत इत्यर्थः । एवं त्वं पृथिवीम् अत्येपि अतिगच्छसि ऊर्ध्वं गच्छसि । अथ वा अतीति अभीत्यस्यार्थे । अभिगच्छसि सर्वा पृथिवीम् । महीति पृथिवीविशेषणम् । महतीम् इत्यर्थः । ❀ अमः । स्थाने सुः ❀ । अथ वा महीति उत्तरत्र वाता इत्यनेन संबध्यते । किं च मही महान्तो वाता वायवः इह भूमौ नः अस्माकं वान्तु । अग्निसहायत्वेनेति शेषः । यद्वा अस्माकं सुखायेति योज्यम् । किं च मित्रः सर्वप्राणिनां मित्रभूतः एतन्नामको देवः नः अस्माकम् अर्थाय अत्र अस्मिन् कर्मणि युज्यमानः सन् शोकं व्यसृष्टेति उत्तरत्र संबन्धः । तथा वरुणोपि देवो युज्यमानः सन् शोकं व्यसृष्ट । नाशयत्वित्यर्थः । ❀ सृज विसर्गे । अस्माद् दैवादिकात् लुङि रूपम् ❀ । तत्र दृष्टान्तः । अग्निर्वने न अग्निर्यथा तृणगुल्मादिकं कात्स्नर्येन विसृजति दहति एवम् इति ॥

जैसे मण्डूक वर्षाकालमें पृथिवीका अतिक्रमण करता है अर्थात् पृथ्वीको छोड़ कर जलमें कूद जाता है इसी प्रकार आप भी विशाल पृथ्वीका अतिक्रमण कर ऊपरको जाते हैं और अग्निकी सहायतासे यह वायु हमको सुख देनेके लिये वहे । और सप्त प्राणियोंके मित्ररूप मित्र नामक देवता इस कर्ममें लग कर हमारे शोकको दूर करें और वरुणदेव भी इस कर्ममें लग कर हमारे शोकको इस प्रकार दूर करें, जिस प्रकार अग्नि घासको पूर्णरीति में खा कर डालता है ॥ ३६ ॥

दशमी ॥

स्तुहि श्रुते गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम्
मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यगस्मत् ते नि वपन्तु
सेन्यम् ॥ ४० ॥

स्तुहि । श्रुतम् । गर्तसदम् । जनानाम् । राजानम् । भीमम् ।
उपहत्नुम् । उग्रम् ।

मृडा । जरित्रे । रुद्र । स्तवानः । अन्यम् । अस्मत् । ते । नि ।
वपन्तु । सेन्यम् ॥ ४० ॥

अत्र अग्निरूपो रुद्रः स्तूयते । “रुद्रो वै क्रूरः” [तै० सं० ६.
१. ७. ७] “एष रुद्रो यद् अग्निः” [तै० ब्रा० १. १. ५. ८]
इति श्रुतेः । अत्र स्तोता स्वात्मानमेव संबोध्य ब्रूते । हे स्तोतस्त्वं
श्रुतम् प्रसिद्धं गर्तसदम् । “श्मशानसंचयोपि गर्त उच्यते” [नि०
३. ५] इति निरुक्तोक्तेर्गर्तः शवदाहप्रदेशः । तत्र सीदतीति गर्त-
सदः । प्रसिद्धो गर्तो वा परिगृह्यते । तस्य अरण्ये संचाराद् गर्त-
सदनं युज्यते । पुनः कीदृशम् । जनानां किरातपिशाचादिजनानां
राजानम् स्वामिनम् । तथा भीमम् बिभेति अस्माद् इति भीमं
भयजनकम् । तथा उपहत्नुम् उपेत्य हन्तारम् । उग्रम् उद्गूर्ण-
बलम् । एवं महानुभावं रुद्रम् हे आत्मन् स्तुहि स्तुतिं कुरु ॥ अथ
प्रत्यक्षवादः । हे रुद्र । सर्वपाणिनो माम् अनिष्टा नश्यन्तीति
स्वयं रौति इति रुद्र । ❀ रुद्रो रौतीति सतः [नि० १०. ५]
इति निरुक्तम् ❀ । अथ वा देवैर्भर्तिसतः सन् स्वयम् अरोदीद्
इति रुद्रः । “सोऽरोदीत् । यद् अरोदीत् तद् रुद्रस्य रुद्रत्वम्” इति
श्रुतेः [तै० सं० १. ५. १. १] । यद्वा रुद् दुःखं दुःखहेतुभूतं पापं

वा । तद् द्रावयतीति रुद्रः । स्वसेवकानां दुःखस्य द्रावकत्वं श्रुत्या-
गमपसिद्धम् । तादृशस्त्वं स्तवानः । ❀ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ❀ ।
अस्माभिः स्तूयमानः सन् मृड सुखय अस्मान् । अतस्ते सेन्यम्
सेनाः अस्मत् अस्मत्तः अन्यम् तव द्वेष्टारं नि वपन्तु । ❀ वपि-
प्राप्त्यर्थः ❀ । नितरां प्राप्नुवन्तु । अथ वा सेन्यम् तव सेना-
हम् । ❀ “तद् अर्हति” इति यः ❀ । अन्यम् इति व्ताख्येयम् ।
अस्मिन् पक्षे सेना इति शेषः सामर्थ्याल्लभ्यते ॥

इति अथर्वसंहितायाम् अष्टादशकण्डे प्रथमेनुवाक
चतुर्थं सूक्तम् ॥

[इस मन्त्रमें अग्निरूप रुद्रकी स्तुतिकी गई है । तैत्तिरीय-
संहिता ६ । १ । ७ । ७ में लिखा है, कि—“रुद्रो वै क्रूरः ।—
रुद्रदेव क्रूर है” और तैत्तिरीयब्राह्मण १ । १ । ५ । ८ में कहा
है, कि—“एष रुद्रो यद् अग्निः ।—यह रुद्र है जो अग्नि है” यहाँ
स्तुति करने वाला अपनेको ही सम्बोधित करके कहता है, कि—]
हे स्तोतः । तू श्मशानमें भवन वाले, किरात पिशाच आदिके
राजा, भयजनक, समीपमें आकर मारने वाले, प्रचण्ड बली
महानुभाव रुद्रकी स्तुति कर । हे सब प्राणियोंके रुद्र अर्थात्
दुःखको भगाने वाले रुद्र ! हमसे स्तुति पाकर आप हमको सुख
दीजिये । और आपकी सेना हमको छोड़ कर दूसरे आपसे द्वेष
करने वाले पर पड़े ॥ ४० ॥

प्रथम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त ॥

पितृमेधकर्मणि, “सरस्वतीं देवयन्तः” [४१] इति तिसृभिः
अग्निदाता कनिष्ठपुत्रश्चितौ दक्षिणत आज्येन सारस्वतहोमान्
कुर्यात् ॥

तत्रैव कर्मणि शवदहनस्थानम् “उदीरताम्” [४४] इत्यृचा
काम्पीलशाखया उद्धृत्य अभ्युक्ष्य लक्षणं कुर्यात् [कौ० ११.१] ॥

तथा पिण्डपितृयज्ञेऽपि अनया ऋचा गर्तं खनेत् । तथा च सूत्रितम् । “यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्वम् अन्तर्देशम् अभिमुखं उदीरताम् इति कर्षूँ खनति प्रादेशमार्त्रीं तिर्यगङ्गुलिमिताम्” इति [कौ० ११. ८] ॥

तत्रैव “उदीरताम्” इति वृत्तेन त्रीणि उदपात्राणि बहिषि निनयेत् । सूत्रितं हि । “उदीरताम् इति तिसृभिरुदपात्राण्यन्वृचं निनयति” इति [कौ० ११. ८] ॥

तत्रैव “इदं पितृभ्यः” [४६] इत्यृचा गर्तं दर्भान् स्तृणीयात् ॥ पितृमेधे परेयिवांसम् इति द्वाभ्यां कनिष्ठपुत्रेण चित्यादीपने सति याम्यौ होमौ कुर्यात् ॥

पितृमेधकर्ममें “सरस्वतीं देवयन्तः” इस इकतालीसवींसे तैत्तलीसवीं तककी तीन ऋचाओंसे अग्निदाता कनिष्ठ पुत्र चिताके दक्षिणकी ओर घृतसे सारस्वत होमोंको करे ।

तहाँ ही कर्ममें शवदहनस्थानको “उदीरिताम्” इस ४४ वीं ऋचासे काम्पिलशाखासे उद्धृत करके और अभ्युक्षित करके लक्षण करे । [कौशिकसूत्र ११ । १] ॥

तथा पिण्डपितृयज्ञमें भी इस ऋचासे गड्ढा खादे । इसी बातको सूत्रमें कहा है, कि—“यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्वम् अन्तर्देशम् अभिमुखं उदीरताम् इति कर्षूँ खनति प्रादेशमार्त्रीं तिर्यगङ्गुलिमिताम् (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

तहाँ ही “उदीरताम्” इस वृत्तसे तीन जलपूर्ण पात्रोंको कुशा पर रखे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“उदीरतां इति तिसृभिरुदपात्राण्यन्वृचं निनयति” (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

तहाँ ही “इदं पितृभ्यः” इस ४६ वीं ऋचासे गर्तमें कुशाओं को बिछावे ।

पितृमेधमें “परेयिवांसम्” इन दो ऋचाओंसे कनिष्ठ पुत्रके द्वारा चिताके प्रदीप्त होने पर याम्य होमोंको करे ।

तत्र प्रथमा ॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।

सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दातु ॥

सरस्वतीम् । देवयन्तः । हवन्ते । सरस्वतीम् । अध्वरे । तायमाने ।

सरस्वतीम् । सुकृतः । हवन्ते । सरस्वती । दाशुषे । वार्यम् । दातु

सरस्वतीम् सरणवतीं सकलशब्दसरणिस्वरूपां वाग्देवतां देव-
यन्तः देवान् यष्टव्यान् आत्मन इच्छन्तः । ❀ “सुप् आत्मनः
क्यच्” इति क्यच् ❀ । अत्र विनियोगानुसारेण देवः मृतशरी-
रस्य संस्कारकोऽग्निः यमो वाभिमतः । तम् इच्छन्तः हवन्ते आह्वानं
कुर्वन्ति । तस्य प्रीणनायेति शेषः । तथा सरस्वतीमेव अध्वरे यज्ञे
ज्योतिष्टोमे तायमाने सति हवन्ते । ❀ “तनोतेर्यकि” इति आत्वम् ❀ ।
यज्ञे सारस्वतहोमस्य विद्यमानत्वात् स्तोत्रशस्त्रादीनां वागात्मक-
त्वात् तत्सिद्धये च हवन्ते । अत्रापि विनियोगानुसारेण अध्वरः
पैतृमेधिको द्रष्टव्यः । एवम् उत्तरत्रापि विनियोगानुसारेण योज्यम् ।
तथा सरस्वतीं सुकृतः सुकर्माणः स्वस्वाभिमतफलाय अह्वयन्त
आह्वानम् अकुर्वन् पूर्वं आह्वयन्ति इदानीम् । इति सरस्वती देवी
दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय वार्यम् वरणीयं दातु प्रयच्छतु ॥

मृत शरीरके संस्कारक अग्निदेवको चाहते हुए पुरुष वाग्-
देवता सरस्वतीका आह्वान करते हैं और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ
के चलने पर भी सरस्वतीका आह्वान करते हैं और पुण्यात्मा
पुरुषोंने भी सरस्वतीका आह्वान किया है वह सरस्वती हविः
प्रदान करने वाले यजमानके लिये वरणीय पदार्थको देवे ॥४१॥

द्वितीया ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।

आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे
 सरस्वतीम् । पितर । हवन्ते । दक्षिणा । यज्ञम् । अभिनक्षमाणाः ।
 आऽसद्य । अस्मिन् । बर्हिषि । मादयध्वम् । अनमीवाः । इषः ।
 आ । धेहि । अस्मे इति ॥ ४२ ॥

सरस्वतीं देवीं पितरोपि हवन्ते आह्वयन्ति । कीदृशाः । दक्षि-
 णा । ❀ “दक्षिणाद् आच्” इति आच् प्रत्ययः ❀ । वेदेर्दक्षिण-
 भागे यज्ञम् अभिनक्षमाणाः व्याप्नुवानाः । ❀ नक्षतिव्याप्ति-
 कर्मा ❀ । “सर्वकर्माणि तां दिशम्” इत्यादिसूत्रात् [आश्व०
 २. ६. ३] वेदेर्दक्षिणभागे पितृकं कृत्स्नं कर्म क्रियते । पितृणा-
 मपि स्वधालाभाय सरस्वत्यपेक्षा विद्यत एव । तत्रापि मन्त्रादि-
 रूपायाः सरस्वत्या अपेक्षितत्वम् ॥ हे पितरः यूयम् अस्मिन्
 क्रियमाणे बर्हिषि यज्ञे आसद्य उपविश्य मादयध्वम् सरस्वतीं तर्प-
 यत । आसद्य यूयं वा मादयध्वम् तृप्ता भवत । अस्माभिर्दत्तया
 स्वधयेति शेषः । किं च हे सरस्वति पितृभिराहूता त्वम् अन-
 मीवाः हिंसकै रक्षोभिर्द्वर्जिताः व्याधिरहिता वा इषः इष्यमाणाः
 एवंलक्षणानि अन्नानि अस्मे अस्मासु आ धेहि स्थापय ॥

वेदीके दक्षिण भागमें बैठे हुए पितर भी सरस्वती देवीका
 आह्वान करते हैं [“सर्वकर्माणि तां दिशम् ।—सब कर्म दक्षिण
 दिशाकी ओर किये जावें” इस आश्वलायनसूत्र २ । ६ । ३ के
 अनुसार वेदीके दक्षिण भागमें सब पितृ कर्म किया जाता है ।
 और पितरोंको भी स्वधामाप्तिके लिये मंत्ररूपा सरस्वतीकी
 अपेक्षा होती ही है] हे पितरों ! तुम इस यज्ञमें बैठ कर प्रसन्न
 होओ, सरस्वतीको तृप्त करो और आकर हमारी दी हुई दधिसे तृप्त

होओ । और हे सरस्वति ! पितरोंसे बुलाई हुई तुम व्याधिशून्य
अभिलषित अन्नको हममें स्थापित करो ॥ ४२ ॥

तृतीया ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभिर्म-
दन्ती ।

सहस्रार्धमिडो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानाय धेहि
सरस्वति । या । सरथम् । ययाथ । उक्थैः । स्वधाभिः । देवि ।
पितृभिः । मदन्ती ।

सहस्रार्धम् । इडः । अत्र । भागम् । रायः । पोषम् । यजमा-
नाय । धेहि ॥ ४३ ॥

हे सरस्वति देवि या प्रसिद्धा त्वं सरथम् समानम् एकमेव रथं
ययाथ यासि । सामर्थ्यात् पितृभिरिति गम्यते । ❀ या प्रापणे ।
लिटि “अचस्तास्वत्थन्यनिटो नित्यम्” इति थलि इडभावः ❀ ।
कीदृशी त्वम् । उक्थैः शस्त्रैः स्वधाभिः । पितृणाम् अन्नं स्वधा ।
ताभिश्च पितृभिः सह मदन्ती आत्मानं तर्पयन्ती । त्वम् अत्र
सहस्रार्धम् अनेकैः पुत्रादिभिः पूजनीयं पुत्रादिसंतर्पकं बहुमूल्य-
त्वेन अनर्थं वा इडः अन्नस्य भागम् भजनीयम् अंशं रायस्पो-
षम् धनस्य गवादिलक्षणस्य पुष्टिं च यजमानाय मह्यं धेहि प्रयच्छ ।
❀ रायस्पोषम् इति । षष्ठ्याः पतिपुत्र०” इत्यादिना सांहितिकं
सत्त्वम् ❀ ॥

हे सरस्वती देवि ! आप उक्थ शस्त्र तथा स्वधान्नसे पितरों
सहित अपनेको तृप्त करती हुई एक ही रथ पर आती हैं आप

यहाँ पुत्र आदि अनेकों व्यक्तियोंको तृप्त करने वाले अन्नके भागको और धनकी पुष्टिको मुक्त यजमानको दीजिये ॥ ४३ ॥

चतुर्थी ॥

उदीरतामवर उत् परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः

असुं य ईयुर्वृका ऋतज्ञास्ते नोवन्तु पितरो हवेषु ४४

उत् । ईरताम् । अवरे । उत् । परासः । उत् । मध्यमाः । पितरः ।

सोम्यासः ।

असुम् । ये । ईयुः । अष्टकाः । ऋतज्ञाः । ते । नः । अवन्तु ।

पितरः । हवेषु ॥ ४४ ॥

अवरे वयसा गुणैर्वा निकृष्टाः पितरः उदीरताम् उत्तिष्ठन्तु ।
 ❀ ईर गतौ । आदादिकोऽनुदात्तेत् ❀ । तथा परासः परे वयसा-
 दिना श्रेष्ठाः पितरः उदीरताम् । एवं मध्यमाः उक्तप्रकारेण तादृशाः
 पितरः उत्तिष्ठन्तु । अथ वा अवरे पुत्रपौत्रप्रपौत्राः परासः परे वृद्ध-
 प्रपितामहादयः । मध्यमाः पितृपितामहप्रपितामहाः । सर्वत्र उदीर-
 ताम् इति संबन्धः । यद्वा सोम्यास इति सोमसंबन्धाद् “अङ्गिरसो नः
 पितरो नवगवा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः” [५८] इत्यादिमन्त्रोक्ता
 अङ्गिरःप्रभृतयः पूर्वतनाः पितरः अत्र गृह्यन्ते । तेष्वेव तपआदि-
 महत्त्वतारतम्येन अवरपरमध्यमत्वलक्षणो विभागो द्रष्टव्यः ते
 विशेष्यन्ते । सोम्यासः । सोमार्हाः सोमसंपादिनः । ❀ “सोमम्
 अर्हति यः” इति यप्रत्ययः ❀ । ये असुम् प्राणम् ईयुः प्राणोप-
 लक्षितं लिङ्गशरीरं प्राप्ताः प्राणं वा प्रयच्छन्ति स्वयष्टभ्यः । अष्टकाः
 अहिंसकाः । ऋतज्ञाः सत्यविदः । ते तादृशाः पितरः हवेषु आह्वा-
 नेषु निमित्तभूतेषु नः अस्मान् अवन्तु रक्षन्तु ॥

५१० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अवस्था वा गुणोंमें निकृष्ट पितर उठें और अवस्था वा गुणों में श्रेष्ठ पितर उठें और इसी प्रकारके मध्यम पितर उठें । अथवा पुत्र पौत्र प्रपौत्र रूप अवर पितर तथा वृद्धप्रपितामह आदि पर पितर तथा पिता पितामह प्रपितामह आदि मध्यम पितर उठें । वा तप आदिके महत्त्वके कारण अवर पर और मध्यम अंगिरा आदि पितर उठें, यह पितर सोमका भक्षण करने वाले हैं; ये प्राणोपलक्षित लिंगशरीरको प्राप्त होगए हैं अहिंसक हैं, सत्यज्ञ हैं, ऐसे पितर आह्वानोंके समय हमारी रक्षा करें ॥ ४४ ॥

पञ्चमी ॥

आहं पितॄन्सुविदत्रां अवि॒त्सि॒ नपा॑तं च वि॒क्रम॑णं
च वि॒ष्णोः॑ ।

ब॒र्हि॒षदो॑ ये स्व॒धया॑ सु॒तस्य॑ भज॑न्त पि॒त्वस्त॑ इ॒हाग॑-
मि॒ष्टाः ॥ ४५ ॥

आ । अ॒हम् । पि॒तॄन् । सु॒वि॒द॒त्रान् । अ॒वि॒त्सि॒ । नपा॑तम् । च ।
वि॒क्र॒म॒णम् । च । वि॒ष्णोः॑ ।

ब॒र्हि॒ऽसदः॑ । ये । स्व॒धया॑ । सु॒तस्य॑ । भज॑न्त । पि॒त्वः । ते । इ॒ह ।
आ॒ग॒मि॒ष्टाः ॥ ४५ ॥

अहं सुविदत्रान् कल्याणधनान् पितॄन् आवित्सि आभिमुख्येन प्रामोमि आजानामि वा । ❀ विदेर्ज्ञानार्थात् लुङि सिचि “एकाच उपदेशेनुदात्तात्” इति इट्प्रतिषेधः । “लिङ्सिचावात्मनेपदेषु” इति किर्याद् गुणाभावः । क्रियाफलस्य कर्तृगामित्वाद् आत्मनेपदम् । विदेर्ज्ञानार्थाद् वा लुङि व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । इड-

अष्टादशं काण्डम्

५११

भावः ॐ । किं च विष्णोः । “यज्ञो वै विष्णुः” इति [तै० ब्रा० ३. १. ६. ७] श्रुतेर्यज्ञाख्यस्य विष्णोः नपातम् न पातयितारम् ।
 ॐ “नभ्राएनपात्” इत्यादिना निपातितः ॐ । निर्वाहकम् अग्निं च आवित्सि । तथा विक्रमणं च क्रमेण सवनत्रयाक्रमणं च आवित्सि । अतो ये बर्हिषदः बर्हिषि निषीदन्तः एतन्नामकाः पितरः सन्ति । “ये वै यज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरो बर्हिषदः” इति श्रुतेः [तै० ब्रा० १. ६. ६. ६] । एवंलक्षणा ये स्वधया सह सुतस्य अभिषुतस्य । ॐ कर्मणि षष्ठी ॐ । सुतं सोमं भजन्त भजन्ते ते तान् हे अग्ने पित्वः । आसन्ननामैतत् । आसन्नः सन् इह अस्मिन् कर्मणि आगमिष्ठाः आगमय । अथ वा ये भजन्ते ते पितरः पित्वः अन्तिकं देशम् आगमिष्ठाः आगच्छन्तु ॥

मैं कल्याणधनी पितरोंको अभिमुख होकर प्राप्त होता हूँ और विष्णु (यज्ञ) के रक्षक अग्निको प्राप्त होता हूँ अत एव जो बर्हिषद् नामक पितर हैं, कि—जो स्वधाके साथ अभिषुत सोमका सेवन करते हैं उनको हे अग्ने ! यहाँ समीपमें बुलाइये ॥४५॥

षष्ठी ॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये अपरास ईयुः ।

ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वानूनं सुवृजनासु दिक्षु

इदम् । पितृभ्यः । नमः । अस्तु । अद्य । ये । पूर्वासः । ये ।

अपरासः । ईयुः ।

† तैत्तिरीयब्राह्मण १ । ६ । ६ । ६ में कहा है, कि—“ये वै यज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरो बर्हिषदः ।—जो गृहमेधी यज्ञ करते रहते हैं वे बर्हिषद् पितर होते हैं” ॥

५१२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

ये। पार्थिवे । रजसि । आ । निऽसत्ताः । ये । वा । नूनम् ।

सुऽवृजनासु । दिक्षु ॥ ४६ ॥

पितृभ्यः अथ इदानीं क्रियमाणम् इदं नमोस्तु । “नमस्कारो हि पितॄणाम्” इति श्रुतेः [तै० ब्रा० १. ३. १०. ८] नमउक्तिः क्रियते । पितॄन् विशिनष्टि । ये पूर्वासः पूर्वे परेताः ईयुः पितृलोकं प्राप्ताः । उ अपि च परासः परे ईयुः । ये च पितरः पार्थिवे रजसि भूलोके आ निषत्ताः आनिषण्णाः स्थिताः । ❀ “नसत्तनिषत्त०” इत्यादिना निपातितः ❀ । वा अथ वा ये पितरो नूनम् इदानीं सुवृजनासु सुष्ठु विभक्तासु दिक्षु प्रागादिषु आ निषत्ताः । तेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यः इदं नमोस्तु इति पूर्वत्रान्वयः ॥

जो पितर पहिले पितृलोकको प्राप्त होगए हैं और जो अभी हाल में पितृलोकको गए हैं और जो भूलोकमें हैं और जो पितर सुविभक्त दिशाओंमें हैं उनके लिये यह प्रणाम प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

सप्तमी ॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्वृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वा-
वृधानः ।

यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवांस्ते नोवन्तु पितरो हवेषु ४७

मातली । कव्यैः । यमः । अङ्गिरःऽभिः । बृहस्पतिः । ऋक्वऽभिः ।

वृधानः ।

यान् । च । देवाः । वृधुः । ये । च । देवान् । ते । नः । अवन्तु ।

पितरः । हवेषु ॥ ४७ ॥

मातली यमः बृहस्पतिश्च पितॄणां नेतारो देवाः । अत्र मातली

अष्टादशं काण्डम्

५१३

नाम देवः कव्यैः एतत्संज्ञकैः पितृभिः सह वावृधानः वर्धमानो
भवति यजमानप्रत्तेन हविषा । तथा यमो देवः अङ्गिरोभिः पितृभिः
सह । यमस्य देवत्वं पितृत्वं चेति द्वैरूप्यम् अस्ति । अत्र देवत्वं
विवक्षितम् । तथा बृहस्पतिर्देवोपि ऋक्वभिः अर्चनीयैः एतन्ना-
मकैः पितृभिः सह वावृधानः । तत्र यांश्च पितॄन् देवाः मातन्या-
दयः प्रमुखाः सन्तो वावृधुः वर्धयन्ति यज्ञे । ये च पितरः कव्या-
दयो देवान् निर्दिष्टान् ववृधुः वर्धयन्ति स्वधाप्रदाने ते अत्र निर्दिष्टा
पितरः नः अस्मान् हवेषु आह्वानेषु अवन्तु रक्षन्तु ॥

मातली नामक पितृदेवता देव यजमानकी दी हुई हविसे
कव्य नामक पितरोंके साथ वृद्धिको प्राप्त होते हैं, तथा यम नामक
पितृनेता देव यजमानोंकी दी हुई हविसे अङ्गिरा नामक पितरोंके
साथ वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं तथा बृहस्पति नामक पितृनेता
ऋक्व नामक पितरोंके साथ वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं । इनमें जिन
पितरोंको मातली आदि देवता यज्ञमें बढ़ाते रहते हैं और जो
कव्य आदि पितर देवताओंको स्वधा प्रदान करके बढ़ाते रहते हैं,
वे पितर आह्वानोंमें हमारी रक्षा करें ॥ ४७ ॥

अष्टमी ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उनायं तीव्रः किलायं रसवाँ
उतायम् ।

उतो न्वं १ स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥

स्वादुः । किल । अयम् । मधुमान् । उत । अयम् । तीव्रः ।

किल । अयम् । रसवान् । उत । अयम् ।

उतो इति । नु । अस्य । पपिऽवांसम् । इन्द्रम् । न । कः । चन ।

सहते । आऽहवेषु ॥ ४८ ॥

अत्र सोमः स्तूयते । अयम् अभिषुतः सोमः स्वादुः सुखेन आस्वाद्यः किल । यथा बालकं पयआदिकपानाय स्वाद्वादिगुण-कीर्तनेन प्ररोचयति तद्वद् अत्रापि अभिधीयते । उत अयं सोमः मधुमान् माधुर्योपेतः किल । यत एवम् अतः स्वादुरित्यर्थः । तथा अयं सोमः तीव्रः आशु मदयिता किल । उत अपि च अयं रसवान् बहुरसोपेतः किल । उतो अपि च नु किल अस्य अयं सोमं पपिवांसम् पीतवन्तम् इन्द्रम् आहवेषु परस्पराह्वानवत्सु संग्रा-मेषु कश्चन असुरादिः न सहते नाभिभवति । तं सोढुं न शक्नोती-त्यर्थः । अनेनास्य अत्यन्तबलकरत्वम् उक्तं भवति । तत्र सर्वत्र स्वाद्वादिगुणेषु अनुभवसिद्धेष्वपि पितृणां देवानां च तत्प्र-त्यायनाय किलेति प्रयुक्तम् इति मन्तव्यम् ॥

[इस मंत्रमें सोमकी स्तुति की गई है, कि—] यह अभिषुत सोम सुखपूर्वक आस्वादन करने योग्य है [जैसे बालकको स्वादु आदि गुणोंका कीर्तन करके दुग्ध आदि पीनेमें रुचि उत्पन्न कराते हैं, इसी प्रकार यहाँ किया है] यह सोम मधुरता युक्त है अत एव स्वादु है और यह सोम तीव्र है अतः शीघ्र ही मदमें भर देता है, और यह रसवान् है, इसका पान करने वाले इन्द्रको युद्धोंमें असुर आदि कोई सह नहीं सका है ॥ ४८ ॥

नवमी ॥

परेयिवासं प्रवतो महीरिति बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं गजानं हविषा
सपर्यत ॥ ४९ ॥

परे॒यि॒वांस॑म् । प्र॒व॒तः । म॒हीः । इति । ब॒हु॒भ्यः । प॒न्था॑म् ।
अनु॒प॒स्प॒शा॒नम् ।

वैव॒स्व॒तम् । स॒म्ग॑म॒नम् । ज॒ना॒नाम् । य॒मम् । रा॒जा॒नम् । ह॒वि॒षा ।
स॒प॒र्य॑त ॥ ४६ ॥

परेयिवांसम् परागतम् अत्यन्तविप्रकृष्टदेशं गतवन्तम्! ❀ “उपे-
यिवाननाश्वाननूचानश्च” इति क्वस्वन्तो निपातितः । उपसर्ग-
ग्रहणम् अतन्त्रम् ❀ । परागतिं विशिनष्टि । प्रवतो महीरनु प्रक-
र्षवतीर्भूमीः प्रति । सर्वा भूमिम् अतिक्रम्य वर्तमानम् इत्यर्थः ।
❀ “उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे” इति वतिः । अर्थग्रहणसामर्थ्यात्
लिङ्गसंख्यायोगः ❀ । किं च बहुभ्यः पितृलोकं गतेभ्यः पन्थाम्
पन्थानं मार्गम् अनुपस्पशानम् । अनु इत्ययम् अवेत्यस्यार्थे ।
अवगच्छन्तम् इत्यर्थः । ❀ स्पशतिर्ज्ञानकर्मा ❀ । एवंप्रकारं वैव-
स्वतम् विवस्वतः पुत्रं जनानाम् मृतानां संगमनम् प्राप्तिस्थान-
भूतम् एवं महानुभावं यमं राजानं हविषा सपर्यत पूजयत ॥

विशाल पृथ्वीका अतिक्रमण करके परम दूर देशको जाने
वाले, बहुतसे पितरोंके द्वारा चले हुए मार्गमें चलने वाले विवस्वान्के
पुत्र, मृत पुरुषोंके प्राप्तिस्थानरूप राजा यमकी पूजा करो ॥४६॥

दशमी ॥

य॒मो नो॑ गा॒तुं प्र॒थ॒मो वि॒वेद॑ नैषा ग॒व्यूति॑र॒प॒भ॒र्त॒वा उ॑
यत्रा॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॒ परे॑ता ए॒ना ज॒ज्ञा॒नाः प॒थ्या॑ अनु॒
स्वाः ॥ ५० ॥

य॒मः । नः । गा॒तुम् । प्र॒थ॒मः । वि॒वेद॑ । नः । ए॒षा । ग॒व्यूतिः ।
अ॒प॒भ॒र्त॒वै । ऊ॒ं इति॑ ।

५१६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

यत्र । नः । पूर्वे । पितरः । पराऽऽताः । एना । जज्ञानाः । पथ्याः ।

अनु । स्वाः ॥ ५० ॥

यमो देवः नः अस्माकं संबन्धिनं मृतानां गातुम् मार्गं प्रथमः पूर्वगामी सन् विवेद अजानात् । उ अपि च एषा मृतेन गन्तव्या यमेन नेतव्या गव्यूतिः पद्धतिः । मार्ग इत्यर्थः । ❀ “गोर्यतौ छन्दसि०” इति वान्तादेशः ❀ । अपभर्तवै अपहर्तुं देवैर्मनुष्यैर्वा परिहर्तुं न । शक्येति शेषः । अवश्यं गन्तव्यैवेत्यर्थः । आत्मसाक्षात्काररहितैः पुरुषैः स्वकर्मफलभोगाय पितृलोकप्राप्तेरावश्यकत्वात् । ❀ अपभर्तवै इति । “तवै चान्तश्च युगपत्” इति उभयपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । यत्र यस्मिन् मार्गे नः अस्माकं पूर्वे पूर्वभाविनः पितरः परेताः परागताः येन च मार्गेण पुनरागत्य जज्ञानाः जाताः सर्वे स्वाः स्वीयाः स्वस्वकर्मानुरोधिनीः पथ्याः हितकरा भूमीर्गच्छन्ती । स्वस्वकर्मोपार्जितानि स्थानानि स्वेषां हितानि भवन्ति । तं मार्गं यमो विवेदेति पूर्वत्र संबन्धः ॥

इत्यथर्वसंहितायां अष्टादशकाण्डे प्रथमोऽनुवाकः पञ्चमं सूक्तम् ॥

यमदेव हमारे मरे हुए सम्बंधियोंके मार्गको प्रथम अनुभवी होनेके कारण जानते हैं, कि—यह मरे हुए मनुष्योंका मार्ग है देवता और मनुष्य इससे बच नहीं सकते, सबको इस मार्गसे अवश्य जाना पड़ता है, क्योंकि—आत्मसाक्षात्काररहित पुरुषोंको अपना कर्मफल भोगनेके लिये पितृलोक अवश्य मिलता है । जिस मार्गसे हमारे पूर्व पितर गए थे और जिस मार्गसे आकर वह अपने २ कर्मके अनुसार हितकारिणी भूमियोंको प्राप्त होते हैं उन मार्गोंको यम जानते हैं ॥ ५० ॥ (५)

प्रथम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ॥

पिण्डपितृयज्ञे “बर्हिषदः पितरः” इत्युक्त्वा बर्हिः स्तृणीयात् । सूत्रितं हि । “बर्हिर्गृहीत्वा विचृत्य संनहनं दक्षिणापरम्” इति

प्रक्रम्य “बर्हिरुदकेन सम्प्रोक्ष्य बर्हिषदः पितरः [१८. १. ५१]
उपहूता नः पितरः [१८. ३. ४५] अग्निष्वात्ता पितरः [१८.
३. ४४] ये नः पितुः पितरः [१८. ३. ४६] येस्माकम्
[१८. ४. ६८] इति प्रस्तृणाति” [इति । कौ० ११. ८] ॥

तत्रैव कर्मणि “आच्या जानु” [५२] इत्यृचा तस्मिन् बर्हिषि
तिलान् प्रकिरेत् ॥

पितृमेधे प्रेतास्थीनि अनया त्रिपादे शिक्ये उपवेशयेत् ॥

पितृमेधे “प्रेहि प्रेहि” [५४] इत्यनया तम् उत्थाप्य शकटे
निदध्यात् ॥

तत्रैव “अपेत वीत” [५५] इत्यनया प्रेतदहनस्थानं काम्पील-
शाखया सम्प्रोक्षयेत् ॥

पिण्डपितृयज्ञे “उशन्तस्त्वा” [५६] इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां
द्वे काष्ठे गृहीत्वा अग्निम् आदीपयेत् । सूत्रितं हि । “द्वे काष्ठे
गृहीत्वा उशन्त इत्यादीपयति । आदीप्तयोरेकं प्रति निदधाति”
इति [कौ० ११. ८] ॥

तत्रैव “अङ्गिरसो मः पितरो नवग्वाः” [५८] इति सप्तभि-
र्ऋग्भिः प्रेतशरीरे अग्निप्रदः पुत्रः आज्यं जुहुयात् ॥

“इमं यम” [६०] इत्यृचा यमाय चतुर्थीं वपाहुतिं जुहुयात् ॥

“इत एतद् उदारुहन्” [६१] इति चतसृभिः उत्थापनीया-
भिर्ऋग्भिः प्रेतम् उत्थाप्य शकटे शयने वा निदध्यात् ॥

पिण्डपितृयज्ञे “बर्हिषदः पितरः” ऋचासे कुशाओंको फैलावे ।
इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि “बर्हिगृहीत्वा त्रिचृत्य
संहननं दक्षिणापरम् ।” इति प्रक्रम्य “बर्हिरुदकेन सम्प्रोक्ष्य
बर्हिषदः पितरः (१८ । १ । ५१) उपहूता नः पितरः (१८ ।
३ । ४५) अग्निष्वात्ताः पितरः (१८ । ३ । ४४) ये नः पितुः
पितरः (१८ । ३ । ४६) येऽस्माकम् (१८ । ४ । ६८) इति
प्रस्तृणाति” (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

तहाँ ही कर्ममें “आच्या जानु” इस वावनवीं ऋचासे कुशाओं में तिलोंको बखेरे ।

पितृमेधमें प्रेतकी अस्थियोंको इस ऋचासे तिलड़े छींके पर रख देय ।

पितृमेधमें “प्रेहि प्रेहि” इस चौअनवीं ऋचासे उसको उठा कर शकटमें रखे ।

तहाँ ही “अपेत वीत” इस पचपनवीं ऋचासे प्रेतदहनस्थानको काम्पिलशाखासे सम्प्रोक्षित करे ।

पिण्डपितृयज्ञमें “उशन्तस्त्वा” इस ५६ वीं ऋचासे और ५७ वीं ऋचासे दो काष्ठोंको लेकर अग्निको प्रदीप्त करे । इस विषय में सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“द्वे काष्ठे गृहीत्वा उशन्त इत्यादी-पयति । आदीप्तयोरेकं प्रतिनिदधाति । (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

तहाँ ही अग्निप्रद पुत्र अङ्गिरसो नः पितरो नवर्गाः इस अष्टानवीं ऋचासे सात ऋचाओंके द्वारा प्रेतके शरीरमें घृतकी आहुति देय ।

“इमं यम” इस साठवीं ऋचासे यमके लिये चौथी वपाहुति देय ।

“इतएतद् उदाहरन्” इस ६१ वीं ६२ वीं, ६३ वीं और चौंसठवीं उत्थापनीया ऋचाओंसे प्रेतको उठाकर शकट वा शयनमें रखे ॥

तत्र प्रथमा ॥

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चक्रमा जुष-
ध्वम् ।

त आ गतावसा शंतमेनाधानः शं योररपो दधात ५१

बर्हिःसदः । पितरः । ऊती । अर्वाक् । इमा । वः । हव्या । चक्रम ।

जुषध्वम् ।

ते । आ । गत । अवसा । शम्स्तमेन । अध । नः । शम् । योः ।

अरपः । दधात ॥ ५१ ॥

हे बर्हिषदः । बर्हिषि आस्तीर्णे दर्भे सीदन्तीति बर्हिषदः ।
 ❀ अन्त्यलोपश्छान्दसः ❀ । यज्ञम् आगताः हे पितरः यूयम्
 ऊती ऊत्या अस्मद्रक्षणेन निमित्तेन अर्वाक् अस्मदभिमुखम् ।
 आगच्छतेति शेषः । आगते सति किं लभ्यम् अस्तीत्यत्राह ।
 इमा इमानि पुरत आसन्नानि हव्या हव्यानि हवींषि वः युष्मभ्यं
 चक्रुम अकार्ष्म । तानि यूयं जुषध्वम् सेवध्वम् । ते तादृशा यूयम्
 आ गत आगच्छत । ❀ गमेर्लुङि “मन्त्रे घस०” इति च्लेर्लुक् ।
 “अनुदात्तोपदेश०” इत्यादिना अनुनासिकलोपः ❀ । केन
 सहिताः । शंतमेन सुखतमेन अवसा रक्षणेन सह । अस्माकं क्लेश-
 लेशेनापि रहितां रक्षां कर्तुम् आगच्छतेत्यर्थः । अथ आगत्य च
 नः अस्मभ्यं शम् रोगाणां शमनं योः भयानां यावनं च
 अरपः । ❀ रपो रिप् इति पापनामनी भवतः इति निरुक्तम्
 [नि० ४. २१.] ❀ । अपापं यथा भवति तथा दधात । ❀ “तप्त-
 नप्तनथनाश्च” इति तस्य तच्चादेशः । तपः पित्त्वाद् आल्लोपाभावः ❀ ।
 प्रयच्छत ॥

यज्ञमें आये हुए हे बर्हिषद् पितरों ! तुम हमारी रक्षाके लिये
 हमारे सम्मुख आओ, इन हवियोंको हमने आपके लिये किया है,
 अतः आकर आप इनका सेवन करिये । आप कल्याणपद रक्षाओं
 के साथ पधारिये, और हममें रोगशान्ति और निष्पापत्वको
 स्थापित करिये ॥ ५१ ॥

द्वितीया ॥

आच्या जानुदक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभि गृणन्तु
 विश्वे ।

५२० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद् व आगः पुरुषता
कराम ॥ ५२ ॥

आऽअच्य । जानु । दक्षिणतः । निऽसद्य । इदम् । नः । हविः ।
अभि । गृणन्तु । विश्वे ।

मा । हिंसिष्ट । पितरः । केन । चित् । नः । यत् । वः । आगः ।
पुरुषता । कराम ॥ ५२ ॥

हे पितरः विश्वे सर्वे यूयं जानु आच्य जानुप्रदेशम् आकुञ्च्य ।
अनेन भोजनोचितः संनिवेश उक्तो भवति । दक्षिणतः वेदेर्दक्षिण-
भागे उपसद्य उपविश्य इदम् अस्माभिर्दीयमानं पुरोवर्ति हविः
हव्यम् अभि गृणीत अभिष्टुत समीचीनम् इति ब्रूत । अनेन हविः-
स्वीकारः अर्थाद् उक्तो भवति । न हि अनास्वाद्यमानस्य प्रशं-
सास्ति । कर्तव्यविषये अतिक्रमे संजातेपि शिक्षा न कार्येति प्रार्थ-
यते । हे पितरः यूयं केन चिद् अल्पेन महता वा अपराधेन नः
अस्मान् मा हिंसिष्ट हिंसां मा कुरुत । अपराधस्य संभावनाम्
आह । पुरुषता पुरुषत्वेन मनुष्यत्वेन हेतुना वः युष्माकं यद्
आगः यम् अपराधं कराम कुर्मः । मनुष्याणाम् अनवधानाद्
अतिक्रमसंभावनास्त्येवैत्यर्थः ॥

हे सकल पितरों ! तुम जानुको सकोड़ कर वेदिके दक्षिणभाग
में बैठकर हमारी दी हुई हविकी प्रशंसा करो [इससे हविका
स्वीकार स्वीकृत होता है, क्योंकि—अनास्वाद्य वस्तुकी कोई
प्रशंसा नहीं करता, अब यह प्रार्थना करते हैं, कि—कोई भूल चूक
होनाय तब भी आप दण्ड न देवें] हे पितरों ! आप किसी छोटे
या बड़े अपराधसे हमारी हिंसा न करना, क्योंकि—मनुष्य होने
से ही हमसे अपराध होसकना संभव है ॥ ५२ ॥

तृतीया ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति तेनेदं विश्वं भुवनं समंति
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश
त्वष्टा । दुहित्रे । वहतुम् । कृणोति । तेन । इदम् । विश्वम् । भुवनम् ।
सम् । एति ।

यमस्य । माता । परिऽउह्यमाना । महः । जाया । विवस्वतः ।
ननाश ॥ ५३ ॥

अस्य मन्त्रस्य “अपागूहन्” [१८. २. ३३] इति उपरि
वक्ष्यमाणस्य च अर्थविवरणरूपा आख्यायिका बृहद्देवतानुक्रम-
णिकाकारेण स्पष्टं प्रदर्शिता ।

अभवन्मिथुनं त्वष्टुः सरण्युस्त्रिशिराश्च ह ।
स वै सरण्युं प्रायच्छत् स्वयमेव विवस्वते ॥
ततः सरण्युं जज्ञाते यमयम्यौ विवस्वतः ।
तौ चाप्युभौ यमौ स्यातां ज्यायांस्ताभ्यां तु वै यमः ॥
दृष्ट्वा भर्तुः परोक्षं तु सरण्युः सदृशीं स्त्रियम् ।
निक्षिप्य तद्युगं तस्याम् अश्वा भूत्वापचक्रमे ॥
अविज्ञाता विवस्वांस्तु तस्याम् अजनयन्मनुम् ।
राजर्षिरभवत् सोऽपि विवस्वानिव तेजसा ॥
स विज्ञाय त्वपक्रान्तां सरण्युं त्वश्वरूपिणीम् ।
त्वाष्ट्रीं प्रति जगामाशु अश्वो भूत्वा सलक्षणः ॥
सरण्युश्च विवस्वन्तं विदित्वा हयरूपिणम् ।
मैथुनायोपचक्राम तां चाश्वामारुरोह सः ॥
ततस्तयोस्तु योगेन शुक्रं तद् अपतद् भुवि ।

५२२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

उपजिघ्रति सा त्वश्वा तच्छुक्लं गर्भकाम्यया ॥

आघ्रातमात्राच्छुक्लात् तु कुमारौ संबभूवतुः ।

नासत्यश्चैव दस्रश्च यौ तु तावश्विनाविति ॥

त्वष्टा सिक्तस्य रेतसः पुरुषाद्याकारनिर्माता देव उच्यते । “या-
वच्छो वै रेतसः सिक्तस्य त्वष्टा रूपाणि विकरोति” [तै० सं०
१. ५. ६. २] इत्यादिश्रुतेः । एतन्नामको देवः दुहित्रे स्वदुहितुः
पुत्र्याः सरण्युः । ❀ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ❀ । बहत्तुम् विवाहं
कृणोति करोति इति तेन कारणेन इदं विश्वं भुवनम् भूतजातं
समेति संगतम् अभूत् । तदिदं ज्ञेयं शेषः । यमस्य देवस्य माता
जनयित्री सरण्युः पर्युह्यमाना परिवाहम् उद्वाहं त्वष्टा पित्रा क्रिय-
माणा । ❀ बहतेर्येकि यजादित्वात् संपसारणम् ❀ । महः महंतः
अतिशयितप्रभावस्य विवस्वतः सूर्यस्य जाया सरण्युः ननाश अद-
र्शनं तिरोधानं प्राप्ता । “अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः” [१८. २. ३३]
इति वक्ष्यमाणत्वात् । अत्र निरुक्तम् । त्वष्टा दुहितुर्वहनं करोती-
तीदं सर्वं भुवनं समेति । यमस्य माता पर्युह्यमाना महतो जाया
विवस्वतो ननाश । रात्रिरादित्यस्य । आदित्योदयेन्तर्धीयते [नि०
१२. ११] इति ॥

[बृहद्देवतानुक्रमणिकाकारने इस मन्त्रकी और आगे कहे जाने वाले ‘अपागूहन्’ (१८। २। ३३) मंत्रकी भी अर्थको स्पष्ट करने वाली आख्यायिका कही है, कि-त्वष्टा देवताके सरण्यु नामकी कन्या और त्रिशिरा नामक पुत्र हुआ उसने स्वयं ही सरण्युको-विवस्वान्-सूर्यके लिये दिया । तब सूर्यदेवसे सरण्युमें यम और यमी उत्पन्न हुए, वे दोनों जुड़वाँ उत्पन्न हुए थे, यम उन दोनोंमें बड़ा था, भर्ताकी अनुपस्थितिने सरण्युने अपनीसी आकृति वाली एक स्त्री देखी तब अपनी दोनों सन्तानोंको उसको सौंप अपने आप घोड़ी बन कर चली गई, इस वृत्तान्त

से अनजान सूर्यदेवने उस स्त्रीमें मनुको उत्पन्न किया, वह राजर्षि मनु भी तेजमें सूर्यदेवकी समान हुए । इधर जब सूर्यदेवको पता लगा, कि—सरण्यु घोड़ीका रूप धारण करके चली गई है तब वह घोड़ेका रूप धारण करके शीघ्रता से उसकी खोजमें चले, सरण्युने हयरूपधारीको विवस्वान् जानकर मैथुनकी चेष्टाकी तब उनके योगसे जो वीर्य भूमि पर गिरा उस गर्भकी कामनासे उस घोड़ीने सूँघा, सूँघते ही उस वीर्यसे नासत्य और दस्र नामक दोनों अश्विनीकुमार प्रकट हुए”] सींचे हुए वीर्यको पुरुष आदिके आकारमें परिणत करने वाले त्वष्टा देवने अपनी पुत्री सरण्युका विवाह किया, उसको देखने के लिये सारा भुवन एकत्रित हुआ जब यमकी माता सरण्यु पिताके द्वारा विवाही गई तब परमप्रभावशाली सूर्यदेवकी भार्या उनके पाससे छिप गई थी ॥ ५३ ॥

चतुर्थी ॥

प्रेहि॑ प्रेहि॑ प॒थिभिः॑ पू॒र्याणै॑र्येना॑ ते पू॒र्वे पि॒तरः॑ परे॒ताः ।

उ॒भा राजा॑नौ स्व॒धया॑ म॒दन्तौ॑ य॒मं प॒श्यासि॑ वरु॒णं

च दे॒वम् ॥ ५४ ॥

प्र । इ॒हि । प्र । इ॒हि । प॒थिभिः॑ । पू॒र्याणैः॑ । येन॑ । ते । पू॒र्वे ।

पि॒तरः॑ । परा॑इ॒ताः ।

उ॒भा । राजा॑नौ । स्व॒धया॑ । म॒दन्तौ॑ । य॒मम् । प॒श्यासि॑ । वरु॒-

णम् । च । दे॒वम् ॥ ५४ ॥

अत्र “प्रेहि प्रेहि” इत्यनया प्रेतम् उत्थाप्य शकटे निदध्याद् इति विनियोगात् प्रेतस्य शकटं प्रति गमनम् अभिधीयते । हे प्रेत

त्वं मेहि मेहि प्रगच्छ प्रगच्छ । शकटं प्रतीति शेषः । अथ वा यम-
लोकं प्रति मेहि । द्विरभिधानम् आवश्यकगमनद्योतनाय । कैः
साधनैरिति तत्राह । पूर्याणैः यात्यनेदेति यानं वर्त्म । पुमांसो येन
वर्त्मना पितृलोकं यान्ति स पूर्याणः । पुंभिः उह्यमानो वा शिबि-
कादिः पूर्याणः । ॐ पृषोदरादित्वाद् अयं साधुः ॐ । बहुवचनं
पूजार्थम् । तैः पथिभिः प्रेहि । स मार्गो विशोष्यते । येन यानेन ते तव
पूर्वे पितरः पितृपितामहाद्याः परेता परागताः पितृलोकं प्राप्ताः ॥
तत्र को लाभ इत्यत्राह । उभा उभौ राजाना राजानौ देवेषु मध्ये
क्षत्रियजातीयौ । “यमो राजा” [तै० ब्रा० ३.१.२.११] “वरुणो
राजा” [तै० ब्रा० ३. ७. ७. ६] इति श्रुतिषु सर्वत्र प्रसिद्धेः ।
स्वधया अस्माभिर्दत्तया मदन्तौ माद्यन्तौ । विद्येते इति शेषः । तत्र
लोके यमं देवं पश्यासि पश्यसि वरुणं च देवं पश्यसि । अतः
प्रेहीति पूर्वत्रान्वयः ॥

हे प्रेत ! तू जिसको मनुष्य उठाते हैं उस टिकटिकी (आदि)
से यममार्गको प्रस्थान कर इस मार्गसे तेरे पिता पितामह आदि
पहिले मरे हुए पुरुष गए हैं, तहाँ देवताओंमें क्षत्रियजातीय राजा
वरुण और राजा यम ये दोनों राजा वर्तमान हैं और हमारी दी
हुई हविसे प्रसन्नता पा रहे हैं, तहाँ यमलोकमें तू यमदेवको और
वरुणदेवको देखेगा ॥ ५४ ॥

पञ्चमी ॥

अपेतं वीतं वि च सर्पतातोस्मा एतं पितरो लोकमक्रन्
अहोभिरद्भिरक्षुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ५५

अप । इत । वि । इत । वि । च । सर्पत । अतः । अस्मै । एतम् ।

पितरः । लोकम् । अक्रन् ।

अहःऽभिः । अत्ऽभिः । अक्तुऽभिः । विऽअक्तम् । यमः । ददाति ।

अवऽसानम् । अस्मै ॥ ५५ ॥

अत्र अनया दहनस्थानं संप्रोक्षेत् इति विनियोगात् तत्स्थान-
स्थितानां रक्तः पिशाचादीनाम् अपगमनम् अभिधीयते । हे रक्तः-
प्रभृतयः यूयम् अपेत अपगच्छत । वीत । ❀ वी गत्यादिषु ।
अत्र गतिरर्थः ❀ । विंगता भवत । अतः अस्माद् दहनस्थानाद्
वि सर्पत च विविधं विशेषेण वा गच्छत । दूरं गच्छतेत्यर्थः ।
अपसारणीयान् विशिनष्टि । ये अत्र स्थले पुराणाः पूर्वतनाः स्थ
भवथ । ये च अत्र नूतनाः इदानीन्तनाः स्थ तिष्ठथ । ते सर्वे
अपेतेति संबन्धः । अस्मै प्रेताय अहोभिश्च अद्भिः क्षालनसाधनै-
रुदकैश्च अक्तुभिः अभिव्यक्तिसाधनाभी रात्रिभिश्च व्यक्तम् सुवि-
शदम् अवसानम् अवस्यति अत्रेत्यवसानम् । ❀ वो अन्तर्कर्मणि ।
अधिकरणे ल्युट् ❀ । स्थानम् । तद् अस्मै यमो देवः ददाति
अदात् । तदर्थम् अपेतेति संबन्धः ॥

[इस ऋचासे दहनस्थानका सम्प्रोक्षण करे इस विनियोगके
अनुसार इस स्थानमें स्थित राक्षस पिशाच आदिका अपसारण
कहा जाता है, कि—] हे राक्षस आदि ! तुम इस स्थानसे भाग
जाओ, चले जाओ, तुम इस दहनस्थानसे अतिदूर चले जाओ
तुम प्राचीन समयसे यहाँ रहते हो वा नवीन ही यहाँ रहते हो तो
भी चले जाओ, क्योंकि-यमदेवताने इस प्रेतके लिये इस स्थानको
जल और दिन रातके साथ भली प्रकार रहनेके लिये दिया है ५५
षष्ठी ॥

उशन्तस्त्वेधीमह्युशन्तः समिधीमहि ।

उशन्नुशत आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ ५६ ॥

उ॒शन्तः । त्वा । इ॒धीम॒हि । उ॒शन्तः । सम् । इ॒धीम॒हि ।

उ॒शन् । उ॒शतः । आ । । वह॒ । पि॒तृन् । ह॒विषे । अ॒त्तवे ॥५६॥

हे अग्ने अस्मिन् पितृयज्ञे त्वा त्वाम् उशन्तः यज्ञनिर्वाहार्थं त्वां कामयमाना हवामहे आह्वानं कुर्मः । तथा उशन्तः कामयमानास्त्वां समिधीमहि सम्यग् इद्धं करवाम । ❀ इन्धेर्विधिलिङि विकरणस्य लुक् छान्दसः । “अनिदिताम्०” इति धातुनकारस्य लोपः ❀ । त्वं च उशन् यज्ञं स्वधां वा कामयमानः सन् उशतः स्वधां कामयमानान् पितृन् आ वह । किमर्थम् । हविषे हविः-स्वीकाराय अत्तवे तस्य च भक्षणाय । आ वहेति संबन्धः ॥

हे अग्ने ! हम यज्ञको निष्पन्न करनेके लिये इस पितृयज्ञमें आपकी कामना करते हुए आपका आह्वान करते हैं और आपकी कामना करते हुए आपको भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं, आप भी स्वधाकी कामना करते हुए पितरोंको हवि स्वीकार कर उसका भक्षण करनेके लिये लाइये ॥ ५६ ॥

सप्तमी ॥

द्यु॒मन्तस्त्वे॒धीम॒हि द्यु॒मन्तः॒ समि॒धीम॒हि ।

द्यु॒मान् द्यु॒मत आ वह॒ पि॒तृन् ह॒विषे अ॒त्तवे ॥५७॥

द्यु॒मन्तः । त्वा । इ॒धीम॒हि । द्यु॒मन्तः । सम् । इ॒धीम॒हि ।

द्यु॒मान् । द्यु॒मतः । आ । वह॒ । पि॒तृन् । ह॒विषे । अ॒त्तवे ॥५७॥

हे अग्ने द्युमन्तः दीप्तिमन्तः त्वदनुग्रहाद् अतिशयिततेजसो वयं त्वा त्वां हवामहे । शिष्टं पूर्वमन्त्रवद् योज्यम् ॥

हे अग्ने ! आपके अनुग्रहसे कान्तिमान् हुए हम आपका आह्वान करते हैं, कान्तिमान् हम आपको प्रदीप्त करते हैं, कान्तिमान् आप

कांति वाले पितरोंको हविको स्वीकार करनेके लिये और हवि का भक्षण करनेके लिये लाइये ॥ ५७ ॥

अष्टमी ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ५८

अङ्गिरसः । नः । पितरः । नवग्वाः । अथर्वाणः । भृगवः ।

सोम्यासः ।

तेषाम् । वयम् । सुमतौ । यज्ञियानाम् । अपि । भद्रे । सौमनसे ।

स्याम ॥ ५८ ॥

अङ्गिरसः एतन्नामानः अङ्गारात्मकाः । “येङ्गारा आसंस्तेङ्गिरसोभवन्” इति निरुक्तम् [ऐ० ब्रा० ३. ३४] । पूर्वे महर्षयः नः पितरः अस्माकं पितरः । नवग्वाः नूतनस्तुतिका नवभिर्मासैरुद्धता वा । तथा अथर्वाणश्च नः पितरः भृगवश्च नः पितरः । ❀ भृगुर्भुज्यमानो न देहेङ्गारेष्विति निरुक्तम् [नि० ३. १७] ❀ । एते सर्वे सोम्यासः सोमार्हाः सोमसम्पादिनः । एषाम् अङ्गिरः प्रभृतीनाम् ऋषिगणमध्ये प्राधान्याद् इदानीन्तनानामपि प्राचुर्येण तद्भोत्रत्वात् पितृत्वम् । यज्ञियानाम् यज्ञार्हाणां तेषां सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहरूपायां बुद्धौ वयं स्याम भवेम । तेषां सुमतिरस्मासु भवेद् इत्यर्थः । अपि अपि च तेषां भद्रे कल्याणे सौमनसे सुमनसो भावः सौमनसम् । ❀ युवादिषु पाठो द्रष्टव्यः ❀ । तत्र स्याम भवेम । उक्तस्यैवार्थस्य स्पष्टाभिधानम् एतत् ॥

जो अंगिरा नामक प्राचीन महर्षि हमारे पितर हैं, नूतन स्तुति वाले अथर्वा नामक और भृगु जो हमारे पितर हैं, ये सब सोम-

५२८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

पायी हैं, [ऋषियोंमें इन अंगिरा आदिकी प्रधानता है और आज कलके भी पितर अधिकतासे इसी गोत्र वाले हैं अत एव उनका पितृत्व है] इन यज्ञिय पितरोंकी अनुग्रहात्मिका बुद्धिमें हम रहें और वह मनमें हम पर प्रसन्न रहें ॥ ५८ ॥

नवमी ॥

अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गन्हीह यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेस्मिन् बर्हिष्या निषद्य ५९

अङ्गिरःऽभिः । यज्ञियैः । आ । गन्ही । इह । यम । वैरूपैः । इह ।
मादयस्व ।

विवस्वन्तम् । हुवे । यः । पिता । ते । अस्मिन् । बर्हिषि । आ ।
निऽसद्य ॥ ५९ ॥

हे यम इह अस्मिन् कर्मणि अङ्गिरोभिः एतन्नामकैः पितृभिः सह आ गहि आगच्छ । कीदृशैः । यज्ञियैः यज्ञार्हैः । एवं वैरूपैः विरूपाख्यस्य महर्षेर्गोत्रजैः सह आ गहि । आगत्य च इह अस्मिन् यज्ञे मादयस्व तर्पयस्व ॥ न केवलं त्वामेव ह्वयामि । किं तु ते तव यः पिता विवस्वान् आदित्यः तं विवस्वन्तं हुवे आह्वयामि । ❀ हयतेर्लटि “बहुलं छन्दसि” इति संप्रसारणम् ❀ । अस्मिन् बर्हिषि आस्तीर्णे निषद्य । यथा हविः स्वीकरोति तथा आह्वयामीति शेषः । आभिमुख्येन निषद्य इति वा ॥

हे यमदेव ! आप इस कर्ममें विरूप नामक महर्षिके गोत्रमें उत्पन्न हुए अंगिरा नामक यज्ञिय, पितरोंके साथ आइये और आकर इस यज्ञमें तृप्त हूजिये, मैं केवल आपका ही आह्वान नहीं करता हूँ, किंतु आपके जो पिता विवस्वान् हैं उनका भी आह्वान

करता हूँ, वह जिस प्रकार इस फैले हुए कुशासन पर बैठ कर हविको स्वीकार करें तिस प्रकार आह्वान करता हूँ ॥ ५६ ॥

दशमी ॥

इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।

आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो

मादयस्व ॥ ६० ॥

इमम् । यम । प्रस्तरम् । आ । हि । रोह । अङ्गिरः । अभिः । पितृभिः ।

सम् । विदानः ।

आ । त्वा । मन्त्राः । कविशस्ताः । वहन्तु । एना । राजन् ।

हविषः । मादयस्व ॥ ६० ॥

हे यम इमम् पुरत आस्तीर्णं प्रस्तरम् बर्हिषम् । उपस्तीर्णो दर्भः प्रस्तरः । ❀ “प्रेस्त्रोऽयज्ञे” इति निषेधाद् घञभावः । “ऋदोरप्” ❀ । तं प्रस्तरम् आ सीद् । हि इति पादपूरणः । किमेक एव । नेत्याह । अङ्गिरोभिः एतन्नामकैः पितृभिः सह संविदानः ऐकमत्यं प्राप्तः । ❀ “समोगम्यृच्छि०” इति आत्मनेपदम् ❀ । हे राजन् त्वा त्वां कविशस्ताः कविभिः क्रान्तप्रज्ञैर्महर्षिभिः स्तुता मन्त्राः आह्वानसाधना आ वहन्तु आह्वानं कुर्वन्तु आगमयन्तु । आगत्य च एना एनेन अनेन । ❀ “द्वितीयाटौःस्वेनः” इति एनादेशः । सर्वविधीनां छन्दसि विकल्पितत्वाद् इनादेशाभावः ❀ । हविषः । ❀ तृतीयार्थे षष्ठी ❀ । हविषा अस्माभिर्दत्तेन मादयस्व ॥

हे यम ! आप अङ्गिरा नामक पितरोंके साथ एकमत होतेहुए इस कुशासन पर बैठिये, बुद्धिमान् महर्षियोंके मन्त्र आपको बुला लेवें और आप आकर हमारी दी हुई हविसे प्रसन्न हूजिये ॥ ६० ॥

५३० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

एकादशी ॥

इत एत उदारुहन् दिवस्पृष्ठान्यारुहन् ।

प्र भूर्जयो यथा पथा द्यामङ्गिरसो ययुः ॥ ६१ ॥

इतः । एते । उत् । आ । अरुहन् । दिवः । पृष्ठानि । आ । अरुहन् ।

प्र । भूः । जयः । यथा । पथा । द्याम् । अङ्गिरसः । ययुः ॥ ६१ ॥

शवसंस्कर्तारः पुरुषाः एतत् मृतशरीरम् इतः अस्माद् भूपदे-
शाद् उदारुहन् ऊर्ध्वं शकटादिकम् आरोहयन् । इत एतद् इति
शकटे शयने वा प्रेतं निदध्याद् इति विनियोगात् ॥ अनन्तरं दिवः
द्युलोकस्य पृष्ठानि स्पृष्टव्यानि उपरितनस्थलानि भोग्यस्थानानि
आरुहन् आरोहयन् । ❀ रुहेर्लुङि “कृमृटरुहिभ्यश्छन्दसि” इति
च्चेः अङ् । ङित्वाद् गुणाभावः ❀ । द्युलोकं केन पथा आरो-
हयन्निति तत्राह । भूर्जयः भरणवन्तो भुवं जितवन्तो वा अङ्गिरसः
यथा यादृशेन पथा मार्गेण द्याम् द्युलोकं प्र ययुः प्राप्ताः । तेन
मार्गेण दिवस्पृष्ठान्यारुहन् इति संबन्धः ॥

इत्यथर्वसंहितायां प्रथमेऽनुवाके अष्टादशकाण्डे षष्ठं सूक्तम् ॥

प्रथमोऽनुवाकः समाप्तः ॥

शवका संस्कार करने वाले इन पुरुषोंने इस मृतशरीरको इस
पृथ्वी परसे उठा कर शकट टिकटिकी आदि पर चढ़ा दिया है,
फिर इसको द्युलोकके ऊपरके भोग्य स्थानों पर चढ़ा दिया है,
जिस मार्गसे पृथ्वीका विजय करने वाले आंगिरस गए हैं उस
मार्गसे द्युलोकमें पहुँचा दिया है ॥ ६१ ॥

प्रथम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त

प्रथम अनुवाक समाप्त (५४१)

द्वितीयेनुवाके षट् सूक्तानि । तत्र “यमाय सोमः” इति प्रथमं सूक्तम् । अत्र आदितस्तिसृणाम् ऋचां पूर्वर्चा सह प्रेतोत्थापन-कर्मणि उक्तो विनियोगः ॥

पितृमेधे “मैनमग्ने” [४] इत्यादिभिः “सहस्रणीथाः कवयः” [१८] इत्यन्ताभिः “अव सृज” [१०] इत्यृग्वज्रिताभिश्चतुर्दशभि-
र्ऋग्भिर्दह्यमानं प्रेतशरीरं सर्वे गोत्रिण उपतिष्ठेरन् ॥

“मैनमग्ने” इति चतसृभिः प्रेतशरीरे कनिष्ठपुत्रेण दत्तम् अग्निं गोत्रिण आदीपयेयुः ॥

तत्रैव कर्मणि “अजो भागः” [८] इति द्वाभ्यां चितेर्दक्षिण-पार्श्वे अजपशुं बध्नीयात् । यथा दह्यते तथा बन्धनं कार्यं मोचनं न कर्तव्यम् । तथा च माहकिराचार्यः “अजो हन्यते दह्यते एका-ग्निप्रेतशरीरदहने” इति ॥

पितृमेध एव चतुर्थेऽहनि “अव सृज” इत्यनया एकाग्रिकस्या-हिताग्नेः शरीरम् अनुमन्त्रयेन ॥

दूसरे अनुवाकमें छः सूक्त हैं । इनमें “यमाय सोमः” यह प्रथम सूक्त है । इसकी पहिली तीन ऋचाओंका पूर्व ऋचाके साथ प्रेतोत्थापनकर्ममें विनियोग कह दिया है ।

पितृमेधमें १० वीं ऋचासे रहित “मैनमग्ने” इस चौथी ऋचा से “सहस्रणीथाः कवयः” इस अठारहवीं ऋचा तककी १४ ऋचाओंसे भस्म होते हुए प्रेतशरीरके पास सब गोत्र वाले खड़े रहें ।

“मैनमग्ने” इन चार ऋचाओंसे प्रेतके शरीरमें दी हुई अग्नि को गोत्र वाले प्रदीप्त करें ।

तहाँ ही कर्ममें “अजो भागः” इन ८ वीं और नवम ऋचाओं से चिताके दाहिनी ओर बकरेको बाँधे । जिस प्रकार वह भस्म होजाय तिस प्रकार बाँधे उसको छोड़े नहीं । इसी बातको माह-

५३२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

किराचार्यने कहा है, कि—“अजो हन्यते दह्यते एकाग्निमेतशरीर-
दहने” ॥

पितृमेषमें ही चौथे दिन “अवसृज” ऋचासे एकाग्निक आहि-
ताग्निके शरीरका अनुमन्त्रण करे ।

तत्र प्रथमा ॥

य॒माय॒ सोमः॑ प॒वते॑ य॒माय॑ क्रि॒यते॑ ह॒विः ।

य॒मं ह॑ य॒ज्ञो ग॑च्छत्य॒ग्निदू॑तो अ॒रंकृ॑तः ॥ १ ॥

य॒माय॑ । सोमः॑ । प॒वते॑ । य॒माय॑ । क्रि॒यते॑ । ह॒विः ।

य॒मम् । ह॒ । य॒ज्ञः । ग॑च्छति । अ॒ग्निदू॑तः । अ॒रम्कृ॑तः ॥ १ ॥

यमाय देवाय सोमः पवते पूयते अभिषूयते सोमयागे यजमानैः ।
❀ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः । शप् । पूयातोः ❀ । सोमसाधनो ज्यो-
तिष्ठोमादिरननुष्ठितश्चेद् यमो नरके पातयिष्यतीति भिया यमपी-
तये सोमोभिषूयत इत्यर्थः । अथ वा पितॄणां सोमसंबन्धेन यम-
स्यापि सोमोस्त्येव । किं च यमायै हविः आज्यादिलक्षणं क्रियते
संस्क्रियते उत्पवनादिसंस्कारेण । किं च यमं ह यममेव यज्ञः
कृत्स्नो ज्योतिष्ठोमादिः गच्छति । कीदृशो यज्ञः । अग्निदूतः ।
दूतो यथा स्वामिना दत्तं धनादिकं दातव्याय प्रयच्छति एवम्
अग्निरपि यजमानेन दत्तं हविस्तस्मै तस्मै देवाय प्रयच्छतीत्यग्निदूतं
इत्यभिधीयते । अलंकृतः स्तोत्रशस्त्रादिभिर्भूषितः । यद्वा अलम्
अत्यर्थं निष्पादितः । साङ्गोपाङ्ग इत्यर्थः । यद्यपि सोमो हविश्च
उभे सर्वार्थं क्रियेते तथा यज्ञोपि सर्वदेवार्थः तथापि यमस्य सर्व-
प्राणिसंहर्तृत्वेन वा सर्वेषां पितृलोकप्रापकत्वेन वा प्राधान्याद्
यमायैव सोमादिकं क्रियत इत्युपचर्यते ॥

यजमान सोमयागमें ऋग्देवताके लिये सोमका अभिषव करते

हैं तात्पर्य यह है, कि—सोमसाधन ज्योतिष्टोम आदि न करा हो तो यम नरकमें गिरा देंगे इस भयसे यमकी प्रीतिके लिये सोम अभिषुत किया जाता है। और घृत आदि हवि उत्पन्न आदि संस्कारसे यमदेवके लिये ही दीजाती है। और स्तोत्र शस्त्र आदि से भूषित और जिसमें अग्नि दूतकी समान यजमानकी दी हुई हविको पहुँचाते हैं वह ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ भी यमको ही प्राप्त होता है। [यद्यपि सोम और हवि सबके लिये की जाती हैं और यज्ञ भी सब देवताओंके लिये किया जाता है तथापि यम सब प्राणियोंके सहारक हैं और सबको पितृलोकमें पहुँचाने वाले हैं अत एव प्रधानतासे उनका वर्णन किया है] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत ।

इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वैभ्यः पथिकृद्भ्यः २

यमाय । मधुमत्स्तमम् । जुहोत । प्र । च । तिष्ठत ।

इदम् । नमः । ऋषिभ्यः । पूर्वजेभ्यः । पूर्वैभ्यः । पथिकृद्भ्यः २

अत्रापि पूर्वमन्त्रवद् यमस्य प्राधान्याभिप्रायेण होमप्रतिष्ठे तस्यैव कर्तव्ये इत्यभिधीयते । हे यजमानाः यमायैव देवाय मधुमत्तमम् अतिशयेन मधुमत् सोमाज्यादिकं हविः जुहोत जुहुत । ❀ “तप्तनप्तन०” इति तस्य तत्रादेशो गुणः ❀ । प्र च तिष्ठत प्रतिष्ठां समाप्तिं यमायैव कुरुत । ननु यमायैव हूयते तत्सहचारिणां पितॄणां किं स्याद् इत्याशङ्क्य तेषां नमस्कारः क्रियत इत्याह इदं नम इति । ऋषिभ्यः मन्त्रादिद्रष्टृभ्यः अङ्गिरःप्रभृतिभ्यः । ❀ ऋषिदर्शनात् । स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यवइति निरुक्तम् । तद् यद् एनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयंभ्वभ्यानपत् ते

५३४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

ऋषयोऽभवंस्तद् ऋषीणाम् ऋषित्वम् इति विज्ञायते । इति च निरुक्तम् [नि० २. ११.] ❀ । ऋषयो विशोष्यन्ते । पूर्वजेभ्यः पूर्वम् उत्पन्नेभ्यः इदानींतनयजमानापेक्षया तेषां पूर्वजत्वम् । अत एव पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः । पथिकृतः पितृलोकस्य पथां कर्तारः । ये प्रथमं परेताः स्वर्गमार्गाणां दर्शयितारस्ते पथिकृतः पितृगणगताः । तेषां मार्गाणाम् इदानीन्तनैरपि अनुस्त्रियमाणत्वात् । एवं महानुभावेभ्य ऋषिभ्यः अङ्गिरःप्रभृतिभ्यः इदं नमः नमस्कारोस्तु ॥

[इस मंत्रमें भी यमकी प्रधानताके अभिप्रायसे होम और प्रतिष्ठा यमकी ही करनेका वर्णन है, कि—] हे यजमानों ! तुम यमदेवता के लिये ही परम मधुर सोम घृत आदि हविकी आहुति दो और प्रतिष्ठाको भी यमके लिये ही करो [अब यह विचार होता है यमके लिये ही आहुति दी जावे तो उनके साथ रहने वाले पितरों के लिये क्या होगा, तो कहते हैं, कि—] पूर्वके पूर्वज पितर पितृलोकके मार्गको बनाने वाले मन्त्रद्रष्टा अंगिरा आदि ऋषियोंके लिए यह प्रणाम है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यमाय घृतवत् पयो राज्ञं हविर्जुहोतन ।

स नो जीवेष्वा यमेदीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ ३ ॥

यमाय । घृतवत् । पयः । राज्ञे । हविः । जुहोतन ।

सः । नः । जीवेषु । आ । यमेत् । दीर्घम् । आयुः । प्र । जीवसे ३

हे यजमानाः यमाय राज्ञे घृतवत् घृतोपेतं पयः क्षीरं हविः हवीरूपेण संस्कृतं जुहोतन जुहोत जुहुत । ❀ तस्य तनादेशे गुणः ❀ । तेन किं लभ्यत इत्यत आह । स प्राप्तहविः सन् नः अस्मान् जीवेषु जीवत्सु प्राणिषु मध्ये आ यमत् नियमयेत् स्थाप-

येत । यथा मृतिर्न भवेत् तथा करोतु । किं च स यमः दीर्घम्
आयुः शतसंवत्सरलक्षणम् । प्रयच्छतु इति शेषः । किमर्थम् ।
जीवसे जीवनाय ॥

हे यजमानो ! यमराजके लिये घृतसम्पन्न क्षीरको हविके रूप
में अर्पण करो (उससे क्या मिलेगा तो कहते हैं, कि—) वह हवि
को पाने पर हम आपको जीवित प्राणियोंमें रखेंगे अर्थात् जिस
प्रकार हमारी मृत्यु न होगी तैसा करेंगे और वह यमदेव जीवित
रहनेके लिये आपको सौ वर्षकी आयु प्रदान करेंगे ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शूशुचो मास्य त्वचं चित्तिपो
मा शरीरम् ।

श्रुतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं प्रहिणुतात् पितृरूपं ४
मा । एनम् । अग्ने । वि । दहः । मा । अभि । शूशुचः । मा ।

अस्य । त्वचम् । चित्तिपः । मा । शरीरम् ।

श्रुतम् । यदा । करसि । जातवेदः । अथ । ईम् । एनम् । प्र ।

हिणुतात् । पितृन् । उप ॥ ४ ॥

हे अग्ने एनं प्रेतं मा वि दहः विदाहम् अतिदाहं मा कार्षीः ।
तथा माभि शूशुचः । ❀ शुचेलुङिचङि रूपम् । “दीर्घो लघोः”
इति अभ्यासस्य दीर्घः ❀ । अभितः शोकयुक्तं मा कार्षीः ।
उपर्यधश्च उभयोः पार्श्वयोरपि दाहाद् अभितः शोको भवति तद-
भावोत्र प्रार्थ्यते । किं च अस्य त्वचं मा चित्तिपः अन्यत्र मा
गमय । त्वग्भेदं मा कुर्वित्यर्थः । तथा शरीरमपि मा चित्तिपः ।

५३६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अस्य शवशरीरस्य आहुतिरूपत्वात् पुरोडाशादिवद् विदाहा-
द्यभावः प्रार्थ्यते । यदा त्वम् एतच्छरीरं शृतम् हविर्योग्यं पक्वं
करसि करोषि । ❀ आ पाके । “शृतं पाके” इति कर्मणि कर्तरि
वा निपातनात् शृभावः । करसीति । करोतेः औत्सर्गिकः शप् ।
लेटि वा अडागमः ❀ । हे जातवेदः जातमज्ञ अग्ने अथ शृतकर-
णानन्तरम् ईम् एनं पितृभ्यः उप पितृसमीपं प्र हिणुतात्
प्रहिणु प्रेरय ॥

हे अग्निदेव ! आप इस मनेको अति मत जलाइये और
शोक युक्त भी न करिए और इसकी त्वचाको भी अन्यत्र न
फेंकिये तथा इसके शरीरको भी अन्यत्र न फेंकिये [शव-
शरीरके आहुतिरूप होनेसे पुरोडाश आदिकी समान विदा-
हादिके अभावकी प्रार्थना की है, कि—] जब आप इस हविके
योग्य शरीरको पका लें तब इसको हे जातवेदा अग्ने ! पितरोंके
समीप भेज दें ॥ ४ ॥

॥ पञ्चमी

यदा शृतं कृणवो जातवेदोथेममेनं परिदत्तात् पितृभ्यः ।

यदो गच्छात्यसुनीतिमेतामथ देवानां वशनी भवाति ५

यदा । शृतम् । कृणवः । जातवेदः । अथ । इमम् । एनम् । परि ।

दत्तात् । पितृभ्यः ।

यदो इति । गच्छाति । असुनीतिम् । एताम् । अथ । देवानाम् ।

वशनीः । भवाति ॥ ५ ॥

हे जातवेदः प्राप्तहविलक्षणधन अग्ने त्वम् एनं शृतम् पक्वं
यदा कृणवः अकरोः अथ अनन्तरम् इदम् इदानीम् एनं दाहेन

संस्कृतं पुरुषं पितृभ्यः परि दत्तात् प्रयच्छ । यद्वा परिदानं रत्न-
 णाय दानम् इति प्रसिद्धेस्तस्य रत्नणाय प्रयच्छ । उ अपि च
 अयम् एनां प्रसिद्धाम् असुनीतिम् असून् प्राणान् नयति लोकान्त-
 रम् इति असनीतिः प्राणापहर्त्री देवता तां यदा गच्छति
 गच्छति अथ अनन्तरम् अयं देवानाम् द्योतमानानां स्वकीयानाम्
 इन्द्रियाणां वशनीः वशं नयतीति वशनीः । ❀ “सत्सूद्विष०”
 इत्यादिना विवप् ❀ । चक्षुरादीन्द्रियाणां सूर्यादिदेवताप्रापको
 भवति भवति ॥

हे हविरूप धनको पाने वाले अग्निदेव ! जब आप इसको पक्व
 कर लें तब इस दाहसे संस्कृत पुरुषको पितरोंको रक्षाके लिये
 दीजिये और जब यह असुनीति देवताको प्राप्त होवे तब यह देव-
 ताओंको वशमें करने वाला हो अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियोंको
 सूर्य आदिको प्राप्त कराने वाला हो ॥ ५ ॥

षष्ठी ॥

त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत् ।

त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आर्पिता ६

त्रिऽकद्रुकेभिः । पवते । षट् । उर्वीः । एकम् । इत् । बृहत् ।

त्रिऽस्तुप् । गायत्री । छन्दांसि । सर्वा । ता । यमे । आर्पिता ६

त्रिकद्रुकेभिः त्रिकद्रुकैः । ज्योतिष्टोमगोष्टोमायुष्टोमास्त्रयः त्रिक-
 द्रुका इत्युच्यन्ते । तैर्निमित्तभूतैस्तेषां निष्पत्तये पवते पूयते यमा-
 र्थम् अभिषूयते । सोम इति शेषः । ज्योतिष्टोमादीनाम् अननु-
 ष्ठाने यमो हनिष्यतीति भीत्या तेषु सोमोभिषूयत इत्यर्थः । तथा
 षडुर्वीः षडुर्व्यः । “षण्मोर्वीरंहसस्पान्तु” [आश्व० १. २. १]
 इत्यत्राम्नानाद् द्यौश्च पृथिवी च अहश्च रात्रिश्च आपश्च ओष-

५३८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

धयश्च एताः षड् उर्व्यः । ता अपि एकमित् एकमेव बृहत् महान्तं यमम् । उद्दिश्यैव प्रवर्तन्त इति शेषः । अथ वा बृहत् इति उत्तरत्र अन्वेति । बृहत् बृहती छन्दः तथा त्रिष्टुप् गायत्रीति च्छन्दांसि । ता तानि इतराणि सर्वा सर्वाणि छन्दांसि यमे आपिता आपितानि पर्यवसितानि । छन्दोभिरुपलक्षिताः सर्वे मन्त्रा यमैकविषया इत्यर्थः । ❀ ऋ गतौ । “अतिंही०” इत्यादिना पुगागमः । “जुष्टा-पिते च च्छन्दसि” इति आद्युदात्तत्वम् ❀ ॥

ज्योतिष्टोम गोष्टोम और आयुष्टोम ये तीन त्रिकटुक कहलाते हैं, इनको करते समय यमदेवके सोम लिय अभिषुत किया जाता है अर्थात् ज्योतिष्टोम आदिका अनुष्ठान न करने पर यमदेव प्रहार करेंगे, इस भयसे इनमें सोमका अभिषव किया जाता है । और द्यौ पृथिवी दिन रात्रि जल तथा औषधियें ये छः उर्वियें एक यमदेवके उद्देश्यसे ही प्रवृत्त होती हैं । बृहती त्रिष्टुप् और गायत्री आदि सब छन्द भी यममें ही पर्यवसित होते हैं अर्थात् छन्दों वाले सब मन्त्र एक यमकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं
च धर्मभिः ।

अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा
शरीरैः ॥ ७ ॥

सूर्यम् । चक्षुषा । गच्छ । वातम् । आत्मना । दिवम् । च ।
गच्छ । पृथिवीम् । च । धर्मभिः ।

अपः । वा । गच्छ । यदि । तत्र । ते । हितम् । ओषधीषु ।

प्रति । तिष्ठ । शरीरैः ॥ ७ ॥

हे मृत पुरुष त्वं सूर्यं देवं चक्षुषा चक्षुर्द्वारेण गच्छ सूर्यप्राप्तौ चक्षुरेव द्वारम् । “आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत्” इति [ऐ० आ० २. ४. २] पूर्वम् अक्षिणि आदित्यानुप्रवेशात् । तथा वातम् वायुं सूत्रात्मानम् आत्मना । अत्र आत्मशब्देन मुख्यः प्राणोभिधीयते । तेन तं गच्छ । अत्रापि “वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्” इति [ऐ० आ० २. ४. २] श्रुतेः वातप्राप्तौ प्राण एव द्वारम् । एवं धर्मभिः शरीरधारकैः इतरैरिन्द्रियैः दिवं च पृथिवीं च गच्छ । वा अथ वा अपो गच्छ उदकानि अन्तरिक्षं वा प्राप्नुहि । यदि तत्र अप्सु अब्देवतायां ते तव हितं भवेत् । अनेन तत्तत्स्थानप्राप्तेरैच्छिकत्वं सूचितं भवति । ओषधीषु व्रीहियवादिषु शरीरैः स्वावयवैः कर्मेन्द्रियैः । यद्वा पूजार्थं बहुवचनम् । शरीरेण स्थूलेन प्रति तिष्ठ प्रतिष्ठितो भव ॥

हे मृतपुरुष ! तू चक्षुरूपी द्वारके द्वारा सूर्यदेवको प्राप्त हो [सूर्यप्राप्तिमें चक्षु ही द्वार है क्योंकि—“आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशत् ।—आदित्य चक्षु बनकर नेत्रोंमें प्रवेश कर गए । ” इस ऐतरेय आरण्यक २ । ४ । २ की श्रुतिमें नेत्रमें पहिले आदित्य का प्रवेश कहा है] और हे मृतपुरुष ! तू वायुको सूत्रात्मारूपसे प्राप्त हो [“वायुप्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ।—वायुने प्राण-सूत्रात्मा-बन कर नासिकामें प्रवेश किया ” इस ऐतरेय आरण्यक २ । ४ । २ की श्रुतिके अनुसार वातप्राप्तिमें प्राण ही द्वार है] इसी प्रकार शरीरधारक अन्य इन्द्रियों (धर्मों) से ब्रूलोक और पृथ्वीलोकको प्राप्त हो । जल वा अन्तरिक्षको प्राप्त हो, इन सब स्थानोंमें तेरा हित (इच्छा) हो तो प्रवेश कर और व्रीहियव आदिमें ओषधियोंमें अपने स्थूल-शरीरके रूपमें प्रवेश कर ७

अष्टमी ॥

अजो भागस्तपसस्तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते
अर्चिः ।

यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु
लोकम् ॥ ८ ॥

अजः । भागः । तपसः । तम् । तपस्व । तम् । ते । शोचिः ।
तपतु । तम् । ते । अर्चिः ।

याः । ते । शिवाः । तन्वः । जातवेदः । ताभिः । वह । एनम् ।
सुकृताम् । ऊं इति । लोकम् ॥ ८ ॥

हे अग्ने अयम् अजस्तव भागः । अनुस्तरणीत्वेन अजस्य हन्य-
मानत्वाद् एवम् उच्यते । तं तपसः तापकेन तव तेजसा तपस्व संता-
पय । तम् एव अजं भागं ते तव शोचिः दीप्तिः तपतु सन्तापयतु ॥
एवम् अजस्य तापादिविषयताम् अभिधाय अथ प्रेतस्य अभिमत-
लोकप्राप्तिम् आशास्ते । उ अपि च हे जातवेदः प्राप्तपशुलक्षणधन त्वं
ते याः शिवाः सुखकरास्तन्वः सन्ति । “ये ते अग्ने शिवे तनुवौ”
[तै० ब्रा० १. १. ७. २] इत्यध्वर्युमन्त्रोक्ता विराट्स्वरा-
डाद्याः शिवास्तन्वः सन्ति ताभिस्तनूभिः शरीरसुखकरीभिः एनं
प्रेतं सुकृताम् पुण्यकृतां लोकम् स्थानं वह प्रापय ॥

हे अग्निदेव ! यह अज आपका भाग है उसको आप अपने
तापक तेजसे सन्तप्त करिये और उसी अजभागको आपकी दीप्ति
सन्तप्त करे और उसी अजको आपका ज्वालारूप तेज तपावे और
हे पशुरूप धनको पाने वाले जातवेदा अग्ने ! आपके जो सुखप्रद

विराट् स्वराट् आदि शरीर हैं उनसे आप इस प्रेतको पुण्यात्माओं के लोकको प्राप्त कराइये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदो याभिरापृणासि दिव-
मन्तरिक्षम् ।

अजं यन्तमनु ताः समृण्वता मथेतराभिः शिवतमाभिः
शृतं कृधि ॥ ९ ॥

याः । ते । शोचयः । रंहयः । जातवेदः । याभिः । आपृणासि ।
दिवम् । अन्तरिक्षम् ।

अजम् । यन्तम् । अनु । ताः । सम् । अण्वताम् । अथ । इत-
राभिः । शिवस्ताभिः । शृतम् । कृधि ॥ ९ ॥

हे जातवेदः ते याः शोचयः । शोचयन्तीति शोचयः । तादृशा
याः सन्ति । तथा या रंहयः वेगवत्यः । ॐ रहि गतौ । औणा-
दिक इष्ट्ययः ॐ । तन्वः सन्ति । किं च याभिस्तनूभिर्ज्वाला-
रूपाभिः दिवम् अन्तरिक्षं च आपृणासि पूरयसि तर्पयसि वा
तास्तव तन्वो यन्तं गच्छन्तम् अजम् अनुस्तरणीलक्षणं समृण्व-
ताम् संगच्छन्ताम् । अथ । अथेत्ययं प्रकारान्तरव्रीतनार्थः । इत-
राभिस्तनूभिः शिवतराभिः अत्यन्तसुखकराभिः अमुं प्रेतं शृतम्
पक्वं हविर्योग्यं कृधि कुरु ॥

हे जातवेदा अग्ने ! आपकी जो शोक देने वाली और वेगवती
लपटें हैं कि-जिनसे आप अलोक और अन्तरिक्षलोकमें व्याप्त
होजाते हैं वे लपटें इस अजको प्राप्त होवें और दूसरी सुखप्रद
लपटोंसे आप इस प्रेतको हविकी समान पक्व करिबे ॥ ९ ॥

दशमी ॥

अव॑ सृज॑ पुन॑रग्ने॑ पितृ॑भ्यो॒ यस्त॑ आ॒हुत॑श्चर॑ति स्व॒धावान्
आयु॑र्वसान॒ उप॑ यातु॒ शेषः॑ सं गच्छ॒तां तन्वा॑ सुव॒र्चाः

अव॑ । सृज॑ । पुनः॑ । अग्ने॑ । पितृ॑भ्यः । यः । ते । आ॑हुतः ।

चर॑ति । स्व॒धा॒ऽवान् ।

आयुः॑ । वसानः॑ । उप॑ । यातु॑ । शेषः॑ । सम् । गच्छ॒ताम् । तन्वा॑ ।

सुव॒र्चाः ॥ १० ॥

हे अग्ने त्वम् एनं प्रेतं तव हविष्ट्वेन कल्पितं पितृभ्यः पुनरव
सृज अत्यन्तं त्यज प्रयच्छ । पितृलोकस्थानायेत्यर्थः । यः प्रेत-
पुरुषः ते त्वयि आहुतः आहुतित्वेन दत्तः स्वधावान् अस्माभि-
र्दत्ताभिः स्वधाभिस्तद्वान् सन् चरति गच्छति ॥ किं च शेषः ।
अपत्यनामैतत् । ❀ शेष इत्यपत्यनाम शिष्यत इति निरुक्तम् ।
३. २. ❀ । आयुर्वसानः आयुष्मान् सन् उप यातु स्वगृहं
प्रति गच्छतु । स च प्रेतः सुवर्चाः शोभनेन वर्चसा युक्तः सन् तन्वा
पितृलोकावस्थानोचितेन शरीरेण सं गच्छताम् युक्तो भवतु ॥
यद्वा चतुर्थपादोपि अपत्यविषयतया योजनीयः । तत्पक्षेपि स च
शेषः सुवर्चाः सन् तन्वा स्वीयेन शरीरेण सं गच्छताम् । अनेन
पितृमृतिदुःखात् पुत्रस्य शरीरत्यागाभावे वर्चस्वित्वं च प्रार्थितं
भवति ॥

इत्यष्टादशकाण्डे द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! जो प्रेतपुरुष आपको हविरूपसे दिया गया है और
हमारी दी हुई स्वधाओंसे सम्पन्न होकर आपमें विचरण कर
रहा है उस हविरूपमें कल्पित प्रेतको आप फिर पितृलोकके लिये

छोड़िये और इसका जो शेष अर्थात् पुत्र है वह आयुष्मान् रहता हुआ घरको चला जावे और यह प्रेत शोभन वर्चसे सम्पन्न होकर पितृलोकमें रहनेके योग्य शरीरसे भी संयुक्त होवे, अथवा—इसका पुत्र ही सुन्दर तेजसे सम्पन्न रहता हुआ अपने शरीरसे सम्पन्न रहे [इससे यह प्रार्थनाकी है, कि—पिताके मरणके दुःखसे पुत्र के शरीरका पात न हो और यह वर्चस्वी भी रहे] ॥ १० ॥ (७)

अष्टादश काण्डके द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त

पितृमेधे “अति द्रव” इति अष्टानाम् ऋचा दह्यमानप्रेतशरी-
रोपस्थाने विनियोग उक्तः ॥

तथा एताभिरष्टभिर्दहनदेशं नीयमानं प्रेतशरीरम् अनुमन्त्रयेत् ॥
संचयनकर्मणि एताभिरष्टभिः हरिणीसंज्ञिकाभिर्ऋग्भिः अस्थि-
पूर्णं कलशं निखननप्रदेशं प्रति हरेद्युः ॥

तत्र “अति द्रव” इति तिसृभिः प्रेतहस्तयोर्दीयमानं गोपशुक्ल-
द्रवम् अनुमन्त्रयेत् ॥

“स्योनास्मै भव” इति तिसृभिर्मुमूषुं यजमानम् अग्निहोत्र-
शालायाम् आस्तीर्णेषु दर्भेषु स्थापयेत् ॥

तथा एताभिस्तिसृभिर्ऋग्भिः अग्नेरुत्तरपार्श्वे प्रेतस्य शरीरं
शकटाद् अवतारयेत् । इदं कर्म दहनस्थाने कर्तव्यम् ॥

तथा अस्थिपूर्णकलशस्य भूमौ निखननपक्षे “स्योनास्मै भव”
[१६] इत्युक्त्वा कलशम् अभिमन्त्र्य निखनेत् ॥

“अति द्रव” आदि आठ ऋचाओंका भस्म होते हुए प्रेत-
शरीरके उपस्थानमें विनियोग कहा है ।

तथा इन आठ ऋचाओंसे भस्म करनेके स्थानको लिये जाते
हुए प्रेतके शरीरका अनुमन्त्रण करे ।

संचयनकर्ममें इन हरिणी नामक आठ ऋचाओंसे अस्थिपूर्ण
कलशको निखननदेशकी ओर लेजावे ।

५४४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तहाँ “अतिद्रव” इन तीन ऋचाओंसे प्रेतके हाथमें दिये जाते हुए गोपशुके दोनों वृक्षोंका अनुपन्त्रण करे ।

“स्योनास्मै भव” इन तीन ऋचाओंसे सुमूर्षु यजमानको अग्निहोत्रशास्त्रामें फैले हुए दर्भों पर स्थापित करे ।

तथा इन तीन ऋचाओंसे अग्निके उत्तरकी ओर प्रेतके शरीर को शकटसे उतारे इस कर्मको दहनस्थानमें करे ।

तथा अस्थिपूर्ण कलशके निखननके पक्षमें “स्योनास्मै भव” इस उन्नीसवीं ऋचासे कलशको अभिमंत्रित करके गाढ़ देवे ।

तत्र प्रथमा ॥

अति द्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरत्नौ शबलौ साधुना
पथा ।

अथा पितृन् सुविदत्राँ अपि हि यमेन ये सधमादं मदन्ति

अति । द्रव । श्वानौ । सारमेयौ । चतुःऽअत्नौ । शबलौ । साधुना ।
पथा ।

अथ । पितृन् । सुऽविदत्रान् । अपि । इहि । यमेन । ये । सधऽ-
मादम् । मदन्ति ॥ ११ ॥

प्रेतः संबोध्यते । हे पितृलोकं गच्छन् प्रेत सारमेयौ सरमा
नाम देवशुनी तस्याः पुत्रौ । ❀ “स्त्रीभ्यो ढक्” ❀ । चतुरत्नौ
चत्वारि अत्नीणि ययोः । एकैकस्य चतुरत्तत्वम् । ❀ “बहुव्रीहौ
सक्थ्यदणोः” इति षच् समासान्तः ❀ । शबलौ शबलवर्णौ ।
यद्वा नामधेयम् एतत् । श्यामशबलसंज्ञकौ । शबलाविति द्विवच-
नेन श्यामोपि विवक्ष्यते । स्मर्यते हि ।

श्वानौ द्वौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ ।

ताभ्यां बलिं प्रदास्यामि स्यातां मे नावर्हिसकौ ।

इति । तौ श्वानौ साधुना समीचीनेन ऋजुना पथा मार्गेण अति
 द्रव अतीत्य गच्छ । अथ अथ अनन्तरं सुविद्वान् । विद्वत्शब्दो
 धनवाची । सुधनान् शोभनहवीरूपान्नान् । यद्वा । ❀ वेत्तेः कत्रन्
 प्रत्ययः ❀ । ज्ञानवाची विद्वत्शब्दः । संज्ञानान् पितृन् अपेहि ।
 अपशब्दः उपोपसर्गस्यार्थः । उपेहि । उपगच्छेत्यर्थः । यद्वा अप-
 शब्दो वर्जनार्थः । अपवृज्य मार्गासीनौ श्वानौ वर्जयित्वा पितृन्
 इहि गच्छ । ❀ एतेलोटि रूपम् ❀ । ये पूर्वजाः पितरो यमेन
 पितृराजेन सधमादम् सह मादनं तृप्तिर्यस्मिन् कर्मणि तत् सध-
 मादं सह तृप्तिर्हर्षो वा यथा भवति तथा मदन्ति माद्यन्ति तान्
 इहीति संबन्धः । ❀ “सध मादस्थयोश्छन्दसि” इति सहस्य सधा-
 देशः । मादयतेरेरजन्तो माद इति माद्यतेर्वा व्यत्ययेन घञ् ❀ ॥

हे पितृलोकको जाने वाले प्रेत ! सरमानामक देवताओंकी
 कुतियाके श्याम और शबल नामक दो पुत्र हैं उनमेंसे प्रत्येकके
 चार २ नेत्र हैं उन दोनों श्याम शबलों † को तू सगल मार्गसे
 अतिक्रमण करके जा । फिर जो पितर यमके साथ रहते हुए
 प्रसन्न रहते हैं उन हविरूप धनसे सम्पन्न पितरोंके पास जा ११

द्वितीया ॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिसदी नृचक्षसा
 ताभ्यां राजन् परि धेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि
 यौ । ते । श्वानौ । यम । रक्षितारौ । चतुःक्षौ । पथिसदी
 इति पथिःसदी । नृचक्षसा ।

† कहा भी है, कि—“द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलो-
 ऽब्रवौ । ताभ्यां बलिं प्रदास्यामि स्मातां मे तावहिंसकौ ।”

ताभ्याम् । राजन् । परि । धेहि । एनम् । स्वस्ति । अस्मै ।
अनमीवम् । च । धेहि ॥ १२ ॥

यमरक्षितारौ यमो रक्षिता गोपायिता ययोः । ❀ “ऋत-
श्छन्दसि” इति कबभावः । अन्तोदात्तप्रकरणे “त्रिचक्रादीनाम्
उपसंख्यानम्” इति अन्तोदात्तत्वम् ❀ । यद्वा यमशब्देन तत्स्वा-
मिकं पुरम् उच्यते । यमपुरस्य पालयितारौ । ❀ कृदुत्तरपद-
प्रकृतिस्वरत्वेन अन्तोदात्तत्वम् ❀ । चतुरक्षौ व्याख्यातम् । पथि-
सदी पितृभिर्गन्तव्ये मार्गे सीदन्तौ । ❀ “छन्दसि वमसनरक्षि-
मथाम्” इति विहित इन् प्रत्ययः सद्देरपि व्यत्ययेन भवति ❀ ।
नृचक्षसा नृचक्षसौ नृणां गन्तॄणां द्रष्टारौ हे राजन् पितॄणां स्वा-
मिन् ते त्वदीयौ यौ श्वानौ वर्तते ताभ्यां श्वभ्याम् एनम् अन्वा-
दिष्टं प्रेतं परि धेहि । परिदेहीत्यर्थः । रक्षणार्थं दानं परिदानम्
इत्युच्यते । किं च अस्मै त्वदीयं लोकं गच्छते स्वस्ति । स्वस्ती-
त्यविनाशिनाम् । अविनाशम् अनमीवम् अमीवो रोगः बाधा तद्र-
हितं स्थानं च धेहि विधेहि ॥

हे पितरोंके स्वामिन् ! यमपुरकी रक्षा करने वाले चार नेत्र
वाले, पितरोंके मार्गमें बैठे रहने वाले मनुष्योंके द्रष्टा आपके जो
श्वान हैं उनको रक्षाके लिये इस प्रेतको सौंपिये । और इस आप
के लोकमें रहने वालेको अविनाशी बाधारहित स्थान दीजिये १२
तृतीया ॥

उरूणसावसुतृपावुदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ
अनु ।

तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् १३

उरुऽनसौ । असुऽतृपौ । उदुम्बलौ । यमस्य । दूतौ । चरतः ।

जनान् । अनु ।

तौ । अस्मभ्यम् । दृशये । सूर्याय । पुनः । दाताम् । असुम् ।
अन्न । इह । भद्रम् ॥ १३ ॥

उरुणसौ विस्तीर्णनासिकौ । ❀ नासिकाशब्दस्य नस्भावः ।
सुप आकारः ❀ । असुवृषौ प्राणिनाम् असुभिः प्राणैस्तृप्यन्तौ
प्राणापहारकौ उदुम्बलौ । विस्तीर्णबलावित्यर्थः । ❀ पूर्वपदे
वर्णोपजनशब्दान्दसः ❀ । यवस्य दूतौ प्रेष्यौ जनान् जननवतः
उत्पत्तिमतः प्राणिनः अन्तु अनुलक्ष्य चरतः तेषां प्राणान्
अपहर्तुं सर्वत्र संचरतः । तौ दूतौ सूर्याय । ❀ “क्रियाम्रहणं कर्त-
व्यम्” इति कर्मणः संप्रदानस्वाच्चतुर्थी । ❀ दृशये दर्शनाय ।
❀ इगुपधात् कित् [उ० ४. १११] इति औणादिक इप्रत्ययः ।
किञ्चात् लघूपधगुणाभावः ❀ । सूर्यं द्रष्टुम् अथ इदानीम् इह
अस्मच्छरीरे भद्रम् भन्दनीयम् असुम् पञ्चवृत्तिकं प्राणम् अस्मभ्यं
पुनर्दाताम् पुनः प्रयच्छताम् । ❀ ददातेरशब्दान्दसे लुङि “गाति-
स्था०” इति सिचो लुक् । बाहुलकाद् अमाङ्ग्योगेपि अडभावः ❀ ॥

विस्तीर्ण नासिका वाले, प्राणियोंके प्राणोंसे तृप्त होने वाले,
प्राणापहारक प्रघण्ड बली यमके दूत उत्पत्ति वाले प्राणियोंको
लक्ष्यमें रख कर उनका प्राण अपहरण करनेके लिये सर्वत्र विच-
रण करते रहते हैं । वे दोनों दूत हमारे शरीरमें सूर्यदेवको देखने
के लिये कल्याणपद पञ्चवृत्ति प्राणको फिर दें ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।

येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १४ ॥

सोमः । एकेभ्यः । पवते । घृतम् । एके । उप । आसते ।

येभ्यः । मधु । प्रधावति । तान् । चित् । एव । अपि । गच्छतात्

इदमादिभिः पञ्चभिर्ऋग्भिः म्रियमाणानां यजमानानां वर्तनम्
अत्र प्रतिपाद्यते । एकेभ्यः केभ्यश्चित् पितृभ्यः सोमः पवते उप-
भोगाय कुल्यारूपेण प्रवहति येषां गोत्रजाः सामा न ब्रह्मयज्ञसम-
येऽधीयते । श्रूयते हि । “यत् सामानि सोम एभ्यः पवते” इति
[तै० आ० २. १०. १] ॥ एके अन्ये पितरः घृतम् आज्यम्
उपासते उपगच्छन्ति । उपभुञ्जत इत्यर्थः । येषां पुत्रादयो यजुंषि
ब्रह्मयज्ञकालेऽधीयते । श्रुतिश्च भवति । “यद् यजुंषि घृतस्य कूल्या”
इति [तै० आ० २. १०. १] ॥ येभ्यः पितृभ्यः । ❀ तादर्थ्ये
चतुर्थी ❀ । उपभोगाय मधु क्षौद्रं प्रधावति प्रवाहरूपेण शीघ्रं
गच्छति । ये आथर्वणान् मन्त्रान् ब्रह्मयज्ञार्थम् अधीयते तेषां पितॄन्
प्रति मधु मधुकुल्या प्रवहति । तथा चास्त्रायते । “यद् अथर्वीङ्ग-
रसो मधोः कूल्याः” इति [तै० आ० २. १०. १] । तांश्चिदेव
पूर्वोक्तान् सर्वान् एव हे म्रियमाण प्रेत वा अपि गच्छतात् अपि-
गच्छ प्राप्नुहि । ❀ “तुह्योः” इति हेस्तातड् आदेशः ❀ ॥

[इस ऋचासे पाँच ऋचा तक मरने वाले यजमानोंकी वृत्ति
का वर्णन किया है, कि—] एक पितरोंके लिये सोम उपभोगके
लिये नदीरूपमें बहता है [जिनके गोत्रमें उत्पन्न हुए पुरुष ब्रह्म-
यज्ञके समय सामको पढ़ते हैं उनके निमित्त सोम नदीरूपमें बहता
है । तैत्तिरीय आरण्यक २ । २ । १ की श्रुतिमें भी कहा है, कि-
“यत् सामानि सोम एभ्यः पवते”] और दूसरे पितर घृतका
उपभोग करते हैं [जिनके पुत्र आदि ब्रह्मयज्ञके समय यजुर्वेदके
मन्त्रोंका पाठ करते हैं उनको घृतकी नदी मिलती है इसमें तैत्तिरीय
आरण्यक २ । १० । १ का प्रमाण है, कि—“यद् यजुंषि घृतस्य
कूल्या”] और जो ब्रह्मयज्ञके समय अथर्ववेदके मन्त्रोंका पाठ
करते हैं उनके पितरोंकी ओर मधुकी नदी बहती है [इसका
श्रुतिमें प्रमाण भी है, कि—“यद् अथर्वीङ्गिरसो मधोः कूल्याः”]

तैत्तिरीय आरण्यक २ । १० । १] हे मरते हुए प्रेत ! तू उन सब वस्तुओंको प्राप्त हो ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

ये चित् पूर्वं ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।

ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् १५

ये । चित् । पूर्वे । ऋतऽसाताः । ऋतऽजाताः । ऋतऽवृधः ।

ऋषीन् । तपस्वतः । यम । तपऽजान् । अपि । गच्छतात् ॥ १५ ॥

ये चित् ये च पूर्वे पूर्वपुरुषा ऋतसाताः ऋतम् सत्यं यज्ञो वा तेन दत्ताः संभक्ता वा । ❀ सनतेर्निष्ठायां “जनसनखनां सन्भक्तोः” इति आत्वम् ❀ । अत एव ऋतजाताः ऋतेन सत्येन जाता उत्पन्नाः ऋतावृधः ऋतस्य वर्धकाश्च भवन्ति । तपस्वतः तपसा युक्तान् तपोजान् तपसः सकाशादेव उत्पन्नान् ऋषीन् अतीन्द्र-यार्थदर्शिनस्तान् हे यम यमवत् नियत यद्वा यमेन पितृराजेन नीयमान हे प्रेत त्वम् अपि गच्छतात् अपिगच्छ प्राप्नुहि ॥

जो पूर्वपुरुष सत्यसे संभक्त थे, सत्यसे उत्पन्न हुए थे और सत्यको बढ़ाते रहते हैं उन तपसे संपन्न हुए और तपसे ही उत्पन्न अतीन्द्रयार्थदर्शी ऋषियोंको हे यमसे नीयमान पुरुषातू भी प्राप्त हो

षष्ठी ॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।

तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १६ ॥

तपसा । ये । अनाधृष्याः । तपसा । ये । स्वर्युः । ययुः ।

तपः । ये । चक्रिरे । महः । तान् । चित् । एव । अपि । गच्छतात् १६

२५० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

ये जनाः तपसा कृच्छ्रवान्द्रायणादिना युक्ताः सन्तः अना-
धृष्याः पापैरप्रधृष्या भवन्ति । ये च तपसा यागादिरूपेण साध-
नेन स्वः स्वर्गं ययुः यान्ति प्राप्नुवन्ति । ये च महः महत् तपः
अन्यैर्दुष्करं राजसूयाश्वमेधादिकं हिरण्यगर्भाद्युपासनं वा चक्रिरे
कुर्वन्ति । एते येषु लोकेषु वर्तन्ते तेषु लोकेषु तांश्चिदेव तानेव तप-
स्विनः हे प्रेत अपि गच्छतात् अपिगच्छ ॥

कृच्छ्रवान्द्रायण आदि तपसे संयुक्त जो पुरुष पापोंसे अप्र-
धृष्य होते हैं और जो यागादिसाधनरूप तपसे स्वर्गको प्राप्त होते
हैं, और जो दूसरोंसे दुष्कर राजसूय अश्वमेध वा हिरण्यगर्भकी
उपासनारूप महातपको करते हैं वे पुरुष जिन लोकोंको प्राप्त होते
हैं हे प्रेत ! तू भी उन तपस्वियोंके लोकोंको प्राप्त हो ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।

ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥ १७ ॥

ये । युध्यन्ते । प्रधनेषु । शूरासः । ये । तनूत्यजः ।

ये । वा । सहस्रदक्षिणाः । तान् । चित् । एव । अपि । गच्छतात्

प्रधनेषु । प्रकीर्णानि अस्मिन् धनानि भवन्तीति प्रधनाः
संग्रामाः । तेषु शूरासः शौर्यवन्तो ये युध्यन्ते शत्रून् संपहरन्ति ।
ये च तनूत्यजः शरीराणि तत्र ये त्यक्तारो भवन्ति । ये वा ये
च सहस्रदक्षिणाः सहस्रदक्षिणान् क्रतून् अनुष्ठितवन्तः तान् सर्वा-
नेव हे प्रेत त्वम् इतो गच्छ । ते येषु उत्तमेषु लोकेषु निवसन्ति
तं लोकं प्राप्नुहीत्यर्थः ॥

जो शूर संग्रामोंमें शत्रुओंके ऊपर प्रहार करते हैं और जो
युद्धमें शरीरको त्याग देते हैं और जो अनन्त दक्षिणा वाले यज्ञों

अष्टादशं काण्डम्

५५१

को किया करते हैं, हे प्रेत ! तू उन सबको प्राप्त हो अर्थात् वे जिन उत्तम लोकोंमें रहते हैं उन लोकोंको प्राप्त हो ॥ १७ ॥

अष्टमी ॥

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।

ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥ १८ ॥

सहस्रणीथाः । कवयः । ये । गोपायन्ति । सूर्यम् ।

ऋषीन् । तपस्वतः । यम । तपःज्ञान् । अपि । गच्छतात् ॥ १८ ॥

सहस्रणीथाः । सहस्रनयनाः कवयः क्रान्तदर्शिनो ये सूर्यम् आदित्यं गोपायन्ति रक्षन्ति तपस्वतः तपसा युक्तान् तपोजान् तपसः सकाशादेव उत्पन्नान् तान् ऋषीन् हे यम नियत शकटे बद्ध वा यमेन नीयमान वा हे प्रेत त्वम् अपि गच्छतात् अपि गच्छ ॥

अनन्त दृष्टि वाले जो क्रान्तदर्शी ऋषि सूर्यकी रक्षा करते हैं उन तपस्वी तपसे उत्पन्न हुए ऋषियोंको हे यमसे नीयमान पुरुष ! तू भी प्राप्त हो ॥ १८ ॥

नवमी ॥

स्योनास्मै भव पृथिव्यनृत्तरा निवेशनी ।

यच्छास्मै शर्म सप्रथाः ॥ १९ ॥

स्योना । अस्मै । भव । पृथिवि । अनृत्तरा । निवेशनी ।

यच्छ । अस्मै । शर्म । सप्रथाः ॥ १९ ॥

हे पृथिवि प्रथिते भूमे वेदिरूपे त्वम् अनृत्तरा अनाधिका निवेशनी निविशन्ति अत्रेति निवेशनी शयनार्हा सती अस्मै सुमूर्ध्वे जनाय अस्थिरूपप्रेताय वा स्योना सुखकरी भव । किं च अस्मै

५५२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

पूर्वोक्ताय सप्रथाः प्रथः प्रख्यानं विस्तीर्णता तत्संहिता त्वं शर्म सुखं
यच्छ देहि । ❀ दाण् दाने । “पाघ्रा०” इत्यादिना यच्छादेशः ❀ ॥

हे वेदिरूपे विस्तृतभूमे ! तू मुमूर्षू पुरुषके लिये निष्कण्टक अत
एव शयनके योग्य बन और विस्तीर्णतासम्पन्न तू इसको सुख दे १६
दशमी ॥

असंवाधे पृथिव्या उरौ लोके नि धीयस्व ।

स्वधा याश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्च्युतः ॥ २० ॥

असम्वाधे । पृथिव्याः । उरौ । लोके । नि । धीयस्व ।

स्वधाः । याः । चकृषे । जीवन् । ताः । ते । सन्तु । मधुश्च्युतः २०

हे मुमूर्षो प्रेत वा असंवाधे । संवाधः संमर्दः । तद्रहिते उरौ वि-
स्तीर्णेपृथिव्याः अग्निहोत्रवेदिलक्षणाया लोके लोक्यमाने स्थाने
नि धीयस्व धापितो भव । ❀ दधातेः कर्मणि यक् ❀ । पूर्वं त्वं
जीवन् जीवनवान् याः स्वधाः स्वम् आत्मानं दधाति पुष्पाति
धिनीतीति स्वधा अन्नम् दैवानि हवींषि स्वधाकारेण दत्तानि
पित्र्याणि हवींषि च चकृषे कृतवान् असि । ❀ करोतेर्लिटि
क्रादिनियमाद् इडभावः ❀ । ताः स्वधाः ते तव मधुश्च्युतः मधु-
प्रवाहत्तारयित्र्यः सन्तु भवन्तु । उपलक्षणम् एतत् । मधुररसघृत-
सोमादिप्रवाहरूपा भवन्तु ॥

[इति] द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे मुमूर्षो ! तू अग्निहोत्रादिके वेदीरूप विशालदर्शनीय स्थान
में स्थापित हो, पहिले तूने पितरों और देवताओंके निमित्त जिन
स्वधाओंको और हवियोंको दिया है वे स्वधा तुझको मधु आदिके
प्रवाहरूपमें प्राप्त हों ॥ २० ॥ (८)

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त

‘हयामि’ [२१] इति आद्यायाः “स्योनास्मै भव” [१६]
इत्यनया सह उक्तो विनियोगः ॥

“उत् त्वा वहन्तु” [२२] इत्यनया चितेर्दक्षिणपार्श्वे अजं
पशुं बध्नाति । यथा दह्यते तथा बध्नीयात् ॥

आहिताग्नेः संस्कारार्थं विहितेषु त्रिष्वग्निषु “अपेमम्” [२७]
इत्यृचा आज्यं जुहुयात् ॥

पिण्डपितृयज्ञे बर्हिषि उदपात्रनिनयनानन्तरं “ये दस्यवः”
[२८] इत्यृचा उभयत आ दीप्तम् उन्मुकं निरस्येत् । सूत्रितं
हि । “यज्ञोपवीती ये दस्यव इत्युभयत आदीप्तम् उन्मुकं त्रिः
प्रसव्यं परिहृत्य निरस्यति” इति [कौ० ११. ८] ॥

पिण्डपितृयज्ञ एव “सं विशन्तु” [२६] इत्यनया आस्तीर्णे
बर्हिषि तिलान् प्रकिरेत् ॥

“हयामि” इस (२१) पहिली ऋचाका “स्योनास्मै भव”
(१६) ऋचाके साथ विनियोग कह दिया है ।

“उत् त्वा वहन्तु” इस (२२ वीं) ऋचासे चिताके दाहिनी
ओर अज-पशुको बाँधे, जिस प्रकार वह भस्म होजाय तिस
प्रकार बाँधे ।

आहिताग्निकी संस्कारार्थक विहित तीन अग्नियोंमें “अपेमम्”
(२७) ऋचासे घृतकी आहुति देय ।

पिण्डपितृयज्ञमें कुशाओं पर जलपूर्ण पात्र रखनेके अनन्तर
“ये दस्यवः” (२८) ऋचासे दोनों ओर जलते हुए उन्मुक
को फेंक देय । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि-“यज्ञो-
पवीती ये दस्यव इत्युभयत आदीप्तं उन्मुकं त्रिः प्रसव्यं परिहृत्य
निरस्यति” (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

पिण्डपितृयज्ञमें ही “सं विशन्तु” (२६) ऋचासे विद्धाये
हुए दूर्धों पर तिलोंको डाले ।

तत्र प्रथमा ॥

ह॒यामि॑ ते॒ मन॑सा॒ मन॑ इ॒हेमान् गृ॒ह्णो॑ उप॒ जुजु॑षा॒ण
एहि॑ ।

सं गच्छ॑स्व पि॒तृभिः॑ सं य॒मेन॑ स्यो॒नास्त्वा॒ वाता॒ उप॒
वान्तु॑ श॒ग्माः ॥ २१ ॥

ह॒यामि॑ ते॒ । मन॑सा॒ । मनः॑ । इ॒ह । इ॒मान् । गृ॒ह्णान् । उप॑ । जुजु॑षा॒णः ।
आ । इ॒हि ।

सम् । गच्छ॑स्व । पि॒तृभिः॑ । सम् । य॒मेन॑ । स्यो॒नाः । त्वा ।
वाताः॑ । उप॑ । वान्तु॑ । श॒ग्माः ॥ २१ ॥

हे प्रेत पुरुष ते तव संबन्धिः मनः अन्तःकरणम् अस्मदीयेन
मनसा इह अस्मिन् लोके हयामि आह्वयामि । इमान् अस्मदीयान्
गृहान् येषु त्वाम् उद्दिश्य और्ध्वदेहिकं कर्म क्रियते तान् जुजुषाणः
सेवमानः प्रीयमाणो वा । ❀ जुषी प्रीतसेवनयोः । व्यत्ययेन
श्लुः ❀ । उपैहि उपागच्छ । उपेत्य च संस्कारोत्तरकालं पितृभिः
पितृपितामहप्रपितामहैः सं गच्छस्व साविण्ड्यं करणेन संगतो भव ।
❀ “समो गम्यच्छि०” इति आत्मनेपदम् ❀ । यमेन तद्राजेन च
संगतो भव । स्योनाः । ❀ पितु तन्तुसंताने । अस्माद् औणा-
दिको नप्रत्ययः । “च्छ्रोः शूडनुनासिके च” इति वकारस्य ऊडा-
देशः ❀ । पितृलोकगमनसमये तव अध्वजन्यश्रमम् अपनेतुं
संतताः नैरन्तर्येण वर्तमानाः शग्माः सुखकराः शैत्यमान्यसौरभ्य-
युक्ता वाताः वायवस्त्वा त्वाम् उप वान्तु उपगच्छन्तु । ❀ वा
गतिगन्धनयोः । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ ॥

हे प्रेत पुरुष ! तेरे मनको मैं अपने मनसे इस लोकमें बुलाता हूँ, अब जिन घरोंमें तेरे निमित्त और्ध्वदेहिक कर्म किया जाता है उन हमारे घरोंमें तू आ, और संस्कारके अनन्तर पिता, पितामह और प्रपितामहके साथ सपिण्डीकरणके प्रभावसे मिल जा और राजा यमके पास पहुँच जा, पितृलोकमें जानेके समय निरन्तर चलने वाले सुखपद वायु तेरे मार्गके श्रमको दूर करनेके लिए तुझको प्राप्त होवें ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

उत् त्वा वहन्तु मरुत उदवाहा उदप्लुतः ।

अजेन कृण्वन्तः शीतं वर्षेणोक्षन्तु बालिति ॥ २२ ॥

उत् । त्वा । वहन्तु । मरुतः । उदवाहाः । उदप्लुतः ।

अजेन । कृण्वन्तः । शीतम् । वर्षेण । उक्षन्तु । बाल् । इति २२

हे प्रेत मरुतः मरुत्संज्ञका देवास्त्वा त्वाम् उद्वहन्तु ऊर्ध्वम् आकाशे वहन्तु धारयन्तु । यद्वा उदवाहसमभिव्याहारात् मरु-
च्छब्देन वायव उच्यन्ते । वायवस्त्वाम् उपरिलोकं प्रापयन्तु इत्यर्थः ।
अपि च उदवाहाः उदकं वहन्ति धारयन्तीति उदवाहा मेघाः ।
❀ “पेषंवासवाह०” इति उदकशब्दस्य उदभावः ❀ । अत एव
उदप्लुतः उदकैर्मूषिं सावयन्तः आर्द्रीकुर्वन्तः । शीतम् शैत्यगुणं
कृण्वन्तः कुर्वन्तः एवंगुणविशिष्टा मेघाः समीपवद्देन अजेन सहितं
त्वां वर्षेण वर्षजलेन उक्षन्तु सिञ्चन्तु । इतिशब्दः बाल् इत्यस्य
अनुकरणशब्दतां द्योतयति । उक्षणसमये बाल् इत्येवमात्मकः
शब्दो यथा जायेत तथा उक्षन्तु इत्यर्थः । ❀ उक्ष सेचने ❀ ॥

हे प्रेत पुरुष ! मरुत्संज्ञक देवता तुझको आकाशमें ऊपर धारण किये रहें अथवा वायु तुझको ऊपरके लोकमें पहुँचावें,

५५६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

और जलको धारण करने वाले अत एव पृथ्वीको जलसे गीली करने वाले शीतल मेघ बाल शब्द करते हुए समीपमें बँधे हुए अजसहित तुझको वर्षाके जलसे सिञ्चित करें ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

उदहमायुरायुषे क्रत्वे दत्ताय जीवसे ।

स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितृरुपं द्रव ॥ २३ ॥

उत् । अहम् । आयुः । आयुषे । क्रत्वे । दत्ताय । जीवसे ।

स्वान् । गच्छतु । ते । मनः । अध । पितृन् । उप । द्रव ॥ २३ ॥

हे प्रेत ते त्वदीयम् आयुः उदहम् उच्चैःस्वरेण आहवामि ।
 ❀ “छन्दसि लुङ्लट्लिटः” इति लुङ् । “लिपिसिचिह्नश्च” इति
 च्लेः अङ् आदेशः ❀ । किमर्थम् । आयुषे जीवनाय क्रत्वे क्रतवे
 यज्ञादिकर्मणे दत्ताय बलाय । यद्वा “प्राणो वै दत्तः । अपानः
 क्रतुः” इति [तै० सं० २. ५. २. ४] श्रुतेर्दत्तक्रतुशब्दाभ्यां
 प्राणापानावभिधीयेते । क्रत्वे अपाननव्यापाराय दत्ताय प्राणन-
 व्यापाराय । प्राणवायोर्नासारन्ध्राद् बहिर्निःसरणं प्राणनम् । अन्त-
 राकर्षणम् अपाननम् । जीवसे जीवनाय प्राणधारणाय । ❀ सर्वत्र
 तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । एतत् सर्वम् आयुषि सत्येव भवतीति तदा-
 हानं क्रियते इत्यर्थः । ते त्वदीयं मनः स्वाम् स्वकीयां तनुं संस्कार-
 जन्यम् अभिनवशरीरं गच्छतु । अध अथ शरीरप्राप्त्यनन्तरं पितृन्
 वस्वादिरूपान् उप द्रव उपलब्धय गच्छ । ❀ दु गतौ ❀ ॥

हे प्रेत ! मैं तेरी आयुका प्राणन अपानन व्यवहारके लिये
 और जीवनके लिये आह्वान करता हूँ, तेरा मन संस्कारसे उत्पन्न
 हुए तेरे नवीन शरीरको प्राप्त हो फिर शरीरकी प्राप्तिके अनन्तर
 तू वसु आदिक पितरोंको प्राप्त हो ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

मा ते मनो मासोर्माज्ञानां मा रसस्य ते ।

मा ते हास्त तन्वः किं चनेह ॥ २४ ॥

मा । ते । मनः । मा । असोः । मा । अज्ञानाम् । मा । रसस्य । ते

मा । ते । हास्त । तन्वः । किम् । चन । इह ॥ २४ ॥

हे प्रेत पुरुष ते तव मनः मानसम् इन्द्रियं मा हास्त त्वां मा परित्याजीत् । ❀ ओहाक् त्यागे । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ❀ । यद्वा । ❀ ओहाङ् गतावित्यस्य रूपम् ❀ । मा गच्छतु त्वां विहाय इह मा तिष्ठतु । तथा असोस्त्वदीयस्य प्राणस्य किं चन किमपि रूपं मा हास्त । अज्ञानाम् अवयवानां हस्तपादादीनां किमपि मा हास्त । तथा ते तव देहसंबन्धिनो रसस्य रुधिरादेः किमपि मा हास्त । इह अस्मिन् लोके ते तव तन्वः शरीरस्य किं चन किमप्यङ्गं मा हास्त । लोकान्तरे मनःप्राणादिसर्वाङ्गसहितशरीर-युक्तो भवेत्यर्थः ॥

हे प्रेत पुरुष ! तेरी मन इन्द्रिय तेरा परित्याग न करे । तथा तेरे प्राणका कोई अंश क्षीण न हो और तेरे हाथ पैर आदिमें कुछ भी विकार न होवे और तेरे देहका रुधिर आदि रस भी तेरा किसी मात्रामें भी त्याग न करे । इस लोकमें तेरे शरीरका कोई भी अङ्ग तुझको न त्यागे, अर्थात् तू दूसरे लोकमें मन प्राण आदि सब अङ्गोंसे पूर्ण शरीर वाला रह ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

मा त्वा वृक्षः सं बाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही ।

लोकं पितृषु वित्तैधस्व यमराजसु ॥ २५ ॥

५५८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

मा । त्वा । वृत्तः । सम् बाधिष्ट । मा । देवी । पृथिवी । मही ।
लोकम् । पितृषु । विन्वा । एधस्व । यमराजऽसु ॥ २५ ॥

हे प्रेत त्वा त्वां वृत्तः त्वदाश्रयभूतो मा सं बाधिष्ट सं बाधं हिंसनं
मा कार्षीत् । ❀ बाधृ विलोडने । “माङ्ङि लुङ्” ❀ । तथा देवी
द्योतमाना दानादिगुणयुक्ता वा मही महती पृथिवी त्वदाश्रयभूता
भूमिस्त्वां मा सं बाधिष्ट । त्वं च यमराजसु यमो राजा ईश्वरो
येषां ते यमराजानः तथाविधेषु पितृषु पितृदेवतासु लोकम् स्थानं
विन्वा लुब्ध्वा एधस्व वर्धस्व । ❀ विद्ल् लाभे । “समानकर्तृ-
कयोः पूर्वकाले” इति क्त्वाप्रत्ययः । “एकाच उपदेशो” इति
इट्प्रतिषेधः ❀ ॥

हे प्रेत ! जिस वृत्तके नीचे तू विश्राम करे वह वृत्त तुझको
बाधा न दे और जिस दमकती हुई पृथ्वी देवीका तू आश्रय ले
वह तुझको पीड़ा न देवे और जिनका राजा यम है उन पितरोंमें
स्थान पाकर तू वृद्धि पा ॥ २५ ॥

षष्ठी ॥

यत् ते अङ्गमतिहिंनं पराचैरपानः प्राणो य उ वा ते
परेतः ।

तत् ते संगत्य पितरः सनीडा घासाद् घासं पुनरा
वेशयन्तु ॥ २६ ॥

यत् । ते । अङ्गम् । अतिऽहितम् । पराचैः । अपानः । प्राणः ।

यः । ऊँ इति । वा । ते । पराऽइतः ।

तत् । ते । सम् संगत्य । पितरः । सऽनीडाः । घासात् । घासम् ।
पुनः । आ । वेशयन्तु ॥ २६ ॥

हे प्रेत ते तव यद् अङ्गम् शरीरं पराचैः पराङ्मुखम् अतिहितम्
अतीत्य स्थितम् । अतिक्रम्य गतम् इत्यर्थः । तस्मिन् शरीरे वर्त-
मानः अपानः अपानवायुः प्राणः प्राणवायुः उशब्दः अप्यर्थे । अपि
वा ये च अन्ये चक्षुःश्रोत्रादिरूपाः सप्तशीर्षण्याः प्राणास्ते त्वदीयाः
परेताः परागताः । अपुनरावृत्तये शरीरान्निर्गता इत्यर्थः । ते त्व-
दीयं नत् सर्वं सनीलाः समाननिलयाः पितरः पितृदेवताः संगत्य
संघीभूत्वा । ❀ संपूर्णाद् गमेः क्त्वो ल्यप् । “अनुदात्तोपदेशः”
इत्यादिना अनुनासिकलोपे “ह्रस्वस्य पिति०” इति तुक् ❀ ।
घासात् । अद्यते भुज्यते अस्मिन्निति घासः भोगायतनं शरीरम् ।
❀ अद् भक्षणे । अधिकरणे घञ् । “घञपोश्च” इति घस्ला-
देशः ❀ । घासात् भोजनाधिकरणाच्छरीराद् घासम् भोजनाधि-
करणम् अन्यच्छरीरं पुनरा वेशयन्तु अभिप्रापयन्तु ॥

हे प्रेत ! तेरे शरीरका जो अङ्ग तेरे शरीरसे पराङ्मुख होकर
स्थित होगया था और उस शरीरमेंसे अपान वायु तथा चक्षुश्रोत्र
आदि रात प्राण अपुनरावृत्तिके लिये शरीरसे निकल गए थे,
उन सबको तेरे साथ एक स्थानमें रहने वाले पितर एकत्रित होकर
भोजनाधिकरण शरीरसे दूसरे भोजनाधिकरण शरीरमें प्रवेश करा दें

सप्तमी ॥

अपेमं जीवा अरुधन् गृहेभ्यस्तं निर्वहत परिग्रामादितः
मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः प्रचेता असून् पितृभ्यो गमयां
चकार ॥ २७ ॥

अप । इमम् । जीवाः । अरुधन् । गृहेभ्यः । तम् । निः । वहत ।

परि । ग्रामात् । इतः ।

मृत्युः । यमस्य । आसीत् । दूतः । प्रचेताः । असून् । पितृभ्यः ।
गमयाम् । चकार ॥ २७ ॥

जीवः जीवन्तः प्राणधारिणो बान्धवा इमं प्रेतं गृहेभ्यः सका-
शाद् अपारुधन् । प्रेतशरीरम् अपागमयन्तु इत्यर्थः । ❀ रुधिर आ-
वरणे । “इरितो वा” इति च्लेः अङ् आदेशः ❀ । तं प्रेतदेहम्
इतः अस्माद् ग्रामात् । परिः पञ्चम्यर्थानुवादी । यद्वा परिहर-
णार्थः । हे बान्धवाः तं मृतदेहं परिहृत्य निर्वहत ग्रामाद् निर्गम-
यत । कुत इत्यत आह । मृत्युः मारकः पुरुषो यमस्य राज्ञो दूतः
कर्मकर आसीत् अभवत् । प्रचेताः प्रकृष्टज्ञानः सः अग्रयमाणस्य
पुरुषस्य असून् प्राणान् पितृभ्यः पितॄन् अनुपवेशयितुम् ।
❀ “क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः” इति चतुर्थी ❀ ।
गमयां चकार प्रापयामास । ❀ गमेर्त्यन्तात् “कास्पत्ययाद्”
इति आम् प्रत्ययः । कृजोऽनुप्रयोगश्च ❀ ॥

हे जीवित बांधवों ! इस प्रेतको घरसे अलग करके लेजाओ, इस
मृतशरीरको उठाकर ग्रामसे बाहर लेजाओ, क्योंकि श्रेष्ठ ज्ञानवाले
यमके दूत मृत्युने इस मरे हुए पुरुषके प्राणोंको पितरोंमें प्रवेश
करानेके लिये प्राप्त कर लिया है ॥ २७ ॥

अष्टमी ॥

ये दस्यवः पितृषु प्रविष्टा ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्ठानस्मात् प्रधमाति यज्ञात्
ये । दस्यवः । पितृषु । प्रविष्टाः । ज्ञातिमुखाः । अहुतः अदः ।
चरन्ति ।

पराऽपुरः । निऽपुरः । ये । भरन्ति । अग्निः । तान् । अस्मात् ।
प्र । धमाति । यज्ञात् ॥ २८ ॥

ये दस्यवः उपक्षयकारिणो राक्षसा ज्ञातिमुखाः ज्ञातीनां मुख-
मिव मुखं येषां ते तथोक्ताः । ज्ञातिप्रतिरूपा इत्यर्थः । अत एव
पितृषु पितृपितामहप्रपितामहेषु मध्ये प्रविष्टाः अहुतादः अहुतं
लौकिकम् अन्नम् अदन्ति भक्षयन्तीति अहुतादः । यद्वा अहुता-
वस्थमेव हविर्मायया अदन्तीति अहुतादः । चरन्ति पितृषु मध्ये
वर्तन्ते । परापुरः परापृणन्ति पिण्डान् ददतीति परापुरः पिण्ड-
दातारः पुत्राः । निपुरः निपृणन्ति नियमेन पिण्डदानादिकं कुर्व-
न्तीति निपुरः पौत्राः । ❀ पृ पालनपूरणयोः । इत्यस्माद् उभ-
यत्र कर्तरि क्त्रिप् । “उदोष्ठ्यपूर्वस्य” इति उच्यम् ❀ । ये च
राक्षसाः पिण्डोदकदानादिना पालयितृन् पुत्रपौत्रादीन् भरन्ति
हरन्ति । नाशयन्तीत्यर्थः । तान् मायाविनो राक्षसान् अग्निः
अस्माद् यज्ञात् पितृन् उद्दिश्य क्रियमाणात् प्र धमाति प्रथमतु प्र-
कर्षेण निर्गमयतु । ❀ ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः । अस्मात् लेटि
आडागमः । “पाघ्रा०” इत्यादिना धमादेशः ॥ ❀

जो उपक्षय करने वाले राक्षस ज्ञाति वालों की समाज मुख
बना पिता पितामह और प्रपितामहरूप पितरोंमें घुम बैठे हैं और
अहुत अवस्थामें ही मायासे हविका भक्षण कर लेते हैं और
पिण्डोंका दान करने वाले परापुर अर्थात् पुत्रोंको और नियम-
पूर्वक पिण्डदान करने वाले पौत्रोंको नष्ट कर डालते हैं, अग्निदेव
उन मायावी राक्षसोंको पितरोंके निमित्त किये जाने वाले इस
यज्ञसे निकाल कर बाहर करदे ॥ २८ ॥

नवमी ॥

सं वि॒शन्ति॒वृह॒ पित॒रः स्वा नः॑ स्यो॒नं कृ॒णवन्तः॑ प्र॒तिर॑न्त
आयः ।

५६२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणाः ज्योग् जीवन्तः शरदः
पुरुचीः ॥ २६ ॥

सम् । विशन्तु । इह । पितरः । स्वाः । नः । स्योनम् । कृण्वन्तः ।
प्रतिरन्तः । आयुः ।

तेभ्यः । शकेम । हविषा । नक्षमाणाः । ज्योक् । जीवन्तः । शरदः ।
पुरुचीः ॥ २६ ॥

इह अस्मिन् यज्ञे नः अस्माकं स्वाः ज्ञातयो गोत्रजाः । पितरः
पितृपितामहप्रपितामहाः सं विशन्तु सम्यग् उपविशन्तु । उपवि-
ष्टास्ते स्योनम् सुखम् अस्माकं कृण्वन्तः कुर्वन्तः आयुः जीवनं
प्रतिरन्ते । ❀ प्रपूर्वस्तिरतिवर्धनार्थः ❀ । प्रवर्धयन्तु । चिर-
कालम् अस्मान् जीवयन्तु इत्यर्थः । दक्षमाणाः वर्धमाना वयं तेभ्यः
पितृभ्यो हविषा चरुपुरोडाशादिलक्षणेन शकेम परिचरितुं शक्ता
भूयास्म । ❀ शक्लृ शक्तौ इत्यस्माद् आशिपि लिङि “लिङ्या-
शिष्यङ्” इति अङ् प्रत्ययः ❀ । पुरुचीः पुरु बहुलम् अश्नन्ति
गच्छन्तीति पुरुच्यः । ❀ अश्नतेः “ऋत्विग्” इत्यादिना क्विप्
“अनिदिताम्” इति नलोपः । “अचः” इति अकारलोपे “चौ”
इति दीर्घः । अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्” इति ङीप् ❀ । पुरुची बह्वीः
शरदः संवत्सरान् । ❀ अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ❀ । ज्योक् चिर-
कालं जीवन्तः पितृप्रसादाज्जीवितारो भवेम ॥

इस यज्ञमें हमारे गोत्रमें उत्पन्न हुए पिता पितामह प्रपितामह
आदि पितर भली प्रकार बैठें, और बैठे कर वह हमको सुख दें
और हमारी आयुको बढ़ावें और वृद्धि पाते हुए हम भी उन
पितरोंकी हविसे पूजा करनेमें समर्थ होवें । और बहुतसे वर्षों
तक—चिरकाल तक जीवित रहें ॥ २६ ॥

दशमी ॥

यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम् ।

तेना जनस्यासो भर्ता योत्रासदजीवनः ॥ ३० ॥

याम् । ते । धेनुम् । निपृणामि । यम् । ऊं इति । ते । क्षीरे ।
ओदनम् ।

तेन । जनस्य । असः । भर्ता । यः । अत्र । असत् । अजीवनः

हे प्रेत ते तुभ्यं यां धेनुम् दोग्धीं गां निपृणामि प्रयच्छामि ।
 ❀ निपूर्वः पृणातिः पित्र्ये दाने वर्तते ❀ । त्वाम् उद्दिश्य गां
 दत्तवान् अस्मीत्यर्थः । तथा क्षीरे पयसि पक्वं यम् उ यं च ओदनं
 ते तुभ्यं निपृणामि तेन धेनुसहितेन ओदनेन जनस्य जनिमतो
 लोकस्य भर्ता धारयिता पोषयिता वा असः भवेः । ❀ दुभृञ्
 धारणपोषणयोः ❀ । यो जनः अत्र अस्मिन् लोके अजीवनः
 जीवनरहितः असत् भवेत् । तस्य जनस्येति संबन्धः । यद्वा
 अस्मिन् लोके जीवनरहितः असत् । पुरुषव्यत्ययः । स त्वम् इति
 संबन्धः । ❀ अस इति । अस्तेर्लेटि अडागमः । “इतश्च लोपः
 परस्मैपदेषु” इति इकारलोपः ❀ ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे प्रेत ! मैं तेरे निमित्त धेनुको देता हूँ, और तेरे निमित्त
 जिस दुग्धमें बने हुए भातको दे रहा हूँ उस धेनुदान और क्षीर-
 पक्व ओदनदानके द्वारा तू यदि इस यमलोकमें जीवन-जीविका
 रहित हो तो अपनी जीविकाको पुष्ट करने वाला हो ३० (९)

द्वितीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ।

पितृमेधे “अश्वावतीम्” [३१] इत्यृचा शवदाहानन्तरं स्नानं
 कृत्वा नदीं तरतोऽनुपन्त्रयेत् । पिण्डपितृयज्ञे “ये निखाताः”

५६४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

[३४] इति द्वाभ्यां द्वे समिधावाद्ध्यात् । “शं तप” [३६] इत्यृचा
मेतशरीरे पुत्रेण दत्तम् अग्निं पुत्रो गोत्रिणो वा दीपयेयुः । “ददामि”
[३७] इत्यनया काम्पीलशाखया दहनस्थानं सम्प्रोक्षेत् । “इमां
यात्रां मिमीमहे” [३८] इत्यादिभिः सप्तभिः श्मशानदेशं प्रति-
दिशं मिमीते । दिष्टिवितस्त्यादिभिः प्रमाणैः सप्त दक्षिणतो मिमीते ।
सप्त उत्तरतः । पञ्च पुरस्तात् । पञ्च पश्चात् इत्यादिक्रमेणेत्यर्थः ॥

पितृमेधमें “अश्वावतीम्” (३१) ऋचासे शवदाहके अन-
न्तर स्नान करके नदीको उतरते हुएका अनुमन्त्रण करे ।
पिण्डपितृयज्ञमें “ये निखाताः” आदि (३४ । ३५) दो
ऋचाओंसे दो समिधाओंको रखे । “शं तप” इस छत्तीसवीं
ऋचासे मेतके शरीरमें पुत्रके द्वारा दी हुई अग्निको पुत्र वा गोत्र
वाले प्रदीप्त करें । “ददामि” इस ३७ वीं ऋचासे काम्पीलशाखा
के द्वारा दहनस्थानका सम्प्रोक्षण करे । “इमां यात्रां मिमीमहे”
इस ३८ वीं से सात ऋचाओंके द्वारा श्मशानदेशकी प्रतिदिशा
का नाप करे । विलस्त आदि प्रमाणोंके द्वारा दक्षिणकी ओरसे
सात, उत्तरकी ओरसे सात, पूर्वकी ओरसे पाँच और पश्चिमकी
ओर पाँच विलस्त नापे ।

तत्र प्रथमा ॥

अश्वावतीं प्र त॒र या सु॒शेवा॒र्चाकं वा प्रत॒रं नवी॑यः ।
यस्त्वा ज॒घान व॒ध्यः सो अ॒स्तु मा सो अ॒न्यद् वि॒दत॑
भा॒गधे॒यम् ॥ ३१ ॥

अश्वा॑वतीम् । प्र । त॒र । वा । सु॒शे॒वा । ऋ॒चाकम् । वा । प्र॒त॒रम् ।

नवी॑यः ।

यः । त्वा । जघान । वध्यः । सः । अस्तु । मा । सः । अन्यत् ।

विदत् । भागधेयम् ॥ ३१ ॥

हे प्रेत अश्वावतीम् अश्वा अस्यां सन्तीति अश्वावती अश्वा-
नाम् आकरभूता नदी । ❀ “मन्त्रे सोमाश्वेन्द्रिय०” इति मतौ
दीर्घः ❀ । संज्ञाशब्दोयम् । एतत्संज्ञां नदीं प्र तरय प्रकर्षेण तारय
उत्तारय । सा च नदी सुशेवा अस्मभ्यं सुसुखा भवतु । तथा
ऋत्नाकं वा । वाशब्दश्चार्थे । ऋत्नाकम् ऋत्नैः भल्लकैरुपेतं दुष्टमृग-
निषेवितं नवीयः नवतरम् अदृष्टपूर्वम् अरण्यमपि प्रतरम् प्रकर्षेण
तरामि हे प्रेत त्वा त्वां यः पुरुषः जघान स वध्यः वधार्हः अस्तु
भवतु । स घातकः पुरुषः अन्यद् भागधेयम् पूर्वम् उपभुक्ताद्
अन्यद् उपभोग्यं वस्तु मा विदत् मा लभताम् । निर्धनो भवत्विति-
त्यर्थः ❀ । विद्वत् लाभे । अस्मात् माङ्गि लुङ्गि आत्मनेपदैकवचने
लृदित्वात् च्ले अङ् आदेशः ❀ ॥

हे प्रेत ! तू हमको अश्वावती नदीके पार उतार, यह नदी
हमको सुख देने वाली हो और मैं राख आदि दुष्ट जन्तुओंसे
भरे हुए और पहिले न देखनेके कारण नवीन, वनके भी पार
पहुँच जाऊँ, हे प्रेत ! जिस पुरुषने तुझको मार डाला है वह
पुरुष वधका पात्र हो और वह घातक पुरुष पहिले भोगे हुए
पदार्थसे अतिरिक्त दूसरे उपभोग्य पदार्थको न पा सके अर्थात्
निर्धन होजावे ॥ ३१ ॥

द्वितीया ।

यमः परोवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किं च न
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वात-

तान ॥ ३२ ॥

५६६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

यमः । परः । अवरः । विवस्वान् । ततः । परम् । न । अति ।

पश्यामि । किम् । चन ।

यमे । अध्वरः । अधि । मे । निऽविष्टः । भुवः । विवस्वान् । अनुऽ-

आततान ॥ ३२ ॥

यमः विवस्वतः पुत्रः परः तेजसा अधिकोभवत् । विवस्वान् यमस्य पिता आदित्यः अवरः तेजसा निकृष्टोभवत् । यमस्तेजसा पितुरपि अधिकोभवद् इत्यर्थः । ततः तस्माद् यमात् परम् उत्कृष्टं किं चन किमपि प्राणिजातं नाति पश्यामि अतिक्रान्तं न जानामि । तस्मिन् सर्वोत्कृष्टे यमे मे मदीयः अध्वरो यज्ञः अधि निविष्टः अधिकम् अवस्थितः । तत्प्रीतिकरो वर्तत इत्यर्थः । यज्ञस्य सिद्धये विवस्वान् तत्पिता सूर्यः भुवः भूपदेशान् अन्वाततान स्वकिरणैर्विस्तारितवान् । ❀ तनु विस्तारे ❀ ॥

विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र यमदेव तेजमें सूर्यसे भी अधिक हैं और यमके पिता आदित्य निकृष्ट हैं अर्थात् यम तेजमें पितासे भी अधिक हैं । अतः मैं किसी प्राणीको यमसे अधिक नहीं देखता । उन सर्वोत्कृष्ट यममें ही मेरा यज्ञ अधिकतर प्रतिष्ठित है अर्थात् उनको प्रसन्न करनेके लिये होरहा है । यज्ञकी सिद्धिके लिये उनके पिता सूर्यदेवने भी भूपदेशोंको विस्तृत कर दिया है अर्थात् अपनी किरणोंसे प्रकाशित कर दिया है ॥ ३२ ॥

तृतीया ॥

अपांगूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वा सवर्णमिदधुर्विवस्वते
उताश्विनावभरद् यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना

सरग्धूः ॥ ३३ ॥

अप । अगूहन् । अमृताम् । मर्त्येभ्यः । कृत्वा । सवर्णाम् । अदधुः ।

विवस्वते ।

उत । अश्विनौ । अमरत् । यत् । तत् । आसीत् । अजहात् ।

ऊं इति । द्वा । मिथुना । सरण्युः ॥ ३३ ॥

“त्वष्टा दुहिते” [१. ५३] इत्यत्र इतिहासोभिहितः ॥ सोत्र
अगर्थप्रतिपत्तये पुनः स्मार्यते । त्वष्टादुहिता सरण्युर्नाम विव-
स्वत आदित्याद् यमौ मिथुनौ जनयांचकार । तौ च यमलौ यमश्च
यमी चेत्याहुरैतिहासिकाः । माध्यमिकोन्निर्माध्यमिका वाक् चेति
नैहक्ताः । ततः सरण्युस्तत्तेजः असहमाना स्वसमानरूपाम् अन्यां
प्रतिनिधाय आश्वं रूपं कृत्वा प्रदुद्राव । सोपि विवस्वान् तज्जा-
नन् आश्वेव रूपं कृत्वा तां समभवत् । ततः अश्विनौ जज्ञाते ।
प्रतिनिहितायां सवर्णायां विवस्वत आदित्याद् मनुर्जज्ञ इत्ययम्
अर्थोत्र प्रतिपाद्यते ॥ मर्त्येभ्यः मरणधर्मभ्यो मनुष्येभ्यः अमृतान्
सरणधर्मरहितान् आत्मनः देवा अपागूहन् तिरोहितान् अकुर्वन् ।
अमृतत्वपापकं स्वकीयं रूपं देवा मनुष्येभ्यः प्राच्छादयन् । ❀ गुहू
संवरणे ❀ । तथा सवर्णाम् समानरूपाम् अन्यां स्त्रियं कृत्वा विव-
स्वते आदित्याय अदधुः आधारयन् । प्रायच्छन्नित्यर्थः । उत अपि
च सरण्यवा यद् आश्वं रूपं तदानीं स्वीकृतम् आसीत् तत्
अश्विनौ अमरत् समभरत् । उदपादयद् इत्यर्थः । यद्वा अश्वभू-
तयोः सरण्युविवस्वतोर्यद् रेत आसीत् तद् अश्विनावजनयद्
इत्यर्थः । सा च सरण्युस्त्वष्टादुहिता निर्गमनसमये द्वा द्वौ मिथुना
मिथुनौ स्त्रीपुंसात्मकौ अजहात् पर्यत्यजत् । ❀ ओहाक् त्यागे ❀ ।
उशब्दः अवधारणे । ❀ द्वा मिथुनेत्यत्र “वा छन्दसि” इति पूर्व-
सवर्णदीर्घः ❀ ॥

देवताओंने मरणधर्मी मनुष्योंसे अपने मरणधर्मरहित अमृतत्व-
प्रापक रूपोंको छिपा लिया । और समान वर्ण वाली दूसरी स्त्री
बनाकर आदित्यको दी । और सरण्युने जो उस समय घोड़ीका
रूप धारण कर लिया था उसने अश्विनीकुमारोंका भरण किया
था वा अश्वभूत सरण्यु और सूर्यदेवका जो रेत था उसने अश्विनी-
कुमारोंको जन्म दिया था और इस त्वष्टाकी पुत्री सरण्युने सूर्य-
देवके घरसे निकलते समय स्त्री पुरुष यम-यमीके जोड़ेको तहाँ
छोड़ दिया था ॥ ३३ ॥

चतुर्थी ॥

ये निखाता ये परोक्षा ये दग्धा ये उद्धिताः ।

सर्वास्तानम् आ वह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ ३४ ॥

ये । निखाताः । ये । परोक्षाः । ये । दग्धाः । ये । च । उद्धिताः ।

सर्वान् । तान् । अग्ने । आ । वह । पितृन् । हविषे । अत्तवे ॥ ३४ ॥

ये पितरः भूमौ निखाताः निखननसंस्कारेण संस्कृताः ।
❀ खनु अवदारणे । कर्मणि निष्ठा । “जनसनखनां सन्मूलोः” इति
आत्वम् ❀ । ये च पितरः परोक्षाः परावपनं दूरदेशे काष्ठवत्परि-
त्यागः । तेन संस्कृताः । ये च दग्धाः अग्निना संस्कृताः । ये च
उद्धिताः संस्कारोत्तरकालम् ऊर्ध्वदेशे पितृलोके स्थिताः । एवं
बहुविधावस्थितान् तान् सर्वान् पितृन् हविषे अत्तवे अस्माभिर्दत्तं
हविर्भक्षयितुम् हे अग्ने आ वह आनय । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्त-
व्यम्” इति कर्मणः संप्रदानत्वात् हविःशब्दाच्चतुर्थी । अद् भक्षणे
इत्यस्मात् “तुमर्थे सेसेन्०” इति तवेन् प्रत्ययः ❀ ॥

जो पितर भूमिमें गाढ़नेके संस्कारसे संस्कृत हुए हैं और जो
दूरदेशमें काष्ठकी समान त्याग देनेसे संस्कृत हुए हैं और जो

अग्निसे संस्कृत हुए हैं और जो संस्कारके अनन्तर ऊपरके लोक पितृलोकमें स्थित हैं, ऐसे अनेक प्रकारके पितरोंको हे अग्निदेव! आप हविका भक्षण करनेके लिये लाइये ॥ ३४ ॥

पञ्चमी ॥

ये अग्निदग्धा ये अन्नग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया
मादयन्ते ।

त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं
जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥

ये । अग्निदग्धाः । ये । अन्नग्निदग्धाः । मध्ये । दिवः । स्वधया ।
मादयन्ते ।

त्वम् । तान् । वेत्थ । यदि । ते । जातवेदः । स्वधया । यज्ञम् ।
स्वधितिम् । जुषन्ताम् ॥ ३५ ॥

ये पितरः अग्निदग्धाः अग्निना संस्कृताः । ये च अन्नग्निदग्धाः
अग्निदाहरहितेन खननादिसंस्कारेण संस्कृता दिवः द्युलोकस्य
मध्ये स्वधया । अन्ननामैतत् । पुत्रादिभिर्दत्तेन पिण्डरूपेण हविषा ।
यद्वा स्वधाकारोपलक्षितेन पिण्डपितृयज्ञादिकर्मणा मादयन्ते हृष्टा-
स्त्वप्ता वर्तन्ते हे जातवेदः जातानां वेदितरग्रे त्वं तान् सर्वान् पितॄन्
यदि वेत्थ जानासि । “यदि वेदाः प्रमाणं स्युः” इतिवद् निश्चये
यदिशब्दः । त्वमेव तान् निश्चयेन जानासीत्यर्थः । ते सर्वे स्वधायाः
संबन्धिनम् अस्मदीयं यज्ञं स्वधितम् । स्वधा संजाता यस्य स
तथोक्तः । ॐ तारकादित्वाद् इतच् प्रत्ययः ॐ । यद्वा स्वैर्ज्ञातिभिः
पुत्रपौत्रादिभिः हितं विहितं कृतम् ईदृशं यज्ञं जुषन्ताम् सेवन्ताम् ॥

जो पितर अग्निसे दग्ध होगए हैं और अर्थात् अग्निसे संस्कृत हुए हैं जो अनग्निदग्ध हैं अर्थात् अग्निदाहरहित खनन आदि संस्कारसे संस्कृत हुए हैं और पुत्र आदिके किये हुए पिण्ड पितृयज्ञ आदि कर्मरूप स्वधासे द्युलोकके मध्यमें तृप्त होकर रहते हैं, हे अग्निदेव ! आप उनको अवश्य जानते हैं अतः वे पितर अपने पुत्र पौत्र आदिसे विहित यज्ञ (स्वधिति) का सेवन करें ॥ ३५ ॥

षष्ठी ॥

शं तप माति तपो अग्ने मा तन्वं १ तपः ।

वनेषु शुष्मो अस्तु ते पृथिव्यामस्तु यद्धरः ॥ ३६ ॥

शम् । तप । मा । अति । तपः । अग्ने । मा । तन्वम् । तपः ।

वनेषु । शुष्मः । अस्तु । ते । पृथिव्याम् । अस्तु । यत् । हरः ३६

हे अग्ने शम् सुखं यथा भवति तथा प्रेतशरीरं तप दह । मा अति तपः अतितापं मा कार्षीः । अतिदहने हि अस्थीन्यपि भस्मीभवन्ति तेषां संचयनादिसंस्कारेण प्रतिविधानाद् अतिदाहो निषिध्यते । तथा तन्वः शरीराणि अस्मत्संबन्धीनि मा तपः मा धाक्षीः । तथा ये त्वदीयः शुष्मः । शोषको ज्वालासमूहो वनेषु अरण्येषु अस्तु भवतु । हरः रसहरणशीलं यत् त्वदीयं तेजस्तत् पृथिव्याम् भूम्याम् अस्तु भवतु ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार सुख मिले तिस प्रकार प्रेतशरीर को भस्म करिये अधिक भस्म न करिये [अधिक भस्म करनेसे हड्डियें भी जल जावेंगी और अस्थियोंका संचयनसंस्कार करना विहित है अत एव अतिदाहका निषेध किया है] और आप हमारे शरीरोंको भी भस्म न करिये, आपका जो शोषक ज्वालासमूह है वह वनको चला जावे, और आपका जो रसहरणशील तेज है वह पृथ्वीमें रहे ॥ ३६ ॥

सप्तमी ॥

ददाम्यस्मा अवसानमेतद् य एष आगन् मम चेदभूदिह
यमश्चिकित्वान् प्रत्येतदाह ममैष राय उप तिष्ठतामिह
ददामि । अस्मै । अवसानम् । एतत् । यः । एषः । आऽअगन् ।

मम । च । इत् । अभूत् । इह ।

यमः । चिकित्वान् । प्रति । एतत् । आह । मम । एषः । राये । उप ।
तिष्ठताम् । इह ॥ ३७ ॥

यमो ब्रूते । अस्मै मृताय पुरुषाय अवसानम् । अयस्यन्ति
निवसन्ति अस्मिन्निति अवसानम् आवासस्थानम् । एतत् स्थानं
ददामि यत् यस्मात् कारणात् एष पुरुषः आगन् मत्समीपम् अग-
मत् । ❀ गमेलुङि “मन्त्रे घस०” इति च्लेलुक् । “मो नो
धातोः” इति नत्वम् ❀ । स च आगतः पुरुषः इह अस्मिन् लोके
मम संबन्धी अभूच्चेत् । यदि मत्संबन्धी मत्परिचरणशीलो भवेद्
इत्यर्थः । तदा अस्मै आगतायेति पूर्वेण संबन्धः । एवं चिकित्वान्
जानन् यमो मृतं पुरुषं प्रति एतद् वाक्यम् आह ब्रवीति । एषः
मत्समीपम् आगतः पुरुषः रायः । ❀ रै शब्दे ❀ । रायति
स्तौतीति रायः मम स्तोता भूत्वा इह अस्मिन् मदीये लोके उप
तिष्ठताम् सेवताम् ॥

यम कहते हैं, कि—यदि यह आया हुआ पुरुष मेरा होगा
अर्थात् मेरी सेवामें तत्पर रहे तो मैं इस मृतपुरुषके लिये निवास-
स्थानको देता हूँ, क्योंकि—यह पुरुष मेरे समीपमें आगया है । ऐसा
समझने वाले यम मृतपुरुषसे फिर इस बातको कहते हैं, कि—
यह पुरुष मेरी स्तुति करता रहे तो मेरे पास रहे ॥ ३७ ॥

अष्टमी ॥

इ॒मां मा॒त्रां मि॒मीम॒हे यथा॑प॒रं न मा॒सा॒तै ।

श॒ते श॒रत्सु॒ नो पु॒ग ॥ ३८

इ॒माम् । मा॒त्राम् । मि॒मीम॒हे । यथा॑ । अ॒परम् । न । मा॒सा॒तै ।

श॒ते । श॒रत्सु॒ । नो इति॑ । पु॒रा ॥ ३८ ॥

इमाम् इति इदंशब्देन सूत्रोक्ता मात्रा अभिनयेन प्रदर्श्यते । इमाम् एतावतीं श्मशानदेशस्य मात्राम् परिमाणं मिमीमहे अरत्ति-
प्रादेशादिमितेन दण्डेन परिच्छेदयामः । ❀ माङ् माने ❀ । यथा
येन प्रकारेण अपरम् अन्यत् श्मशानकर्म मा मां न आसातै
नासीत् न प्राप्नुयात् । ❀ आस उपवेशने । अस्मात् लेटि आडा-
गमः । “वैतोन्यत्र” इति ऐकारः ❀ । तथा मिमीमहे इति संबन्धः ।
श्मशानकर्माप्राप्तेरवधिम् आह शते शरत्स्विति । शतसंख्याकेषु
संवत्सरेषु अस्माकं जीवनं ब्रह्मणा परिकल्पितम् ततः पुरा शत-
संवत्सरमध्ये नो नैव अस्मान् श्मशानकर्म प्राप्नोतु । अकालमृति-
रस्माकं मा भूद् इत्यर्थः ॥ एवम् उत्तरे षण्मन्त्रा व्याख्येयाः ॥

हम इस श्मशानके मापको दण्डादिसे करते हैं उसका कारण
यह है, कि—ब्रह्माजीने हमारी सौ वर्षकी आयु बनाई है अतः
उससे पहिले सौ वर्षके बीचमें दूसरा श्मशानकर्म हमको प्राप्त न
होवे अर्थात् हमारी अकालमृत्यु न होवे ॥ ३८ ॥

नवमी ॥

प्रे॒मां मा॒त्रां मि॒मीम॒हे यथा॑प॒रं न मा॒सा॒तै ।

श॒ते श॒रत्सु॒ नो पु॒रा ॥ ३९ ॥

प्र । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्सु । नो इति । पुरा ॥ ३६ ॥

प्रेत्येतावान् अत्र विशेषः । प्रकर्षेण । मिमीमहे इति श्मशान-
देशमानस्य प्रकर्षगुणः प्रतिपाद्यते । अन्यत् पूर्ववत् ॥

हम इस श्मशानभूमिको प्रकृष्टरूपसे नापते हैं कि-जिससे
हमको सौ वर्षोंसे पहिले दूसरा श्मशानकर्म प्राप्त न होवे अर्थात्
हमारी अकालमृत्यु न होवे ॥ ३६ ॥

दशमी ॥

अपेमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४० ॥

अप । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्सु । नो इति । पुरा ॥ ४० ॥

अत्र अप इत्युपसर्गेण अपगतदोषता मानस्य प्रतिपाद्यते ।
तद्दोषाश्च श्मशानलक्षणे निषिध्यन्ते । यथाह भारद्वाजः । “दहन-
देशं जोषयते दक्षिणाप्रत्यक्प्रवणम् अनिरिणम् असुषिरम् अनूष-
रम् अभङ्गरम्” इत्यादिना । अन्यत् पूर्ववत् ॥

इति द्वितीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हम इस श्मशानभूमिके नापको दोषोंको दूर करते हुए नापते
हैं, जिससे हमको सौ वर्षोंसे पूर्व दूसरा श्मशानकर्म प्राप्त न होवे
[श्मशानके दोषोंका यहाँ दूर करना कहा है । भरद्वाजमुनिने
श्मशानके दोषोंका वर्णन करते हुए कहा है, कि-“दहनदेशं जोष-
यते दक्षिणाप्रत्यक्प्रवणम् अनिरिणम् असुषिरम् अनूषरम् अभङ्ग-
रम् ० ।-दक्षिण और पश्चिमकी ओर ढलकाव वाले, अनि-

५७४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

रिण, छिद्ररहित, कल्लड़पनसे रहित और अभंगुर स्थानको पसन्द करे”०]

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त

“वीमां मात्रां मिमीमहे” इति आदितश्चतसृणाम् ऋचां श्मशान-प्रमाणकरणे विनियोग उक्तः ।

“अमासि मात्राम्” [४५] इति तिसृभिः पूर्वोक्तप्रकारेण मितं श्मशानप्रदेशम् अनुमन्त्रयेत् ॥

“उदन्वती” [४८] इति द्वाभ्यां प्रेतम् उत्थाप्य शकटे शयने वा निदध्यात् ॥

“ये नः पितुः पितरः” [४६] इति द्वाभ्यां प्रेतशरीरे संदी-पितेऽग्नौ याम्यहोमं कुर्यात् ॥

“इदमिद् वा” [५०] इति तिसृभिः श्मशानदेशं विषम-संख्याकाभिः शलाकाभिः इष्टकाभिर्वा प्रसव्यं चिनुयात् ॥

“वीमां मात्रां मिमीमहे” इन पहिली चार ऋचाओंका श्मशान के नापनेमें विनियोग कहा है ।

“अमासि मात्रायाम्” (४५) आदि तीन ऋचाओंसे पूर्वोक्त-रीतिसे नापे हुए श्मशानस्थानका अनुमन्त्रण करे ।

“उदन्वती” (४८) आदि दो ऋचाओंसे प्रेतको उठाकर शकट वा शयनमें रखे ।

“ये नः पितुः पितरः” (४६) आदि दो ऋचाओंसे प्रेत-शरीरकी प्रज्वलित अग्निमें याम्यहोमको करे ।

“इदमिद् वा” (५०) आदि तीन ऋचाओंसे श्मशानदेशको विषमसंख्यक शलाका वा ईंटोंसे प्रसव्य चिने ।

तत्र प्रथमा ॥

वी॒मां मा॒त्रां मिमी॑महे यथा॒परं॑ न मा॒स॒तै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४१ ॥

वि । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्सु । नो इति । पुरा ॥ ४१ ॥

अत्र वीत्युपसर्गेण श्मशानदेशमानस्य विशिष्टगुणयोगः प्रदर्शितः । अन्यत् पूर्ववत् ॥

हम इस श्मशानभूमिके नापनेको विशिष्टगुणोंसे युक्त करते हुए नापते हैं । जिससे, कि—हमको सौ वर्षसे पहिले दूसरा श्मशान कर्म न करना पड़े अर्थात् हमारी अकाल मृत्यु न होवे ४१

द्वितीया ॥

निरिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४२ ॥

निः । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्सु । नो इति । पुरा ॥ ४२ ॥

अत्र निरत्युपसर्गेण निर्गतदोषता मानस्य प्रतिपाद्यते । अन्यत् समानं पूर्वेण ॥

हम इस श्मशानभूमिके दोषोंसे शून्य करते हुए नापते हैं, जिससे, कि—हमको सौ वर्षोंमें होने वाले श्मशान कर्मोंमें पहिले ही दूसरा श्मशान कर्म न करना पड़े अर्थात् हमारी अकाल मृत्यु न होवे ॥ ४२ ॥

तृतीया ॥

उदिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

५७६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४३ ॥

उत् । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्सु । नो इति । पुरा ॥ ४३ ॥

उद् इत्युपसर्गेणात्र मानस्य उत्कर्षगुणोभिधीयते । गतम् अन्यत् ॥
हम इस श्मशानभूमिको उत्कृष्टगुणयुक्त नापसे नापते हैं,
जिससे कि-हमैं सौ वर्षोंसे पूर्व दूसरा श्मशानकर्म प्राप्त न हो
अर्थात् हमारी अकालमृत्यु न हो ॥ ४३ ॥

चतुर्थी ॥

समिमां मात्रां मिमीमहे यथापरं न मासातै ।

शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४४ ॥

सम् । इमाम् । मात्राम् । मिमीमहे । यथा । अपरम् । न । मासातै ।

शते । शरत्सु । नो इति । पुरा ॥ ४४ ॥

इमां श्मशानदेशस्य मात्रां सं मिमीमहे । उदीरितगुणयोगेन
सम्यग् मिमीमहे । अत्र प्रत्यृचं यथापरं न मासातै इत्यादिरावर्त्यते ।
तस्यायम् अभिप्रायः । पुनः पुनः प्रार्थनया आदरातिशयद्योतिन्या
प्रार्थ्यमानोऽर्थः सर्वथा सिध्यतीति । गतम् अन्यत् ॥

हम इस श्मशानभूमिको भले नापसे नापते हैं, जिस प्रकार
कि-सौ वर्षोंसे पहिले फिर न नापना पड़े अर्थात् हममेंसे किसी
की अकालमृत्यु न हो [परमादरको सूचित करने वाली बारंबार
की प्रार्थनासे प्रार्थित अर्थ भली प्रकार सिद्ध होजाता है] ॥ ४४ ॥

पञ्चमी ॥

अमासि मात्रां स्वर्गामायुष्मान् भूयासम् ।

यथापरं न मासातै शते शरत्सु नो पुरा ॥ ४५ ॥

अमासि । मात्राम् । स्वः । अगाम् । आयुष्मान् । भूयासम् ।

यथा । अपरम् । न । मासातै । शते । शरत्सु । नो इति । पुरा ४५

मात्राम् श्मशानदेशस्य परिमाणम् अमासि परिच्छेदितवान्
अस्मि । उदीरितरीत्या समाचीनं मानम् अकृषीत्यर्थः । ❀ माङ्
माने इत्यस्मात् लुङि उत्तमैकवचने रूपम् ❀ । तेन मानेन स्वः
अगाम् स्वर्गं लोकं गतोस्मि । भाविस्वर्गलोकप्राप्तिस्तस्य मानस्य
फलम् इत्यर्थः । यद्वा । ❀ अन्तर्भावितेयर्थे एतिर्वर्तते ❀ । अगाम्
अगमयम् इत्यर्थः । ❀ “इणो गा लुङि” इति गादेशः ❀ । तेन
च मानकर्मणा अहम् आयुष्मान् शतसंवत्सरपरिमितेन आयुषा
युक्तो भूयासम् । यथापरं न मासातै इत्यादि प्रागुक्तार्थम् ॥

मैंने पूर्वोक्तरीतिसे श्मशानभूमिको नाप लिया है, उस मानके
प्रभावसे मैं इस मृतकको स्वर्गमें भेज चुका हूँ और उस कर्मसे ही
मैं सौ वर्षकी आयु वाला होऊँ और हमको सौ वर्षों वाले जीवन
से पहिले फिर श्मशान कर्म न करना पड़े अर्थात् हममेंसे किसी
की अकालमृत्यु न होवे ॥ ४५ ॥

षष्ठी ॥

प्राणो अपानो व्यान आयुश्चक्षुर्दृशये सूर्याय ।

अपरिपरेण पथा यमराज्ञः पितृन् गच्छ ॥ ४६ ॥

प्राणः । अपानः । विऽआनः । आयुः । चक्षुः । दृशये । सूर्याय ।

अपरिऽपरेण । पथा । यमऽराज्ञः । पितृन् । गच्छ ॥ ४६ ॥

मुख्यमाणस्य तिस्रो वृत्तयः प्राणाद्याः । मुखनासिकाभ्यां
बहिर्निःसरन् वायुः प्राणः । अन्तर्गच्छन् अपानः । मध्यस्थः सन्

अशितपीतादिकं विविधम् आनिति कृत्स्नदेहं व्यापयतीति व्यानः ।
 आयुः जीवनं शतसंवत्सरपरिमितम् । चक्षुः नीलपीतादिदर्शन-
 साधनम् इन्द्रियम् । एतच्च उपलक्षणम् अन्येषाम् इन्द्रियाणाम् ।
 सर्वम् एतद् अनुक्रान्तं सूर्याय । ॐ षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ॐ । सूर्यस्य
 दृश्ये दर्शनाय भवतु । प्राणादिभिः सहिताः सूर्यं पश्यन्तश्चिर-
 कालम् अवतिष्ठेमहीत्यर्थः ॥ हे मृतपुरुष त्वं यमराज्ञः यमश्चासौ
 राजा यमराजा तस्य स्वभूतेन अपरिपरेण । परिपरेणः पर्यवस्था-
 तारश्चोराः । तद्रहितेन पथा मार्गेण पितॄन् गच्छ प्राप्नुहि ॥

मुख्य प्राणकी प्राण आदि तीन वृत्तियें होती हैं । मुख और
 नासिकासें बाहर निकलने वाला वायु प्राण कहलाता है, भीतर
 को जाने वाला वायु अपान कहलाता है, और मध्यस्थ होकर
 खाये पियेको विविधरूपसे तारे शरीरमें व्याप्त कर देने वाला
 वायु व्यान कहलाता है । और सौ वर्षका जीवन आयु कहलाती
 है । तथा नील पीत आदि वस्तुओंको देखनेकी साधन इन्द्रिय
 चक्षु कहलाती है [तथा अन्य सब इन्द्रियें] ये कहे हुए सब
 सूर्यको देखनेके लिये होवें अर्थात् हम प्राणादिसे सम्पन्न रहते
 हुए सूर्यको देखते हुए चिरकाल तक स्थित रहें । और हे पुरुष !
 तू भी यमराजके चोररहित मार्गसे पितरोंको प्राप्त हो ॥ ४६ ॥

सप्तमी ॥

ये अग्रवः शशमानाः परेयुर्हित्वा द्वेषांस्यनपत्यवन्तः
 ते द्यामुदित्याविदन्त लोकं नाकस्य पृष्ठे अधि दीध्यानाः
 ये । अग्रवः । शशमानाः । पराऽईयुः । हित्वा । द्वेषांसि । अन-
 पत्यऽवन्तः ।

ते । ग्राम् । उत्सृत्य । अविदन्त । लोकम् । नाकस्य । पृष्ठे ।

अधि । दीध्यानाः ॥ ४७ ॥

शशमानाः । शशमानः शंसमान इति यास्कः [नि० ६. ८] ।
यद्वा । ❀ शश प्लुतगतौ । ताच्छीलिकश्चानश् ❀ । प्लुतगमन-
शीला अग्रवः अग्रगामिनो ये पितरः अनपत्यवन्तः अपत्यरहिता
द्वेषांसि द्वेषणीयानि पापानि हित्वा त्यक्त्वा परेयुः पराजग्मुः ।
अमृषतेत्यर्थः । ते पितरो ग्राम् अन्तरिक्षम् उदित्य उदृत्य ऊर्ध्वं
गत्वा नाकस्य दुःखसंस्पर्शरहितस्य स्थानस्य पृष्ठे उपरिभागे ।
अधिः सप्तम्यर्थानुवादी । अधिकं वा दीध्यानाः दीप्यमाना लोकम्
सुकृतफलोपभोगस्थानम् अविदन्त अलभन्त । ❀ विद्वलृ लाभे ।
लृदित्वाद् आत्मनेपदेषि व्यत्ययेन च्लेः अङ् आदेशः । यद्वा
लङि “अनित्यम् आगमशासनम्” इति नुमभावः ❀ ॥

जो ऊर्ध्वगमन करने वाले अग्रगामी पितर अपत्यरहित होने
पर भी द्वेष करने योग्य (पापों) को त्यागते हुए परलोकको प्राप्त
हुए हैं वे अन्तरिक्षका अतिक्रमण कर ऊपर वा दुःखसंस्पर्शरहित
स्वर्गके ऊपरके भागमें दिपते हुए पुण्यफलके भोगके स्थानको
पाते हैं ॥ ४७ ॥

अष्टमी ॥

उदन्वती द्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा ।

तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥ ४८ ॥

उदन्वती । द्यौः । अवमा । पीलुमती । इति । मध्यमा ।

तृतीया । ह । प्रद्यौः । इति । यस्याम् । पितरः । आसते ॥ ४८ ॥

पितृलोकस्य सर्वोत्कृष्टतां वक्तुं दिवस्त्रैविध्यं प्रतिपाद्यते । अवमा

५८० अथर्ववेदसहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अधःकक्ष्यां गता द्यौः उदन्वती उदकवती यस्याम् अवस्थिता मेघाः प्रवर्षन्ति । तस्या उदन्वतीति संज्ञेत्यर्थः ॥ मध्यमा मध्यकक्ष्यां गता द्यौः पीलुमती इत्युच्यते । पालयन्तीति पीलवः ग्रहनक्षत्रादयः । ते यस्यां यन्तीति पीलुमती । तृतीया ह । ह शब्दः प्रसिद्धौ । प्रद्यौरिति प्रसिद्धा । प्रकृष्टफलोपेता द्यौः प्रद्यौः । यस्यां तृतीयस्यां दिवि नाकपृष्ठाख्ये स्थाने पितरः पितृदेवता आसते निवसन्ति ॥

(पितृलोककी सर्वोत्कृष्टताको कहनेके लिये द्यौकी त्रिविधताका प्रतिपादन करते हैं, कि—) नाचेकी ओर स्थित द्युलोक उदन्वती है [उसमें स्थित मेघ वर्षा करते हैं अत एव उसका नाम उदन्वती है] दूसरा भाग पीलुमती कहलाता है [उसमें पालन करने वाले पीलु ग्रह नक्षत्र आदि रहते हैं अतः वह पीलुमती कहलाता है] तीसरा भाग प्रद्यौ कहलाता है [वह प्रकृष्ट फल देनेके कारण प्रद्यौ कहलाता है] उस तृतीय द्युलोकमें पितर रहते हैं ॥४८॥
नवमी ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वं-
न्तरिक्षम् ।

य आक्षिपन्ति पृथिवीमुत द्यां तेभ्यः पितृभ्यो नमसा
विधेम ॥ ४६ ॥

ये । नः । पितुः । पितरः । ये । पितामहाः । ये आऽविविशुः ।
उरु । अन्तरिक्षम् ।

ये । आऽक्षिपन्ति । पृथिवीम् । उत । द्याम् तेभ्यः । पितृभ्यः ।
नमसा । विधेम ॥ ४६ ॥

नः अस्माकं पितुस्तातस्य ये पितरः जनकाः । ये च पिताम-
हास्तज्जनकाः । पूजार्थं बहुवचनम् । ये च अन्ये उरु विस्तीर्णम्
अन्तरिक्षम् आविविशुः आविष्टवन्तः । ये च पृथिवीम् आक्षिपन्ति
अभिनिवसन्ति । पृथिव्यां वर्तन्त इत्यर्थः । उतशब्दः अप्यर्थे । ये
च ग्राम् स्वर्गलोकम् आक्षिपन्ति आश्रित्य निवसन्ति । इत्थं
लोकत्रयं व्याप्य वर्तन्त इत्यर्थः । तेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यः । ❀ ता-
दर्थ्ये चतुर्थी ❀ । नमसा । नम इति अन्ननाम । हविलक्षणेन
अन्नेन नमस्कारेण वा विधेम परिचरेम । ❀ विधतिः परिचरण-
कर्मा ❀ ॥

जो हमारे पिताके उत्पादक पितर हैं † और जो हमारे पिता-
महके उत्पादक पितर हैं इनके अतिरिक्त और भी जिन्होंने विशाल
अन्तरिक्षमें प्रवेश किया है । तथा जो पृथिवीमें रहते हैं, और जो
स्वर्गलोकका आश्रय करके रहते हैं । इन सब लोकोंमें रहने वाले
पितरोंकी हम स्वधान्नसे वा नमस्कारसे पूजा करते हैं ॥ ४६ ॥

दशमी ॥

इदमिद् वा उ नापरं दिवि पश्यसि सूर्यम् ।

माता पुत्रं यथा सिचाभ्येन भूम ऊर्णुहि ॥ ५० ॥

इदम् । इत् । वै । ऊं इति । न । अपरम् । दिवि । पश्यसि । सूर्यम् ।

माता । पुत्रम् । यथा । सिचा । अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णुहि

हे मृतपुरुष इदम् इद् वा उ इदमेव खलु तव जीवनम् यद्
अस्माभिः श्राद्धेषु दीयते । अपरम् अन्यद् न किञ्चिद् अस्ति ।
अत्रैव श्मशानदेशे निवसन् सूर्यं दिवि आकाशे पश्यसि ॥ उत्तरो-
र्ध्वः परोक्षकृतः । यथा येन प्रकारेण माता जननी सिचा चेलाञ्च-

† यहाँ आदरमें बहुवचन होरहा है ।

५८२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसंहित

लेन स्वकीयं पुत्रम् अभिवृणोति आच्छादयति हे भूमे पृथिवि एनं
श्मशानस्थं मृतम् अभ्युर्णुहि स्वतेजसा प्रच्छादय । शीतवातोष्णा-
दिकं यथैनं न प्राप्नोति तथा त्वत्स्वरूपे अन्तर्भावयेत्यर्थः । ॐ ऊर्णुञ्
छादने ॥

इति द्वितीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे मृतपुरुष ! यही तेरा जीवन है जिसको हम श्राद्धोंमें देते हैं
और कुछ भी तेरे जीवनका साधन नहीं है । तू इस श्मशान-
स्थानमें ही रहता हुआ आकाशमें सूर्यदेवको देखता है । और
जिस प्रकार माता अपने आँचलसे अपने पुत्रको ढक लेती है,
इसी प्रकार हे भूमे ! तुम इस श्मशानमें पड़े हुए मृतपुरुषको
अपने तेजसे आच्छादित करो अर्थात् जिस प्रकार इसको शीत
वात आदि प्राप्त न हों तिस प्रकार इसको अपने स्वरूपमें अन्त-
र्भावित करो ॥ ५० ॥ (११)

द्वितीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ॥

“इदमिद् वै” इति ऋचोरात्रयोः श्मशानदेशे शलाकाभिश्च-
यनकर्मणि विनियोग उक्तः ॥

“अग्नीषोमा पथिकृता” [५३] इति तिसृभिः प्रेतम् उत्थाप्य
दहनाय शकटे निदध्यात् ॥

“इमौ युनज्मि” [५६] इत्यनया सप्रैते शकटे वृषभद्वयम्
अभिमन्त्र्य युञ्ज्यात् ॥

“एतत् त्वा वासः” [५७] इत्यनया वासोऽभिमन्त्र्य प्रेतं
प्रच्छादयेत् ॥

“अग्नेर्वर्म” [५८] इत्यनया सप्तच्छिद्रया गोवपया प्रेतमुखं
प्रच्छादयेत् ॥

“दण्डं हस्तात्” [५९] इत्यनया प्रेतब्राह्मणहस्ताद् वेदयष्टिं
पुत्रो गृह्णीयात् ॥

“धनुर्हस्तात्” [६०] इत्यनया प्रेतक्षत्रियहस्ताद् धनुर्गृहीतात्
 “इदमिद् वै” इन दो पहिली ऋचाओंका श्मशानदेशके शला-
 काचयनकर्ममें विनियोग है।

“अग्नीषोमा पथिकृता” (५३) आदि तीन ऋचाओंसे प्रेत
 को उठाकर भस्म करनेके लिये शकट (गाड़ी) में रखे।

“इषौ युनज्मि” इस छप्पनवीं ऋचासे प्रेत रखनके अनन्तर
 शकटमें दोनों वृषभोंको अभिमन्त्रित करके जोड़े।

“एतत् त्वा वासः” इस सत्तावनवीं ऋचासे वस्त्रको अभि-
 मन्त्रित करके प्रेतको ढक देय।

“अग्नेर्वर्म” इस अष्टावनवीं ऋचासे सात छिद्र वाली गोवपा
 से प्रेतके मुखको आच्छादित करे।

“दण्डं हस्तात्” इस उनसठवीं ऋचासे प्रेतब्राह्मणके हाथसे
 वेदयष्टिको पुत्र ग्रहण करे।

“धनुर्हस्ताद्” इस साठवीं ऋचासे प्रेतक्षत्रियके हाथसे धनुष
 ग्रहण करे।

तत्र प्रथमा ॥

इ॒दमि॒द् वा उ॒ ना॒परं॑ ज॒रस्य॑न्यदि॒तोप॑रम् ।

जा॒या पति॑मिव॒ वास॑सा॒भ्ये॒नं भूम॑ ऊ॒र्णुहि॑ ॥ ५१ ॥

इ॒दम् । इत् । वै । ऊ॒ इति॑ । न । अ॒परम् । ज॒रसि॑ । अ॒न्यत् । इतः॑ ।

अ॒परम् ।

जा॒या । पति॑म् इव । वास॑सा । अ॒भि । ए॒नम् । भू॒मे । ऊ॒र्णुहि॑ ५१

जरसि जरायां जीर्यदवस्थायां यद् अन्नादिकम् उपमुक्तम्
 इदम् इद् वा उ इदमेव खलु परिशिष्टम् नापरम् अन्यद् भोक्त-
 व्यम् अस्ति । इतः अस्मात् श्मशान देशाद् अन्यत् स्थानमपि

५८४ अथवेवेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अस्य न विद्यते अपरं कार्यजातमपि अस्य न संभवति । इत्थं श्मशाने परित्यक्तम् एनम् हे भूमे जाता भार्या पतिं वाससेव अभ्यु-
र्णुहि अभिप्रच्छादय ॥

जीर्ण होनेकी दशामें इसने जो भोजन किया था वही परि-
शिष्ट है और कुछ भोक्तव्य नहीं है । और इस श्मशानदेशके
अतिरिक्त और कोई स्थान भी इसके लिये नहीं है और कोई
कार्य भी इसके लिये बाकी नहीं है । इस प्रकार श्मशानमें छोड़े
हुए इसको हे भूमे ! भार्या जिस प्रकार वस्त्रसे आच्छादित
करती है, तिस प्रकार आच्छादित करो ॥ ५१ ॥

द्वितीया ॥

अभि त्वा॑र्णो॒मि पृ॒थि॒व्या मा॒तुर्वस्त्रे॑ण भ॒द्रया॑ ।

जी॒वेषु॑ भ॒द्रं तन्म॑यि स्व॒धा पि॒तृषु॑ सा त्वयि॑ ॥५२॥

अभि । त्वा । ऊ॒र्णो॒मि । पृ॒थि॒व्याः । मा॒तुः । वस्त्रे॑ण । भ॒द्रया॑ ।

जी॒वेषु॑ । भ॒द्रम् । तत् । म॑यि । स्व॒धा । पि॒तृषु॑ । सा । त्वयि॑ ५२

मातुः सर्वजनन्याः । भद्रया । ❀ पष्ठचर्थे तृतीया ❀ ।
भद्रायाः कन्याण्याः पृथिव्याः भूम्याः संवन्धिना वस्त्रेण वाससा
हे मृतपुरुष त्वां त्वाम् अभि प्रोर्णोमि अभिच्छादयामि । जीवेषु
प्राणधारिषु जीवदवस्थावत्सु मनुष्येषु मध्ये यद् दानाय भद्रम्
शोभनं वस्त्वस्ति तन्मयि संस्कर्तरि भक्तुः । पितृषु पितृदेवतासु
या स्वधा विद्यते । स्वधेति अन्ननाम स्वधाकारेण हूयमानं हवि-
र्लक्षणम् अन्नं यद् अस्ति सा स्वधा त्वयि मृतपुरुषे भवतु । यद्वा
स्वैर्ज्ञातिभिर्धीयते विधीयत इति स्वधा पिण्डोदकदानादिरूपा पितृ-
तृप्तिकरी क्रिया स्वधा । सा त्वयि भवत्वित्यर्थः ॥

हे मृतपुरुष ! मैं तुम्हको सबकी जननी कन्याणकारिणी भूमिके वस्त्रसे आच्छादित करता हूँ । प्राणधारी मनुष्योंमें जीवित अवस्थामें जो दानके लिये शोभन वस्तु होती है वह मुझ संस्कर्तामें होवे । और पितरोंमें स्वधाकारसे आहुत जो अन्न होता है वह तुझ मृतपुरुषमें हो ॥ ५२ ॥

तृतीया ॥

अग्नीषोमा पथिकृता स्योनं देवेभ्यो रत्नं दधथुर्वि
लोकम् ।

उप प्रेष्यन्तं पूषणं यो वहत्यञ्जोयानैः पथिभिस्तत्र
गच्छतम् ॥ ५३ ॥

अग्नीषोमा । पथिकृता । स्योनम् । देवेभ्यः । रत्नम् । दधथुः ।
वि । लोकम् ।

उप । प्र । ईष्यन्तम् । पूषणम् । यः । वहति । अञ्जः । यानैः ।
पथिभिः । तत्र । गच्छतम् ॥ ५३ ॥

अग्नीषोमा अग्निश्च सोमश्च अग्नीषोमौ । ❀ “सुपां सुलुक्”
इति पूर्वसवर्णआकारः ❀ । पथिकृता पन्थानं पुण्यलोकगमन-
साधनं मार्गं कुरुत इति पथिकृतौ । ❀ तेनैव सूत्रेण विभक्तेरा-
कारः ❀ । एवंगुणविशिष्टावग्नीषोमौ स्योनम् सुखकरं रत्नम्
रमणीयं यद्वा रत्नवद् उत्कृष्टं लोकम् स्वर्गाख्यं देवेभ्यः ।
❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । देवानाम् अर्थे वि दधतुः चक्रतुः ।
❀ “छन्दसि परेपि” इति उपसर्गस्य परत्र प्रयोगः ❀ । यद्वा ।
पुरुषव्यत्ययः । हे पथिकृतावग्नीषोमौ देवेभ्यः देवार्थं देवान् उद्दिश्य
होतुं रत्नम् रमणीयं लोकम् स्थानं वि दधथुः युवां कृतवन्तौ स्थः ।

(५८६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

श्रूयते हि । “राजानौ वा एतौ देवतानां यद् अग्नीषोमौ । अन्तरा देवता इज्येते देवतानां विष्टृत्यै” इति [तै० सं० २. ६. २. २] । यो लोकः उप समीपे प्रेष्यन्तम् प्रगच्छन्तं पूषणम् पूषाख्यं देवम् यद्वा सर्वप्राणिनां पोषकं सूर्यं वहति वहति धारयति तत्र तस्मिन् लोके अञ्जयानैः अञ्जसा आर्जवेन यान्ति गच्छन्ति एभिरिति अञ्जयानाः । तैः पथिभिर्गच्छतम् इमं प्रेतं गमयतम् । ❀ प्रयोज्यव्यापारवाचिना प्रयोजकव्यापारो लक्ष्यते ❀ ॥

हे अग्नि और सोमदेवताओं ! तुम पुण्यलोकमें पहुँचनेके मार्गको बनाने वाले हो, ऐसे इन देवताओंने सुखदायक और रमणीय स्वर्ग नामक लोककी देवताओंके लिये रचना की है । जो लोक समीपमें चलने वाले सूर्यदेवको धारण करता है उस लोकमें इस प्रेत पुरुषको सरलतासे चलने योग्य मार्गोंके द्वारा पहुँचाओ ॥ ५३ ॥

चतुर्थी ॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।

स त्वैतेभ्यः परिददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः

पूषा । त्वा । इतः । च्यावयतु । प्र । विद्वान् । अनष्टपशुः । भुवनस्य । गोपाः ।

सः । त्वा । एतेभ्यः । परि । ददत् । पितृभ्यः । अग्निः । देवेभ्यः ।

सुविदत्रियेभ्यः ॥ ५४ ॥

हे प्रेत त्वा त्वां विद्वान् जानन् पूषा एतत्संज्ञको देवः इतः अस्मात् स्थानात् प्र च्यावयतु निर्गमयतु । कीदृशः पूषा । अनष्टपशुः अनष्टा अहताः पशवो येन स तथोक्तः । स खलु गवादि-

पशूनां पोषयिता । “पूषा पोषयतु” [तै० ब्रा० १. ६. २. २]
 “पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः” इत्यादिश्रुतेः [ऋ० ६.
 ५४. ५] । भुवनस्य भूतजातस्य गोपाः गोपायिता । ❀ गुपू
 रक्षणे । “गुपूधूपविच्छि०” इति आयप्रत्ययः । क्विपि अतो लोपे
 यलोपविधिं प्रति न स्थानिवद् भवतीति तस्य स्थानिवच्चनिषेधात्
 “लापो व्योर्वलि” इति यकारलोपः ❀ । स पूषा त्वा त्वाम्
 एतेभ्यः पितृभ्यः । एतच्छब्देन संनिहितार्थवाचिना मृतपुरुषसं-
 बन्धिनः पितरः परामृश्यन्ते । त्वदीयेभ्यः पितृपितामहपितामहे-
 भ्यः परि ददात् परिददातु । रक्षणार्थं दानं परिदानम् । ❀ तद्योगे
 चतुर्थी विभक्तिर्भवति । “अग्नये त्वा परिददामि” [कौ० ७. ७]
 इत्यादौ तथा दर्शनात् । परिपूर्वाद् ददातेर्लेटि आडागमः । “इतश्च
 लोपः०” इति इकारलोपः ❀ । तथा अग्निदेवः दहनसंस्कारेण त्वा
 सुविदत्रियेभ्यः । सुविदत्रं शोभनविज्ञानम् यद्वा सुखेन लब्धव्यं धनं
 सुविदत्रम् सुष्ठु विशेषेण दानं वा । ❀ आह च यास्कः । सुवि-
 दत्रं धनं भवति विन्दतेर्वै कोपसर्गाद् ददातेर्वा स्याद् व्युपसर्गात् ।
 इति नि० ७. ६ ❀ । तदर्हाः सुविदत्रियाः । तेभ्यो देवेभ्यः
 परि ददातु ॥

हे प्रेत ! विद्वान् पूषा देवता तेरा इस स्थानसे निर्गमन करें।
 यह पूषा देवता पशुओंको नष्ट नहीं करते हैं, किन्तु पशुओंका
 पालन करते हैं [क्योंकि—तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ६ । २ । २ की
 श्रुतिमें लिखा है, कि—“पूषा पोषयतु ।—पूषा देवता पुष्ट करें”
 और ऋग्वेदसंहिता ६ । ५४ । ५ में लिखा है, कि—“पूषा गा
 अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः ।—पूषा देवता हमारी गौओंके पीछे
 चलें०”] यह प्राणियोंके रक्षक हैं । वह पूषा देवता तुम्हको उन
 तेरे पितापितामह आदि मृत पुरुषोंको रक्षाके लिये अर्पण करें ।
 तथा अग्निदेव तुम्हको सुन्दर धन वाले देवताओंके अर्पण करें ५४

पञ्चमी ॥

आयुर्विश्वायुः परि पातु त्वा पूषा त्वां पातु प्रपथे
पुरस्तात् ।

यत्रासते सुकृतो यत्र त ईयुस्तत्र त्वा देवः सविता
दधातु ॥ ५५ ॥

आयुः । विश्वऽआयुः । परि । पातु । त्वा । पूषा । त्वा । पातु ।
प्रपथे । पुरस्तात् ।

यत्र । आसते । सुऽकृतः । यत्र । ते । ईयुः । तत्र । त्वा । देवः ।
सविता । दधातु ॥ ५५ ॥

आयुः एतन्नामको जीवनाभिमानि देवः त्वा त्वां परि पासति
परिपातु । कीदृश आयुः । विश्वायुः सर्वजीवनवान् । तथा पूषा
जीवपोषको देवः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि प्रपथे पथो गमनमार्गस्य
प्रारम्भे त्वा त्वां पातु रक्षतु । यत्र यस्मिन् स्वर्गे लोके सुकृतः
पुण्यकृतः आसते उपविशन्ति ते सुकृतो यत्र यस्मिन् स्वर्गसंबन्धिनि
देशे नाकपृष्ठाख्ये ईयुः जग्मुः तत्र देशे देवः दानादिगुणयुक्तः
सविता सर्वप्रेरक एतत्संज्ञकः हे प्रेत त्वा त्वां दधातु धारयतु स्था-
पयतु ॥

सर्वजीवनवान् जीवनका अभिमानि देवता आयु तेरी रक्षा
करे । जीवपोषक पूषा देवता पूर्वदिशाके गमनमार्गके प्रारम्भमें
तेरी रक्षा करे ! और हे प्रेत ! जिसमें पुण्यात्मा रहते हैं और
जहाँ वह पुण्यात्मा जाते हैं उस स्वर्गके नाकपृष्ठ नामक भागमें
सर्वप्रेरक सविता देवता तुझको स्थापित करें ॥ ५५ ॥

षष्ठी ॥

इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीताय वोढवे ।

ताभ्यां यमस्य सादनं समितीश्चाव गच्छतात् । ५६ ।

इमौ । युनज्मि । ते । वह्नी इति । असुनीताय । वोढवे ।

ताभ्याम् । यमस्य । सदनम् । सम्पत्तिः । च । अव । गच्छतात्

हे मृतपुरुष वह्नी वोढारौ इमौ अनङ्वाहौ ते तव वहनाय युनज्मि
अनसि संयोजयामि । किमर्थम् । असुनीताय असवः प्राणा नीता
यस्मात् सः असुनीतो गतप्राणो देहः तस्मै । ❀ “क्रियाग्रहणं
कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थी ❀ । त्यक्तप्राणं शरीरं
वोढवे वोढुम् । यद्वा सुष्ठु नेतव्यः सुनीतः न सुनीतः असुनीतः ।
दुर्वह इत्यर्थः । तादृशं शवं वोढुम् । ❀ वहेः “तुमर्थे सेसेन्०” इति
तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः ❀ । ताभ्याम् अनङ्ग्यां यमस्य संबन्धि सद्-
नम् गृहम् इति अनेन प्रकारेण सम् अव गच्छतात् सम्यग्जानीहि ॥

हे मृतपुरुष ! वहन करने वाले इन बैलोंको मैं तेरे त्यक्तप्राण
शरीरको लेजानेके लिये गाड़ीमें जोतता हूँ इन बैलोंसे तू यमके
घरको भली भाँति प्राप्त हो ॥ ५६ ॥

सप्तमी ॥

एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्नपैतदूह यदिहाविभः पुरा
इष्टापूर्तमनुसंक्राम विद्वान् यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु

एतत् । त्वा । वासः । प्रथमम् । नु । आ । अगन् । अप । एतत् ।

ऊह । यत् । इह । अविभः । पुरा ।

इष्टापूर्तम् । अनुसंक्राम । विद्वान् । यत्र । ते । दत्तम् । बहुधा ।

विबन्धुषु ॥ ५७ ॥

एतत् इदं संनिहितं प्रथमम् मुख्यं वासस्त्वा त्वां नु अद्य आगन्
आगमत् प्राप्नोत् । ❀ गमेलुङि “मन्त्रे घस०” इति च्तेलुक् ।
“मो नो धातोः” इति नत्वम् ❀ । एतद् वासः अपोह परित्यज ।
इह अस्मिन् भूलोके पुरा पूर्वस्मिन् जीवनकाले यद् वासः अविभः
अधारयः । एतत् इति पूर्वेण संबन्धः । ❀ विभर्तेर्लुङि सिपि
“भृजाम् इत्” इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀ । विद्वान् जानन् मोह-
रहितो भूत्वा इष्टापूर्तम् इष्टम् श्रुतिचोदितम् अग्निहोत्रदर्शपूर्णमा-
सादि कर्म पूर्तम् स्मृत्युदितं वापीकूपतटाकादिनिर्माणम् तद् उभयं
स्वात्मना कृतम् अनुलक्ष्य संक्राम गच्छ संप्राप्नुहि । यत्र यस्मि-
न्निष्टापूर्ते क्रियमाणे बन्धुषु बान्धवजनेषु बहुधा बहुप्रकारं ते त्वया
विशेषेण धनं दत्तम् दक्षिणात्वेन वितीर्णम् । अभवद् इत्यर्थः ।
तादृशम् इष्टापूर्तम् इति संबन्धः ॥

जिस मुख्य वस्त्रको तू पहिले पहिर रहा था उस वस्त्रको तू
त्याग दे और जिन इष्टापूर्तोंमें तूने बांधवोंको बहुतसा धन दिया
था उस श्रुतिविहित अग्निहोत्र दर्श पूर्णमास आदि इष्ट कर्मके
फलको और स्मृतिविहित वापी कूप तटाक आदि पूर्तके फलको
प्राप्त हो ॥ ५७ ॥

अष्टमी ॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोणुष्व मेदसा पीवसा च
नेत्त्वा धृषणुर्हरसा जर्हषाणो दधृग् विधक्षन् परीङ्क्षयाते
अग्नेः । वर्म । परि । गोभिः । व्ययस्व । सम् । प्र । ऊणुष्व ।

मेदसा । पीवसा । च ।

न । इत् । त्वा । धृष्णुः । हरसा । जर्हपाणः । दधृक् । वि॒स्थ-
 चन् । परि॒ऽईह्यातै ॥ ५८ ॥

हे प्रेत गोभिः । अवयवेषु अवयवविशब्दः । अनुस्तरण्या गोः
 संबन्धिभिरवयवैः अग्नेः दाहकस्य वह्नेः वर्म वारकं कवचं परि
 व्यस्रव परितः संवृणु । यथाग्नेर्ज्वालाभिर्दग्धो न भवसि तथा
 गोसंबन्धिभिरवयवैः संवृतो भवेत्यर्थः । ॐ व्येज् संवरणे । संव्यान-
 क्रियाफलस्य आत्मगामित्वात् “स्वरितञितः०” इति व्ययतेरा-
 त्मनेपदम् ॐ । उक्त एवार्थो विव्रियते । पीवसा पीवरेण स्थूलेन
 मेदसा मेदोधातुरुपया वपया सं प्रोणुष्व । यद्वा मेदसा वपया
 पीवसा अन्येन च पीवरेणाङ्गेन सं प्रोणुष्व हे प्रेत आत्मानं सम्यक्
 प्रच्छादय । प्रच्छादनाभावे भीतिं दर्शयति नेद् इति । धृष्णुः
 धर्षकः अभिभवन्शीलो हरसा रसहरणशीलेन तेजसा जर्हपाणः
 अत्यर्थं दृष्यन् दधृक् प्रगल्भः एङ्गुणविशिष्टोग्रिः त्वा त्वां विध-
 चन् विशेषेण दग्धुम् इच्छन् परि परितः नेत ईह्यातै ईह्वनं चलनं
 दाहासहिष्णुतया इतस्तनः पवनम् तन्नैव कुर्यात् महाभीतिकरम्
 ईह्वनं तव मा भूद् इत्यर्थः । ॐ नेत् इति निपातः परिभये वर्तते ।
 उक्तं हि यास्केन । अथापि नेत्येष इद् इत्येतेन संप्रयुज्यते परिभये
 [नि० १. १०] इति । ईह्वतिर्गत्यर्थः । उख उखि वख वखि
 इत्यादिषु गत्यर्थेषु इख इखि ईखि इति पठितत्वात् । तस्मात्
 लेटि आडागमः । “वैतोन्यत्र” इति ऐकारः ॐ ॥

हे प्रेत ! गोसम्बन्धी अवयवोंसे दाहक अग्निके वारक कवचसे
 संयुक्त हो अर्थात् जिस प्रकार अग्निकी ज्वालाओंसे भस्म न हो
 तिस प्रकार गोसम्बन्धी अवयवोंसे आवृत हो हे प्रेत ! स्थूल मेद
 से अपनेको आच्छादित कर । जिससे, कि-धर्षक अग्नि अपने
 रसहरणशील तेजसे तुझको अधिकतासे भस्म करना चाहता
 हुआ हर्षमें भर कर तुझको इधर उधर न गिरा सके ॥ ५८ ॥

नवमी ॥

दण्डं हस्तादाददानो गतासोः सह श्रोत्रेण वर्चसा
बलेन ।

अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वा मृधो अभिमाती-
जयेम ॥ ५६ ॥

दण्डम् । हस्ताद् । आऽददानः । गतऽअसोः । सह । श्रोत्रेण ।
वर्चसा । बलेन ।

अत्र । एव । त्वम् । इह । वयम् । सुवीराः । विश्वाः । मृधः ।
अभिऽमातीः । जयेम ॥ ५६ ॥

समावर्तनप्रभृति समन्त्रकं दण्डधारणं ब्राह्मणस्य विहितम् ।
स दण्डः अस्मिन् काले पुत्रादिनाधारणाय स्वीकार्य इति प्रतिपा-
द्यते । गतासोः गता अस्यः प्राणा यस्मात् स तथोक्तः तथाविधस्य
ब्राह्मणशवस्य हस्ताद् वैणवं दण्डम् आददानः स्वीकुर्वन्नहं श्रोत्रेण
शब्दश्रवणसाधनेन्द्रियजनितेन वर्चसा श्रुताध्ययनसंभूतेन तेजसा
तत्कृतेन बलेन च सह । भवामीति शेषः ॥ अत्र अस्मिन् दहन-
देश एव हे मेत त्वम् भव वर्तस्व । वयं तु इह अस्मिन् भूलोके
सुशेवाः सुसुखाः सन्तः विश्वाः सर्वा मृधः संग्रामान् अभिमातीः
अभिमन्यमानान् हिंसकान् शत्रून् जयेम अभिभवेम ॥

[ब्राह्मणके लिये समावर्तनके आरम्भसे समन्त्रक दण्ड धारण
करनेका विधान है अब इस बातका प्रतिपादन किया गया है,
कि—इस समय उस दण्डको पुत्र आदि स्वीकार करें] गतप्राण
ब्राह्मणशवके हाथसे बाँसके दण्डको स्वीकार करता हुआ मैं
श्रोत्रेन्द्रियके वर्चसे अर्थात् श्रुताध्ययनसंभूत तेजसे और उसके

अष्टादशं काण्डम्

५६३

द्वारा प्राप्त होने वाले बलसे सम्पन्न रहूँ और हे प्रेत ! तू इस दहनदेशमें ही रह और हम तो इस भूलोकमें परम सुखसे सम्पन्न रहते हुए सकल उपद्रवोंको और हिंसक शत्रुओंको दबा देवें ५६ दशमी ॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्य सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन
समागृभाय वसु भूरि पुष्टमर्वाङ् त्वमेह्युप जीवलोकम्
धनुः । हस्तात् । आऽददानः । मृतस्य । सह । क्षत्रेण । वर्चसा ।

बलेन ।

सम्ऽआगृभाय । वसु । भूरि । पुष्टम् । अर्वाङ् । त्वम् । आ ।

इहि । उप । जीवऽलोकम् ॥ ६० ॥

मृतस्य त्यक्तप्राणस्य क्षत्रियस्य हस्ताद् धनुश्चापम् आददानः
गृह्णन्नहं क्षत्रेण क्षतात् त्रायत इति क्षत्रम् क्षत्रजातेरसाधारणं तेजः
तेन तेजसा वर्चसा पराभिभवसमर्थेन वीर्येण तत्कृतबलेन च सह
युक्तो भवामि ॥ भूरि बहुलं पुष्टम् पोषकं वसु धनम् अस्मभ्यं
दातुं समागृभाय सम्यग् अभिमुखं गृहाण आदत्स्व । ॐ ग्रह उपा-
दाने । “छन्दसि शायजपि” इति हल उत्तरस्य श्रापत्ययस्य
शायजादेशः ॐ ॥ एवं धनं गृहीत्वा जीवलोकम् जीवानां लोकं
भूलोकम् उपलक्ष्य अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् त्वम् एहि आगच्छ ।
आगत्य अस्मभ्यम् इष्टधनादिकं प्रयच्छेत्यर्थः ॥

इति द्वितीयेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

अष्टादशकाण्डस्य द्वितीयोनुवाकः ॥

मैं त्यक्तप्राण क्षत्रियके हाथसे धनुषको ग्रहण करता हुआ
क्षत्रजातिके असाधारण तेज और बलसे सम्पन्न होता हूँ

(५६४) अथर्ववेदसहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

[हे धनुष !] तू बहुतसे पोषक धनको हमें प्रदान करनेके लिये ग्रहण कर और इस प्रकार धनको ग्रहण करके जीवलोकमें हमारे अभिमुख आ । तात्पर्य यह है, कि—हमको प्राप्त होकर हमको इष्ट-धन आदि दे ॥ ६० ॥ (१२)

द्वितीय अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त

द्वितीय अनुवाक समाप्त (५४२)

तृतीयेनुवाके सप्त सूक्तानि । तत्र प्रथमसूक्तस्य आद्यया चितौ भार्या प्रेतैन सह संवेशयेत् । ऋक्पाठस्तु

तृतीय अनुवाकमें सात सूक्त हैं । इनमें प्रथम सूक्तकी पहिली ऋचासे चितामें भार्याको प्रेतसहित प्रवेश करावे ।

प्रथमा ॥

इयं नारीं पतिलोकं वृणाना नि पद्यत उप त्वा मर्त्यं
प्रेतम् ।

धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि ?

इयम् । नारी । पतिलोकम् । वृणाना । नि । पद्यते । उप ।

त्वा । मर्त्यं । प्रइतम् ।

धर्मम् । पुराणम् । अनुपालयन्ती । तस्यै । प्रजाम् । द्रविणम् ।

च । इह । धेहि ॥ १ ॥

इयं पुरोवर्तिनी नारी स्त्री । ❀ “नृनरयोर्वृद्धिश्च” इति शार्ङ्ग-
रवादिषु पाठात् ङीन् प्रत्ययः । “जिनत्यादिर्नित्यम्” इति आद्यु-
दात्तत्वम् ❀ । पतिलोकम् पत्युर्लोकः पतिलोकः पत्या अनुष्ठि-
तानां यागदानहोमादीनां फलभूतं स्वर्गादि स्थानम् तं पतिलोकं
वृणाना सहधर्मचारिणीत्वेन संभजमाना । ❀ वृद्ध् संभक्तौ ।

लटः शानच् । कयादित्वात् आ प्रत्ययः । “चितः” इति अन्तो-
दात्तत्वम् ❀ । एवंभूना स्त्री हे मर्त्य मरणधर्मन् मनुष्य प्रेतम्
प्रकर्षेण गतम् अस्माद् भूलोकाद् विनिर्गतं त्वा त्वाम् उप नि
पद्यते सधीपे नितरां गच्छति । अनुमरणार्थं प्राप्नोतीत्यर्थः ।
❀ पद गतौ । दिवादित्वात् श्यन् प्रत्ययः ❀ । कस्माद्धेतोरि-
त्याह । पुराणम् पुरातनम् अनादिशिष्टाचार सिद्धं स्मृतिपुराणा-
दिप्रसिद्धं वा । ❀ “पुराणप्रोक्तेषु०” इत्यत्र पुराणेति निपात-
नात् तुडभावः ❀ । धर्मम् सुकृतम् अनुपालयन्ती । आनुपूर्व्येण
संपदायाविच्छेदेन परिपालनम् अनुपालनम् । तत् कुर्वती ।
❀ “लक्षणहेत्वोः क्रियायाः” इति हेतौ शतप्रत्ययः ❀ । स्मृति-
पुराणादिप्रसिद्धधर्मस्य अनुमरणजन्यस्य अनुपालनाद्धेतोरि-
त्यर्थः । स्मर्यते हि ।

भर्तारम् उद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम् ।

व्यालग्राही यथा सर्पं बलाद् उद्धरते विलात् ।

इति । तस्यै तथाविधायै अनुमरणं कृतवत्यै स्त्रियै इह अस्मिन्
भूलोके जन्मान्तरे लोकान्तरेपि प्रजाम् । प्रजायत इति प्रजा ।
❀ “उपसर्गे च संज्ञायाम्” इति जनेर्ङप्रत्ययः ❀ । तां पुत्रपौत्रादि-
रूपां द्रविणम् धनं च धेहि प्रयच्छ । अनुमरणप्रभावाज्जन्मान्त-
रेपि स एव तस्याः पतिर्भवतीत्यर्थः । ❀ दुधाञ् दानधारणयोः ।
“ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च” इति एत्वाभ्यासलोपौ ❀ ॥

यह सामने वर्तमान नारी स्मृतिपुराण आदिसे सिद्ध अनादि-
शिष्टाचारसिद्ध ‡ धर्मका पालन करनेके लिये और पतिके किये

‡ स्मृतिमें कहा है, कि—“भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पाव-
कम् । व्यालग्राही यथा सर्पं बलादुद्धरते विलात् ॥—जो स्त्री
पतिके साथ अग्निमें प्रवेश करती है वह स्त्री (नरक आदिमें पड़े
हुए भी) अपने पतिका इस प्रकार उद्धार कर लेती है जिस

५६६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हुए याग दान आदि के फलको देने वाले लोकको चाहती हुई मनुष्यलोकसे पूर्णरूपसे निकले हुए तेरे परम समीपमें आती है अर्थात् तेरे पीछे मरना चाहती है—सती होना चाहती है। इस प्रकार अनुसरण करने वाली स्त्रीके लिये इस भूलोकमें दूसरे जन्मके समय भी तू पुत्र पौत्र आदिरूप प्रजाको और धनको देना। तात्पर्य यह है, कि—सती होनेके प्रभावसे दूसरे जन्ममें भी वही इस स्त्रीका पति होता है ॥ १ ॥

उपनिषद्यमाना सा यदि इह लोके पुनर्जीवितुम् इच्छेत् तदा “उदीर्ष्व” इत्यनया द्वितीययर्चा प्रेतेन सह संविष्टां ताम् अभिमन्त्र्य उत्थापयेत् ॥ पाठस्तु

प्रेतके समीपमें प्राप्त हुई यदि वह फिर इस लोकमें ही जीवित रहना चाहे अर्थात् सती न होना चाहे तो ‘उदीर्ष्व’ इस दूसरी ऋचासे उस प्रेतके पास बैठी हुईको अभिमन्त्रित करके उठावे।

द्वितीया ॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।

हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ

उत् । ईर्ष्व । नारि । अभि । जीवऽलोकम् । गतऽअसुम् । एतम् ।

उप । शेषे । आ । इहि ।

हस्तऽग्राभस्य । दधिषोः । तव । इदम् । पत्युः । जनिऽत्वम् ।

अभि । सम् । बभूथ ॥ २ ॥

प्रकार साँपोंको पकड़ने वाला सपेरा बिलमेंसे सर्पको बलपूर्वक खेंच लेता है” ॥

हे नारि धर्मपत्नि जीवलोकम् जीवानां जीवतां प्राणधारिणां लोकः । लोक्यते अनुभूयते जन्मान्तरकृतधर्माधर्मफलं सुखदुःखात्मकम् अस्मिन्निति लोकः भूलोकः । “उभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्” इति श्रुतेः । तथाविधं जीवलोकम् अभिलक्ष्य उदीर्ष्व उद्गच्छ । पत्युः सकाशाद् उत्तिष्ठ । ❀ ईर गतौ कम्पने च । “अदिप्रभृतिभ्यः शपः” इति शपो लुक् ❀ । गतासुम् गता असवः प्राणायस्मात् स तथोक्तः तथाविधम् एतं पतिम् उप शेषे उपेत्य तेन सार्धं शयनं करोषि । ❀ शीङ्स्वप्ने । अदादित्वात् शपो लुक् ❀ । अयम् अर्थः । पूर्वम् अदृष्टार्थम् अनुगमनम् उक्तम् । इदानीं शास्त्राविरोधिदृष्टफलानुरोधेन तत् उत्थानं प्रतिपाद्यते । दृष्टफलाभावप्रतिपक्षार्थं गतासुम् इति विशेषणम् । उपशयने दृष्टप्रयोजनं नास्तीत्यतः एहि पत्युः सकाशाद् आगच्छ ॥ जीवनावस्थायामेव पतिसकाशात् सर्वम् ऐहिकं पुत्रादिलक्षणम् अभिप्राप्तम् अतोपि हेतोरागच्छेति प्रतिपाद्यते हस्ताग्राभस्येति । हस्तं गृह्णातीति हस्तग्राभः पाणिग्रहणकर्ता तस्य । ❀ ग्रह उपादाने इत्यस्मात् “कर्मण्यण्” इति अण् प्रत्ययः । “हृग्रहोर्भश्चन्दसि” इति भत्वम् ❀ । दधिषाः धारयितुः तत्र पत्युः इदं जनित्वम् अपत्यादिरूपेण जन्मत्वम् अभिसं बभूथ अभिसंप्राप्तासि । ❀ “बभूथाततन्थजगृभभवर्थेति निगमे” इति इडभावो निपात्यते ❀ ॥

हे धर्मपत्नि ! तू इस प्राणहीन पतिके पास बैठी है अब तू जीवित प्राणियोंके पूर्वजन्ममें किये हुए धर्म अधर्मका फल जिसमें अनुभवमें आता है ऐसे इस जीवलोककी ओर ध्यान देकर पतिके पाससे उठ (पहिले अदृष्टार्थ अनुगमन कहा अब शास्त्रके अविरोद्ध दृष्ट फलका अनुरोध करके उसके पाससे उठनेकी प्रार्थना करते हैं कि—अब इसके पास बैठनेसे कोई दृष्ट लाभ नहीं है अत एव इस गतासु पुरुषके पाससे उठ अब इस बातको दिखाते हैं,

कि-तूने जीवित अवस्थामें पतिके पाससे पुत्र आदि सब अभि-
मत वस्तुएँ पाली हैं अतः उठ आ, यथा-) पोषण करने वाले
पतिकी यह पुत्र पौत्रादिरूप उत्पत्ति है इसको तू प्राप्त होगई है
अर्थात् ये तेरे समीपमें उपस्थित हैं अतः तू उठ ॥ २ ॥

“अपश्य युवतिम्” इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां चितौ पार्श्वतः
परिणीयमानां गाम् अनुमन्त्रयते । तत्र आद्या-

‘अपश्यं युवतिम्’ आदि दो ऋचाओंसे चिताकी करवटसे
ले जाती हुई गौका अनुमन्त्रण करे ।

सूक्ते तृतीया ॥

अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीय-
मानाम् ।

अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत् प्राक्तो अपाचीमनयं
तदेनाम् ॥ ३ ॥

अपश्यम् । युवतिम् । नीयमानाम् । जीवाम् । मृतेभ्यः । परिणी-
यमानाम् ।

अन्धेन । यत् । तमसा । प्रावृता । आसीत् । प्राक्तः । अपाचीम् ।
अनयम् । तत् । एनाम् ॥ ३ ॥

युवतिम् यौवनावस्थोपेतां नीयमानाम् शवसमीपं प्राप्यमाणां
जीवाम् जीवन्तीं मृतेभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । त्यक्तप्राणेभ्यः
पुरुषेभ्यः मृतपुरुषार्थं परिणीयमानाम् दारुचित्यग्न्यादिसहितं शवं
परितः प्रसव्यं नीयमानां गाम् अनुस्तरण्याख्याम् अपश्यम्
पश्यामि अवलोकयामि । ❀ “छन्दसि लुङ्लङ्लिटः” इति वर्त-

माने लङ् ॐ । जीवदवस्थापन्नाया युवतेर्गोः शवपरिणयनम्
अयुक्तम् इति जानामीत्यभिप्रायः । अनुस्तरणी सा गौः यत्
यस्माद् अन्धेन दृष्ट्युपघातकेन गाढेन तमसा तमिस्त्रेण अज्ञानलक्ष-
णेन प्रावृता प्रकर्षेण वेष्टिता आसीत् । हिताहितविभागं स्वयं न
जानातीत्यर्थः । तत् तस्माद्देतोः एनां गां प्राक्तः पूर्वदेशात् शव-
समीपाद् अपाचीम् अपाङ्मुखीं शवात् पराङ्मुखीम् अस्मदभि-
मुखीम् अनयम् प्रापयामि । ॐ पूर्ववत् लङ् ॐ ॥

मैं तरुण अवस्था वाली शवके समीप लाई जाती हुई जीवित
गौको, कि-जो काष्ठचिता अग्नि आदि वाले शव-मृतपुरुषके
प्रसव्यमें लानेसे अनुस्तरणी कहलाती है उस गौको देखता हूँ
[अर्थात् मैं यह जानता हूँ, कि-युवती जीवित गौका शवपरि-
णयन अनुचित है] क्योंकि-यह अनुस्तरणी गौ दृष्ट्युपघातक
घोर अंधकारसे और अज्ञानसे आवृत है अर्थात् अपने हित
अहितको स्वयं नहीं समझती है, इस कारण इस गौको मैं शवके
समीपसे पराङ्मुख करके अपने अभिमुख लाता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

प्रजानत्यध्न्ये जीवलोकं देवानां पन्थामनुसंचरन्ती ।
अयं ते गोपतिस्तं जुषस्व स्वर्गं लोकमधि रोह्यैनम्
प्रजानती । अध्न्ये । जीवऽलोकम् । देवानाम् । पन्थाम् । अनुऽसं-
चरन्ती ।

अयम् । ते । गोऽपतिः । तम् । जुऽस्व । स्वऽगम् । लोकम् । अधि ।

रोह्य । एनम् ॥ ४ ॥

हे अध्न्ये । गोनामैतत् । अहन्तव्ये हे गौः जीवलोकम् जीवानां
लोको जीवलोकः भूलोकः । तं प्रजानती प्रकर्षेण जानाना ।

६०० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

❀ ज्ञा अवबोधने इत्यस्मात् लटः शत्रादेशः । “ज्ञाजनोर्जा” इति जादेशः । “श्नाभ्यस्तयोरातः” इति आन्लोपः । “उगितश्च” इति ङीप् । “शतुरनुमः०” इति नद्या उदात्तत्वम् ❀ । तथा देवानाम् इन्द्रादीनां पन्थाम् पन्थानं मार्गं यज्ञलक्षणम् अनुसंचरन्ती अनुलक्ष्य गच्छन्ती क्षीरदध्यादिहविर्निष्पादयन्ती । त्वम् आगच्छेति शेषः । ते तव अयं गोपतिः गोस्वामी । तं जुषस्व सेवस्व । एनं मृतं पुरुषं स्वर्गं लोकम् अधि रोहय प्रापय ॥

हे गौ ! तू जीवित पुरुषोंके लोक-भूलोक-को प्रकृष्टरूपसे जानती हुई तथा इन्द्र आदि देवताओंके यज्ञरूपी मार्गको लक्ष्यमें रख उसको क्षीर दधि आदि हविसे निष्पन्न करती हुई आ । यह तेरा गोरति स्वामी है इसका सेवन कर और इस मृतपुरुष को स्वर्गलोकमें चढ़ा ॥ ४ ॥

पितृमेधे चतुर्थेऽहनि संचयनाख्ये कर्मणि “उप द्यामुप वेतसम्” इति पञ्चमीषष्ठीभ्यां मन्त्रोक्ता ओषधीरभिमन्त्र्य ताभिः क्षीरेण ब्राह्मणस्य अस्थीनि अवसिञ्चेत् । ताश्च ओषधयः वेतसाश्च कर्णी च नदीफेनं च अवका च गर्हका च बृहद्दूर्वा च मण्डूकपर्णी चेत्येवमाद्याः ॥

पितृमेधके चौथे दिन सञ्चयन नामक कर्ममें “उप द्यामुप वेतसम्” इन पाँचवीं छठी ऋचाओंसे मन्त्रोक्त औषधियोंको अभिमन्त्रित करे उनसे क्षीरके द्वारा ब्राह्मणकी अस्थियोंका अवसिञ्चन करे । वे औषधिये ये हैं, वेत, भटकैया, नदीफेन, अवका, गर्हका, बृहद्दूर्वा और सेनापाड़ा आदि ।

पञ्चमी ॥

उप द्यामुप वेतसमवत्तरो नदीनाम् ।

अग्ने पित्तमप्रामसि ॥ ५ ॥

उप । द्याम् । उप । वेतसम् । अवत्स्तरः । नदीनाम् ।

अग्ने । पित्तम् । अपाम् । असि ॥ ५ ॥

नदीनाम् नदनशीलानाम् अपाम् । नदनान्नद्य इति यास्कः
[नि० २. २४] । मन्त्रवर्णश्च भवति । “अहावनदता हते ।
तस्मादा नद्यो नाम स्थ” इति [३. १३. १] । ❀ पचादिषु
नदट् इति पाठात् “टिड्ढाणञ्” इत्यादिना ङीप् ❀ । नदनशी-
लानाम् अगां संवन्धिनीं द्याम् उप । अत्र द्योशब्दः अवकावाची ।
जलस्योपरि प्ररूढा भूमस्पर्शरहिता अवका उच्यन्ते । तत्समीपे ।
तथा वेतसम् उप । वेतसो नदीतीरगतो वृक्षविशेषः । तस्य समीपे ।
यद्वा सप्तम्यर्थप्रतिपादकावुपशब्दौ । अवकासु वेतसे चेत्यर्थः । अ-
वत्तरः अतिशयेन अवन् रक्त गसमर्थः सारभूतांशो विद्यते । वेतस्य
च अवकानां च अप्सारत्वं तैत्तिरीये समाम्नायते । “अपां वा
एतत् पुष्पं यद् वेतसः । अपां शरोऽवका । वेतसशाखया चा-
वकाभिश्च विकर्षन्ति” इति [तै० सं० ५. ४. ४. २] । हे अग्ने
त्वमपि अपां पित्तम् अप्संवन्धी पित्तधानुरसि । “शुचिरपित्तम्
और्वस्तु” इति अभिधानकारः । यतस्त्वम् अपां संवन्ध्यसि अत-
स्त्वा अप्संवन्धिनीभिः अवकावेतसशाखानदीफेनबृहद्दूर्वाद्योष-
धीभिः शमयामीति शेषः । ओषधयः केशवेन पद्धतिकारेण परि-
गणिताः । वेतसाश्च कर्णौ च नदीफेनं चावका च बर्हका च बृहद्-
दूर्वा च मण्डूकपर्णी चेति । ❀ अवत्तर इति । अव रक्तणे इत्य-
स्मात् लटः शत्रादेशः । तथा प्रकर्षार्थे तरप् ❀ ॥

नदियोंके जलका सिवारमें और वेतमें रक्ता करनेमें समर्थ
सारभूत अंश है + और हे अग्ने ! तू भी जलकी पित्त धातु है ।

+ वेत और काईका अप्सारत्व तैत्तिरीयमें कहा है. कि-“अपां
वा एतत् पुष्पं यद् वेतसः । अपां शरोऽवका । वेतसशाखया

(६०२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

क्योंकि-तू जलसंबंधी है अत एव मैं तुझको जलसंबंधी अवकाश
अर्थात् पृथ्वीसे अधर जलके ऊपर होने वाली कोई वेतकी शाखा,
नदीफेन और बृहद्दूर्वा आदि औषधियोंसे शान्त करता हूँ ॥५॥

षष्ठी ॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।

क्याम्बूरत्र रोहतु शाण्डदूर्वा व्यल्कशा ॥ ६ ॥

यम् । त्वम् । अग्ने । सम्दहः । तम् । ऊं इति । निः । वापय ।

पुनः ।

क्याम्बूः । अत्र । रोहतु । शाण्डदूर्वा । विऽअल्कशा ॥ ६ ॥

हे अग्ने त्वं यं पुरुषं समदहः सम्यग् दग्धवान् असि तमु तं
खलु त्वं पुनर्निर्वापय निर्वृतं सुखितं कुरु । दाहजनितौष्यपरि-
हारेणेत्यर्थः । एतदथमेव हि पूर्वम् अपां पित्तम् असीति अग्ने-
रप्यकार्यत्वम् उक्तम् । ❀ निरुपसृष्टाद् “वा गतिगन्धनयोः” इत्य-
स्मात् एचि “०आतां पुङ्णौ” इति पुगागमः ❀ । दाहनिर्वा-
पणस्य परां काष्ठाम् आह क्याम्बूरित्युत्तरार्धेन । अत्र अस्मिन्
दहनप्रदेशे क्याम्बूः औषधिविशेषः रोहतु प्ररोहतु उत्पद्यताम् ।
तथा शाण्डदूर्वा जलसमीपे उत्पद्यमाना अण्डाकृतिमूलसहिता दीर्घ-
काण्डा वा दूर्वा शाण्डदूर्वा सा बृहद्दूर्वेत्युच्यते । सा व्यल्कशा
अल्काः शाखाः । ❀ शो मत्वर्थीयः ❀ । विविधशाखोपेता ।
रोहत्विति संबन्धः ॥

चावकाभिश्च विकर्षति ।-जो वेत है यह जलोंका पुष्परूप है, और
अवका-काई-जलके बाण हैं । वेतकी डाली और अवकासे खेंचे
(तैत्तिरीयसंहिता ५ । ४ । ४ । २) ॥

हे अग्निदेव ! आपने जिस पुरुषको भस्म कर दिया है उसको आप फिर भली प्रकार सुखी करिये । [दाहजनित उष्णताका परिहार कर सुखी करिये, इसी लिये पहिले “हे अग्ने ! आप जलोंके पित्त हैं” कह कर अग्निको जलका कार्य कहा था, दाह को दूर करनेकी पराकाष्ठाको कहते हैं, कि—] इस दहनस्थानमें क्याम्बू नामक औषधि उग आवे तथा अनेक शाखाओं वाली जलके समीप होने वाली शाण्डदूर्वा वृहद्दूर्वा भी उग आवे॥३॥

“इदं त एकम्” इत्यनया सप्तम्या आहिताग्नेः प्रेतस्याग्ने अग्नि-
त्रयं धारयित्वा अनुमन्त्रयते ॥ तत्पाठस्तु—

“इदं त एकम्” इस सातवीं ऋचासे आहिताग्नि प्रेतके आगे तीनों अग्नियोंको धर कर अनुमन्त्रण करे ।

सप्तमी ॥

इदं त एकं पर ऊत एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।

संवेशने तन्वा ३ चारु एधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे ७

इदम् । ते । एकम् । परः । ऊं इति । ते । एकम् । तृतीयेन ।

ज्योतिषा । सम् । विशस्व ।

सम्वेशने । तन्वा । चारु । एधि । प्रियः । देवानाम् । परमे ।

सधस्थे ॥ ७ ॥

हे प्रेत ते तव परलोकगमनाय इदम् एकम् गार्हपत्याख्यं ज्योतिः ।
तथा परः परस्तात् ते तव । उशब्दः अप्यर्थे । अन्वाहार्यपचना-
ख्यमपि एकं ज्योतिः । तृतीयेन त्रित्वसंख्यापूरकेण ज्योतिषा
आहवनीयाख्येन सं विशस्व संगतो भव । साकल्येन आत्मानम्
आहवनीयं गमयेत्यर्थः । इत्थम् अग्निसंवेशने सति तन्वा संस्कार-

६०४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

जनितेन देवशरीरेण चारुः शोभनः एधि भव । ❀ अस भुवीत्य-
स्माल्लोति “ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च” इति अकारस्य एत्वम् ।
तस्य “असिद्धवद् अत्रा भात्” इति असिद्धत्वात् “हुभन्भ्यः०”
इति हेर्धित्वम् ❀ । ततः परमे उत्कृष्टे सधस्थे सहस्थाने देवलोके
देवानाम् इन्द्रादीनां प्रियः प्रीतिविषयो भव । ❀ सह तिष्ठन्ति
अस्मिन्निति सधस्थः । “घञर्थे कविधानम्” इति अधिकरणे
तिष्ठनेः कप्त्ययः । “सध मादस्थयोश्छन्दसि” इति सहस्य सधा-
देशः ❀ । यद्वा अग्निसंस्कारजनितदेवशरीरेण चारुर्भूत्वा देव-
लोके देवानां प्रिय एधीत्येकवाक्यता ॥

हे प्रेत ! तेरे परलोकगमनके लिये यह गार्हपत्याग्नि एक ज्योति
है । दूसरी अन्वाहार्यपचन नामक एक ज्योति है । और तू आह-
वनीय नामक तीसरी ज्योतिसे सङ्गत हो अर्थात् पूर्णरूपसे अपनेको
आहवनीय अग्निको प्राप्त करा ॥ इस प्रकार अग्निसंवेशन होने
पर संस्कारजनित देवशरीरके द्वारा शोभन होता हुआ वृद्धिको
प्राप्त हो फिर साथ रहनेके उत्कृष्ट स्थानमें इन्द्र आदि देवताओं
को प्रिय लगने वाला हो ॥ ७ ॥

“उत्तिष्ठ प्रेहि” इत्यष्टम्या “प्र च्यवस्व” इति नवम्या च दहन-
प्रदेशं नेतुं प्रेतम् उत्थापयेत् ॥

“उत्तिष्ठ प्रेहि” इस आठवीं ऋचासे और “प्र च्यवस्व” इस
नवम ऋचासे भी दहनस्थानको लेजानेके लिये प्रेतको उठावे ।

तत्र अष्टमी ॥

उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे ।

तत्र त्वं पितृभिः संविदानः सं सोमेन मदस्व सं स्व-
धाभिः ॥ ८ ॥

उत् । तिष्ठ । प्र । इहि । प्र । द्रव । ओकः । कृणुष्व । सलिले ।
सधस्थे ।

तत्र । त्वम् । पितृभिः । सम्विदानः । सम् । सोमेन । मदस्व ।
सम् । स्वधाभिः ॥ ८ ॥

हे प्रेत त्वम् उत्तिष्ठ अस्मात् स्थानाद् ऊर्ध्वं तिष्ठ । ❀ “उदो-
नूर्ध्वकर्मणि” इति पयुदासात् तिष्ठतेरात्मनेपदाभावः ❀ । उत्था-
नानन्तरं प्रेहि प्रगच्छ । ततः प्र द्रव प्रकर्षेण धाव । शीघ्रं गच्छे-
त्यर्थः । सलिले । अन्तरिक्षनामैतत् । अन्तरिक्षे सधस्थे सहस्थाने
अलौकिके ओकः गृहं कृणुष्व कुरु । ❀ कृत्रि हिंसाकरणयोश्च ।
“धिन्विकृण्वोर च” इति उपत्ययः ❀ । तत्र तस्मिन् लोके त्वं
पितृभिः बर्हिषदग्निष्वात्ताख्याभिः पितृदेवताभिः संविदानः
संजानानः ऐकमत्यं गतः सन् सोमेन सं मदस्व । ❀ मद तृप्ति-
योगे ❀ । सोमपानेन तृप्तो भवेत्यर्थः । सोमयागेषु हि नाराशं-
साख्यः सोमरसस्य भागः पितॄणाम् अस्ति । तदुपभोगेन आत्मानं
हर्षयेति भावः । यद्वा सोमेन राज्ञा पितॄणाम् अधिपतिना सह
मदस्वेत्यर्थः । तथा स्वधाभिः स्वधाकारसहितैः श्राद्धैः पुत्रादिभिः
कृतैः सं मदस्व । ❀ संविदान इति । विद ज्ञाने । “समो गम्यु-
च्छि०” इत्यादिना आत्मनेपदम् ❀ ॥

हे प्रेत ! तू इस स्थानसे ऊपर स्थित हो-उठ ! उत्थानके अनं-
तर चल, फिर शीघ्रतासे चल, फिर अलौकिक अन्तरिक्षमें धर
बना और उस लोकमें बर्हिषद् अग्निष्वात्ता आदि पितरोंसे एक
मत होकर सोमपान करके आनन्दको प्राप्त हो, भाव यह है, कि-
सोमयागोंमें जो नाराशंस नामक सोमरसका जो भाग पितरोंका
है उसका उपभोग करके अपनेको प्रसन्न कर । और पुत्र आदि
के किये हुए स्वधाकारसम्पन्न श्राद्धोंसे आनन्दको प्राप्त हो ८

६०६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

“प्र च्यवस्व” इत्यनया प्रेतस्य गात्राणि इतस्ततश्च व्याकुली-
कुर्यात् ॥ तत्पाठस्तु—

“प्रच्यवस्व” ऋचासं प्रेतके अङ्गोंको इधर उधर व्याकुल करे।
नवमी ॥

प्र च्यवस्व तन्वं१ सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि
मो शरीरम् ।

मनो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ६

प्र । च्यवस्व । तन्वम् । सम् । भरस्व । मा । ते । गात्रा । वि ।

हायि । मो इति । शरीरम् ।

मनः । निविष्टम् । अनुसंविशस्व । यत्र । भूमेः । जुषसे । तत्र ।

गच्छ ॥ ६ ॥

हे प्रेत त्वं प्र च्यवस्व अस्मात् स्थानात् प्रच्युतो भव । तदर्थं
तन्वम् शरीरं हस्तपादादिसहितं सं भरस्व संभृतम् एकीभूतं कुरु ।
ते तव गात्रा गात्राणि हस्तपादादीनि मा वि हायि परित्यक्तानि
भा भूवन् । तथा शरीरम् अवयविभूतो मध्यदेहश्च मो मैव त्याजीः ।
यत्र यस्मिन् स्थाने त्वदीयं मनो निविष्टम् अवस्थितं मनसो
विषयभूतं तत् स्वर्गादिलक्षणम् अनुसंविशस्व संप्रविष्टो भव ।
तथा यत्र यस्यां भूमौ भूपदेशे जुषसे प्रीयसे । ॐ जुषी प्रीति-
सेवनयोः ॐ । तत्र गच्छ । तं भूपदेशं प्राप्नुहीत्यर्थः ॥

हे प्रेत ! तू इस स्थानसे प्रच्युत हो और इस लिये हाथ पैर
आदि सहित शरीरको एकीभूत कर । तेरे हाथ पैर आदि अंग
छूट न जायें । तथा अवयवीरूप मध्यदेह भी न छूटे । तेरा मन
जिस स्थानमें लग रहा है उस स्वर्गादिरूप स्थानमें तू प्रविष्ट हो
और जिस भूपदेशमें तू प्रीति रखता है उस भूपदेशको तू प्राप्त हो

पितृपितृयज्ञे “वर्चसा माम्” इति दशम्या उत्तरसूक्तस्य
आद्यया च आचामेत् । “वर्चसा माम् इत्याचामति” इति हि
सूत्रितम् [कौ० ११. २] ॥

पितृपितृयज्ञे “वर्चसा माम्” इस दशवीं ऋचासे और अगले
सूक्तकी पहिली ऋचासे भी आचमन करे ।

दशमी ॥

वर्चसा मां पितरः सोम्यासो अञ्जन्तु देवा मधुना
घृतेन ।

चक्षुषे मा प्रतरं तारयन्तो जरसे मा जरदष्टिं वर्धन्तु १०

वर्चसा । माम् । पितरः । सोम्यासः । अञ्जन्तु । देवाः । मधुना ।

घृतेन ।

चक्षुषे । मा । प्रतरम् । तारयन्तः । जरसे । मा । जरदष्टिम् ।

वर्धन्तु ॥ १० ॥

पितरः पितृदेवताः सोम्यासः सोम्याः सोमार्हाः । ❀ “सोमम्
अर्हति यः” इति सोमशब्दाद् अर्हार्थे यप्रत्ययः । “आञ्जसेर-
सुक्” ❀ । तथाविधाः पितरो मां यजमानं वर्चसा तेजसा अञ्जन्तु
अक्तं संश्लिष्टं कुर्वन्तु । तथा देवाः विश्वे देवा मधुना माधुर्योपेतेन
घृतेन दीप्तिकरेण आज्येन माम् अञ्जन्तु । अपि च चक्षुषे दर्श-
नाय मा मां प्रतरम् प्रकृष्टतरं तारयन्तः सावयन्तः । दीर्घकाल-
दर्शनार्थं रोगादिभ्यो मां व्यावर्तयन्त इत्यर्थः । तथा जरसे जरायै
मा मां जरदष्टिम् जरती जीर्णा अष्टिः अशनं यस्य । ❀ जृष्-
वयोहानौ । “जीर्यतेरतृन्” इति भूतेर्थे अतृन् प्रत्ययः । “जराया

६०८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

जरस् अन्यतरस्याम्” इति जराशब्दस्य जरस् आदेशः । तादर्थ्ये चतुर्थी ॐ । जरार्थम् यावता कालेन जरा भवति तावत्कालपर्यन्तं मां जरदष्टिं कृत्वा वर्धन्तु वर्धयन्तु ॥

इति अष्टादशकाण्डस्य तृतीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

सोमके पात्र पितृदेवता मुक्त यजमानको तेजसे संयुक्त करें । तथा विश्वेदेवा भी मुक्तको मधुरतासम्पन्न दीप्तिप्रद घृतसे संयुक्त करें और मुक्तको दीर्घकाल तक देखते रहनेके लिये रोगादिके पार उतारते हुए और बुढ़ापे तकके लिये भोजनको जीर्ण कराते हुए मुक्तको बढ़ावें ॥ १० ॥ (१३)

अष्टादशकाण्डके तृतीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त

“वर्चसा माम्” इति आद्याया ऋचः पूर्वया ऋचा सह उक्तो विनियोगः । तत्पाठस्तु—

“वर्चसा माम्” इस प्रथम ऋचाका पहिली ऋचाके साथ विनियोग कह दिया गया है ।

तत्र प्रथमा ॥

वर्चसा मां समनक्त्वाग्निमेधां मे विष्णुर्न्यनक्त्वासन् ।
रयिं मे विश्वे नि यच्छन्तु देवाः स्योना मापः पवनै
पुनन्तु ॥ ११ ॥

वर्चसा । माम् । सम् । अनक्तु । अग्निः । मेधाम् । मे । विष्णुः ।
नि । अनक्तु । आसन् ।

रयिम् । मे । विश्वे । नि । यच्छन्तु । देवाः । स्योनाः । मा ।

आपः । पवनैः । पुनन्तु ॥ ११ ॥

अग्निः अङ्गनादिगुणयुक्तो देवः मा मां वर्चसा तेजसा सम-

नक्त संयोजयतु । ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणगतिषु । रुधादित्वाद्
 श्रम् । “श्रान्नलोपः” इति नलोपः ❀ ॥ तथा विष्णुः मे मम
 आसन् आसनि आस्ये मुखे मेधां नि अनक्त नितरां संयोजयतु ।
 ❀ “पद्म०” इत्यादिना आस्यशब्दस्य आसन् आदेशः ।
 “सुपां सुलुक्०” इति सप्तम्या लुक् ❀ ॥ तथा विश्वे देवाः
 स्योनाम् सुखकरीं रयिम् धनं मे मह्यं नि यच्छन्तु नियतां कुर्वन्तु ।
 ❀ यम उपरमे । “इषुगमियमां छः” इति छत्वम् ❀ । यद्वा निय-
 मेन ददतु । ❀ दाण् दाने इत्यस्य “पाघ्रा०” इत्यादिना यच्चा-
 देशः ❀ ॥ तथा आपः उदकानि पवनैः शोधनसाधनैः स्वांशैः
 मा मां पुनन्तु पूतं शुद्धं कुर्वन्तु ॥

अंगनादिगुणसम्पन्न अग्निदेव मुष्को तेजसे संयुक्त करें, और
 विष्णुदेव मेरे मुखमें मेधाको संयुक्त करें और विश्वदेवता सुख-
 प्रद धनको मुष्कमें नियत करें । तथा जल शोधनसाधन वायुरूप
 अपने अंशोंसे मुष्को शुद्ध करें ॥ ११ ॥

“मित्रावरुणा परि माम्” इति द्वितीयया ऋचा पिण्डपितृयज्ञे
 पाणी कर्ता प्रक्षालयेत् । तत्पाठस्तु—

“मित्रा वरुणा परि माम्” इस दूसरी ऋचासे कर्ता पिण्डपितृ-
 यज्ञमें हाथोंका प्रक्षालन करे ।

द्वितीया ॥

मित्रावरुणा परि मामधातामादित्या मा स्वरवो वर्धयन्तु
 वर्चो म इन्द्रो न्यूनक्तु हस्तयोर्जिर्दक्षि मा सविता
 कृणोतु ॥ १२ ॥

मित्रावरुणा । परि । माम् । अधाताम् । आदित्याः । मा । स्वरवः ।
 वर्धयन्तु ।

वर्चः । मे । इन्द्रः । नि । अनक्तु । हस्तयोः । जरत् अष्टिम् ।
मा । सविता । कृणोतु ॥ १२ ॥

मित्रावरुणा मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ । ❀ “देवताद्वन्द्वे च”
इति पूर्वपदस्य आनङ् आदेशः । “सुपां सुलुक्” इति पूर्वसवर्ण-
दीर्घः ❀ । अहरभिमानी देवो मित्रः । वरुणो रात्र्यभिमानी ।
तावुभौ मां पर्यधाताम् परितो धारयताम् । यद्वा वस्त्रादिना परि-
हितं कुरुताम् ॥ तथा आदित्याः अदितेः पुत्रा अन्ये देवा स्वरवः ।
❀ स्वृ शब्दोपतापयोः । शस्त्वस्निहीत्यादिना [उ० १. १०]
उपत्ययः ❀ । स्वरवः शोभनशब्दं कुर्वाणाः यद्वा अस्मच्छत्रविष-
यम् उपतापं कुर्वन्तो मा मां वर्धयन्तु ॥ अपि च इन्द्रो देवः मे मम
हस्तयोर्वर्चः बलं नि अनक्तु नियोजयतु । बाहुजातत्वाद् इन्द्रस्य
बाहुबलं तत्प्रसादान्बलभ्यम् इत्यभिप्रायः ॥ सविता सर्वस्य प्रस-
विता देवो मा मां जरदष्टिम् जीर्यदवस्थभोजनं दीर्घायुषं कृणोतु
करोतु ॥

दिनके अभिमानी देवता मित्र, और रात्रिके अभिमानी देवता
वरुण दोनों मुझको वस्त्र आदिसे परिहित रखें । और अदिति
के पुत्र अन्य देवता हमारे शत्रुओंको ताप देते हुए हमको बढ़ावें ।
और इन्द्र देवता मेरे हाथोंमें बल को देवें और सबको प्रेरित करने
वाले सविता देवता मुझको जिसमें अन्न जीर्ण होता रहे ऐसी
दीर्घायु दें ॥ १२ ॥

तृतीया ॥

यो ममारं प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयायं प्रथमो लोकमेतम्
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत

यः । ममार । प्रथमः । मर्त्यानाम् । यः । प्रइयाय । प्रथमः ।
लोकम् । एतम् ।

वैवस्वतम् । सम्सगमनम् । जनानाम् । यमम् । राजानम् । हविषा ।
सपर्यत ॥ १३ ॥

यो यमो राजा मर्त्यानाम् मरणधर्मणा मनुष्याणां मध्ये स्वय-
मपि एकः सन् प्रथमः प्रथमभूतो ममार मरणं प्राप्तवान् । ❀ मृड्
प्राणत्यागे । “अयतेर्लुङ्लिङोश्च” इति नियमात् लिटः परस्मै-
पदम् ❀ । एतं लोकं यो यमो राजा प्रथमः प्रथमभूतः प्रेयाय
प्रगतवान् । प्रथमं मरणम् पश्चात् लोकान्तरप्राप्तिः इत्युभयं यमो-
पज्ञम् आसीद् इत्यर्थः । अत एव यमस्य मनुष्यवत् कामयितृत्वा-
दिकं यागाद् राज्यप्राप्तिश्च आम्नायते । “यमो वा अकामयत
पितृणां राज्यम् अभिजयेयम् इति । स एतं यमायापभरणीभ्यश्चरुं
निरवपत्” इति [तै० ब्रा० ३. १. ५. ४. १] । इत्थं यमो राजा
मरणपूर्वकं प्रथमं प्रेयाय अस्माल्लोकात् प्रगतो बभूव तं वैवस्वतम्
विवस्वान् आदित्यः तस्य पुत्रं जनानाम् जनिमतां प्राणिनां सं-
गमनम् संगच्छन्ते अस्मिन्निति संगमनः । ❀ अधिकरणे न्युट्❀ ।
जनिमद्भिः सर्वैः प्राणिभिः संप्राप्यम् इत्यर्थः । एवंगुणविशिष्टं
यमं राजानम् ईश्वरम् । प्राणिकृतसुकृतदुष्कृतानुरूपेण शिक्षाकरम्
इति यावत् । हविषा आज्यपुरोडाशादिना सपर्यत पूजयत । हे
ऋत्विज इति शेषः । ❀ सपर पूजायाम् । “कण्ड्वादिभ्यो यक्”
इति यक् प्रत्ययः ❀ ॥ अथ वा प्रथमः प्रथमभावी कल्पादौ वर्त-
मानो यो जनः प्राणी ममार यश्च जनः प्रथमः कल्पादौ वर्तमानः एतं
लोकं यमस्य स्वभूतं प्रेयाय प्रगतवान् । तदाप्रभृति वर्तमानानां
सर्वेषां जनानां संगमनम् संप्राप्यं राजानम् इत्यादि पूर्ववत् ॥
जो राजा यम मरणधर्मी मनुष्योऽयं स्वयं भी पहिले मरे थे और

इस लोकको जो राजा यम प्रथम होकर प्राप्त हुए थे (अर्थात् पहिले जिनका मरण और फिर लोकान्तरकी प्राप्ति हुई थी [अत एव मनुष्यकी समान यमका कामयिता-पन और यागसे राजप्राप्तिका वर्णन मिलता है, यथा-“यमो वा अकामयत पितॄणां राज्यं अभिजयेयम् । स एतं यमायापभरणीभ्यश्चरुं निरवपत् ।” तैत्तिरीयब्राह्मण १ । ५ । ६ । १४] ऐसे विचस्वान्के पुत्र और जिनको उत्पत्ति वाले प्राणी प्राप्त होते हैं उन प्राणियोंको पुण्य पापके अनुसार फल देने वाले राजा यमकी हे ऋत्विजों ! तुम पूजा करो ॥ १३ ॥

पिण्डपितृयज्ञे “परा यात” इति चतुर्थ्या ऋचा पितॄन् विसर्जयेत् । तत्पाठस्तु-

पिण्डपितृयज्ञमें “परा यात” नामक चौथी ऋचासे पितरोंका विसर्जन करे ।

चतुर्थी ॥

परा॑ यात॑ पित॑र आ च॑ याता॒यं वो॑ यज्ञो मधु॑ना॒ सम॑क्तः
द॒त्तो अ॒स्मभ्यं॑ द्रवि॑णे॒ह भ॒द्रं र॒यिं च॑ नः॒ सर्व॑वीरं॒ दधा॑त
परा॑ । या॒त । पि॒तरः॑ । आ । च॑ । या॒त । अ॒यम् । वः॑ । य॒ज्ञः ।

मधु॑ना । सम॑ऽअक्तः ।

द॒त्तो इति॑ । अ॒स्मभ्यम् । द्रवि॑णा । इ॒ह । भ॒द्रम् । र॒यिम् । च॑ ।

नः॑ । सर्व॑ऽवीरम् । द॒धा॒त ॥ १४ ॥

हे पितरः पितृदेवताः अस्माभिः कृतेन पितृयज्ञरूपेण कर्मणा संतुष्टाः सन्तः परा यात परागच्छत । पराङ्मुखाः स्वस्थानं गच्छ-
तेत्यर्थः । पुनर्यागार्थम् अस्माभिराहूताः सन्तः आ यात च आ-

गच्छत च ॥ इदानीं परागमने कारणम् आह । वः युष्मभ्यं मधुना
मधुरेण आज्येन । “एतद् वै मधु दैव्यं यद् आज्यम्” इति हि
ऐतरेयकम् [ऐ० ब्रा० २. २] । समक्तः सम्यक् संसिक्तः अयं
यज्ञः अस्माभिर्दत्तः ॥ तं स्वीकृत्य अस्मभ्यम् अस्मदर्थं भद्रम्
कल्याणं द्रविणा द्रविणं धनम् इह अस्मिन् गृहे दधात धारयत ।
तथा सर्ववीरम् वीर्याज्जायन्त इति वीराः पुत्रपौत्रादिरूपाः प्रजास्तैः
सर्वैरुपेतं रयिम् प्रजापशवादिरूपं धनं नः अस्माकं दधात धार-
यत । ❀ “तप्तनप्तनथनाश्च” इति तस्य तत्तादेशः । पित्रेन
ङित्वाभावाद् आल्लोपाभावः ❀ ॥

हे पितृदेवताओं ! तुम हमारे किये हुए पितृयज्ञरूप कर्मसे
सन्तुष्ट हो पराङ्मुख हो अपने स्थानको जाओ और जब हम फिर
आपका आह्वान करें तो आ भी जाना । [इस समय लौटानेका
कारण यह है, कि—] हमने इस समय आपको मधु अर्थात् मधुर
घृतसे संसिक्त यज्ञ प्रदान किया है उसको स्वीकार कर आप
हमारे लिये इस घरमें कल्याणकारक धनको स्थापित करिये और
पुत्र पौत्र आदि प्रजासे सम्पन्न पशु आदिक धनको भी हममें
स्थापित करिये ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

क॒ण्वः क॒क्षी॒वान् पुरु॒भी॒ढो अ॒गस्त्यः श्या॒वा॒श्वः सो॒भ-
र्य॒र्च॒नानाः ।

वि॒श्वामि॒त्रो॒यं ज॒मदा॒ग्निर॒त्रि॒ष्वन्तु न क॒श्यपो॑ वा॒मदे॒वः

क॒ण्वः । क॒क्षी॒वान् । पुरु॒भी॒ढः । अ॒गस्त्यः । श्या॒वा॒श्वः ।

सो॒भरी । अ॒र्च॒नानाः ।

६१४ अथवेवेदसहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

विश्वामित्रः । अयम् । जमत् अग्निः । अत्रिः । अवन्तु । नः ।

कश्यपः । वाऽमदेवः ॥ १५ ॥

कणवादयोद्वादशसंख्याका ऋषयो नः अस्मान् अवन्तु रक्षन्तु ।
 कणतिः शब्दार्थः । ❀ अशूपपिलटिकणखटिविशिष्यः क्वन्
 [उ० १. १४६] इति क्वन् प्रत्ययः ❀ । निन्वाद् आद्युदात्तः कणव-
 शब्दः । कच्या रज्जुरश्वस्य कक्षं सेवते [नि० २. २] इति यास्कः ।
 तद्वा न कक्षीवान् । ❀ “आसन्दीवद् अष्टीवच्चर्क्रीवत्कक्षीवत्”
 इति मतुपि निपात्यते ❀ । पुरुमीढः । ❀ मिह सेचने इत्यस्मात्
 कर्मणि निष्ठा ❀ । पुरुणि मीढानि सिक्तानि अपत्यानि यस्य स
 तथोक्तः । यद्वा मीढम् इति धननाम । पुरुणि मीढानि धनानि यस्य
 स तथोक्तः । बहुधन इत्यर्थः । अगस्त्यः प्रसिद्धः । श्यावाश्वः
 श्यावाः कृष्णवर्णा अश्वा यस्य स तथोक्तः । सोभरी प्रसिद्धः ।
 अर्चनानाः अर्चनम् अर्चनीयम् अनः शकटं यस्य स तथोक्तः ।
 संज्ञाशब्दोऽयम् । स च अत्रीणां प्रवरमध्ये पठ्यते । “आत्रेयार्चना-
 नसश्यावाश्वेति । श्यावाश्वद् अर्चनानसवद् अत्रिवत्” इति ।
 विश्वामित्रः । विश्वं सर्वं जगत् मित्रं यस्य स तथा । ❀ “मित्रे
 चर्षी” इति विश्वशब्दस्य दीर्घः ❀ । अयम् इति इदंशब्देन पुरो-
 वर्तिवस्तुवाचिना सर्वजनसंनिहित्वेन सर्वमित्रत्वम् उपपाद्यते ।
 जमदग्निः । ❀ जमतिर्ज्वलतिकर्मा ❀ । जमन्तो ज्वलन्तः अग्नयो
 यस्य स तथोक्तः । अत्रिः । आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिक-
 भेदभिन्नास्त्रिविधा दुःखानुभवा यस्य न विद्यन्ते स तथा । अत
 एव यास्को निरवोचत । तस्माद् अत्रिर्न त्रय इति [नि० ३. ३७]
 कश्यपः । आद्यन्तवर्णविपर्ययः । सर्वं जगत् सर्वदा सौदम्येण
 पश्यतीति कश्यपः । श्रयते हि । “कश्यपः पश्यको भवति यत्
 सर्वं परिपश्यतीति सौदम्यात्” इति [तै० आ० १. ८. ८] ।

वामदेवः । वामो वननीयो देवो द्योतकोस्ति तत्त्वविषये बोधो यस्य स तथा । स खलु गर्भावस्थ एव सन् उत्पन्नतत्त्वज्ञानः स्वस्य सार्वार्त्म्यम् अनुसंधाय । श्रूयते हि । “अहं मनुरभवम् सूर्यश्च” इति [ऋ० ४. २६. १] ॥

कण्व, कक्षीवान्, पुरुमीढ, अगस्त्य, श्यावाश्व, सौभरि, अर्चनानां, विश्वामित्र, जमदग्नि, × अत्रि + कश्यप ÷ और वामदेव + नामक ऋषि हमारी रक्षा करें ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

विश्वा॑मित्र॒ जम॑दग्ने॒ वसि॑ष्ठ॒ भर॑द्वाज॒ गोत॑म् वामदेव
शर्दि॑नो॒ अत्रि॑ग्रभी॒न्नमो॑भिः सु॒संशा॑सः पि॒तरो॑ मृ॒डता॑
नः ॥ १६ ॥

‡ यह ऋषि अत्रिगोत्रमें उत्पन्न हुए हैं ।

× जमदग्नि शब्दकी व्युत्पत्ति यह है, कि-जिनकी अग्नियें प्रज्वलित रहती थीं वह जमदग्नि नामक ऋषि हैं ।

+ आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीनों प्रकारके दुःखोंका अनुभव न होनेसे यह ऋषि अत्रि कहलाते थे । निरुक्त ३ । १७ में भी कहा है, कि-‘तस्माद् अत्रिर्न त्रय इति’ ।

÷ सब जगत्को सदा सूक्ष्मतासे देखनेके कारण इनका कश्यप नाम है । तैत्तिरीय आरण्यक १ । ८ । ८ की श्रुतिमें भी कहा है, कि-“कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति सौक्ष्म्यात्” ।

+ जिनका तत्त्वविषयमें वाम अर्थात् सेवनीय देव अर्थात् बोध है वह ऋषि वामदेव कहलाते हैं यह ऋषि गर्भावस्थामें ही तत्त्वज्ञानके उदय होनेसे अपने सार्वार्त्म्यस्वरूपका अनुसंधान करने लगे थे, कि-“अहं मनुरभवम् सूर्यश्च” ॥

६१६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

विश्वामित्र । जमत् ऽअग्ने । वसिष्ठ । भरत् ऽवाज गोतम । वाम ऽदेव ।
शर्दिः । नः । अत्रिः । अग्रभीत् । नमः ऽभिः । सुसंशासः । पितरः ।

मृडत । नः ॥ १६ ॥

पूर्वार्धेन षट्संख्याका ऋषयः संबोध्यन्ते । तत्र वसिष्ठो वसु-
मत्तमः एतन्नामा ऋषिः । भरणाद् भरद्वाज इति यास्कः [नि०
३. १७] । अन्ये शब्दा उक्तार्थाः । मृडता नः इत्येतद् वक्ष्यमाणं
पदद्वयम् अत्रापि संबध्यते । हे विश्वामित्रादय ऋषयः नः अस्मान्
मृडत सुखयत । अत्रिः एतत्संज्ञो महर्षिर्नः अस्माकं शर्दिः छर्दिः ।
गृहनामैतत् । ❀ उच्छृदिर् दीप्तिदेवनयोः इत्यस्माद् अर्चिशुचिहु-
सृपिच्छादिछर्दिभ्य इतिः [उ० २. १०७] इति इसिप्रत्ययः । वर्णव्य-
त्ययः ❀ । नः अस्मदीयं गृहम् अग्रभीत् अग्रहीत् । रक्षणार्थं गृही-
तवान् इत्यर्थः । ❀ ग्रह उपादाने । “हग्रहोर्भः०” इति भत्वम् ❀ ।
यद्वा शर्दतिर्बलकर्मा । शर्दयति बलयतीति शर्दिः । एवंगुणविशिष्टः
अत्रिर्नः अस्मान् अग्रहीत् आत्मीयत्वेन गृहीतवान् । अथ वा शर्दि-
र्नाम कश्चिद् ऋषिः । अन्यत् पूर्ववत् । तथा नमोभिः नमस्कारैः ।
यद्वा अन्ननामैतत् । दीयमानैरन्नैः कव्यरूपैर्हेतुभिः हे पितरः
पितृदेवताः यूयं सुसंशासः सुष्ठु शंसितुं स्तोतुं शक्याः । ❀ शंसु
स्तुतौ इत्यस्मात् “ईषद्दुःसुषु०” इति कर्मणि खल् प्रत्ययः ।
“आज्जसेरसुकु” ❀ । सुष्ठुताः संस्तुताः सन्तः नः मृडत अस्मान्
सुखयत । ❀ मृडत । मृड सुखने ❀ ॥

हे विश्वामित्र जमदग्नि वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव नामक
ऋषियो ! हमको सुख दो । अत्रि नामक ऋषिने हमारे घरको
रक्षाके लिये ग्रहण कर लिया है । और नमस्कार वा स्वधान्नसे
स्तुति करने योग्य पितरों तुम भी हमको सुख दो ॥ १६ ॥

शवदहनदिवसे रात्रौ रिक्तकलशभञ्जनकर्ता “कस्ये मृजानाः”
इति सप्तमीम् ऋचं जपेत् । ऋक्पाठस्तु—

शवदहनके दिन रात्रिमें खाली घड़ेको फोड़ने वाला “कस्ये
मृजाना” इस सप्तम ऋचाका जप करे ।

सप्तमी ॥

कस्ये मृजाना अति यन्ति रिपमायुर्दधानाः प्रतरं
नवीयः ।

आप्यायमानाः प्रजया धनेनाधं स्याम सुरभयो गृहेषु
कस्ये । मृजानाः । अति । यन्ति । रिपम् । आयुः । दधानाः ।

प्रतरम् । नवीयः ।

आप्यायमानाः । प्रजया । धनेन । अध । स्याम । सुरभयः ।
गृहेषु ॥ १७ ॥

कसः कीकसः । ❀ कीशब्दलोपश्चान्दसः ❀ । कसम् अर्हतीति
कस्यो दहनदेशः तस्मिन् मृजानाः बान्धवमृतिजनितं दुःखम् उप-
लिपन्तः । परित्यजन्त इत्यर्थः । रिपम् । पापनामैतत् । शवसं-
स्पर्शजनितं पापम् । ❀ रपो रिपम् इति पापनामनी भवतः इति
हि निरुक्तम् [नि० ४, २१] ❀ । मरणनिमित्तं पापम् अति
यन्ति अतीत्य गच्छन्ति । इति प्रथमः पादः परोक्षकृतः । यद्वा
पुरुषव्यत्ययः । अतीमः । अतीत्य गच्छाम इत्यर्थः । ❀ इण्
गतौ । अदादित्वात् शपो लुक् । “इणो यण्” इति यण् आदेशः ❀ ।
यतो वयम् उक्तरीत्या दुःखम् अतिक्रान्तास्ततो हेतोः नवीयः
अतिशयेन नवम् उत्कृष्टम् आयुः जीवितं प्रतरम् प्रकृष्टतरं दधानाः ।
दीर्घकालजीवनं धारयन्त इत्यर्थः । एवम् अनेन द्वितीयपादेन

६१८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

चिरकालजीवनं प्रार्थितम् ॥ जीवत एव पुरुषस्य प्रजापश्वाद्यपेक्षेति
तृतीयेन पादेन प्रतिपाद्यते । प्रजया पुत्रपौत्रादिरूपया धनेन कनक-
रजतादिलक्षणं गवाश्वादिकं च धनम् तेन आप्यायमानाः वर्ध-
माना भवेम ॥ अथ अथ अनन्तरं गृहेषु सुरभयः शोभनगन्धोपेताः
श्लाघ्यगुणयुक्ताः स्याम भवेम ॥

हम श्मशानस्थानमें बान्धवके मरणसे उत्पन्न हुए दुःखको
त्यागते हुए शवस्पर्शजनित पापसे मुक्त होते हुए जाते हैं । इस
प्रकार हम दुःखरहित होगए हैं अत एव उत्कृष्ट आयु (दीर्घायु)
को पाते हुए पुत्र पौत्र आदिक प्रजासे और सोना चाँदी गौ
घोड़े आदि धनसे बढ़ते रहें और घरोंमें शोभन गन्धसे सम्पन्न रहें
पिएडपितृयज्ञे “अञ्जते व्यञ्जते” इति ऋचा पिएडेषु घृतेन
अभिधारणं कुर्यात् । सैषा सूक्ते

पिएडपितृयज्ञमें “अञ्जते व्यञ्जते” ऋचासे पिंडोंमें घृतका अभि-
धारण करे ।

अष्टमी ॥

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु
गृह्णते ॥ १८ ॥

अञ्जते । वि । अञ्जते । सम् । अञ्जते । क्रतुम् । रिहन्ति ।

मधुना । अभि । अञ्जते ।

सिन्धोः । उत्श्वासे । पतयन्तम् । उक्षणम् । हिरण्यपावाः ।

पशुम् । आसु । गृह्णते ॥ १८ ॥

पितृत्वं प्राप्ताः कर्मिणो जना धूमादिमार्गेण चन्द्रलोकं प्राप्य
तत्र यागहोमादिसुकृतजनितं फलं भुञ्जत इति स सोमः अनया स्तु-

यते । सोमयागं प्रवर्तयन्तः प्रथमम् ऋत्विजः अञ्जते यजमानम्
 अञ्जनेन संस्कुर्वन्ति । तथा च ऐतरेयकम् । “अञ्जन्त्येनम् । तेजो
 वा एतद् अद्योर्यद् अञ्जनम् । सतेजसमेवैनं तत् कृत्वा दीक्षयन्ति”
 इति [ऐ० ब्रा० १. ३] । ❀ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणगतिषु । “श्र-
 सोरन्लोपः” इति अकारलोपः ❀ । तस्याञ्जनस्य लौकिकाद्
 वैशिष्ट्यं प्रतिपाद्यते व्यञ्जत इति । विविधम् अञ्जते । लौकिकाद्
 अञ्जनाद् अन्येन प्रकारेण यजमानस्याक्षणोरञ्जनं कुर्वन्तीत्यर्थः ।
 तत्प्रकारश्च तैत्तिरीये समाम्नायते । “दक्षिणं पूर्वम् आङ्क्ते । सव्यं
 हि पूर्वं मनुष्या आञ्जते” [तै० सं० ६. १. १. ६] इत्यादिना ।
 तथा समञ्जते सम्यग् अक्तं कुर्वन्ति । उक्तस्याञ्जनस्य सम्यक्त्व-
 विशेषणप्रतिपादनाय पुनरनुवादः । तथा क्रतुं रिहन्ति । क्रतुः
 सोमयागसंकल्पः । तं लिहन्ति आस्वादयन्ति । ❀ लिह आस्वा-
 दने । कपिलकादित्वाद् लत्वविकल्पः ❀ । सोमेन यस्य इत्येव-
 मात्मकं वचो यजमानम् उच्चारयन्तीत्यर्थः । मधुना माधुर्योपेतेन
 नवनीतेन अभ्यञ्जते अभ्यक्तशरीरं कुर्वन्ति । तथा च ऐतरेयकम् ।
 “नवनीतेनाभ्यञ्जन्ति । स्वेनैवैनं तद् भागधेयेन समर्धयन्ति”
 [ऐ० ब्रा० १. ३] इति ॥ यद्वा अञ्जनादिसंस्कारैः सोम एव स्तूयते ।
 सोमयागे प्रवृत्ता ऋत्विग्यजमानाः सोमम् अञ्जने दीक्षणीयादिषु
 हूयमानेनाज्येन सोममेव अञ्जन्ति । संस्कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ तथा
 व्यञ्जते दण्डकृष्णाजिनादिदीक्षाव्यञ्जनद्रव्येण यजमानद्वारा तमेव
 सोमं संस्कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ तथा समञ्जते सोमयागोपयुक्तं यूपं सम्यग्
 आमूलाग्रम् अञ्जते । तेन च समञ्जनेन यूपद्वारा सोम एव संस्कृतो
 भवतीत्यर्थः ॥ क्रतुं रिहन्ति । यूपवान् यागः क्रतुः । अत्र तत्सा-
 धनभूतः सोमो लक्ष्यते । क्रतुम् सोमं लिहन्ति क्रयाभिपवादि-
 संस्कारपूर्वकं सोमम् अग्नौ हुत्वा हुतशेषं लिहन्ति । आस्वाद-
 यन्तीत्यर्थः । मधुना माधुर्योपेतेन क्षीरादिना श्रपणद्रव्येण तं

सोमम् अभ्यञ्जते अभितः अकृतं संयुक्तं संस्कृतं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥
 दिवि स्थितश्चन्द्र एव लतारूपसोमात्मना पृथिव्याम् अवस्थित
 इति प्रतिपादयति सिन्धोरुच्छ्वास इति । सिन्धोः स्यन्दनशीलस्य
 समुद्रस्य उच्छ्वासे । उच्छ्वास उद्गमः अभिवृद्धिः । तस्मिन् समये
 पतयन्तम् गच्छन्तम् । उद्यन्तम् इत्यर्थः । ❀ पत गतौ । चुरादि-
 रदन्तः । अतो लोपस्य स्थानिवत्त्वाद् उपधावृद्धयभावः ❀ ।
 उक्षणम् सेक्ताम् अमृतमयैः किरणैरभिषिञ्चन्तम् । यद्वा सिन्धोः
 स्यन्दनशीलस्य वसतीवरीजलस्य उच्छ्वासे उद्गमे सति अभिषव-
 काले पतयन्तम् गच्छन्तम् । अभिषवसंस्कारेण द्रवीभवन्तम् इति
 यावत् । उक्षणम् सेक्ताम् सर्वजगदुत्पत्तेः आहुतिद्वारा बीजभूतम्
 इत्यर्थः । स्मर्यते हि ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यम् उपतिष्ठते !

आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।

इति [म० ३. ७६] । तथा पशुम् । पश्यति सर्वं जगत् स्वकिरणैः
 प्रकाशयतीति पशुश्चन्द्रमाः । ❀ पशुः पश्यतेरिति यास्कः [नि०
 ३. १६] ❀ । एवंशुण्विशिष्टं सोमं रसात्मना अवस्थितं हिरण्य-
 पावाः हिरण्येन पावयन्तीति हिरण्यपावाः अभिषोतार ऋत्विजः ।
 अभिषवपवनादिषु तेषां हिरण्यपाणित्वं भगवता आपस्तयेनो-
 कम् । “हिरण्यपाणिरभिषुषोति गृह्णाति जुहोतीत्यत्यन्तप्रदेशः”
 इति [आप० १२. ७. १२] । आसु स्थालीषु । सोमयागे हि
 प्रधानभूतानाम् आग्रयणादीनां ग्रहाणां ग्रहणाय चतस्रः स्थाल्यो
 विहिताः । तासु गृभ्णते गृह्णते । उपलक्षणम् एतत् । स्थाल्युपल-
 क्षितग्रहचमसपात्रेषु सोमरसग्रहणेन संस्कृवन्तीत्यर्थः ॥

[पितृत्वको प्राप्त हुए कर्मकाण्डी धूमादिमार्गसे चन्द्रलोकको
 प्राप्त होकर तहाँ याग होम आदिके पुण्यसे प्राप्त होने वाले फल
 को भोगते हैं उस सोमकी इस ऋचासे स्तुति की जाती है, कि—]

सोमयागका आरम्भ करते हुए ऋत्विज पहिले यजमानको अञ्जन से संस्कृत करते हैं [इसी बातको ऐतरेयब्राह्मण १ । ३ में कहा है, कि—“आञ्जन्ति एनं । तेजो वा एतद् अद्योर्यद् आञ्जनम् । सतेजसमेवैनं तत् कृत्वा दीक्षयन्ति ।—इस यजमानको अञ्जित करते हैं, जो नेत्रोंका अञ्जन है यह तेज है अत एव इसको तेजः-सम्पन्न करके ही दीक्षित करते हैं” इस अञ्जनकी लौकिक अञ्जन से विशिष्टता प्रतिपादित करते हैं, कि—] लौकिक अञ्जन से अतिरिक्त अन्य प्रकारसे इस यजमानके नेत्रोंका अञ्जन करते हैं [इसकी रीति तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । १ । ६ में लिखी हुई है, कि—“दक्षिणं पूर्वं आङ्गे । सव्यं हि पूर्वं मनुष्या आञ्जते ।—पहिले दाहिने नेत्रको आँजे, मनुष्य तो पहिले बायें नेत्रको आँजा करते हैं” ।] वह ऋत्विज् यजमानके नेत्रोंको इस प्रकार भली भाँति आँजा करते हैं तथा सोमयागका आस्वादन करते हैं अर्थात् यजमानसे कहते हैं, कि—मैं सोमयागसे पूजन करूँगा और मधुरतायुक्त नवनीतसे शरीरका अभ्यञ्जन करते हैं [इसी बातको ऐतरेयब्राह्मण १ । ३ में कहा है, कि—“नवनीतेनाभ्य-ञ्जन्ति । स्वेनैवैनं तद् भागधेयेन समर्धयन्ति” । अब यह प्रति-पादन करते हैं, कि—अलोकमें स्थित चन्द्रमा ही ललासोम आदि रूपमें पृथ्वीमें स्थित है] सिंधुके बढ़ावके समय उदय होते हुए, अमृतमय किरणोंसे सेवन करने वाले, सब जगत्को अपनी किरणोंसे देखने वाले—प्रकाशित करने वाले पशु चन्द्रमाको रसात्मा सोमरूपसे अवस्थित होने पर, सुवर्णसे पवित्र करने वाले सुवर्णपाणि ऋत्विज ‡ सोमयागकी प्रधानभूत आग्रयणादि चार स्थालियोंमें संस्कृत करते हैं ॥ १८ ॥

‡ आपस्तम्बश्रौतसूत्र १२ । ७ । १२ में कहा है, कि—“हिरण्य-पाणिरभिषुणोति गृह्णाति जुहोतीत्यत्यन्तप्रदेशः” ॥

एवं पितृदेवताभूतसोमाञ्जनलिङ्गात् पिण्डाभिधारणे विनियोग उपपन्नः ॥

इस प्रकार पितृदेवताभूत सोमाञ्जनके लिंगसे पिण्डाभिधारण में इसका विनियोग ठीक ही है ।

नवमी ॥

यद् वो मुद्रं पितरः सोम्यं च तेनो सचध्वं स्वयंशसो हि भूत ।

ते अर्वाणः कवय आ शृणोत सुविदत्रा विदथे हूयमानाः ॥ १६ ॥

यत् । वः । मुद्रम् । पितरः । सोम्यम् । च । तेनो इति । सचध्वम् । स्वयंशसः । हि । भूत ।

ते । अर्वाणः । कवयः । आ । शृणोत । सुविदत्राः । विदथे । हूयमानाः ॥ १६ ॥

हे पितरः वः युष्माकं संबन्धि मुद्रम् मोदकं हर्षजनकम् ।
 ❀ मुद्रं हर्षे इत्यस्मत् स्फायितश्चीत्यादिना [उ० २. १३]
 रक् ❀ । यद्वा मुद्रम् हर्षं राति ददातीति मुद्रम् । ❀ “आतोनुप-
 सर्गे कः” इति कप्रत्ययः ❀ । प्रीतिकरं यद् धनम् सोम्यम् सोमार्हं
 च विद्यते तेनो तेनैव धनेन सह यूयं सचध्वम् अस्माभिः संगता
 भवत । ❀ षन समवाये ❀ । तादृग् धनम् अस्मभ्यं प्रयच्छते-
 त्यर्थः ॥ तत्र हेतुमुच्यते । हि यस्माद् यूयं स्वयंशसः स्वायत्तय-
 शस्का भूत भवथ । तस्माद् इष्टफलदानं भवतां युक्तम् इत्यर्थः ॥
 ते यूयम् अर्वाणो गन्तारः कवयः क्रान्तदर्शनाः सुविदत्राः शोभन-

ज्ञानाः शोभनधना वा विदथे यज्ञे हूयमानाः अस्माभिराहूयमाना
आ शृणोत अस्मदाहानं शृणुत । ॐ श्रु श्रवणे । लोटि तस्य
तवादेशः ॐ ॥

हे पितरो ! आपका जो हर्षजनक सोमार्ह धन है उस धनके
साथ आप हमसे संयुक्त हूजिये क्योंकि—आप स्वाधीनयशा हैं
अतः आपको इष्टफल प्रदान करना उचित ही है । ऐसे चतुर
और शोभन धनसे सम्पन्न आप हमारे यज्ञमें आहूत होने पर
हमारे आह्वानको सुनिये ॥ १९ ॥

दशमी ॥

ये अत्रयो अङ्गिरसो नवग्वा इष्टावन्तो रातिपाचो
दधानाः ।

दक्षिणावन्तः सुकृतो य उ स्थासद्यास्मिन् बर्हिषि
मादयध्वम् ॥ २० ॥

ये । अत्रयः । अङ्गिरसः । नवग्वाः । इष्टावन्तः । रातिपाचः ।
दधानाः ।

दक्षिणावन्तः । सुकृतः । ये । उं इति । स्थ । आसद्य ।
अस्मिन् । बर्हिषि । मादयध्वम् ॥ २० ॥

ये पितरो यूयम् अत्रयः अत्रिगोत्रोत्पन्नाः । ये वा अङ्गिरसः
अङ्गिरो गोत्रजाः । यद्वा अत्रिमहर्विरूपेण अङ्गिरोरूपेणावस्थिताः ।
नवग्वाः अभिनवगमनाः । अथ वा अङ्गिरसो हि केचन सत्रयागं
कुर्वाणा नवभिर्मासैः स्वर्गं गतास्ते नवग्वा उच्यन्ते । अपरे
दशभिर्मासैर्गतास्ते दशग्वाः तथा चाग्नायते । “नवग्वासः सुत-
सोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यकैः” इति [ऋ० ५. २६.

६२४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य--भाषानुवादसहित

१२] । इष्टावन्तः इष्टाः दर्शपूर्णमासादियागास्तद्वन्तः इष्टावन्तः । रातिपाचः रात्रिर्दानम् तत् सचन्ते समययन्तीति दक्षिणादानयुक्त- क्रिया रातिपाच इत्युच्यन्ते । ता दधानाः धारयन्तः । ये च अन्ये हे पितरो यूयं दक्षिणावन्तः दक्षिणादानयुक्ताः सुकृतः पुण्यकृतः स्थ भवथ । उशब्दः अप्यर्थे । अस्मिन् बर्हिषि यज्ञे आस्तीर्णे दर्भे वा आसद्य उपविश्य ते सर्वे यूयं मादयध्वम् अस्मदीयेन हविषा तृप्ता भवत ॥

इति अष्टादशकाण्डे तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे पितरों ! जो तुम अत्रिगोत्रके हो, अंगिरागोत्रके हो, नौ मास तक सत्रयाग करके स्वर्गको प्राप्त हुए नवग्वा हो, दर्श पूर्ण- मास आदि यागोंसे पूजन कर चुके हो तो तुम सब दक्षिणा प्रदान करने वाले पुण्यात्मा हो अत एव तुम विछे हुए कुशा- सन पर बैठ कर हमारी दी हुई हविसे तृप्त होओ ॥ २० ॥ (१४)

अष्टादश काण्ड क तृतीय अनुवाकमे द्वितीय सूक्त समाप्त ॥

“अथा यथा नः” इति आदितश्चतसृणाम् ऋचां प्रेतोपस्थाने विनियोग उक्तः ॥

“अथा यथा नः” आदिकी चार ऋवाओंका प्रेतोपस्थानमें विनियोग है ।

तत्र प्रथमा ॥

अथा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमा-
शशानाः ।

शुचीदयन् दीध्यन्त उक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरु-
णीरपं व्रन् ॥ २१ ॥

अथ । यथा । नः । पितरः । परासः । प्रत्नासः । अग्ने ।
ऋतम् । आशशानाः ।

शुचि । इत् । अयन् । दीध्यतः उक्थऽशसः । क्षाम । भिन्दन्तः ।

अरुणीः । अप । व्रन् ॥ २१ ॥

अथ अथ अनन्तरम् । यद्वा अप्यर्थः अथेति निपातः । अपि च यथा येन प्रकारेण नः अस्माकं पितरः पितृपितामहाः । यद्वा अस्माकं पितृभूता अङ्गिरसः परासः । परशब्दः उत्कृष्टवाची । ❀ “आज्जसेरसुक्” ❀ । परा उत्कृष्टाः प्रत्नासः पुराणाः हे अग्ने त्वत्प्रसादाद् ऋतम् यज्ञम् आशशानाः व्याप्नुवन्तः । ❀ अशू व्याप्तौ इत्यस्मात् कानचि रूपम् ❀ । एवंभूतास्ते शुचि दीप्तं स्थानं नाकपृष्ठाख्यम् अयन् अगच्छन् । इच्छब्दः अवधारणे । ❀ इण् गतौ । अस्मात् लङि पूर्वम् “इणो यण्” इति यणि कृते तस्य असिद्धवद्भावेन प्राप्तस्य आटशब्दान्दसत्त्वाद् निवृत्तौ अडा-गम एव भवति ❀ । दीध्यतः दीप्यमाजाः । ❀ दीधीङ् दीप्ति-देवनयोः इत्यस्मात् लट् । व्यत्ययेन शत्रादेशः ❀ । उक्थशसः । उक्थानि शस्त्राणि । तेषां शंसितारः एवंगुणविशिष्टास्ते पितरः क्षमा रात्रिः तत्संबन्धि तमः क्षाम शर्वरं तमो भिन्दन्तः स्वतेजसा निवर्तयन्तः अरुणीः अरुणवर्णा उषसः उषःकालान् अप व्रन् अपावृण्वन् प्राकाशयन् ॥ यद्वा पणिनामानोऽसुरा अङ्गिरसां यज्ञसाधनभूता गा अपहृत्य भूम्यां बिलं प्रावेशयन् अङ्गिरसस्त-ज्जानन्तः इन्द्रसहाया बिलं विवृत्य ता गा अलभन्तेत्याख्यायिका । तद् एतद् उच्यते । क्षाम क्षमां भूमिं भिन्दन्तः विदारयन्तः अरुणीः अरुणवर्णा गा अप व्रन् अपावृण्वन् बिलद्वारापवरणेन अलभन्तेत्यर्थः ॥

और हे अग्निदेव ! जिस प्रकार हमारे प्राचीन श्रेष्ठ पितर [पितामह वा अंगिरस] आपके प्रसादसे यज्ञको करते हुए दमकते हुए स्वर्ग नामक स्थानको प्राप्त हुए हैं और उक्थोंका

गान करने वाले वे पितर रात्रिके अंधकारको अपने तेजसे दूर करते हुए अरुण वर्ण वाली उषाओंको प्रकाशित करते हैं [तिसी प्रकार हम भी इस पितृमेधके प्रभावसे शरीरान्तमें स्वर्गको प्राप्त होवें] ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा
धमन्तः ।

शुचन्तो अग्निं वावृधन्त इन्द्रमुर्वी गव्यां परिषदं नो
अक्रन् ॥ २२ ॥

सुकर्माणः । सुरुचः । देवयन्तः । अयः । न । देवाः । जनिम ।
धमन्तः ।

शुचन्तः । अग्निम् । ववृधन्तः । इन्द्रम् । उर्वीम् । गव्याम् ।
परिषदम् । नः । अक्रन् ॥ २२ ॥

सुकर्माणः शोभनकर्माणः सुरुचः सुदीप्तयो देवयन्तः देवान्
आत्मन इच्छन्तः अयो न । नेति उपमार्थे । यथा अयस्कारा अयो
धमन्ति धमनेन परिशुद्धं कुर्वन्ति एवं स्वकीयं जनिम जन्म धम-
न्तस्तपसा शोधयन्तो देवाः देवत्वं प्राप्ताः अग्निम् गार्हपत्यादिकं
शुचन्तः दीपयन्तः सामिधेनीभिः प्रज्वालयन्तः इन्द्रं ववृधन्तः
स्तुतिभिर्वर्धयन्तः उर्वीम् महतीं गव्याम् गवां समूहम् । ❀ “खल-
गोरथात्” इति समूहार्थे यप्रत्ययः ❀ । नः अस्माकं परिषदम्
परितः सीदन्तीम् अक्रन् अकार्पुः । ❀ डुकृञ् करणे । “मन्त्रे
घस०” इत्यादिना च्लेलुक् ❀ ॥

शोभन कर्म वाले, सुन्दर दीप्ति वाले, देवताओंकी कामना करते हुए और लुहार जैसे लोहेको धोंक कर शुद्ध कर लेते हैं इसी प्रकार तपके द्वारा अपने जन्मको शुद्ध करने वाले अत एव देवत्वको प्राप्त हुए, सामिधेनी ऋचाओंसे गार्हपत्य अग्निको प्रज्वलित करते हुए, स्तुतियोंसे इन्द्रको बढ़ावा देते हुए ये पितर हमारे यहाँ गौओंके समूहको चारों ओर बैठने वाला करें ॥२२॥

तृतीया ॥

आ यूथेव जुमति पशवो अख्यद् देवानां जनिमान्त्युग्रः
मर्तासश्चिदुर्वशीरकृपन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः २३

आ । यूथाऽइव । जुमति । पशवः । अख्यत् देवानाम् । जनिम ।

अन्ति । उग्रः ।

मर्तासः । चित् । उर्वशीः । अकृपन् । वृधे । चित् । अर्यः । उपरस्य ।

आयोः ॥ २३ ॥

उग्रः उद्गूर्णबलौयमग्निः देवानाम् यष्टव्यानाम् इन्द्रादीनां जनिम जन्म प्रादुर्भावम् अन्ति अन्तिके समीपे । ❀ “कादिलोपो बहुलम् इति वक्तव्यम्” इति अन्तिकशब्दस्य कादिलोपः ❀ । आ अख्यत् अभिपश्यति । आभिमुख्येन ज्ञातुं शक्नोतीत्यर्थः । यूथेव जुमति पशव इति तत्र दृष्टान्तः । यूथा इव । ❀ सप्तम्याः पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । यूथे समूहे जुमति शब्दवति गवां संघे पशवः पशून् आत्मीयान् गवादीन् यथा स्वामी पश्यति तद्वत् । अयं देव-संघे यष्टव्यान् जानातीत्यर्थः ॥ यद्वा दाहकोग्निः संबोध्यः । हे अग्ने त्वया दह्यमानोऽयं यजमानरत्नप्रसादाद् उग्रः उद्गूर्णबलः जुमति शब्दवति पशुसंघे पशवः पशूनां यूथा यूथानीव देवानां

जनिम आख्यत् अभिपश्यतीति । देवलोकं गतस्य तस्य देवा
अन्तिके प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः ॥ मर्तासश्चित् मर्त्या अपि मनुष्यजातीया
अपि त्वत्प्रसादाद् उर्वशीः उर्वश्याया अप्सरसः अकृपन् अकल्प-
यन् । उपभोक्तुं समर्था भवन्तीत्यर्थः । ❀ कृपू सामर्थ्ये इत्यस्मात्
लुङि च्लेः अङ् आदेशः । “बहुलं छन्दसि” इति रुडागमः ❀ ।
ततश्च त्वत्प्रसादाद् देवत्वं प्राप्तः अर्थः स्वामी भूत्वा उपरस्य उप्तस्य
गर्भाशये निषिक्तस्य आयाः मनुष्यस्य गर्भावस्थस्य वृधे चित् वर्ध-
नाय च । भवतीति शेषः । पितृप्रसादात् पुत्रपौत्राद्यभिवृद्धिरिति
भावः ॥

हे अग्ने ! आपसे भस्म किया जाता हुआ यह यजमान आप
के प्रसादसे प्रचण्डबलसम्पन्न होकर, शब्द करते हुए पशुओंके
भुण्डकी समान देवताओंके प्रादुर्भावको देखे अर्थात् आपके प्रसाद
से देवलोकको प्राप्त हुए इसके समीपमें देवता प्रादुर्भूत हों । मनुष्य
मरणधर्मी होने पर भी आपके प्रभावसे उर्वशी आदि अप्सराओं
को भोगनेमें समर्थ होते हैं । फिर आपके प्रभावसे देवत्वको प्राप्त
हुआ यह स्वामी होकर गर्भाशयमें बाँधे हुए मनुष्यकी-गर्भावस्थ
मनुष्यकी वृद्धिके लिये भी समर्थ होता है अर्थात् पितरोंके प्रसाद
से पुत्र पौत्र आदिकी वृद्धि होती है ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

अकर्म ते स्वप्सो अभूम ऋतमवसन्नपसो विभातीः ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे
सुवीराः ॥ २४ ॥

अकर्म । ते । सुऽअपसः । अभूम । ऋतम् । अवसन् । उपसः ।
विऽभातीः ।

विश्वम् । तत् । भद्रम् । यत् । अवन्ति । देवाः । बृहत् । वदेम ।

विदथे । सुवीराः ॥ २४ ॥

हे अवस्वन् अवनवन् पालक अग्ने ते तुभ्यम् अकर्म परिचरणम् अकार्षम् । ❀ “मन्त्रे घस०” इत्यादिना च्त्वेर्लुक् ❀ । अतस्त्वत्पसादात् स्वपसः शोभनकर्माणः अभूम् अस्माभिः कृतानि यागहोमदानादीनि कर्माणि शोभनानि फल युक्तानि येषां तथोक्ता अभवाम् । अस्मत्कर्माणि फलयुक्तानि भवन्त्वित्यर्थः ॥ तथा विधातीः विधात्यः व्युच्छन्त्य उषसश्च ऋतम् । सत्यनामैतत् । सत्यं यागदानादिकर्मफलम् । कुर्वन्तु इति शेषः ॥ यत् शास्त्रविहितं कर्म देवा अवन्ति रक्षन्ति तद् विश्वम् सर्वं भद्रम् कल्याणं भवति । वयमपि सुवीराः शोभनपुत्रादियुक्ताः सन्तो विदथे यज्ञे बृहत् महत् स्तोत्रं वदेम ब्रूयाम ॥

हे पालक अग्निदेव ! हमने आपकी सेवा की है अत एव आपके प्रभावसे हम शोभन कर्म वाले होवें अर्थात् हमारे कर्म हमको शुभ फल देवें और उषःकाल भी हमारे याग दान आदि कर्मके फलोंको सत्य करें । देवता जिस शास्त्रविहित कर्मकी रक्षा करते हैं वह सब कर्म कल्याण करने वाला होता है अत एव हम भी शोभन पुत्र आदिसे सम्पन्न रहते हुए यज्ञमें विशाल स्तोत्रको कहें ॥ २४ ॥

“इन्द्रो मा मरुत्वान्” इत्यादिभिः एकादशभिर्ऋग्भिः रमशानचयनकर्मणि आज्यं जुहुयात् ॥

तथा “इन्द्रो मा मरुत्वान्” इत्यादिपञ्चभिर्ऋग्भिः प्रेतशरीरे अग्निदानानन्तरम् आज्येन सारस्वतहोमान् कुर्यात् ॥

“इन्द्रो मा मरुत्वान्” इत्यादि ग्यारह ऋचाओंसे रमशानचयनकर्ममें घृतकी आहुति देवे ।

६३० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तथा “इन्द्रो मा मरुत्वान्” आदि पाँच ऋचाओंसे प्रेतके शरीरमें अग्नि देनेके अनन्तर घृतसे सारस्वत-होमोंको करे ।

पञ्चमी ॥

इन्द्रो मा मरुत्वान् प्राच्या दिशः पातु बाहुच्युता

पृथिवी द्यामिवोपरि ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह

स्थ ॥ २५ ॥

इन्द्रः । मा । मरुत्वान् । प्राच्याः । दिशः । पातु ॥ बाहुच्युता ।

पृथिवी । द्याम् । इव । उपरि ।

लोकः कृतः । पथिः कृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतः भागाः ।

इह । स्थ ॥ २५ ॥

मरुत्वान् मरुद्भिः एकोनपञ्चाशत्संख्याकैर्देवैः सहितः इन्द्रो मा मां संस्कर्तारं प्राच्या दिशः प्राचीदिक्संबन्धिभयहेतोः पातु रक्तु । तत्र दृष्टान्तः । बाहुच्युता बाहुभ्यो दातृसंबन्धिभ्यश्च्युता विनिर्गता । यद्वा बाहुषु प्रतिग्रहीतृसंबन्धिषु च्युता प्राप्ता । उद-
कपूर्वं दत्तेत्यर्थः । तादृशी दानसात्कृता पृथिवी द्यामिव यथा द्याम् दिवं स्वर्गं भूदानप्राप्त्यम् उपरि आगामिनि काले दातृप्रतिग्रही-
तृभ्याम् उपभोग्यं लोकं याति तद्वत् । मां पात्विति संबन्धः ।

भूमिं यः प्रतिगृह्णति यत्र भूमिं प्रयच्छति ।

उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ।

इति ॥ अपि च लोककृतः लोकः यः पुण्यफलभूतस्य स्वर्गादिः
कृतृन् पथिकृतः तत्प्राप्त्युपायभूतस्य मार्गस्य कर्तृन् यजामहे

हविषा पूजयामः । हे देवाः ये यूयं देवानाम् इन्द्रादीनां मध्ये हुत-
भागाः हुतः स्वाहाकारवषट्काराभ्याम् अग्नौ प्रक्षिप्तो हविर्भागः
अंशो येषां ते हुतभागा इह अस्मिन् पितृमेधकर्मणि स्थ भवथ ।
तान् देवान् लोककृत इति पूर्वेण संबन्धः ॥

उडश्वास मरुत्-गणों सहित इन्द्रदेव मुक्त संस्कर्ता पुरुषको
पूर्वदिशासे प्राप्त होने वाले भयोंसे बचावें । और दाताके हाथ
दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने वाले दाता प्रतिगृहीताके
उपभोग्य स्वर्गकी रक्षा करती है तिस प्रकार तेरी रक्षा करे + ।
हम पुण्यके फलफूत स्वर्गप्राप्तिके मार्गोंके प्रवर्तकोंकी हविसे पूजा
करते हैं, हे देवताओं ! तुम इस पितृमेधकर्ममें हुतभाग होओ २५

षष्ठी ॥

धा॒ता मा॒ निः॒ऋ॒त्या दक्षि॑णाया दि॒शः पा॒तु बा॒हु॒च्युता॑
पृथि॒वी द्यामि॑वोपरि ।

लो॒क॒कृ॒तः प॒थि॒कृ॒तो य॒जाम॑हे ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह
स्थ ॥ २६ ॥

धा॒ता । मा॒ । निः॒ऋ॒त्याः । दक्षि॑णायाः । दि॒शः । पा॒तु । बा॒हु॒ऽ-
च्यु॒ता । पृथि॒वी । द्यामि॑व । उ॒परि॑ ।

लो॒क॒ऽकृ॒तः । प॒थि॒ऽकृ॒तः । य॒जाम॑हे । ये । दे॒वानां॑ । हु॒तऽभा॑गाः ।
इ॒ह । स्थ ॥ २६ ॥

+ “भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति ।

उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥

अर्थात् जो भूमिका दान लेता है और जो भूमिका दान देता
है ये दोनों पुण्यात्मा स्वर्गको अवश्य पाते हैं”

६३२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

धाता सर्वस्य जगतो विधाता धारयिता वा एतत्संज्ञो देवः
निऋत्याः । निऋतिः आर्तिकारी पापदेवता । तद्युक्ताया दक्षि-
णाया दिशो मा मां पातु दक्षिणदिगवस्थिताद् रक्षःपिशाचादेर्मां
संस्कर्तारम् रक्षतु ॥ बाहुच्युतेत्यादेः पूर्ववद् योजना ॥

धाता देवता मुष्को पीड़ा देने वाली पापदेवता निऋतिसे
सम्पन्न दक्षिण दिशासे प्राप्त होने वाले भयोंसे बचावें । और
दाताके हाथमें दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने वाले दाता
प्रतिगृहीताके उपभोग्य स्वर्गकी रक्षा करती है तिस प्रकार मेरी
रक्षा करे । जिन देवताओंके लिये भाग होमा जा चुका है उन
स्वर्गको प्राप्त कराने वाले मार्गके प्रवर्तक और स्वर्ग आदि लोक
देने वाले देवताओंकी हम पूजा करते हैं ॥ २६ ॥

सप्तमी ॥

अदितिर्मादित्यैः प्रतीच्यां दिशः पातु बाहुच्युता पृथिवी
द्यामिवोपरि ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अदितिः । मा । आदित्यैः । प्रतीच्याः । दिशः । पातु । बाहु-

च्युता । पृथिवी । द्याम् इव । उपरि ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।

इह । स्थ ॥ २७ ॥

अदितिः अदीना देवमाता । सा आदित्यैः स्वपुत्रैः सह प्रती-
च्या दिशः सकाशात् मा मां पातु प्रत्यग्दिगवस्थितरक्षःपिशाचा-
देर्मां रक्षत्वित्यर्थः ॥ अन्यद् उक्तार्थम् ॥

अपने पुत्रों सहित देवमाता अदिति मुष्को पश्चिममें स्थित

राक्षसादि भयसे बचावे । और दाताके हाथमें दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने वाले दाता प्रतिगृहीताके उपभोग्य स्वर्ग की रक्षा करती है तिस प्रकार तेरी रक्षा करे । जिन देवताओं के लिये भाग होमा जा चुका है उन स्वर्गका प्राप्त कराने वाले मार्गके प्रवर्तक और स्वर्ग आदि लोक देने वाले देवताओंकी हम पूजा करते हैं ॥ २७ ॥

अष्टमी ॥

सोमो मा विश्वेदेवैरुदीच्या दिशः पातु बाहुच्युतां
पृथिवीं धामिवोपरि ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

सोमः । मा । विश्वैः । देवैः । उदीच्याः । दिशः । पातु । बाहु-
च्युता । पृथिवी । धाम् इव । उपरि ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।
इह । स्थ ॥ २८ ॥

विश्वैः सर्वैः देवैः सह सोमः एतन्नामको देवः मा माम् उदी-
च्या दिशः पातु उत्तरदिगवस्थिताद् राक्षसादेः श्मशानवासिनः
सकाशाद् रक्षतु ॥

सब देवताओंसहित सोम देवता मुझको उत्तरदिशामें स्थित श्मशान वासी राक्षसोंके भयसे बचावें । और दाताके हाथमें दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने वाले दाता प्रतिगृहीताके उप-
भोग्य स्वर्गकी रक्षा करती है तिस प्रकार तेरी रक्षा करे । जिन देवताओंके लिये भाग होमा जा चुका है उन स्वर्गको प्राप्त कराने वाले मार्गके प्रवर्तक और स्वर्ग आदि लोक देने वाले देवताओं की हम पूजा करते हैं ॥ २८ ॥

नवमी ॥

ध॒र्ता ह॑ त्वा ध॒रुणो॑ धा॒रया॑ता ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॒विता॑
द्याभि॒वोप॑रि ।

लो॒क॒कृ॒तः प॒थि॒कृ॒तो य॒जाम॑हे ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा
इ॒ह स्थ ॥ २६ ॥

ध॒र्ता । ह॑ । त्वा । ध॒रुणः॑ । धा॒रया॑तै । ऊ॒र्ध्वम् । भा॒नुम् । स॒विता॑ ।
द्याम् । उप॑रि ।

लो॒कः । कृ॒तः । प॒थिः । कृ॒तः । य॒जाम॑हे । ये । दे॒वाना॑म् । हु॒तः । भा॑गाः ।
इ॒ह । स्थ ॥ २६ ॥

धरुणः सर्वस्य जगतो धारयिता धर्ता एतत्संज्ञक ऊर्ध्वदिगभि-
मानी देवः हे मेत त्वा त्वाम् ऊर्ध्वम् ऊर्ध्वदिगवस्थितं लोकान्तरं
गन्तुम् उद्यतम् ऊर्ध्वमुखं वा धारयातै धारयतु । ❀ “लेटोडाटौ”
इति आडागमः । “वैतोन्यत्र” इति ऐकारः ❀ । तत्र दृष्टान्तः ।
सविता सर्वप्रेरकः सूर्यः भानुम् दीप्तां द्याम् द्युलोकं यथा उपरि
धारयति तद्वद् इत्यर्थः ॥ लोककृतः इत्यादि पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥

हे मेत ! सब जगत्के धारक ऊर्ध्वदिशाके अभिमानी धरुण
नामक देव तुझ ऊर्ध्वदिशामें स्थित लोकान्तरमें जानेके लिये
उद्यत पुरुषको धारण करें जैसे सर्वप्रेरक सूर्यदेव दमकते हुए
द्युलोकको ऊपर धारण किये रहते हैं, इस प्रकार तुझको धारण
करें । और दाताके हाथमें दी हुई पृथ्वी जैसे भूदानसे प्राप्त होने
वाले दाता प्रतिगृहीताके उपभोग्य स्वर्गकी रक्षा करती है तिस
प्रकार तेरी रक्षा करे । जिन देवताओं लिये भागहोमा जा चुका

है उन स्वर्गको प्राप्त कराने वाले मार्गक प्रवर्तक और स्वर्ग आदि लोक देने वाले देवताओंकी हम पूजा करते हैं ॥ २६ ॥

दशमी ॥

प्राच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि
बाहुच्युता पृथिवी ग्रामिवोपरि ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह
स्थ ॥ ३० ॥

प्राच्याम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् । आ ।

दधामि । बाहुच्युता । पृथिवी । ग्राम्ऽइव । उपरि ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।

इह । स्थ ॥ ३० ॥

प्राच्यां दहनदेशात् पूर्वस्यां दिशि पुरा पूर्वं संवृतः संव्यादितः
कम्बलेन आवेष्टितोऽहम् यद्वा पूः शरीरम् तेन संवृतः सशरीर एव
सन् हे प्रेत त्वा त्वां स्वधायाम् पितॄणां वृत्तिकरी देवता स्वधा
तस्याम् आ दधामि स्थापयामि । संस्कारकर्मणा प्रेतत्वप्रच्युतिपूर्वकं
पितृदेवतात्वं गमयामीत्यर्थः । बाहुच्युता दातृबाहुभिः प्रच्युता
ब्राह्मणेभ्यो दत्ता पृथिवी उपरि उपरिष्ठादेशस्थिता ग्राम् दिवं
नाकपृष्ठाख्यं स्थानं यथा पालयति । यद्वा उपरि आगामिनि काले
भूदानप्राप्यां दिवं यथा दत्ता पृथिवी पालयति तथा त्वां सैव
पृथिवी पालयत्वित्यर्थः ॥

इति तृतीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

दहनस्थानसे पूर्वदिशाभी ओर कम्बल आदिसे ढका हुआ मैं
हे प्रेत ! तुझको पितरोंको वृत्त करने वाली स्वधामें स्थापित

करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्वको प्राप्त कराता हूँ। जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथ्वी भविष्यमें दाता प्रतिगृहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथ्वी तेरी रक्षा करे। हे देवताओं ! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओंका हम पूजन करते हैं ॥ ३० ॥ (१५)

तृतीय अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ॥

“दक्षिणायां त्वा दिशि” इत्यादितः पञ्चानाम् आज्यहोमे अभिमन्त्रणे च विनियोग उक्तः ॥

“दक्षिणायां त्वा दिशि” आदि पाँच ऋचाओंका घृतहोममें और अभिमन्त्रणमें विनियोग है।

तत्र प्रथमा ॥

दक्षिणायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह
स्थ ॥ ३१ ॥

दक्षिणायाम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् ।

आ । दधामि । बाहुऽच्युता । पृथिवी । द्याम्ऽइव । उपरि ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।

इह । स्थ ॥ ३१ ॥

हे प्रेत त्वा त्वां दक्षिणायां दिशि दक्षिणदिग्भागे पुरा पूर्वमेव संवृतः आत्मरक्षार्थं कम्बलादिना प्रावृतः स्वधायाम् पितृदेवतायाम् आ दधामि स्थापयामि । स्वधाकारभाजं करोमीत्यर्थः ॥ अन्यद् व्याख्यातम् ॥

दहनस्थानसे दक्षिण दिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढका हुआ मैं हे प्रेत ! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्वको प्राप्त कराता हूँ । जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथ्वी भविष्यमें दाता प्रतिगृहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथ्वी तेरी रक्षा करे । हे देवताओं ! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओं का हम पूजन करते हैं ॥ ३१ ॥

द्वितीया ॥

प्रतीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि
बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह
स्थ ॥ ३२ ॥

प्रतीच्याम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्संवृतः । स्वधायाम् ।

आ । दधामि । बाहुच्युता । पृथिवी । द्याम् इव । उपरि ।

लोककृतः । पथिकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् हुतभागाः ।

इह । स्थ ॥ ३२ ॥

दहनदेशात् पश्चिमायां दिशि पुरा संवृत इत्यादि पूर्ववत् ॥

दहनस्थानसे पश्चिम दिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढका हुआ मैं हे प्रेत ! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्वको प्राप्त कराता हूँ । जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथ्वी भविष्यमें दाता प्रतिगृहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथ्वी

तेरी रक्षा करे । हे देवताओं ! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओंका हम पूजन करते हैं ॥ ३२ ॥

तृतीया ॥

उदीच्यां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि

बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ ॥ ३३ ॥

उदीच्याम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् ।

आ । दधामि । बाहुऽच्युता । पृथिवी । द्याम्ऽइव । उपरि ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।

इह । स्थ ॥ ३३ ॥

उदीच्याम् उत्तरस्यां दिशि ॥ अन्यत् पूर्ववत् ॥

दहनस्थानसे उत्तर दिशाकी ओर कम्बज आदिसे ढका हुआ मैं हे प्रेत ! तुम्हको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्वको प्राप्त कराता हूँ । जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथ्वी भविष्यमें दाता प्रतिगृहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथिवी तेरी रक्षा करे । हे देवताओं ! जिनके लिये भाग होमा जाचुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओंका हम पूजन करते हैं ॥ ३३ ॥

चतुर्थी ॥

ध्रुवायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि

बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह
 स्थ ॥ ३४ ॥

ध्रुवायाम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् । आ ।
 दधामि । बाहुऽच्युता । पृथिवी । द्याम्ऽइव । उपरि ।
 लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।
 इह । स्थ ॥ ३४ ॥

ध्रुवा स्थिरा अधरा दिक् । तस्यां दिशि ॥ गतम् अन्यत् ॥
 दहनस्थानसे ध्रुवा दिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढका हुआ
 मैं हे प्रेत ! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें स्थापित
 करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर पितृदेवत्वको
 प्राप्त करता हूँ । जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथिवी भविष्य
 में दाता प्रतिगृहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार पृथिवी
 तेरी रक्षा करे । हे देवताओं ! जिनके लिये भाग होमा जा चुका
 है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओंका हम
 पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥

पञ्चमी ॥

ऊर्ध्वायां त्वा दिशि पुरा संवृतः स्वधायामा दधामि
 बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि ।
 लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह
 स्थ ॥ ३५ ॥

ऊर्ध्वायाम् । त्वा । दिशि । पुरा । सम्ऽवृतः । स्वधायाम् । आ ।
 दधामि । बाहुऽच्युता । पृथिवी । ग्राम्ऽइव । उपरि ।
 लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।
 इह । स्थ ॥ ३५ ॥

ऊर्ध्वायाम् उपरितन्यां दिशि हे प्रेत त्वा त्वां स्वधायाम् स्वधा-
 कारे आ दधामि स्थापयामि पुरा पूर्वमेव संवृतः प्रावृत्तोऽहम् ॥
 बाहुच्युता पुण्यकृतां बाहुभिर्दत्ता पृथिवी च त्वां पातु । उपर्य-
 वस्थितां ग्रामिव दानफलभूतं स्वर्गं यथा सा पालयति तद्वत् ॥
 लोककृतः स्वर्गादिलोकस्य कर्तुन् यजामहे हविर्भिः पूजयामः ।
 देवानाम् हविर्भुजां मध्ये हे देवाः ये यूयम् इह अस्मिन् लोके
 हुतभागाः स्थ भवथ ॥

दहनस्थानसे ऊर्ध्वा दिशाकी ओर कम्बल आदिसे ढका
 हुआ मैं हे प्रेत ! तुझको पितरोंको तृप्त करने वाली स्वधामें
 स्थापित करता हूँ अर्थात् संस्कारकर्मसे प्रेतत्वको दूर कर, पितृ-
 देवत्वको प्राप्त करता हूँ । जैसे संकल्पपूर्वक हाथसे दी हुई पृथिवी
 भविष्यमें दाता प्रतिगृहीताके स्वर्गका पालन करती है इसी प्रकार
 पृथिवी तेरी रक्षा करे । हे देवताओं ! जिनके लिये भाग होमा
 जा चुका है ऐसे जो तुम यहाँ हो उन मार्गकर्ता लोककर्ता देवताओं
 का हम पूजन करते हैं ॥ ३५ ॥

षष्ठसप्तमौ द्वौ यजुर्मन्त्रौ ॥

धर्तासि धरुणोसि वंसगोसि ॥ ३६ ॥

धर्ता । असि । धरुणः । असि । वंसगः । असि ॥ ३६ ॥

उदपूरसि मधुपूरसि वातपूरसि ॥ ३७ ॥

उदऽपूः । असि । मधुऽपूः । असि । वातऽपूः । असि ॥ ३७ ॥

हे अग्ने त्वं धर्तासि सर्वेषां धारयितासि । धरुणः । धार्यत
इति धरुणः । ❀ धारेणिलुक् च [उ० ३. ५८] इति उनन्
प्रत्ययः ❀ । गार्हपत्यादिरूपेण सर्वैर्धार्यमाणोसि । वंसगः वन-
नीयगतिर्दृषभः असि भवसि । तथा “चत्वारि शृङ्गा” इत्यस्याम्
ऋचि [ऋ० ४. ५८. ३] दृषभरूपकल्पनामेः समाम्नाता । अत
एव “तिग्मशृङ्गो न वंसगः” इति अन्यत्रापि [ऋ० ६. १६. ३६]
आम्नातम् ॥ तथा हे अग्ने त्वम् उदपूः उदकस्य पूरयितासि । तथा
मधुपूः मधुनो मात्तिकस्य पूरयिता असि भवसि । तथा वातपूः
वातस्य प्राणात्मकस्य वायोः पूरयिता असि भवसि । एवंगुण-
विशिष्टस्त्वम् इमं यजमानं पालयेत्यर्थः ॥

हे अग्निदेव ! आप धरुण हैं अर्थात् गार्हपत्य आदिरूपमें
आपको सब धारण करते हैं और आप सबको धारण करने
वाले हैं । तथा वननीयगति हैं । और सुवर्णके पूरक हैं और
प्राणात्मक वायुके भी पूरक हैं तात्पर्य यह है, कि—ऐसे आप इस
यजमानका पालन करिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

सोमयागे हविर्धानाख्यशकटे प्रवर्त्यमाने “इतश्च मा” इति
द्वाभ्याम् अभिमन्त्रयेत् । तथा च वैतानं सूत्रम् । “हविर्धाने प्रवर्त्य-
माने इतश्च मेति द्वाभ्याम् अनुमन्त्रयते” इति [वै० ३. ५] ॥

सोमयागके हविर्धान नामक शकटके प्रवृत्त होने पर “इतश्च
मा” इन दो ऋचाओंसे अभिमन्त्रण करे । इसी बातको वैतान-
सूत्रमें कहा है, कि—“हविर्धाने प्रवर्त्यमाने इतश्चमेति द्वाभ्याम्
अनुमन्त्रयते” (वैतानसूत्र ३ । ५) ॥

अष्टमी ॥

इतश्च मामुतश्चावतां यमे इव यतमाने यदैतम् ।

प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तो आ सीदतां स्वम् लोकं
विदाने ॥ ३८ ॥

इतः । च । मा । अमुतः । च । अवताम् । यमे इवेति यमेऽइव ।
यतमाने इति । यत् । ऐतम् ।

प्र । वाम् । भरन् । मानुषाः । देवयन्तः । आ । सीदताम् ।
स्वम् । ऊं इति । लोकम् । विदाने इति ॥ ३८ ॥

इतश्च इतः अस्माद् भूलोकाद् अमुतश्च अमुष्मात् स्वर्गलोकात्
लोकद्वयावस्थिताद् भयहेतोः मा मां यजमानम् अवताम् हविर्धाने
रक्षताम् । इति परोक्षकृतो निर्देशः ॥ अथ प्रत्यक्षकृतः । हे हवि-
र्धाने यमे इव यमले युगपद् उत्पन्ने अपत्ये इव यतमाने समान-
व्याप्रियमाणे जगतः पोषणाय प्रयत्नं कुर्वाणौ यत् यस्मात् कार-
णाद् युवाम् ऐतम् गच्छथः ॥ वाम् युवाभ्यां देवयन्तः देवान्
आत्मन इच्छन्तो मानुषाः मनुष्या ऋत्विग्यजमानाः प्र भरन्
इर्वीषि समभरन् । तदानीं युवां स्वम् स्वकीयं लोकम् स्थानं विदाने
जानती आ सीदतम् उपविशतम् । उ इति पदधूरणः ॥

जिनमें हविको स्थापित किया जाता है वे हविर्धाना व्यावापृथिवी
इस भूलोक और उस स्वर्गलोकमें होने वाले भयसे मेरी रक्षा
करें । हे हविर्धाने ! तुम यमल उत्पन्न हुए सन्तानोंकी समान
एकसा प्रयत्न करके जगत्का पोषण करते हुए चले आरहे हो,
अपने पर देवताओंका अनुग्रह चाहने वाले पुरुष जब तुम्हारे
स्त्रिये हवि अर्पण करें, उस समय तुम अपने स्थानको जान कर
उस पर बैठो ॥ ३८ ॥

नवमी ॥

स्वासस्थे भवतमिन्दवे नो युजे वां ब्रह्म पूर्य नमाभिः

वि श्लोकं एति पथ्येव सूरिः शृण्वन्तु विश्वे अमृतास
एतत् ॥ ३६ ॥

स्वासस्थे इति सुऽआसस्थे । भवतम् । इन्दवे । नः । युजे । वाम् ।
ब्रह्म । पूर्व्यम् । नमःऽभिः ।

वि । श्लोकः । एति । पथ्याऽइव । सूरिः । शृण्वन्तु । विश्वे ।
अमृतासः । एतत् ॥ ३६ ॥

हे हविर्धाने नः अस्माकम् इन्दवे सोमाय स्वासस्थे सुस्वास-
नस्थे सुस्थिरे भवतम् । अहं च वाम् युवयोः पूर्व्यम् पूर्वकाले भवं
चिरंतनं ब्रह्म परिवृढं स्तोत्रं नमोभिः नमस्कारैः सहितं युजे युन-
जिम । यद्वा नमोभिः नमस्कारप्रतिपादकैर्मन्त्रैरित्यर्थः । श्लोकः
श्लोकनीयस्तुतिसंघः व्येति विशेषेण युवां गच्छति । तत्र दृष्टान्तः ।
पथ्या सूरिरिव । पथोनपेतं पथचम् । ❀ “सुपां सुलुक्” इति
तृतीयायाः पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । पथोनपेतेन धर्मेण सूरिः विद्वान्
अभिमतं फलं प्राप्नोति तद्वद् इत्यर्थः ॥ एतत् अस्माभिः कृतं स्तो-
त्रम् अमृतासः अमृता मरणरहिता विश्वे सर्वे देवाः शृण्वन्तु आ-
कर्णयन्तु । ❀ श्रुश्रवणे “श्रुवः श्रु च” इति श्रुप्रत्ययः श्रुभावश्च ❀ ॥

“त्रीणि पदानि” इत्यनया दह्यमानं प्रेतशरीरं बान्धवा उप-
तिष्ठेरन् ॥

हे हविर्धाने ! तुम हमारे सोमके लिये सुस्थिर हो जाओ ।
जैसे धर्ममार्ग पर चलने वाला विद्वान् अभिमत फलको पाता है
इसी प्रकार मैं भी तुम दोनोंके प्राचीन स्तोत्रोंका नमस्कारके
साथ प्रयोग करता हूँ, स्तुतियें आपको विशेषरूपसे प्राप्त होती हैं।
इस हमारे स्तोत्रको अमरणधर्मी सब देवता सुनें ॥ ३६ ॥

दशमी ॥

त्रीणि पदानि रूपो अन्वरोहचतुष्पदीमन्वैतद्ब्रतेन ।
 अक्षरेण प्रति मिमीते अर्कमृतस्य नाभावमि सं पुनाति
 त्रीणि । पदानि । रूपः । अनु । अरोहत् । चतुःस्पदीम् । अनु ।

एतत् । ब्रतेन ।

अक्षरेण । प्रति । मिमीते । अर्कम् । मृतस्य । नाभावः । अभि ।
 सम् । पुनाति ॥ १० ॥

रूप्यति मुञ्चतीति रूपो मृतः पुरुषः । ॐ युप रूप लुप विमो-
 हने । इगुपधलक्षणः कप्रत्ययः ॐ । त्रीणि त्रिसंख्ययाकानि पदानि
 द्युस्थानानि अन्वरोहत् क्रमेण आरूढवान् । प्राप्तवान् इत्यर्थः ।
 केन साधनेन इत्याह । एतत् एतेन अनुष्ठीयमानेन ब्रतेन कर्मणा
 पैतृमेधिकसंस्कारेण चतुष्पदीम् चत्वारः पादा यस्याः सा तथोक्ता
 ताम् अनुस्तरण्याख्यां गाम् अनुलक्ष्य । अन्वरोहद् इति संबन्धः ।
 संस्कारमाहात्म्येन मृतो लोकत्रयं व्याप्नोद् इत्यर्थः । अक्षरेण ।
 अक्षते व्याप्नोति स्वफलभूत स्थानम् इत्यक्षरं स्वार्जितं सुकृतम् ।
 यद्वा क्षरो विनाशः । तद्रहितम् । तेन स्वार्जितेन सुकृतेन । यद्वा
 परिच्छेदकशरीरे त्यक्ते अक्षरेण व्यापकेन विनाशरहितेन आत्म-
 स्वरूपेण अर्कम् अर्चनीयं सुकृतफलं स्वर्गादिकं सूर्यमेव वा प्रति
 मिमीते प्रतिमुखं मिमीते परिच्छिनत्ति । व्याप्नोतीत्यर्थः । यद्वा
 प्रतिमानं प्रतिबिम्बम् । सूर्यस्य प्रतिबिम्बं भवति । सूर्यसदृशो भव-
 तीत्यर्थः । मृतस्य योनौ । मृतम् इति सत्यस्य उदकस्य यज्ञस्य
 वा नामधेयम् । तस्य योनिः उत्पत्तिस्थानं सूर्यमण्डलम् तत्र अभि
 अभितः सर्वतः आभिमुख्येन वा सं पुनाति सम्यक् पतो वर्तते ॥

इति तृतीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

मोहमें पड़ा हुआ मृतपुरुष इस अनुष्ठित पैतृमेधिक संस्कारसे अनुस्तरणी गौको लक्ष्यमें रखता हुआ तीनों बुलकोंको प्राप्त होरहा है अर्थात् संस्कारके माहात्म्यसे मरा हुआ यह त्रिलोकीमें व्याप्त होरहा है। यह परिच्छेदक शरीरके त्यक्त होने पर विनाश-रहित आत्मस्वरूपसे पूजनीय स्वर्गादि फलको पारहा है वा सूर्य में ही व्याप्त होरहा है। वा जलके उत्पत्तिस्थान सूर्यमण्डलमें पूर्णरूपसे पवित्र होकर रहता है ॥ ४० ॥ (१३)

तृतीय अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त

“देवेभ्यः कम्” इत्यादिकं पञ्चमं सूक्तम् । तत्र “त्वमग्र ईलितः” इत्यनया पिण्डपितृयज्ञे समिधम् आदध्यात् । “त्वमग्र ईलितः” [१८. ३. ४२] आ त्वाग्रे [१८. ४. ८८] इत्यादधाति” इति हि [कौ० ११. १०] सूत्रम् ॥

“अग्निष्वात्ताः पितरः” [४४] इत्यनया पिण्डपितृयज्ञे बर्हिः स्तृणीयात् ॥

“उपहूता नः पितरः” [४५] इति उत्तराभ्यां द्वाभ्यां च पिण्डपितृयज्ञे बर्हिः स्तृणीयात् ॥

“ये तावृषुः” [४७] इत्यृचा “ये सत्यासः” [४८] इत्युत्तरया च पिण्डपितृयज्ञे समिधावादध्यात् ॥

“उप सर्प” [४९] इति तिसृभिर्ऋग्भिः श्मशानदेशं शलाकाभिः इष्टकाभिर्वा प्रसव्यं चिनुयात् ॥

“देवेभ्यः कम्” यह पञ्चम सूक्त है। इसमें “त्वमग्र ईलितः” इस ऋचासे पिण्डपितृयज्ञमें समिधाको रखे इस विषयमें कौशिक-सूत्र ११।१० का प्रमाण भी है, कि—“त्वमग्र ईलितः (१८।३।४२) आ त्वाग्रे (१८।४।८८) इत्यादधाति” (कौशिक-सूत्र ११।१०) ॥

६४६ अथवेदसहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

“अग्निष्वात्ताः पितरः” इम चौबालीसवीं ऋचासे पिण्ड-
पितृयज्ञमें कुशाओंको फैलावे ।

“उपहूता नः पितरः” इन अगली पैंतालीसवीं और छिया-
लीसवीं दो ऋचाओंसे पिण्डपितृयज्ञमें कुशाओंको बिछावे ॥

“ये तातृषुः” आदि सैंतालीसवीं और अड़तालीसवीं ऋचाओं
से पिण्डपितृयज्ञमें समिधाओंको रखे ।

“उपसर्प” इन ४६ वीं आदि तीन ऋचाओंसे श्मशानस्थान
को शलाकाओंसे वा ईंटोंसे प्रसव्य चुने ।

तत्र प्रथमा ॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै किममृतं नावृणीत ।

बृहस्पतिर्यज्ञमतनुत ऋषिः प्रियां यमस्तन्व १ मा रिरिरेच

देवेभ्यः । कम् । अवृणीत । मृत्युम् । प्रजायै । किम् । अमृतम् ।

न । अवृणीत ।

बृहस्पतिः । यज्ञम् । अतनुत । ऋषिः । प्रियाम् । यमः । तन्वम् ।

आ । रिरिरेच ॥ ४१ ॥

देवेभ्यः दीव्यन्तीति देवाः इन्द्रादयः । तेभ्यः । ❀ तादर्थ्ये
चतुर्थी ❀ । तदर्थं कम् कीदृशं मृत्युम् अवृणीत सृष्ट्यादौ विधाता
वृत्तवान् । । देवानाम् अर्थे स्रष्टा कमपि मरणहेतुं न कृत-
वान् इत्यर्थः काक्वा द्योत्यते । अतो देवानां मृत्युसंबन्धविरहात्
तेषाम् अमृतत्वम् उत्पत्तिसिद्धम् इत्यर्थः । प्रजायते उत्पद्यत इति
प्रजा मनुष्यादिरूपा । तस्यै वेधाः किम् किंकारणम् अमृतम् अ-
मरणं न अवृणीत न वृत्तवान् । मनुष्यादीनां देववद् अमृतत्वं न
कृतवान् । तत्र कारणं किमपि नास्तीत्यर्थः । प्रजापतिना केचन
इन्द्राद्याः अमृताः सृष्टाः मनुष्याद्याः प्राणिनो मरणधर्मोपेताः

कल्पिताः । अतो देवानाम् अमरणं मनुष्याणां मरणं च अनादि-
सिद्धम् । अतस्तत्र कारणगवेषणं न कार्यम् इत्यर्थः ॥ बृहस्पतिः
बृहतां महतां देवानां पतिः स्वामी ऋषिः अतीन्द्रियार्थद्रष्टा यज्ञम्
सोमयागम् अतनुत अकरोत् । भूलोके ऋषिरूपेणावस्थितो बृह-
स्पतिः स्वस्य ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्तये तत्प्राप्त्युपायभूतं यज्ञं कृत-
वान् इत्यर्थः । श्रूयते हि । “बृहस्पतिरकामयत देवानां पुरोधाम् गच्छे-
यम् इति । स एतं बृहस्पतिसचम् अपश्यत् । तम् आहरत् । तेना-
यजत” इति [तै० ब्रा० २. ७. १. २] । बृहस्पतेः प्रियां तन्वम्
प्रेमास्पदं मानुषं शरीरं यमो वैवस्वतः आरिरेच आसमन्ताद्
रिक्तं निःसारं मृतं कृतवान् । ऋषिरूपेणावस्थितस्य बृहस्पतेरपि
यमः प्राणान् अपाहार्षीत् किल किमु वक्तव्यम् अन्येषां मनुष्या-
दीनां यमः प्राणान् अपहरतीति । यद्वा नावृणीत इति पूर्वत्रापि
संबध्यते । देवानां कं मृत्युं नावृणीत । सर्वमपि मृत्युं कृतवान् ।
अतस्तेषाम् अमृतत्वसिद्धये तैः प्रार्थितो बृहस्पतिः ऋषिर्भूत्वा यज्ञम्
अतनुत । तस्माद् यज्ञात् ते देवा अमृताः संपन्नाः । तथा प्रजायै
मनुष्यादिरूपायै किमपि अमृतं नावृणीत अतः सा मर्त्या भूता ।
तस्माद् यमो मनुष्यादिशरीरम् आरेचितवान् इति ॥

विधाताने सृष्टिकी आदिमें इन्द्र आदि देवताओंके लिये कैसी
मृत्युका वरण किया तात्पर्य यह है, कि-सृष्टाने देवताओंके
निमित्त किसी मरणहेतुको नहीं बनाया, अत एव देवताओंके
मृत्युसम्बन्धसे रहित होनेके कारण उनका अमृतत्व उत्पत्ति-सिद्ध
है । और मनुष्य आदि रूपमें उत्पन्न होने वाली प्रजाके लिये
वेधाने किसी अमरणके कारणका वरण नहीं किया अर्थात् मनुष्य
आदिके लिये देवताओंकी समान अमरत्व नहीं दिया । परन्तु
इसमें कोई कारण नहीं है । अर्थात् प्रजापतिने कुछ इन्द्र आदिको
अमृत बनाया और मनुष्य आदि प्राणियोंको मरणधर्मी बना कर

६४८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

मकट किया है अत एव देवताओंका अमरण और मनुष्योंका मरण अनादिसिद्ध है और उसके कारणकी खोज नहीं करनी चाहिये ॥ भूलोकमें ऋषिरूपसे स्थित बृहस्पतिजीने ऐहिक आयुष्मिक फलको पानेके लिये यज्ञ किया [तैत्तिरीयब्राह्मण २ । ७ । १ । २ की श्रुतिमें भी कहा है, कि—“बृहस्पतिरकामयन्त देवानां पुरोधां गच्छेयम् इति । स एतं बृहस्पतिसत्वं अपश्यत् । तम् आहरत् । तेनायजत ।—अर्थात् बृहस्पतिजीने देवताओंका पुरोहित बननेकी इच्छा की, इसके लिये उन्होंने बृहस्पतिसत्त्वको उपयुक्त समझा, उसकी सामग्री एकत्रित की और उसको किया] तदनन्तर विवस्वानके पुत्र यमदेवने बृहस्पतिजीके प्रेमास्पद मनुष्य शरीरको चारों ओरसे खेंच कर निःसार कर डाला—मार डाला [तात्पर्य यह है, कि—जब ऋषिरूपमें स्थित बृहस्पतिके प्राणोंका भी यमने अपहरण कर लिया तब दूसरे मनुष्योंके प्राणोंको यम लेजावेंगे—इसमें कहना ही क्या ?

अथवा—क्या प्रजापतिने देवताओंके लिये मृत्युको नहीं रचा था ? नहीं, रचा था अर्थात् उन्होंने सबके लिये मृत्युकी रचना की थी, तब उनको अमर बनानेके लिये बृहस्पतिजीने ऋषि बन कर यज्ञ किया, उस यज्ञसे देवता अमर होगए । और मनुष्यादि प्रजाके लिये प्रजापतिने अमृतकी रचना नहीं की अत एव वह मर्त्य होगए, इस कारण यम मनुष्य आदिके शरीरोंको प्राण खेंच कर रिक्त कर दिया करते ॥ ४१ ॥

द्वितीया ॥

त्वमग्न ईडितो जातवेदोवा इद्व्यानि सुरभीणि कृत्वा ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते नक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता
हवींषि ॥ ४२ ॥

त्वम् । अग्ने । ईदितः । जातवेदः । अवाट् । हव्यानि । सुरभीणि ।
कृत्वा ।

प्र । अदाः । पितृभ्यः । स्वधया । ते । अक्षन् । अद्भि । त्वम् ।
देव । प्रयता । हवींषि ॥ ४२ ॥

हे जातवेदः जातानां जनिमतां प्राणिनां वेदितः हे अग्ने ईदितः
अस्माभिः स्तुतस्त्वं हव्यानि अस्मदीयानि चरुपुरोडाशादीनि सु-
रभीणि सुगन्धीनि रसवन्ति कृत्वा अवाट् देवेभ्यो वह । ❀ “छन्दसि
लुङ्लल्लिटः” इति लोटर्थे लुङ् । वह प्रापणे इत्यस्मात् लुङि सिपि
“बहुलं छन्दसि” इति इडभावे “भ्रूलो भ्रुलि” इति सिजलोपः ।
“हल्ङ्याभ्यः०” इति सलोपे रूपम् ❀ ॥ तथा पितृभ्यः पितृ-
देवताभ्यः स्वधया स्वधाकारेण सह कव्यसंज्ञकानि हवींषि प्रादाः
प्रक्षवान् असि । ते च पितरस्त्वया दत्तानि कव्यानि हवींषि अक्षन्
अभुञ्जत । ❀ अद भक्षणम् । “लुङ्सनोर्घस्तृ” इति घस्तादेशः ।
“मन्त्रे घसहर०” इत्यादिना च्लेर्लुक् । “गमहनजनखनघसां
लोपः०” इति उपधालोपः । चत्त्वषत्वे ❀ ॥ हे देव द्योतमान अग्ने
त्वमपि प्रयता प्रयतानि प्रकर्षेण अस्माभिर्दत्तानि हवींषि अद्भि
भुङ्क्ष्व । ❀ अद भक्षणम् । “हुभ्रल्भ्यो हेर्धिः” इति हेर्धिरादेशः ❀ ॥

हे उत्पत्ति वाले प्राणियोंको जानने वाले जातवेदा अग्ने !
हमारे स्तुति करने पर आप हमारी चरु पुरोडाश आदि हवियों
को सुगन्धित करके देवताओंको पहुँचाइये । और आपने पितृदेवताओं
के लिये स्वधाके साथ कव्यनामक हवियोंको दे दिया है और
उन पितरोंने तुम्हारी दी हुई हवियोंका भक्षण कर लिया है ।
अब हे अग्निदेव ! आप भी हमारी बहुतसी दी हुई हवियोंका
भोग लगाइये ॥ ४२ ॥

तृतीया ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात
आसीनासः । अरुणीनाम् । उपस्थे । रयिम् । धत्त । दाशुषे ।

मर्त्याय ।

पुत्रेभ्यः । पितरः । तस्य । वस्वः । प्र । यच्छत । ते । इह । ऊर्जम् ।
दधात ॥ ४३ ॥

हे पितरः अरुणीनाम् अरुणवर्णानां मातणाम् उपस्थे उत्सङ्गे
आसीनासः आसीना उपविशन्तो दाशुषे हविर्दत्तवते मर्त्याय
मरणधर्मणे यजमानाय रयिम् धनं धत्त दत्त प्रयच्छत ॥ पुत्रेभ्यः ।
पुंनाम्नो नरकात् त्रायन्त इति पुत्राः । तेभ्यः अस्मभ्यं तस्य वस्वः ।
❀ कर्मणि षष्ठी ❀ । तत् प्रसिद्धं वसु धनं प्रयच्छत दत्त ।
❀ दाण् दाने । “पाधाध्मास्थाम्नादाण्” इत्यादिना यच्छा-
देशः ❀ ॥ हे पितरः ते यूयम् इह अस्मिन् भूलोके ऊर्जम् बल-
करम् अन्नम् अस्मभ्यं दधात धत्त ॥

हे अरुण वर्ण वाली माता उषाओंकी गोदमें बैठने वाले
पितरों ! तुम हवि देने वाले मरणधर्मी यजमानके लिये धन दो,
तुम हम पुंनामक नरकसे बचाने वाले पुत्रोंके लिये धन दो, हे पितरों!
आप हमारे लिये इस भूलोकमें बलप्रद अन्नको दीजिये । ४३॥

चतुर्थी ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सु-
प्रणीतयः ।

अ॒त्तो ह॒वींषि॑ प्र॒य॒तानि॑ ब॒र्हिषि॑ र॒यिं च॒ नः॒ सर्व॑वीरं
दधा॒त ॥ ४४ ॥

अ॒ग्निऽस्वा॒त्ताः । पि॒तरः॑ । आ । इ॒ह । ग॒च्छ॒त । स॒दः॑ऽस॒दः । स॒द॒त ।
सु॒ऽप॒नी॒तयः॑ ।

अ॒त्तो इति॑ । ह॒वींषि॑ । प्र॒य॒तानि॑ ब॒र्हिषि॑ । र॒यिम् । च॒ । नः॒ । सर्व॑ऽ-
वीर॑म् । दधा॒त ॥ ४४ ॥

हे अग्निष्वात्ताः पितरः । पितरो द्विविधाः । बर्हिषदः अग्नि-
ष्वात्ताश्चेति । तेषां भेदस्तैत्तिरीयके स्पष्टम् आम्नातः । “पितॄन्
बर्हिषदो यजति । ये वै यज्वानस्ते पितरो बर्हिषदः तानेव तद्
यजति ॥ पितॄन् अग्निष्वात्तान् यजति । ये वा अयज्वानो गृह-
मेधिनस्ते पितरोऽग्निष्वात्ताः” इति [तै० ब्रा० १. ६. ६. ६] ।
कृतसोमयागाः पितरो बर्हिषत्संज्ञकाः अकृतसोमयागास्तु अग्नि-
ष्वात्तसंज्ञका इत्यर्थः । हे एतत्संज्ञकाः पितरः इह अस्मिन् यज्ञे
आ गच्छत ॥ हे सुपणीतयः । प्रणीतिः प्रकृष्टं फलप्रापणम् ।
शोभना प्रणीतिर्येषां ते तथोक्ताः । आगतास्ते यूयं सदःसदः ।
सीदन्ति अस्मिन्निति सदः उपवेशनस्थानम् पितृपितामहप्रपिता-
महादीनां यद्यत् स्थानं परिकल्पितं तत् स्थानं सदत प्राप्नुत । स्वे
स्वे स्थाने उपविशतेत्यर्थः ॥ बर्हिषि यज्ञे प्रयतानि प्रत्तानि यद्वा
शुद्धानि हवींषि चरुपुरोडाशादीनि अत्त भक्षयन् ॥ हविरदनेन
संतुष्टा यूयं नः अस्मभ्यं सर्ववीरम् सर्ववीरैरूपेतं रयिम् धनं दधा-
तन धत्त । प्रयच्छतेत्यर्थः । ॐ दधाञ् दानधारणयोः । लोटि
“तप्तनप्तनथनाश्च” इति तस्य तनवादेशः ॥

हे शोभन फलको पाने वाले अग्निष्वात्ता + पितरों ! तुम यहाँ आओ और इस यज्ञमें पिता पितामह आदिके लिये जो स्थान कल्पना किया गया है उन २ स्थानों पर बैठो और यज्ञकी चरु पुरोडाश आदि शुद्ध हवियोंका भक्षण करो और हविका प्राशन करके सन्तुष्ट हुए तुम हमको सब वीरोंसे युक्त धनको दो ॥४४॥

पञ्चमी ॥

उप॑हू॒ता नः॑ पि॒तरः॑ सो॒म्यासो॑ ब॒र्हिष्ये॑षु नि॒धिषु॑ प्रि॒येषु॑
त आ ग॑मन्तु त इ॒ह श्रु॑वन्त्वधि॒ ब्रु॑वन्तु ते॒ वन्त्व॒स्मान्
उप॑हू॒ताः । नः॑ । पि॒तरः॑ । सो॒म्यासः॑ । ब॒र्हिष्ये॑षु । नि॒धिषु॑ ।
प्रि॒येषु॑ ।

ते । आ । ग॒मन्तु॑ । ते । इ॒ह । श्रु॑वन्तु । अधि॑ । ब्रु॑वन्तु । ते ।
अ॒वन्तु॑ । अ॒स्मान् ॥ ४५ ॥

+ पितर दो प्रकारके होते हैं, एक अग्निष्वात्ता और दूसरे बर्हिषद् । इनका भेद तैत्तिरीयकमें स्पष्ट लिखा है, कि—“पितॄन् बर्हिषदो यजति । ये वै यज्वानस्ते पितरो बर्हिषदः तानेव तद् यजति । ये वा अयज्वानो गृहमेधिनस्ते पितरोऽग्निष्वात्ताः ।— अर्थात् बर्हिषद् पितरोंका यजन करता है, इसका तात्पर्य यह है, कि—जो यजन करने वाले पितर होते हैं वे ही बर्हिषद् कहलाते हैं उन ही का वह यजन करता है । और अग्निष्वात्ता पितरोंके लिये यज्ञ करता है, इसका तात्पर्य यह है, कि—जो यज्ञ न करने वाले गृहस्थी पितर होजाते हैं वे अग्निष्वात्ता पितर कहलाते हैं” (तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ६ । ६ । ६) ॥

नः अस्माकं पितरः उपहूताः समीपम् आहूताः ॥ सोम्यासः
सोम्याः सोमार्हा एवंगुणविशिष्टाः पितृपितामहप्रपितामहाः बर्हि-
ष्येषु बर्हिषि यज्ञे भवा बर्हिष्याः तेषु प्रियेषु प्रीतिविषयेषु निधिषु
निधीयमानेषु हविःषु सत्सु प्रागुदीरितास्ते पितरः आ गमन्तु आ-
गच्छन्तु ॥ इह अस्मिन् यज्ञे ते पितरः श्रुवन्तु अस्मदीयं स्तोत्रं
श्रुण्वन्तु । ❀ श्रु श्रवणे । “बहुलं छन्दसि” इति विकरणस्य
लुक् ❀ । अधि ब्रुवन्तु अधिवचनं पक्षपातेन वचनम् । अधिवच-
नेन अस्मान् स्वीकुर्वन्तु । न केवलम् अधिवचनमात्रम् अपि तु ते
पितरः अस्मान् श्रुवन्तु ऐहिकामुष्मिकफलप्रदानेन रक्षन्तु ॥

जिन पितरोंको हम अपने समीप बुला रहे हैं, वे हमारे आहूत
पिता पितामह आदि पितर सोमके पात्र हैं वे यज्ञकी दी हुई
हवियों पर आवें, वे पितर इस यज्ञमें हमारे स्तोत्रको सुनें । और
वे हमारे विषयमें पक्षपात भरा वचन कह कर हमको स्वीकार करें
और ऐहिक तथा पारलौकिक फल देकर हमारी रक्षा करें ४५

षष्ठी ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा अनूजहिरे सोमपीथं
वसिष्ठाः ।

तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु
ये । नः । पितुः । पितरः । ये । पितामहाः । अनुजहिरे । सोमपीथम् ।

वसिष्ठाः ।

तेभिः । यमः । समरराणः । हवींषि । उशन् । उशत्भिः ।
प्रतिष्कामम् । अत्तु ॥ ४६ ॥

नः अस्माकं पितुर्जनकस्य ये पितरः सन्ति ये च पितामहा-

स्तउजनका वसिष्ठाः वसुमत्तमाः एवंगुणविशिष्टा ये पितृपितामह-
प्रपितामहाः सोमपीथम् सोमपानम् अनुजहिरे अनुक्रमेण हरन्ति
आत्मसात् कुर्वन्ति स्म तेभिस्तैः पितृभिः संरराणः सह रममाणो
यमः उशन् कामयमानः उशद्भिः कामयमानैस्तैः पितृभिः सह
हवींषि अस्मदीयानि चरुपुरोडाशादीनि हवींषि प्रतिकामम् । कामः
अभिलाषः । अभिलाषं प्रति । अभिलाषानुसारेणेत्यर्थः । अत्तु
भक्षयतु ॥

जो हमारे पिताके उत्पादक पितर हैं और जो पितामह श्रेष्ठ
ज्ञान वाले हैं तथा जिन्होंने सोमका पान किया था, उन पितरोंके
साथ रमण करते हुए यमदेव कामना करें और कामना करते
हुए पितरोंके साथ हमारी चरु पुरोडाश आदि हवियोंको इच्छाके
अनुसार प्राशन करें ॥ ४६ ॥

सप्तमी ॥

ये ता॒तृषु॑ दे॒व॒त्रा जेह॑माना हो॒त्रावि॑द॒ स्तोम॑त॒ष्टासो॑ अ॒र्कैः
आग्ने॑ याहि सह॒स्रं दे॒व॒वन्दैः॑ स॒त्यैः क॒विभिर्ऋ॑षिभि॒धर्म॑-
सद्भिः॑ ॥ ४७ ॥

ये । ता॒तृषुः । दे॒व॒त्रा । जेह॑मानाः । हो॒त्रावि॑दः । स्तोम॑त॒ष्टासः ।
अ॒र्कैः ।

आ । अग्ने॑ । याहि॑ । सह॒स्रम् । दे॒व॒वन्दैः॑ । स॒त्यैः । क॒विभिः॑ ।
ऋ॑षिभिः । धर्म॑सत्भिः ॥ ४७ ॥

देवत्रा देवेषु जेहमानाः । ॐ जेह प्रयत्ने ॐ । प्रयत्नमानाः
व्याधियमाणा होत्राविदः होत्राः सप्त वषट्कर्तारः । तत्कृतान्
यागान् जानन्तः अर्कः अर्चनीयैः स्तोत्रैः स्तोमतष्टासः स्तोमस्य

स्तुतेः कर्तारः स्तोमकर्तारः । ॐ तच्च तनूकणे । तस्मात् कर्तारि
निष्ठा ॐ । एवंगुणविशिष्टा ये पितरः तातृषुः तृष्यन्ति पिपा-
सन्ति । तैर्देववन्दैः देवान् वन्दन्ते प्रणमन्तीति देववन्दाः तैः सत्यैः
सत्यफलैः कविभिः क्रान्तदर्शिभिर्ऋषिभिः अतीन्द्रियद्रष्टृभिः घर्म-
सद्भिः घर्मः प्रवर्ग्यः तदुपलक्षिते सोमयागे सीदन्तीति घर्मसदः ।
ॐ सहार्थयोगे तृतीया ॐ । एवंगुणविशिष्टैः पितृभिः सह हे
अग्ने त्वम् अस्माकं सहस्रम् अपरिमितं धनं यथा भवति तथा आ
याहि आगच्छ । आगत्य च अस्मदीयेन हविषा पितृणां तृषं
निवर्तयेति भावः ॥

देवताओंमें प्रयत्न करते रहने वाले, सात वषट्कर्ता होत्राओं
के किये हुए यागको जानने वाले, पूजनीय स्तोत्रोंसे स्तुतिके
करने वाले जो पितर पितासे हो रहे हैं, और तृषाके कारण देव-
ताओंकी वन्दना कर रहे हैं उन सत्यफलको देने वाले, क्रान्त-
दर्शी, अतीन्द्रिय पदार्थोंको देखने वाले सोमयागमें बैठने वाले
पितरोंके साथ हे अग्ने ! आप हमारे पास अपरिमित धन देने
के लिये आइये, तात्पर्य यह है, कि—आकर हमारी हविसे पितरों
की तृषा को दूर करिये ॥ ४७ ॥

अष्टमी ॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेण ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिर्वाङ् परैः पूर्वैर्ऋषिभिर्घर्मसद्भिः
ये । सत्यासः । हविःऽअदः । हविःऽपाः । इन्द्रेण । देवैः । स-
रथम् । तुरेण ।

आ । अग्ने । याहि । सुऽविदत्रेभिः । अवाङ् । परैः । पूर्वैः ।
ऋषिऽभिः । घर्मसत्ऽभिः ॥ ४८ ॥

ये पितरः सत्यासः सत्याः सत्प्रभवाः सत्यभाषणोपेता वा हविरदः हवींषि चरुपुरोडाशादीनि अदन्ति भक्षयन्तीति हविरदः । हविष्पाः हविः सोमरसं पिबन्तीति हविष्पाः । तुरेण त्वरमाणेन शत्रूणां हिंसकेन वा इन्द्रेण देवैः अन्यैश्च सरथम् समानो रथो यथा भवति तथा । वर्तन्त इति शेषः । इन्द्रेण देवैः सह एकं रथम् उपारूढा वर्तन्त इत्यर्थः । तैः सुविदत्रेभिः सुविदत्रैः शोभनधनैः शोभनप्रज्ञैर्वा परैः उत्कृष्टैः पूर्वैः पूर्वपुरुषैः पितृपितामहप्रपितामहैः ऋषिभिः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिः धर्मसद्भिः यज्ञे सीदद्भिः एवंगुणविशिष्टपितृभिः सह हे अग्ने त्वम् अर्वाङ् अस्मदभिमुखः सन् आ याहि आगच्छ ॥

जो पितर सत्य कहते हैं, चरु पुरोडाश आदि हविका भक्षण करते हैं, सोमरसरूप हविका पान करते हैं, हिंसक इन्द्र देवताके साथ तथा अन्य देवताओंके साथ जिनका रथ चलता है, उन शोभन बुद्धि वाले, अतीन्द्रियार्थदर्शी, यज्ञमें बैठने वाले, पिता पितामह आदि, यज्ञमें बैठने वाले पितरोंके साथ हे अग्ने ! आप हमारे अभिमुख आइये ॥ ४८ ॥

नवमी ॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे
पुरस्तात् ॥ ४९ ॥

उप । सर्प । मातरम् । भूमिम् । एताम् । उरुव्यचसम् । पृथिवीम् । सुशेवाम् ।

ऊर्णम्रदाः । पृथिवी । दक्षिणावते । एषा । त्वा । पातु । प्रपथे । पुरस्तात् ॥ ४९ ॥

हे प्रेत मातरम् जननीम् एतां भूमिम् उप सर्प उपगच्छ । की-
दृशीम् । उरुव्यचसम् । ❀ व्यचतिव्याप्तिकर्मा ❀ । विस्तीर्ण-
व्यापनां पृथिवीम् प्रथितां प्रख्यातां सुशेवाम् सुसुखाम् ॥ एषा
त्वया उपसृष्टा पृथिवी दक्षिणावते दक्षिणा अस्य सन्तीति दक्षि-
णावान् बह्वीभिर्यज्ञसंबन्धिनीभिर्दक्षिणाभिर्युक्ताय तुभ्यम् ऊर्ण-
अदाः ऊर्णाभिर्विरचितकम्बलबन्ध्रदीयसी मादवेन सुखकरी
सती पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि पूर्वमेव वा प्रपथे पथो मार्गस्य प्रा-
रम्भः प्रपथः ॥ ❀ “ऋक्पूरुषः०” इति अकारः समासान्तः ❀ ।
तत्र वर्तमानं त्वा त्वां पातु रक्षतु ॥

हे प्रेत ! तू इस विस्तीर्ण प्रसिद्ध माताकी समान सुख देने
वाली पृथिवी पर आ, ऐसा होने पर यह तुझ बहुतसी यज्ञ-
दक्षिणा देने वालेको उनके कम्बलकी समान मृदु सुख देवे और
पूर्वदिशाके प्रारंभिक मार्गमें वर्तमान तेरी रक्षा करे ॥ ४६ ॥

दशमी ॥

उच्छ्वश्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपा यनास्मै भव
सूपसर्पणा ।

माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णहि ॥ ५० ॥

उत् । श्वश्चस्व । पृथिवि । मा । नि । बाधथाः । सुऽउपायना ।
अस्मै । भव । सुऽउपसर्पणा ।

माता । पुत्रम् । यथा । सिचा । अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णहि

हे पृथिवि भूदेवते त्वम् उच्छ्वश्चस्व । ❀ श्वश्चतिर्गतिकर्मा ❀ ।
उच्छ्वनावयवा पुलकिता भव । एनम् उपसृष्टं पुरुषं मा नि बाधथाः
कार्कश्येन मा बाधस्व । अपि च अस्मै पुरुषाय सूपायना सुखेन
उपगन्तुम् अर्हा सूपसर्पणा शोभनोपसर्पणयुक्ता च भव । यथा

येन प्रकारेण माता जननी स्वकीयं पुत्रं सिचा चेलाञ्चलेन अभि-
च्छादयति तथा एनं त्वाम् उपगतं पुरुषम् हे भूमे त्वमपि अभ्यु-
र्णुहि अभितः प्रच्छादय । यथा अस्य शीतवातोष्णादिजनित-
दुःखं न भवति तथा एनं आयस्वेत्यर्थः । ❀ ऊर्णुं च्छादने ।
अदादित्वात् शपो लुक् ❀ ॥

इति तृतीयेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे भूदेवते ! तुम पुलकित होओ, अपनी कर्कशतासे इस समीप
में प्राप्त हुए पुरुषको बाधा मत दो, यह पुरुष सुखपूर्वक तुम्हारे
पास रहे, और तुम शोभन उपसर्पण करने वाली होओ, और
हे भूमे ! माता जिस प्रकार अपने वस्त्रसे पुत्रको आच्छादित
काती है, इस प्रकार तू भी इसको चारों ओरसे आच्छादित
कर । तात्पर्य यह है, कि-जिस प्रकार शीत वात उष्णता आदि
से होनेवाला दुःख प्राप्त न हो इस प्रकार इसकी रक्षाकर ५० (१७)

तृतीय अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ॥

“उच्छृञ्चमाना” [५१] इत्याद्याया ऋचो विनियोग उक्तः ॥

पात्रचयनकर्मणि यजमानस्य उदरे इडापात्रं निधाय “इमम्
अग्ने” [५३] इति द्वाभ्याम् अनुमन्त्रयते ॥

यदि आहिताग्निः एकाग्निर्वा सर्पव्याघ्रादिभिर्घ्नियेत तर्हि
“यत्ते कृष्णः शकुनः” [५५] इत्यनया सर्पदंशनस्थानं दंष्ट्रादि-
कृतव्रणस्थानं वा अग्निना दहेत् ॥

“पयस्वतीः” [५६] इति ऋचा शवदहनानन्तरं स्नानं कुर्यात् ॥

“शं ते नीहारः” [६०] इत्यनया अभिमन्त्रिताभिर्जलक्षीर-
मिश्रिताभिरोषधीभिर्ब्राह्मणस्य अस्थीनि सिञ्चेत् ॥

“उच्छृञ्चमाना” इस पहिली (५१) ऋचाका विनियोग
कह दिया है ।

पात्रचयनकर्ममें यजमानके उदरमें इडापात्रको रखकर “इमम्
अग्ने” आदि ५३ वीं और ५४ वीं ऋचाओंसे अनुमन्त्रण करे ।

यदि आहिताग्नि वा एकाग्नि सर्प वा व्याघ्र आदिसे मर जावे तो “यत् ते कृष्णः शकुनः” इस पचपनवीं ऋचासे साँपके काटनेके स्थानको वा डाढ़ आदिसे हुए घावके स्थानको अग्निसे भस्म करे ।

“पयस्वतीः” इस छप्पनवीं ऋचासे शवदहनके अनन्तर स्नान करे ।

“शं ते नीहारः” इस साठवीं ऋचासे अभिमन्त्रित जल और क्षीर मिली हुई औषधियोंसे ब्राह्मणकी अस्थियोंका सिञ्चन करे ।

तत्र प्रथमा ॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उपहि

श्रयन्ताम् ।

ते गृहासो घृतश्रुतः स्योना विश्वाहास्मै शरणाः

सन्त्वत्र ॥ ५१ ॥

उच्छ्वञ्चमाना । पृथिवी । सु । तिष्ठतु । सहस्रम् । मितः । उप ।

हि । श्रयन्ताम् ।

ते । गृहासः । घृतश्रुतः । स्योनाः । विश्वाहा । अस्मै । शरणाः ।

सन्तु । अत्र ॥ ५१ ॥

उच्छ्वञ्चमाना उच्छ्रूयमानावयवा पुलकितशरीरा पृथिवी सु तिष्ठतु सुखेन अवतिष्ठताम् । तत्र श्मशानदेशे सहस्रम् सहस्रसंख्याका अपरिमिता मिथः मीयमानाः स्थाप्यमाना औषधयः उप श्रयन्ताम् उपेत्य आभिता भवन्तु । हिशब्दो यस्मादर्थे । यस्माद् औषधिवनस्पतयस्तत्र उपाश्रितास्तस्मात् ते घृतश्रुतः घृतस्त्राविणः अत एव स्योनाः सुखकरा अस्मै मृतपुरुषाय गृहासः गृहाः

विश्वाहा सर्वाणि अहानि । ❀ अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ❀ ।
सर्वकालम् अत्र श्मशानदेशे शरणाः रक्षकाः सन्तु भवन्तु ॥

पुलकित शरीर वाली पृथिवी सुखसे स्थित रहे इस श्मशान-
स्थानमें स्थापित की हुई अपरिमित औषधियों समीपमें आकर
स्थित होवें, और वे औषधियों घृतको प्रवाहित करती हुई अतः
एव सुख देती हुई इस मृतपुरुषके लिये घररूप होकर सब दिन
इस श्मशानमें रक्षक रहें ॥ ५१ ॥

द्वितीया ॥

उत्तं स्तम्भनामि पृथिवीं त्वत् परीमं लोगं निदधन्मो अहं
रिषम् ।

एतां स्थूणां पितरो धारयन्ति ते तत्र यमः सादना
ते कृणोतु ॥ ५२ ॥

उत् । ते । स्तम्भनामि । पृथिवीम् । त्वत् । परि । इमम् । लोगम् ।
निदधत् । मो इति । अहम् । रिषम् ।

एताम् । स्थूणाम् । पितरः । धारयन्ति । ते । तत्र । यमः । सादना ।
ते । कृणोतु ॥ ५२ ॥

हे मृतपुरुष ते तुभ्यं त्वदर्थम् इमां पृथिवीम् उत् ऊर्ध्वं स्तम्भनामि
धारयामि । ❀ ष्टभि स्क्रुभि गतिप्रतिबन्धे । क्रत्यादित्वात् आ-
प्रत्ययः ❀ ॥ त्वत् परितः तव परितः इमं लोकम् सर्वप्राण्यधि-
ष्ठितं भूलोकं निदधत् निक्षिपन् अहं मो रिषम् मैव हिंसितो
भूवम् ॥ तत्र तस्याम् उत्तम्भनेन धृतायां भूम्यां ते त्वदर्थं पितरः
पितृदेवताः एतां प्रसिद्धां स्थूणां तव गृहनिर्माणाय धारयन्ति
स्थापयन्ति । यमस्तत्र ते तव सादना सदनानि गृहाणि कृणोतु
करोतु । ❀ “शेश्वन्दसि बहुलम्” इति शैलोपः ❀ ॥

हे मृतपुरुष ! मैं तेरे लिये इस पृथिवीको ऊपरको धारण करता हूँ, तेरे चारों ओर भूलोकको स्थापित करता हुआ मैं हिसित न होऊँ, इस उठाई हुई भूमिमें तेरे लिये पितृदेवता गृह-निर्माणके लिये स्थूणाको धारण करें और यमदेवता तेरे लिये घरोंको बनावें ॥ ५२ ॥

तृतीया ॥

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्या-
नाम् ।

अयं यश्चमसो देवपानस्तस्मिन् देवा अमृता माद-
यन्ताम् ॥ ५३ ॥

इमम् । अग्ने । चमसम् । मा । वि । जिह्वरः । प्रियः । देवानाम् ।
उत । सोम्यानाम् ।

अयम् । यः । चमसः । देवपानः । तस्मिन् । देवाः । अमृताः ।
मादयन्ताम् ॥ ५३ ॥

हे अग्ने इमं चीयमानं चमसम् भक्षणसाधनम् इडापात्रं मा वि जिह्वरः कुटिलं मा कार्षीः । ❀ ह कौटिल्ये । अस्माएयन्तात् लुङि चङि रूपम् । “न माङ्गयोगे” इति अडभावः ❀ । यश्चमसो देवानाम् अग्न्यादीनां प्रियः प्रीतिकरः । उत अपि च सोम्यानाम् सोमार्हाणां पितॄणां प्रियः । “उपहूता नः पितरः सोम्यासः” इति हि उक्तम् [४५] । देवपानः देवाः पिबन्ति अनेन अमृतम् इति देवपानः ॥ एवंगुणविशिष्टो योयं चमसस्तस्मिन् अमृताः अमरणधर्माणः सर्वे देवा इन्द्रादयो मादयन्ताम् माद्यन्तु । तत्रत्य-हविरास्वादनेन तृप्ता भवन्तु इत्यर्थः ॥

६६२ अथर्ववेदसहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हे अग्ने ! इस भक्षणके साधन इडापात्र चमसको तिरछा न कर, यह चमस अग्नि आदि देवताओंको और सोमका उपभोग करनेके पात्र पितरोंको प्रिय है । और देवता इसमें पान करते हैं, ऐसे इस चमसमें सब इन्द्र आदि अमर देवता प्रसन्न होंवें अर्थात् इस चमसपात्रकी हविका आस्वादन कर तृप्त होंवें ॥ ५३ ॥

चतुर्थी ॥

अथर्वा पूर्णं चमसं यमिन्द्रायाविभर्वाजिनीवते ।
तस्मिन् कृणोति सुकृतस्य भक्षं तस्मिन्निन्दुः पवते
विश्वदानीम् ॥ ५४ ॥

अथर्वा । पूर्णम् । चमसम् । यम् । इन्द्राय । अविभः । वाजिनीऽ-
वते ।

तस्मिन् । कृणोति । सुकृतस्य । भक्षम् । तस्मिन् । इन्दुः । पवते ।

विश्वदानीम् ॥ ५४ ॥

अथर्वा एतन्नामकः अतीन्द्रियार्थद्रष्टा कश्चिद् ऋषिः वाजनी-
वते वाजः अन्नम् हविर्भक्षणम् अस्याम् अस्तीति वाजिनी यज्ञ-
क्रिया । तद्वते इन्द्राय पूर्णम् सोमादिहविषा पूरितं यं चमसम्
अविभः भृतवान् । ❀ विभर्तेर्लङि प्रथमैकवचने रूपम् ❀ । इन्द्र-
प्रीत्यर्थं हविर्भिः पूर्णं यं चमसं संभृतवान् इत्यर्थः । तस्मिन् चमसे
सुकृतस्य सुष्ठु कृतस्य यज्ञस्य संबन्धि भक्षम् भक्षणं हुतशिष्ट-
हविषो भक्षणं कृणोति करोति । ऋत्विजां गण इत्यर्थः । तथा
तस्मिन् अथर्वकृते चमसे विश्वदानीम् सर्वदा इन्दुः सोमः पवते
अमृतरसात्मकः स्रवति । ❀ पूङ् पवने । भौवादिकः ॥ विश्वदा-
नीम् इति । विश्वशब्दाद् दानीं प्रत्ययः ❀ ॥

अथर्वा नामक अतीन्द्रियार्थदर्शी एक ऋषिने हविरूप अन्न बाली यज्ञ क्रियाके पात्र इन्द्रदेवके लिये सोम आदि हविसे पूरित जिस चमसको धारण किया था, उस चमसमें ऋत्विज् सुन्दरता से किये हुए यज्ञमें होमनेसे बची हुई हविका भक्षण करते हैं और उसी अथर्वाके बनाये हुए चमसमें रसात्मक अमृत सदा स्रवता रहता है ॥ ५४ ॥

पञ्चमी ॥

यत् ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा
श्वापदः ।

अग्निष्टद् विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ
आविवेश ॥ ५५ ॥

यत् । ते । कृष्णः । शकुनः । आतुतोद । पिपीलः । सर्पः । उत ।
वा । श्वापदः ।

अग्निः । तत् । विश्वऽअत् । अगदम् । कृणोतु । सोमः । च ।
यः । ब्राह्मणान् । आविवेश ॥ ५५ ॥

हे पुरुष ते त्वदीयं यत् अङ्गं कृष्णः कृष्णवर्णः शकुनः पक्षी
काकादिः आतुतोद व्यथितं दष्टं कृतवान् । ❀ तुद व्यथने ❀ ।
तथा पिपीलः विषदंष्ट्रः पिपीलिकाविशेषः उत वा अपि वा सर्पः
श्वापदः शुनः पदानीव यस्य स श्वापदो व्याघ्रादिः आतुतोदेति
सर्वत्र संबध्यते । तद् अङ्गं विश्वात् विश्वं सर्वम् अतीति विश्वात्
सर्वभक्षकः अग्निः अगदम् गदो रोगः तद्रहितं कृणोतु करोतु ।
यः सोमः ब्राह्मणान् ऋत्विग्यजमानान् आविवेश रसरूपेण अन्तः
प्रविष्टवान् तादृशः सोमोपि । अगदं कृणोत्विति संबन्धः ॥

६६४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हे पुरुष ! तेरे जिस अंगको कृष्णवर्णके काकादि पक्षीने काटा है, तथा विषमयी डाढ़ वाली जिस पिपीलिकाने काटा है, सर्पने अथवा कुत्तेकी समान पैर वाले जिस व्याघ्र आदिने काटा है उसको सबका भक्षण करने वाले अग्निदेव रोगरहित करें। और जो सोम ब्राह्मण ऋत्विज यजमानादिमें रसरूपमें प्रविष्ट है वह भी इस अंगको नीरोग करें ॥ ५५ ॥

षष्ठी ॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं पयः ।

अपां पयसो यत् पयस्तेन मा सह शुम्भतु ॥५६॥

पयस्वतीः । औषधयः । पयस्वत् । मामकम् । पयः ।

अपाम् । पयसः । यत् । पयः । तेन । मा । सह । शुम्भतु ५६

औषधयः ब्रीहियवाद्याः प्रसिद्धाः याश्च अन्याः फलपाकान्ताः ताः सर्वाः पयस्वतीः अस्मदर्थं पयस्वत्यः । पयःशब्देन सारभूतोंऽश उच्यते । सारवत्यो भवन्तु । ❀ जसि “वा छन्दसि” इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ । मामकम् मत्संबन्धि मम शरीरस्थितं यत् पयः सारभूतं बलं तदपि पयस्वत् सारवद् भवतु । तथा अपाम् उदकानां संबन्धिनः पयसः सारभूतांशस्य यत् पयः सारभूतः उत्कृष्टोंऽशः स तेन औषध्यादिगतेन सर्वेण पयसा सह मा मां शुम्भतु शोभनं करोतु । जलाभिमानी वरुणः स्नानेन मां शोधयत्विति भावः । ❀ शुभ शुम्भ दीप्तौ ❀ ॥

ब्रीहि जौ आदि औषधियें हमारे लिये सारमयी होवें और मेरे शरीरमें जो सारभूत बल है वह भी सार वाला होवे और जलोंके सारका भी जो सार है उस औषधि आदिके सारसे जलाभिमानी वरुण मुझको स्नानके द्वारा पवित्र करें ॥ ५६ ॥

सप्तमी ॥

इ॒मा ना॒रीर॒विध॒वाः सु॒पत्नी॒राञ्ज॒नेन॒ स॒र्पिषा॒ सं स्पृ॒श॒न्ताम् ।

अ॒न॒श्र॒वो अ॒न॒मी॒वाः सु॒र॒त्ना आ रो॒हन्तु॒ जन॒यो॒
योनि॒मग्रे॑ ॥ ५७

इ॒माः । ना॒रीः । अ॒वि॒ध॒वाः । सु॒प॒त्नीः । आऽअ॒ञ्ज॒नेन॒ । स॒र्पिषा॒ ।
सम् । स्पृ॒श॒न्ताम् ।

अ॒न॒श्र॒वः । अ॒न॒मी॒वाः । सु॒र॒त्नाः । आ । रो॒हन्तु॒ । जन॒यः ।
योनि॒म् । अ॒ग्रे ॥ ५७ ॥

“इमा नारीः” इत्येषा सप्तमी पूर्वम् आम्नाता [१२. २. ३१] ।
तत्रैव व्याख्याता ॥ अर्थस्तु । इमाः प्रेतकुलोत्पन्ना नार्यः वैध॒व्य॒रहिताः सु॒प॒तिकाः सत्यः स॒र्पिर्मिश्रेण॑ आञ्जनेन संस्पृष्टा भवन्तु ।
अश्रुरहिता रोगरहिताः शोभनाभरणा अपत्यजनन्यः अपत्यो॒त्पा॒दनाय॑ योनिम् आ रोहन्त्विति ॥

इस प्रेतके कुलमें उत्पन्न हुई ये स्त्रियें वैधव्यरहित रहें, सुन्दर पतिसे सम्पन्न रहती हुई घृतमिश्रित अञ्जनको लगाती रहें, अश्रुरहित रहें, रोगरहित रहें, शोभन गहनोंको धारण किये रहें और सन्तानको उत्पन्न करती रहें ॥ ५७ ॥

अष्टमी ॥

सं ग॒च्छ॒स्व पि॒तृभिः॑ सं य॒मेने॑ष्टापूर्तेन परमे व्यो॒मन् ।
हि॒त्वाव॒द्यं पुन॑रस्तमेहि सं ग॒च्छ॒तां त॒न्वा सु॒वर्चाः॑ ५८

६६६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सम् । गच्छस्व । पितृभिः । सम् । यमेन । इष्टापूर्तेन । परमे ।
विओमन् ।

हित्वा । अवयम् । पुनः । अस्तम् । आ । इहि । सम् । गच्छताम् ।
तन्वा । सुवर्चाः ॥ ५८ ॥

हे मृतपुरुष त्वं पितृभिः पितृपितामहपितामहैः सं गच्छस्व
पैतृमेधिकेन सापिण्ड्यकरणावधिना संस्कारेण हेतुना संगतो
भव । पितृषु मध्ये प्राप्तस्थानो भवेत्यर्थः । यस्तेषां राजा यमः तेनापि
सं गच्छस्व । तथा परमे उत्कृष्टे पितृलोकादपि श्रेष्ठे व्योमन् व्योम्नि
द्युलोके नाकपृष्ठाख्ये कर्मफलोपभोगस्थाने इष्टापूर्तेन । इष्टम्
प्रत्यक्षश्रुतिचोदितं यागहोमदानादि । पूर्तम् स्मृतिपुराणागमचो-
दितं वापीकूपतटाकदेवागारनिर्माणादि । तेन उभयेन सं गच्छस्व ।
तत्फलम् उपभुङ्क्ष्वेत्यर्थः । तथा अवयम् पापं हित्वा त्वक्त्वा
अस्तम् । गृहनामैतत् । उत्तमलोकस्थितं गृहं पुनरेहि प्राप्नुहि ॥
सुवर्चाः शोभनदीप्तिकस्तव आत्मा तन्वा स्वर्गलोकभोगयोग्येन
शरीरेण सं गच्छताम् संयुज्यताम् । ❀ “समो गम्यच्छि०” इति
संपूर्वाद् गमेरकर्मकाद् आत्मनेपदम् ❀ ॥

हे मृतपुरुष ! तू जिसमें सपिण्डी आदि की जाती है उस सपिण्डी-
करण तकके पैतृमेधिककर्मसे पिता पितामह आदि पितरोंके साथ
मिल जा अर्थात् पितरोंके मध्यमें स्थान पा और जो उनका राजा
यम है उससे भी मिल । तथा पितृलोकसे भी श्रेष्ठ कर्मफलभोग
के स्थान परमव्योम स्वर्गमें श्रुतिसे प्रत्यक्षविहित याग होम दान
आदि इष्टसे तथा स्मृति पुराण और शास्त्रोंसे विहित वावड़ी कूप
तालाव मन्दिर बनाना आदि पूर्तसे, संयुक्त हो अर्थात् इनके फल
को भोग तथा पापको त्याग कर उत्तम लोकमें स्थित घरको पा ।

सुन्दर दीप्ति वाला तेरा आत्मा स्वर्गलोकके योग्य शरीरको प्राप्त करे ॥ ५८ ॥

नवमी ॥

ये नः पितुः पितरो ये पितामहा य आविविशुरुर्वन्त-
रिक्तम् ।

तेभ्यः स्वराडसुनीतिर्नो अद्य यथावशं तन्वः कल्पयाति
ये । नः । पितुः । पितरः । ये । पितामहाः । ये । आविविशुः ।
उरु । अन्तरिक्तम् ।

तेभ्यः । स्वराट् । असुनीतिः । नः । अद्य । यथावशम् । तन्वः ।
कल्पयाति ॥ ५९ ॥

नः अस्माकं पितुः जनकस्य ये पितरः जनका ये च पिता-
महास्तेषामपि उत्पादयितारः । पूजार्थं बहुवचनम् । पितृपिता-
महप्रपितामहा इत्यर्थः । ये च अन्ये गोत्रजा उरु विस्तीर्णम् अन्त-
रिक्तम् आविविशुः आविष्टाः प्रविष्टाः । तेभ्यः । ❀ षष्ठ्यर्थे
चतुर्थी ❀ । तेषां तन्वः शरीराणि अद्य इदानीं स्वराट् स्वयमेव
राजा असुनीतिः अस्मूनां नेता एतत्संज्ञको देवः नः अस्माकं यथा-
वशम् यथाकामं कल्पयाति कल्पयतु । तत्रतत्र फलोपभोगाय शरी-
राणि संपादयत्वित्यर्थः ॥

जो हमारे पिताके उत्पादक हैं और जो हमारे पिताके पिता-
मह हैं अर्थात् जो पिता पितामह और प्रपितामह हैं इन्होंने तथा
और भी हमारे गोत्रमें उत्पन्न हुए जिन पुरुषोंने विस्तीर्ण अन्त-
रिक्तलोकमें प्रवेश किया है इस समय स्वराट् असुनीति देवता
उनके शरीरोंकी इच्छानुसार कल्पना करें अर्थात् फलोपभोगके
लिये उचित लोकोंमें उनके शरीरोंको रच दें ॥ ५९ ॥

दशमी ॥

शं ते नीहारो भवतु शं ते पुष्वाव शीयताम् ।

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।

मण्डूक्यं १प्सु शं भुव इमं स्व १ग्निं शमय ॥ ६० ॥

शम् । ते । नीहारः । भवतु । शम् । ते । पुष्वा । अव । शीयताम् ।

शीतिके । शीतिकावति । ह्लादिके । ह्लादिकावति ।

मण्डूकी । अप्सु । शम् । भुवः । इमम् । सु । अग्निम् । शमय ६०

हे प्रेतपुरुष नीहारः अवश्यायः ते तव शं भवतु सुखकरो भवतु । दाहजनितम् औष्ण्यं शमयत्वित्यर्थः । तथा पुष्वा विप्रद्वरूपेण स्रवन् उत्सः ते तव शम् सुखं यथा भवति तथा अव शीयताम् अवपततु । अधोमुखं स्रवत्वित्यर्थः ॥ हे शीतिके शीतस्य कारिणि । औषधिविशेषस्येयं संज्ञा । हे शीतिकावति शीतिकाख्यौषधियुक्ते पृथिवि हे ह्लादिके ह्लादः सुखम् तत्कारिणि औषधे हे ह्लादकावति ह्लादकाख्यौषधियुक्ते पृथिवि मण्डूक्या मण्डूकस्य स्त्री मण्डूकी तया । यद्वा मण्डूकपर्णाख्यया औषध्या अस्य दग्धस्य पुरुषस्य शं भव । दाहशमनहेतुर्भवेत्यर्थः । तदर्थम् इमं दाहकम् अग्निं सुष्ठु शमय शान्तं कुरु ॥

इति तृतीयेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हे प्रेत ! नीहार तुभको सुखदेवे अर्थात् दाहसे हुई तेरी गरमी को शान्त करे, और वूँद २ करके वरसता हुआ मेघ जिस प्रकार तुभको सुख प्राप्त हो तिस प्रकार वरसे । हे शीतिका नामक औषधि वाली पृथिवी ! हे ह्लादिका नामवाली औषधिसे संपन्न पृथिवि ! तू इस दग्ध पुरुषको मण्डूकपर्णी नामक औषधिसे सुख देने वाली हो, इस दाहक अग्निको भली प्रकार शान्त कर ६० (१८)

तृतीय अनुवा में छठा सूक्त समाप्त

“विवस्वान् नः” [६१] इत्यादिभिः सप्तभिर्ऋग्भिः श्मशानचयनकर्मणि कर्ता सर्वे गोत्रिणश्च श्मशानस्य पश्चाद्भागे स्थित्वा प्रेतम् उपतिष्ठेरन् ॥

पितृमेधे चतुर्थेऽहनि वैवस्वते स्थालीपाके “विवस्वान् नो अभयम्” इति द्वाभ्यां प्रत्यृचं द्वे आहुती जुहुयात् । युक्ताभ्यां तृतीयाम् आहुतिं कुर्यात् ॥

तथा एताभ्यामेव हुतशेषम् अभिमन्त्र्य समानोदका गोत्रिणः कर्तारं प्राशयेयुः ॥

संचयने “विवस्वान् नः” इति ऋचम् “इन्द्र क्रतुम्” [६७] इत्येतां च स्वस्त्ययनार्थं जपेत् ॥

“यास्ते धानाः” [६६] इति द्वाभ्यां तिलमिश्रा धाना अस्थनाम् उपरि आदध्यात् । “पुनर्देहि” [७०] इति ऋचा अस्थीनि वृक्षमूलाद् आददीत यदि अस्थीनि वृक्षमूले पूर्वस्थापितानि स्युः ॥

“आ रभस्व” [७१] इति तिसृभिः प्रेतशरीरे दत्तम् अग्निं काष्ठैर्दीपयेयुः ॥

“ये ते पूर्वे परागताः” [७२] इति ऋचा सर्पिर्मधुभ्यां चरुम् अभिमन्त्र्य अस्थिसमीपे निदध्यात् ॥

तथा पिण्डपितृयज्ञे अनया निरुप्तानां पिण्डानाम् उपरि घृतधारां निनयेत् ॥

“विवस्वान् नः” (६१) आदि सात ऋचाओंसे श्मशानचयनकर्ममें कर्ता और सब गोत्र वाले श्मशानके पीछेकी ओर खड़े होकर प्रेतका उपस्थान करें ।

पितृमेधके चौथे दिन वैवस्वत-स्थालीपाकमें “विवस्वान् नो अभयम्” इन दो ऋचाओंसे दो आहुति देवे और दोनों ऋचाओंको मिला कर तीसरी आहुति देवे ।

तथा इन ही दोनों ऋचाओंसे होमनेसे बचे हुए पदार्थको अभिमन्त्रित करके समानोदक गोत्र वाले कर्ताको प्राशन करावें ।

सञ्चयनमें “विवस्वान् नः” ऋचको और “इन्द्र क्रतुम्” (६७) ऋचाको भी स्वस्त्ययनके लिये जपे ।

“यास्ते धानाः” (६६) आदि दो ऋचाओंसे तिलमिश्रित धानाओंको अस्थियोंके ऊपर रखे । यदि पहिले अस्थियोंको वृक्षकी जड़में रख दिया हो तो “पुनर्देहि” (७०) ऋचासे अस्थियोंको वृक्षमूलसे लेलेवे ।

“आ रभस्व” (७१) आदि तीन ऋचाओंसे प्रेतके शरीर में लगाई हुई अग्निको काष्ठोंसे प्रदीप्त करें ॥

‘ये ते पूर्वे परागताः’ (७२) ऋचासे घी और मधुसे चरु को अभिमन्त्रित करके अस्थियोंके समीपमें रखे ।

तथा पिण्डपितृयज्ञमें इस ऋचासे स्थापित करनेसे पहिले पिण्डोंके ऊपर घृतकी धार डाले ।

तत्र प्रथमः ॥

विवस्वान् नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः
सुदानुः ।

इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम्
विवस्वान् । नः । अभयम् । कृणोतु । यः । सुत्रामा । जीरदानुः ।

सुदानुः ।

इह । इमे । वीराः । बहवः । भवन्तु । गोमद । अश्ववत् । मयि ।
अस्तु । पुष्टम् ॥ ६१ ॥

विवस्वान् एतत्संज्ञक आदित्यो नः अस्माकम् अभयम् मरण-
जनितभीतिराहित्यं कृणोतु करोतु । तथा जीरदानुः जीवनस्य
कर्ता । ❀ जीव प्राणधारणे । “जीवे रदानुक्” इति ❀ । यद्वा

❀ रकि ज्यः संपसारणम् इति [उ० २. २३.] ज्या वयोहानौ इत्य-
स्माद् रक् प्रत्ययः संपसारणं च ❀ । जीरस्य वयोहानेर्दाता जीर-
दानुः । सुदानुः शोभनदानुः एतंगुणविशिष्टो यः सुत्रामा सुष्ठु त्राता
एतत्संज्ञको देवः सोऽपि अस्माकम् अभयं कृणोत्विति संबन्धः ॥
इह अस्मिन् लोके इमे वीराः पुत्रपौत्रादयः अस्माकं बहवः बहुला
भवन्तु । तथा गोमत् बहुभिर्गोभिर्युक्तम् अश्ववत् बहुश्वोपेतं पुष्टम्
पोषकं धनं मयि आत्मनि अस्तु भवतु । मरणजनितभीतिपरि-
हारेण पुत्रपौत्रादिसमृद्धिर्धनसमृद्धिश्च अस्माकं भवत्वित्यर्थः ॥

विवस्वान् सूर्यदेव, जीवनप्रदाता जीरदानु, सुदानु, और
भली प्रकार रक्षा करने वाले सुत्रामा नामक देव हमको अभय
देवें । इस लोकमें हमारे वीर्यसे उत्पन्न होने वाले वीर अर्थात्
पुत्र पौत्र आदि बहुतसे होवें तथा मुझमें गौओंसे और घोड़ोंसे
सम्पन्न पुष्टि रहे । तात्पर्य यह है, कि-मरणसे होने वाला भय
दूर होकर हमारे पास पुत्र पौत्र आदिकी समृद्धि और धनकी
समृद्धि होवे ॥ ६१ ॥

द्वितीया ॥

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वेषामसवो यमं गुः

विवस्वान् । नः । अमृतत्वे । दधातु । परा । एतु । मृत्युः । अमृतम् ।

नः । आ । एतु ।

इमान् । रक्षतु । पुरुषान् । आ । जरिम्णः । मो इति । सु ।

एषाम् । असवः । यमम् । गुः ॥ ६२ ॥

विवस्वान् आदित्यो नः अस्मान् अमृतत्वे अमरणत्वे दधातु

स्थापयतु ॥ तत्प्रसादात् मृत्युः मरणकारी देवः परैतु पराङ्मुखो
गच्छतु । अमृतम् अमरणं नः अस्मान् एतु प्राप्नोतु ॥ आ जरि-
म्णः । जराया भावो जरिमा । जरावस्थापर्यन्तम् इमान् अस्म-
दीयान् पुरुषान् पुत्रपौत्रादीन् रक्षतु पालयतु ॥ एषां पुरुषाणाम्
असवः प्राणाः सु सुष्ठु मो मैव यमम् वैवस्वतं शुः गच्छन्तु ।
विवस्वता यमस्य पित्रा रक्षितत्वाद् इति भावः । ❀ इण् गर्तो ।
माङि लुङि “इणो गा लुङि” इति गादेशः ❀ ॥

विवस्वान् सूर्यदेव हमको अमरणमें स्थापित करें । उनके प्रसाद
से मरणकारी देवता मृत्यु पराङ्मुख होकर चला जावे । अमरण
हमको प्राप्त होवे और वह जरावस्था तक इन पुत्र पौत्र आदिकी
रक्षा करे, इन पुरुषोंके प्राण विवस्वान्के पुत्र यमको प्राप्त न हों ६२
तृतीया ॥

यो दध्रे अन्तरिक्षे न मद्वा पितॄणां कविः प्रमतिर्मती-
नाम् ।

तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे
धातु ॥ ६३ ॥

यः । दध्रे । अन्तरिक्षे । न । मद्वा । पितॄणाम् । कविः । प्रमतिः ।
मतीनाम् ।

तम् । अर्चत । विश्वमित्राः । हविःभिः । सः । नः । यमः ।
प्रतरम् । जीवसे । धातु ॥ ६३ ॥

यो यमः कविः क्रान्तदर्शी प्रमतिः प्रकृष्टबुद्धिः मद्वा स्वमहिम्ना
मतीनाम् मन्तॄणां स्तोतॄणां पितॄणाम् । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्”
इति कर्मणः संप्रदानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ❀ । पितॄन् अन्तरिक्षेण

अन्तरा ज्ञान्तेन लोकेन दध्रे धारयति हे विश्वमित्राः सर्वजन-
मित्रभूता ब्राह्मणाः तं तादृशं यमं हविर्भिश्चरुपुरोडाशादिभिः अर्चत
पूजयत ॥ सोर्चितो यमो नः अस्मान् जीवसे जीवनाय प्रतरम्
प्रकृष्टतरं धात् दधातु धारयतु । ❀ प्रशब्दात् तरप् । “अमु च
रुक्छन्दसि” इति अमु प्रत्ययः ❀ ॥

जो यम क्रान्तदर्शी हैं, श्रेष्ठ बुद्धि वाले हैं और जो अपनी
महिमासे स्तुति करने वाले पितरोंको अन्तरिक्षलोकमें धारण
करते हैं, हे सब प्राणियोंके मित्र ब्राह्मणों ! तुम ऐसे यमकी चरु-
पुरोडाश आदि हवियोंसे पूजा करो । वह पूजित यम हमको
जीवनके लिये श्रेष्ठ रीतिसे धारण करें-पुष्ट करें ॥ ६३ ॥

चतुर्थी ॥

आ रोहत दिवमुत्तमामृषयो मा बिभीतन ।

सोमपाः सोमपायिन इदं वः क्रियते हविर्गन्म ज्योति-
रुत्तमम् ॥ ६४ ॥

आ । रोहत । दिवम् । उत्तमाम् । ऋषयः । मा । बिभीतन ।
सोमपाः । सोमपायिनः । इदम् । वः । क्रियते । हविः । गन्म ।
ज्योतिः । उत्तमम् ॥ ६४ ॥

हे ऋषयः मन्त्रदर्शिनो मनुष्याः उत्तमाम् उत्कृष्टां दिवम् स्वर्गम्
आ रोहत यज्ञदानादिसत्कर्मभिः प्राप्नुत । मा बिभीतन भयं मा
प्राप्नुत । ❀ बिभेतेर्लोटि “तप्तनप्तनयनाश्च” इति तस्य तना-
देशः ❀ । ऋषयो विशेष्यन्ते । सोमं पिबन्तीति सोमपाः । स्वयं
कृतसोमयागा इत्यर्थः । सोमपायिनः अन्यानपि यजमानान् सोमं
पाययन्तीति सोमपायिनः । सोमयागस्य कारयितार इत्यर्थः ।
दिवम् आरूढानां वः युष्माकम् इदं हविः क्रियते । तेन हविषा

६७४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

यूयं सुखेन द्युलोके वर्तध्वम् इत्यर्थः । वयं च युष्मत्प्रसादाद् उत्तमम् उत्कृष्टतमं ज्योतिः प्रकाशं चिरकालजीवनम् अगन्म गच्छेम ॥

हे मन्त्रदर्शी मनुष्य ऋषियो ! तुम यज्ञ दान आदि सत्कर्मोंके कारण उत्कृष्ट स्वर्गलोकमें चढ़ो, डरो मत । हे ऋषियो ! तुम सोमका पान करने वाले हो अर्थात् तुमने अपने आप सोमयाग किया है, और तुम सोमपायी हो अर्थात् दूसरोंको सोमयाग कराने वाले हो । स्वर्गमें आरूढ़ हुए तुम्हारे लिये यह हवि की जाती है अर्थात् इस हविसे तुम सुखपूर्वक द्युलोकमें रहो और हम भी आपके प्रसादसे उत्तमज्योति-चिरकाल जीवनको प्राप्त होवें ६४

पञ्चमी ॥

प्र केतुना बृहता भात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।

दिवश्चिदन्तादुपमामुदानडपामुपस्थे महिषो ववर्ध ६५

प्र । केतुना । बृहता । भाति अग्निः । आ । रोदसी इति । वृषभः । रोरवीति ।

दिवः । चित् । अन्तात् । उपमाम् । उत् । आनट् । अपाम् ।

उपस्थे । महिषः । ववर्ध ॥ ६५ ॥

अयम् अग्निः केतुना केतयित्रा ध्वजेन बृहता महता धूमेन प्र भाति प्रकर्षेण दीप्यते ॥ तथा रोदसी द्यावापृथिव्यौ आ अभिलक्ष्य वृषभः कामानां वर्षकः अयम् अग्नी रोरवीति भृशं शब्दं करोति ॥ माम् उप मत्समीपे दिवश्चिदन्तात् । चिच्छब्दः अप्यर्थे । आकाशस्य पर्यन्तादपि अयम् अग्निः उदानट् ऊर्ध्वं व्याप्नोत् ॥ तदनन्तरम् अपाम् उदकानाम् उपस्थे उपस्थाने अन्तरिक्षप्रदेशे महिषः । महन्नामैतत् । महान् भुत्वा ववर्ध ववृधे । प्रवृद्धोभूद् इत्यर्थः । ॐ वृधु वृद्धौ । व्यत्ययेन परस्मैपदम् ॥

यह अग्निदेव अपनी बड़ी भारी ध्वजा धूमसे बड़े दमकते रहते हैं और यह कामनाओंकी वर्षा करने वाले अग्निदेव द्युलोक और पृथिवीलोकको लक्ष्यमें रख कर बड़ा शब्द करते हैं और मेरे समीपसे यह अग्निदेव द्युलोकसे भी ऊपर व्याप्त होजाते हैं और जलोंके स्थान अन्तरिक्षमें भी महान् होकर बढ़ने लगते हैं ॥६५॥

षष्ठी ॥

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरग्युम्
नाके । सुऽपर्णम् । उप । यत् । पतन्तम् । हृदा । वेनन्तः । अभिऽ-
अचक्षत । त्वा ।

हिरण्यऽपक्षम् । वरुणस्य । दूतम् । यमस्य । योनौ । शकुनम् ।
भुरग्युम् ॥ ६६ ॥

कं सुखम् अकं दुःखम् । नास्मिन् अकम् अस्तीति नाकः ।
❀ “नभ्राएनपात्” इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ❀ । तस्मिन्
नाके स्वर्गलोके पतन्तम् गच्छन्तं सुपर्णम् शोभनपतनम् उपलक्ष्य
हृदा मनसा वेनन्तः । ❀ वेनतिः कान्तिकर्मा ❀ । कामयमानाः
हे प्रेत त्वात्वां यत् यदा अभ्यचक्षत अभिपश्यन्ति तदानीम् हिरण्य-
पक्षम् हिरण्यपक्षोपेतं वरुणस्य एतत्संज्ञस्य देवस्य दूतम् । वरुणः
खलु सत्यानृतविभागेन प्राणिनां शिक्षकः । श्रूयते हि । “यासां
राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्” इति
[ऋ० ७. ४६. ३] । “अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति”
इति च [तै० ब्रा० १. ७. २. ६] । अतो वरुणस्य शिक्षकत्वात्
तत्समीपे दूतवद् वर्तमानम् इत्यर्थः । यमस्य योनौ गृहे शकुनम्
शकुनिवद् वर्तमानं भुरग्युम् भर्तारम् । हे मृतत्वां पश्यन्तीति शेषः ॥

हे प्रेत ! जब हृदयमें कामना करते हुए हम जब तुमको स्वर्ग-लोकमें शोभन गतिसे जाते हुए देखते हैं तब तुमको सुवर्णमय पक्षी वाले वरुणदेवके दूत †, यमके घरमें पक्षीकी समान वर्तमान और भर्तारूपमें देखते हैं ॥ ६६ ॥

सप्तमी ॥

इन्द्र॑ क्रतुं॑ न॒ आ भर॑ पिता पुत्रेभ्यो॑ यथा॑ ।

शिक्षा॑ णो अस्मिन् पुरु॑हूत॒ याम॑नि जी॒वा ज्योति॑-
रशीमहि ॥ ६७ ॥

इन्द्र॑ । क्रतुम् । नः । आ । भर । पिता । पुत्रेभ्यः । यथा ।

शिक्षा॑ । नः । अस्मिन् । पुरु॑हूत । याम॑नि । जी॒वाः । ज्योतिः॑ ।

अशीमहि ॥ ६७ ॥

हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्त देव क्रतुम् कर्म सोमयागादित्वक्षणम् यद्वा तद्विषयं ज्ञानं नः अस्मभ्यम् आ भर आहर यथा येन प्रकारेण पिता पुत्रेभ्यः अभिमतं फलं आहरति तद्वत् ॥ हे पुरुहूत पुरुभिर्यजमानैराहूत अस्मिन् यामनि याने संसारगमने नः अस्मान् शिक्षा अनुशाधि । यद्वा शिक्षातिर्दानकर्मा । नः अस्मभ्यम् अभिमतफलं

† वरुणदेव सत्य और असत्यका विवेचन करके शिक्षा देते हैं अत एव उनके समीपमें प्राणी दूतकी समान खड़ा रहता है। ऋग्वेदसंहिता । ७ । ४६ । ३ में लिखा है, कि—“यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम् ।—जलके राजा वरुणदेव मनुष्योंके मध्यमें सत्य और असत्यको देखते रहते हैं” और तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ७ । २ । ६ में लिखा है, कि—“अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति” ॥

प्रयच्छेत्त्यर्थः । वयं च त्वत्प्रसादात् जीवाः चिरकालजीवनोपेता
ज्योतिः प्रकाशम् इहलोकसुखानुभवम् अशीमहि प्राप्नुयाम ॥

हे परमैश्वर्ययुक्त इन्द्रदेव ! जिस प्रकार पिता पुत्रोंको अभि-
मत वस्तु देता है, इस प्रकार आप हमको सोमयाग आदिरूप अभि-
मत वस्तु दीजिये । हे बहुतसे यजमानोंसे बुलाये जाने वाले पुरु-
हूत इन्द्रदेव ! आप हमको संसारयात्रामें अभिमत वस्तुएँ दीजिये
और हम भी आपके प्रसादसे चिरकालका जीवन पाकर इस लोक
के सुखका अनुभव करना—रूप ज्योतिको प्राप्त होवें ॥ ६७ ॥

अष्टमी ॥

अपूपापिहितान् कुम्भान् यास्ते देवा आधारयन् ।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्रुतः ॥ ६८ ॥

अपूपापिहितान् । कुम्भान् । यान् । ते । देवाः । आधारयन् ।
ते । ते । सन्तु । स्वधावन्तः । मधुमन्तः । घृतश्रुतः ॥ ६८ ॥

हे प्रेत ते तुभ्यं त्वदर्थम् अपूपापिहितान् अपूपैरपिहितान् छादि-
तान् यान् कुम्भान् घृतमध्वादिपूर्णान् देवा आधारयन् तवोपभोगाय
धारितवन्तः ते कुम्भाः स्वधावन्तः अन्नवन्तः मधुमन्तः मधुनोपेता
घृतश्रुतः घृतसाविणश्च ते तुभ्यं सन्तु भवन्तु ॥

हे प्रेत ! देवताओंने जिन अपूपों (गुलगुलों) से भरे हुए
घृत मधु आदिसे पूर्ण कुम्भोंको तेरे उपभोगके लिये रख डोड़ा है,
वे कुम्भ तेरे लिये अन्न वाले मधु वाले और घृतसावी होवे ६८

नवमी ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावन्तीः ।
तास्ते सन्तु विन्वीः प्रन्वीस्तास्ते यमो राजानुं मन्य-
ताम् ॥ ६९ ॥

६७८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

याः । ते । धानाः । अनुऽकिरामि । तिलऽमिश्राः । स्वधाऽवतीः ।
 ताः । ते । सन्तु । विऽम्भीः । प्रऽम्भीः । ताः । ते । यमः । राजा ।
 अनु । मन्यताम् ॥ ६६ ॥

हे प्रेत ते तुभ्यं तिलमिश्राः तिलैर्मिश्रिताः स्वधावतीः स्वधा-
 कारवतीः स्वधोदकवतीर्वा या धानाः । भृष्टयवा धाना उच्यन्ते ।
 अनुकिरामि आनुपूर्व्येण वित्तिपामि । समर्पयामीत्यर्थः । ❀ क
 विक्षेपे । तुदादित्वात् शप्त्ययः ❀ । ता धानास्ते तुभ्यं विम्भीः
 विम्ब्यः विविधा भवन्त्यः विभुत्वगुणपेता वा प्रम्भीः प्रम्ब्यः प्रभ-
 वन्त्यः वृप्तिजननसमर्थश्च सन्तु भवन्तु ॥ राजा राजमान ईश्वरो
 यमः ते तव ता धाना अनु मन्यताम् भोक्तुम् अनुजानातु । ❀ विष्णु-
 शब्दात् प्रभुशब्दाच्च “वोतो गुणवचनात्” इति ङीष् । जसि “वा
 छन्दसि” इति पूर्वसवर्णदीर्घः ❀ ॥

हे प्रेत ! तिल मिले हुए स्वधा वाली जो जौ की खीलों में
 समर्पण कर रहा हूँ वे तुझको विभुत्व गुण वालीं और वृप्ति
 करने वालीं होकर प्राप्त हों, राजा यम तुझको खीलों
 का उपभोग लगानेकी अनुमति देवें ॥ ६६ ॥

दशमी ॥

पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।
 यथा यमस्य सादन् आसातै विदथा वदन् ॥ ७० ॥

पुनः । देहि । वनस्पते । यः । एषः । निऽहितः । त्वयि ।
 यथा । यमस्य । सद्ने । आसातै । विदथा । वदन् ॥ ७० ॥

हे वनस्पते वृक्षविशेषत्वयि य एषः अस्थ्यात्मकः पुरुषो निहितः
 निक्षिप्तः पूर्वम् तं पुनर्देहि अस्मभ्यं प्रयच्छ । किमर्थम् इति चेत्

उच्यते । यथा येन प्रकारेण यमस्य राज्ञः सदनं गृहे विदया विद-
थानि विज्ञानानि । यद्वा यज्ञनामैतत् । यज्ञात्मकानि स्वार्जितानि
कर्माणि वदन् ब्रुवन् प्रकाशयन् आसातै आसीत् उपविशेत् । तदर्थं
पुनर्देहीत्यर्थः ॥

हे वनस्पते ! आपमें जो अस्थिरूप पुरुष पहिले स्थापित किया
था, आप उसको मुझे फिर दीजिये जिससे वह यमराजके घरमें
यज्ञात्मक कर्मोंको प्रकाशित करता हुआ बैठे ॥ ७० ॥

एकादशी ॥

आ रभस्व जातवेदस्तेजस्वद्धरो अस्तु ते ।

शरीरमस्य सं दहाथैनं धेहि सुकृतांस्तु लोके ॥ ७१ ॥

आ । रभस्व । जातवेदः । तेजस्वत् । हरः । अस्तु । ते ।

शरीरम् । अस्य । सम् । दह । अथ । एनम् । धेहि । सुकृताम् ।

ऊँ इति । लोके ॥ ७१ ॥

हे जातवेदः जातानाम् उत्पन्नानां प्राणिनां वेदितरग्रे आ रभस्व
मृतं दग्धुम् उपक्रमस्व ॥ ते तव तेजस्वत् तेजोभिर्ज्वालाभिर्युक्तं
हरः रसहरणशीलं दहनसामर्थ्यम् अस्तु भवतु ॥ अस्य मृतस्य
शरीरं सं दह सम्यग् दह । यथा भस्मसाद् भवति तथा कुर्वित्यर्थः ॥
अथ शरीरदहनानन्तरम् एनं पुरुषं सुकृताम् पुण्यकृतां लोके स्वर्गे
धेहि स्थापय । यत्र पुण्यकृतो निवसन्ति तं लोकं प्रापयेत्यर्थः ॥

हे जातवेदा अग्रे ! आप जलानेके लिये तयार होवें आपकी
रसको हरने वाली दहनशक्ति ज्वालाओंसे सम्पन्न होवे । इस
मृतपुरुषके शरीरको आप भली प्रकार भस्म करिये और शरीर
को भस्म करनेके अनन्तर इसको पुण्यात्माओंके लोक स्वर्गमें
स्थापित करिये ॥ ७१ ॥

६८० अथवेवेदसहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

द्वादशी ॥

ये ते पूर्वे परागता अपरे पितरंश्च ये ।

तेभ्यो घृतस्य कुन्या एतु शतधारा व्युन्दती ॥ ७२ ॥

ये । ते । पूर्वे । परागताः । अपरे । पितरः । च । ये ।

तेभ्यः । घृतस्य । कुन्या । एतु । शतधारा । व्युन्दती ॥ ७२ ॥

ते प्रसिद्धा ये पूर्वे पूर्वभाविनः पूर्वम् उत्पन्ना ज्येष्ठाः पितरः परागताः पराङ्मुखं गताः । अपुनरावृत्तये गता इत्यर्थः । ये च अपरे अपरभाविनः पश्चाद् उत्पन्नाः पितरः तेभ्यः सर्वेभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ । घृतस्य कुन्या क्षरणशीलस्य सर्पिषः कुन्या एतु गच्छतु । कुन्या कृत्रिमा सरित् इति निघण्टुः । घृत-पूर्णा कुन्या प्रवहत्वित्यर्थः । कीदृशी सा । शतधारा शतसंख्य-धाराभिरुपेता । अत एव व्युन्दती विविधम् आर्द्राकुर्वती ॥

तुभसे पहिले उत्पन्न हुए तेरे जो ज्येष्ठ पितर पराङ्मुख होकर गए हैं अर्थात् अपुनरावृत्तिके लिये गए हैं और तुभसे पीछे उत्पन्न हुए अपर पितर अपुनरावृत्तिके लिये गए हैं उन सब पितरोंके लिये घृतकी कुन्या ‡ वहे, उसकी सहस्रों धारायें हों अत एव वह अनेक प्रकारसे आर्द्र करती रहे ॥ ७२ ॥

त्रयोदशी ॥

एतदा रोह वयं उन्मृजानः स्वा इह बृहदु दीदयन्ते ।

अभि प्रेहि मध्यतो मापं हास्थाः पितॄणां लोकं प्रथमो

यो अत्र ॥ ७३ ॥

‡ निघण्टुमें लिखा है, कि-कृत्रिम नदी कुन्या कहलाती है ।

एतत् । आ । रोह । वयः । उत्सृजानः । स्वाः । इह । बृहत् ।

ऊं इति । दीदयन्ते ।

अभि । प्र । इहि । मध्यतः । मा । अप । हास्थाः । पितृणाम् ।

लोकम् । प्रथमः । यः । अत्र ॥ ७३ ॥

हे मृतपुरुष एतत् परिदृश्यमानं संनिहितं वयः । वियन्ति गच्छन्ति अस्मिन्निति वयः अन्तरिक्षम् । एतद् आ रोह आरूढो भव । किं कुर्वन् । उन्मृजानः उन्मार्जनं कुर्वन् । शरीराद् उत्क्रमणेन स्वात्मानं शोधयन्नित्यर्थः ॥ स्वाः ज्ञातयः इह अस्मिन् लोके बृहत् अधिकं दीदयन्ते दीप्यन्ताम् । समृद्धा निवसन्तु । ❀ दीदयतिर्दीप्तिकर्मा ❀ । उशब्दः पदपूरणः ॥ आरोहणार्थं मध्यतः बन्धुजनमध्याद् अभि प्रेहि लोकान्तरम् अभिलक्ष्य प्रकर्षेण गच्छ ॥ अत्र अस्मिन् द्युलोके यः पितॄणां संबन्धी प्रथमः मुख्यो लोकः तं लोकं मा अप हास्थाः मा परित्यजेः । चिरं तत्रैव निवसेत्यर्थः । ❀ ओहाक् त्यागे ❀ ॥

इति तृतीयेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

अष्टादशकाण्डे तृतीयोनुवाकः ॥

हे मृतपुरुष ! तू शरीरसे उत्क्रमण करके अपने आपेको पवित्र करता हुआ इस आकाशमें आरोहण कर और तेरी जाति वाले इस लोकमें ही समृद्ध होकर निवास करें । आरोहण करनेके लिये बांधवोंके मध्यमेंसे दूसरे लोकको लक्ष्यमें रख कर चल । और इस द्युलोकमें जो पितरोंका मुख्य लोक है उसको मत त्याग अर्थात् उसमें चिरकाल तक निवास कर ॥ ७३ ॥ (१९)

तृतीय अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त

तृतीय अनुवाक समाप्त (५४३)

६८२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

चतुर्थेनुवाके नव सूक्तानि । तत्र “आ रोहत जनित्रीं जात-
वेदसः” इत्यादिभिः पञ्चदशभिर्ऋग्भिश्चितिस्थम् आहिताग्निं
प्रेतम् उपतिष्ठेत ॥

“आ रोहत जनित्रीम्” [१] इत्यनया ऋचा देशान्तरमृतस्य
आहिताग्नेरेकाग्नेश्च अरणिद्वयम् अग्नौ प्रतापयेत् ॥

“जुहूर्दाधार ग्राम्” [५] ‘ध्रुव आ रोह’ [६] इत्या-
भ्याम् ऋग्भ्यां प्रेताङ्गेषु प्रक्षेप्याणि यज्ञपात्राणि अनुमन्त्रयेत् ॥

चतुर्थ अनुवाकमें नौ सूक्त हैं । इसकी “आरोहत जनित्रीं जात-
वेदसः” आदि पन्द्रह ऋचाओंसे चितामें स्थित आहिताग्नि प्रेतके
पास खड़ा होवे ।

“आरोहत जनित्रीम्” इस पहिली ऋचासे विदेशमें मरे हुए
आहिताग्नि और एकाग्निकी दोनों अरणियोंको अग्निमें तपावे ।

जुहूर्दाधार ग्राम्” (५) “ध्रुव आरोह” (६) ऋचाओंसे
प्रेतके अंगोंमें फेंके जाते हुए यज्ञपात्रोंका अनुमन्त्रण करे ।

तत्र प्रथमा ॥

आ रोहत जनित्रीं जातवेदसः पितृयाणैः सं व आ
रोहयामि ।

अवाद्दव्येषितो हव्यवाह ईजानं युक्ताः सुकृतां धत्त
लोके ॥ १ ॥

आ । रोहत । जनित्रीम् । जातवेदसः । पितृयानैः । सम् ।
वः । आ । रोहयामि ।

अवाट् । हव्या । इषितः । हव्यस्वाहः । ईजानम् । युक्ताः । सुकृताम् ।
धत्त । लोके ॥ १ ॥

हे जातवेदसः । वैतानिकाग्न्यपेक्षया बहुवचनम् । “पश्चा हि स तर्हि भवति” इति श्रुतेः प्रत्यहं होमानन्तरम् आहवनीयशक्ते-
गार्हपत्येऽनुपवेशाद् एतद्योनेर्दक्षिणाग्रेष्व तत्रैवानुपवेशाद् बहुव-
दुक्तिः । स्मार्ताग्निपक्षे पूजायां बहुवचनम् । जातानि भूतानि
विदन्ति जातैः प्राणिभिर्विद्यन्ते ज्ञायन्त इति वा जातवेदसः ।
❀ कर्तरि कर्मणि वा असुन् ❀ । यद्वा वेद इति धननाम ।
जातस्य प्राणिमात्रस्य वेदो धनं येभ्योग्निभ्यो भवति । उप-
लक्षणम् एतत् । सर्वेषां वैदिकानां स्मार्तानां च कर्मणाम् अग्नि-
साध्यत्वात् तत्कर्मफलस्य प्रापयितारः हे गार्हपत्यादयोग्नयः
जनित्रीम् स्वोत्पादिकाम् अरणिम् । ❀ “जनिता मन्त्रे” इति
निपातनात् णिलोपः । प्रत्येकविवक्षया एकवचनम् ❀ । आ
रोहत शक्त्यात्मना प्रविशत ॥ अहमपि अरणी आ रोहतो वः
युष्मान् पितृयाणैः । पितरो यान्ति एभिः पथिभिः पित्र्यं लोकम्
इति पितृयाणाः पन्थानः । ❀ करणे ल्युट् ❀ । द्विविधो हि
मार्गः देवयानः पितृयाण इति । देवलोकप्राप्तिसाधनभूतो देवयानः ।
पितृलोकप्रापक इतरः । तत्र तैः पितृयाणैः समा रोहयामि
सम्यक् विधिपूर्वकम् अधिरोहयामि अरण्योः । अग्नीनां तत्रानुप-
वेशे पथा भाव्यम् इति पितृसंबन्धात् पन्थास्तादृश उक्तः । आहि-
ताग्नेर्मृतत्वाद् उत्तरत्र तेन अग्निभिः साध्यानां कर्मणाम् अभा-
वात् समारोपणम् ॥ इतः पूर्वं तु हव्यवाहः । द्विविधं हि हविः ।
दैवं हविर्हव्यम् पित्र्यं हविः कव्यम् । पूर्वं पित्र्यहविःसंबन्धाभावात्
हव्यम् इत्युक्तम् । हव्यं दैवं वहतीति हव्यवाहः अग्निः । ❀ “कर्म-
ण्यण्” । हविर्वोदृत्वाकारेण एकत्वाद् एकवचनम् ❀ । अग्निरपि
द्विविधः । हव्यवाहनः कव्यवाहन इति । इषिता इषितानि इष्टानि ।
❀ “तीषुसह०” इति इडागमः ❀ । तत्तत्फलसाधनत्वेन अभि-
मतानि यजमानेन दत्तानि हव्या हव्यानि हवींषि अवाट् अवा-

क्षीत् । उद्दिष्टान् देवान् प्रापिपत् । ❀ वहेर्लुङि सिच् । “वद-
व्रज०” इति हलन्तलक्षणा वृद्धिः । “बहुलं छन्दसि” इति इड-
भावः । “भूलो भूलि” इति सकारलोपः । “हल्ङ्या०” इत्या-
दिना तिपो लोपे ढत्वजश्त्वचत्त्वानि ❀ । अतः हे अग्नयः यूयं
युक्ताः परस्परं समवेताः सन्तः ईजानम् येन यूयम् आहिता इष्टाश्च
तम् इष्टवन्तं देशान्तरे मृतं यजमानं सुकृतम् सुकृतकर्मणां लोके
स्थाने धत्त धारयत स्थापयत । ❀ ईजानम् इति । यजेर्लिटः
कानचि “वचिस्वपि०” इति संप्रसारणे “लिटचभ्यासस्य०” इति
अभ्यासस्य संप्रसारणम् ❀ ॥ यद्वा हे जातवेदसः जनित्रीम् अर-
णीम् आ रोहत आहवनीयादिशक्तिरूपेण । अरणी आरूढवतो
चः युष्मान् पितृयाणैर्मार्गैः समा रोहयामि । पुण्यलोकम् इति
शेषः । यजमानस्य देशान्तरे मरणात् तत्प्रतिनिधित्वेन तदाहिता-
नाम् अग्नीनां परलोकनयनम् । अत एव अग्नीनामपि पितृयाणः
पन्था उक्तः । गार्हपत्याद्याकारेण परलोकनयने तदर्थं हविषोऽपेक्षि-
तत्वात् हविःसद्भावं तन्नेतारम् अग्निं च दर्शयति । हव्यवाहः ।
अत्र हविषः अग्निदेवत्यत्वात् हव्यम् इत्युक्तम् । तद्वहतीति हव्य-
वाहः अग्निः । इषिता इषितानि । ❀ इष गताविति धातुः ❀ ।
अस्माभिः संस्कृतृभिः प्रेषितानि प्रत्तानि हव्या हव्यानि अवाट्
अवाक्षीत् वक्ष्यति प्रापयिष्यति युष्मान् । ❀ वहेरञ्छान्दसो लुङ् ❀ ।
एवं पुण्यलोकं प्रापिताः हविर्भिः प्रीणयिष्यमाणाश्च हे अग्नयः
यूयं युक्ताः समाहिताः सन्तः । ❀ युज समाधौ इति धातुः ❀ ।
ईजानम् इष्टवन्तं पुण्यलोके स्थापयतेति ॥

हे गार्हपत्य आदि अग्नियों ! तुम जातवेदा हो अर्थात् उत्पन्न
हुए प्राणिमात्र तुमसे धन पाते हैं, अत एव तुम जातवेदा हो
(अर्थात् क्या वैदिक और क्या स्मार्त सब ही कर्म अग्निसाध्य
होनेसे कर्मफलको प्राप्त करानेवाले हैं) ऐसे तुम अपनेको उत्पन्न

करने वालीं अरणियोंमें प्रवेश करो, मैं भी अरणीमें आरोहण करते हुए तुमको पितृयानोंके द्वारा अरणियोंमें आरोहण कराता हूँ (जिन मार्गोंसे पितर पितृलोकमें जाते हैं वे पितृयान कहलाते हैं । मार्ग दो प्रकारका होता है देवयान और पितृयान । देवलोक की प्राप्ति साधनरूप मार्ग देवयान कहलाता है और दूसरा पितृयान कहलाता है । आहिताग्निके मर जाने पर आहिताग्नि अग्नियोंसे वियुक्त होनेके कारण भविष्यमें अग्निसाध्य कर्मोंको न कर सकेगा अत एव अग्नियोंका समारोहण कहा । अब हवि दो प्रकारकी होती है दैव हवि हव्य कहलाती है, पित्र्य हवि कव्य कहलाती है पहिले पित्र्यहविके अभाववश यहाँ हव्यका वर्णन है । दैव हव्यको वहन करनेवाले अग्नि हव्यवाट् कहलाते हैं । और पितरोंकी हविका वहन करने वाले कव्यवाट् कहलाते हैं ऐसे) हव्यवाहन अग्निने यजमानके दिये हुए हव्योंको तत् तत् कर्मोंका फल देने वाले देवताओंको पहुँचाया था, अत एव हे अग्नियों ! जिसने तुम्हारा आधान और यजन किया था उस विदेशमें मरे हुए यजमानको तुम पुण्ययात्राओंके लोकमें स्थापित करो ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

देवा यज्ञमृतवः कल्पयन्ति हविः पुरोडाशं सुचो यज्ञायु-
धानि ।

तेभिर्याहि पथिभिर्देवयानैर्यैरीजाना स्वर्गं यन्ति लोकम्

देवाः । यज्ञम् । मृतवः । कल्पयन्ति । हविः । पुरोडाशम् । सुचः ।

यज्ञऽआयुधानि ।

६८६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

संभिः । याहि । पथिभिः । देवयानैः । यैः । ईजानाः । स्वःऽगम् ।

यन्ति । लोकम् ॥ २ ॥

देवाः इन्द्राद्या यष्टव्या देवताः ऋतवः वसन्ताद्याश्च कालाः यज्ञं कल्पयन्ति कुर्वन्ति । स्वयं हविःस्वीकारार्थं यष्टुणां च फलसिद्धयर्थं यज्ञं निर्भिमतम् । तत्स्वरूपं दर्शयति । हविः चर्वाज्यसोमलक्षणं हविः । पुरोडाशम् पिष्टमयम् । स्रचः । उपलक्षणम् एतत् । जुहादीनि यज्ञोपयुक्तानि । यज्ञायुधानि पात्राणि आयुधवद् आयुधानि । यथा योद्धारः आयोधनसाधनैः शस्त्रादिभिर्द्विषो निघ्नन्ति एवं यष्टारोपि एतैः स्रुगादिपात्रैर्यज्ञविद्वेषकारिणः स्वोपद्रवकारिणश्च परिहरन्तीति आयुधत्वोपचारः । एवं देवर्तुनिर्मितपुरोडाश-यज्ञायुधात्मकयज्ञम् अनुष्ठितवन् हे आहिताग्ने प्रेत त्वं देवयानैः देवा यान्ति एभिरिति देवयानास्तैर्देवलोकप्राप्तिसाधनैस्तेभिस्तैः पथिभिः मार्गैः याहि गच्छ । गन्तव्यं स्थानं दर्शयति । ईजानाः इष्टवन्तः कृतयज्ञाः पुरुषा यैः पथिभिः स्वर्गम् सुखात्मकं लोकम् स्थानं यन्ति गच्छन्ति ॥

इन्द्र आदि पूजनीय देवता, वन्सत आदि ऋतु यज्ञकी कल्पना करते हैं । चरु घृत और सोमरूप हवि, पिष्टमय पुरोडाश, स्रवा आदि यज्ञके पात्र, यज्ञके जुहु आदि पात्ररूप आयुध भी यज्ञकी कल्पना करते हैं । इस प्रकार देवनिर्मित पुरोडाश यज्ञायुधात्मक यज्ञका अनुष्ठान करने वाले हे आहिताग्ने प्रेत ! तू देवयान मार्गों से जा । यज्ञ करने वाले पुरुष जिन मार्गों से जाते हैं जिन मार्गों से सुखात्मक स्वर्गलोकको जाते हैं उस देवयानमार्ग से तू प्रस्थान कर २

तृतीया ॥

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतौ येन यन्ति ।

तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधुं भक्षयन्ति
तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥ ३ ॥

ऋतस्य । पन्थाम् । अनु । पश्य । साधु । अङ्गिरसः । सुकृतः ।
येन । यन्ति ।

तेभिः । याहि । पथिभिः । स्वर्गम् । यत्र । आदित्याः । मधुं ।
भक्षयन्ति । तृतीये । नाके । अधि । वि । श्रयस्व ॥ ३ ॥

ऋतस्य सत्यभूतस्य यज्ञस्य पन्थाम् पन्थानम् । ❀ सुपो डा-
देशः ❀ । साधु सम्यक् । पथो वा विशेषणम् । ❀ सुपो लुक् ❀ ।
साधुं समीचीनम् अर्चिरादिमार्गम् अनु पश्य अनुक्रमेण जानीहि ।
❀ पश्यतिज्ञानार्थः ❀ । सुकृतः सुकर्माणः अङ्गिरसः एतत्संज्ञका
महर्षयः अङ्गारोत्पन्नाः । “येङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन्” इति
ऐतरेयकथ्रुतेः [ऐ० ब्रा० ३. ३४] । येन पथा यन्ति स्वर्गलो-
कम् । अङ्गिरसां सत्त्रयागानुष्ठानेन स्वर्गलोकप्राप्तिः ऐतरेयके
श्रूयते । “अङ्गिरसो वा इमे स्वर्गाय लोकाय सत्रम् आसते” इति ।
“तं स्वर्गन्तो ब्रवन्नेतत् ते ब्राह्मण सहस्रम् इति” [इति ऐ० ब्रा०
५. १४] । तेभिः तैः पथिभिः मार्गैः स्वर्गं याहि । प्रेत एव सं-
बोध्यते । यत्र यस्मिन् स्वर्गे आदित्याः अदितेः पुत्रा देवाः मधु
मधुवत्प्रीतिकरं मधुरम् अमृतं भक्षयन्ति आस्वादयन्ति । गत्वा च
तृतीये त्रित्वसंख्यापूरके उत्तमे नाके । कम् सुखम् । अकम् दुःखम् ।
न विद्यते अकं यस्मिन् । ❀ “नभ्राएनपात्” इति नाकशब्दो
नलोपाभावेन निपातितः । अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ❀ । तस्मिन्
सुखात्मके स्वर्गे वि श्रयस्व विश्रितः प्रतिष्ठितो भव । यद्वा स्वर्गस्य
लोकस्य उत्तममध्यमाधमभेदेन त्रिवृत्त्वात् तृतीये नाक इत्युक्तम् ।

६८८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तथा च ऐतरेयकम् । “त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः” इति [ऐ०
ब्रा० २. १७] । मन्त्रवर्णोपि “तिस्रो भूमीर्धारयन्त्री रूत द्यून्”
[ऋ० २. २७. ८] इति । तथा “यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां
मध्यमस्याम् अवमस्याम् उत स्थः” इति च [ऋ० १. १०८. १०] ॥

हे प्रेत ! तू सत्यभूत यज्ञके समीचीन अर्चिरादिमार्गसे भली
प्रकार जान अंगार गोत्रमें ‡ उत्पन्न हुए अङ्गिरस महर्षि जिस
मार्गसे — स्वर्गको गए हैं उन मार्गोंसे तू स्वर्गलोकको जा । जिस
स्वर्गमें अदितिके पुत्र देवता मधुकी समान प्रसन्न करने वाले
मधुर अमृतका आस्वादन लेते हैं उस दुःखके लेशसे भी रहित
तृतीय स्वर्गलोकमें हे प्रेत ! तू प्रतिष्ठित हो ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि
श्रिताः ।

स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुहाम्

त्रयः । सुपर्णाः । उपरस्य । मायू इति । नाकस्य । पृष्ठे । अधि ।

विष्टपि । श्रिताः ।

स्वःऽगाः । लोकाः । अमृतेन । विस्थाः । इषम् । ऊर्जम् । यज-
मानाय । दुहाम् ॥ ४ ॥

‡ ऐतरेय ब्राह्मण ३ । ३४ में लिखा है, कि—“येऽङ्गारा आसन्
तेऽङ्गिरसोऽभवन् ।—जो अंगार थे वे अंगिरस हुए ।”

— अंगिरसोंको सत्रयागानुष्ठानसे स्वर्गप्राप्तिका वर्णन ऐत-
रेय ब्राह्मण ५ । १४ में लिखा है, कि—अंगिरसो वा इमे स्वर्गाय
लोकाय सत्रं आसते” ॥

त्रयः त्रिसंख्याकाः सुपर्णाः सुपतना अग्निसूर्यसोमाः उपरस्य ।
 “उपर उपलो मेघो भवति” इति यास्कः [नि० २. २१] । तस्य
 मेघस्य संबन्धिनौ मायू । ❀ मायुशब्दो लुप्तमत्वर्थीयः ❀ । मायु-
 मन्तौ शब्दकारिणौ वायुपर्जन्यौ । तौ हि मेघसंबन्धेन शब्दका-
 रिणौ । एते अग्न्यादयः अधिष्ठातृदेवाः क्रमेण नाकस्य स्वर्गस्य
 पृष्ठे उपरिभागे तृतीयकक्ष्यायां विष्टपि । विष्टपशब्दः अन्तरिक्ष-
 वचनः । ❀ सप्तम्येकवचने अन्त्यलोपश्चान्दसः ❀ । तस्मिन् विष्टपे
 अधि श्रिताः । अग्न्यादयः स्वर्गलोकम् वायुपर्जन्यावन्तरिक्षलोकम्
 अधितिष्ठन्तीत्यर्थः । एतैरग्न्यादिभिरधिष्ठिताः स्वर्गाः सुखात्मका
 लोकाः स्वकर्मभिरार्जिताः । कर्मभेदात् फलवैविध्येन उत्तमादि-
 भेदेन वा स्वर्गा लोका इति बहुवचनम् । अमृतेन अमरणसाध-
 नेन सुधारसेन विष्टाः व्याप्ताः पूर्णाः । ❀ विष्टू व्याप्तौ ।
 अस्मात् निष्ठाप्रत्ययः ❀ । यजमानाय यज्ञं स्मार्तं वैदिकं वा अनु-
 ष्ठितवते प्रेताय इष्टम् इष्ट्यमाणम् अन्नम् ऊर्जम् बलकरम् अन्नरसं
 च दुहाम् दुहतां प्रयच्छन्तु । ❀ दुहेर्लोटि भस्य अदादेशः ।
 “आम् एतः” । “लोपस्त आत्मनेपदेषु” इति तकारलोपः ।
 “बहुलं छन्दसि” इति भादेशस्य तस्य रुडागमः ❀ ॥

सुन्दरतासे गमन करने वाले तीन अग्नि वायु और सूर्य, तथा
 मेघके सम्बन्धसे शब्द करनेवाले वायु और पर्जन्य, ये सब अधि-
 ष्ठात्री देवता क्रमसे नाकके ऊपर विष्टपमें स्थित हैं, तात्पर्य
 यह है, अग्नि आदिक स्वर्गलोकमें और वायु तथा पर्जन्य
 अन्तरिक्षलोकमें अधिष्ठित हैं । यह अपने कर्मोंसे अर्जित,
 अग्नि आदिसे अधिष्ठित स्वर्गलोक अमरणके साधन सुधारससे
 पूर्ण हैं, ये स्मार्त वा वैदिक कर्मका अनुष्ठान करने वाले प्रेत यज-
 मानके लिये अभिलषित अन्न और अन्नरस प्रदान करें ॥४॥

पञ्चमी ॥

जुहू॒र्दा॒धार॒द्यामु॒पभृ॒दन्तरि॑क्षं ध्रु॒वा दा॒धार पृथि॒वीं प्रति॒-
ष्ठाम् ।

प्रती॒मां लो॒का घृ॒तपृ॒ष्ठाः स्व॒र्गाः का॒मंका॒मं यज॑मानाय
दुहाम् ॥ ५ ॥

जुहूः । दा॒धार । द्याम् । उप॒भृत् । अन्त॑रि॒क्षम् । ध्रु॒वा । दा॒धार ।
पृथि॒वीम् । प्रति॑स्थाम् ।

प्रति । इ॒माम् । लो॒काः । घृ॒तपृ॒ष्ठाः । स्वः॒ऽगाः । का॒मम्॒ऽका॒मम् ।
यज॑मानाय । दुहाम् ॥ ५ ॥

जुहूः जुहोति हूयते वा अनया हविरिति जुहूर्होमसाधनभूतः
पात्रविशेषः । ॐ जुहोतेर्द्वे च इति क्विप् द्विर्वचनं चकाराद् धातो-
र्दीर्घश्च ॐ । द्याम् द्युलोकं दाधार धृतवती । ॐ धरतेर्भौवादिक-
स्य लिटि तुजादित्वाद् अभ्यासस्य दीर्घः ॐ । उपभृत् उप
समीपे जुहाः भ्रियते धार्यत इति उपभृत् एतत्संज्ञकः पात्रविशेषः
अन्तरिक्षम् अन्तराक्षान्तं मध्यमलोकं धरति । ध्रुवा बर्हिषि आसा-
दनम् आरभ्य यज्ञपरिसमाप्तेस्त्वलभावा ध्रुवा प्रतिष्ठिता एतत्संज्ञका
सूक् प्रतिष्ठाम् चराचरात्मकस्य जगत आश्रयभूतां पृथिवीम् प्रथितं
भूमिं दाधार । एवं जुहाद्यास्तिस्रः सूचो द्युलोकादिधारकत्वेन
प्रशस्ताः ॥ इमाम् ध्रुवया धारितां पृथिवीं प्रति अभिलक्ष्य घृत-
पृष्ठाः । ॐ घृ क्षरणदीप्त्योः ॐ । दीप्तोपरिभागाः सर्वतो ज्योति-
ष्मन्तः स्वर्गाः सुखात्मका लोकाः । कद्यात्रयवत्त्वाद् बहुवचनम् ।
यजमानाय इष्टवते कामं कामम् । ॐ “नित्यवीप्सयो” इति द्वि-
र्भावः ॐ । काम्यमानानि सर्वाणि कल्बानि दुहाम् ॥ पूर्वस्मिन्

मन्त्रे तृतीये नाके अग्निं वि श्रमस्वेति उत्तमं स्वर्गं लोकम् आरूढ-
वतो यजमानस्य स्वकर्माजिताः पुण्यलोकाः सुकृतफलं प्रयच्छन्तु
इत्युक्तम् । अस्मिंस्तु मन्त्रे पुण्यक्षयानन्तरं मर्त्यलोकं प्राप्तवतः
अस्यैवाहिताग्नेः पूर्वजन्मार्जितसुकृतवासनावत्ताद् इह लोकेऽपि पुनः
स्वर्गलोकप्रापकाणि यज्ञादीनि समीचीनानि कर्माणि भवन्तु इत्या-
शास्यते । तथा च भगवतोक्तम् ।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गंति प्रार्थयन्ते ।

ते पुण्यम् आसाद्य सुरेन्द्रलोकम् अश्नन्ति दिव्यान् दिविदेव-
भोगान् ।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥
इति [भ० गी० ६. २०, २१] ॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः ।

शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।

यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥

इति च [भ० गी० ६. ४३] ॥

जिससे हवि होमी जाती है वह होमका पात्र जुहू कहलाता
है उस जुहूने द्युलोकको पुष्ट किया है, और जुहूके समीप धारण
किया जाने वाला उपभृत् नामक पात्र अन्तरिक्षलोकको धारण
करता है, तथा यज्ञमें बैठनेसे लेकर यज्ञकी समाप्ति तक अचल
रहने वाला ध्रुवा पात्र—चराचरात्मक जगत्की आश्रयभूता प्रतिष्ठा
विस्तृत भूमिको धारण करता है [इस प्रकार जुहू आदि तीनों
सूक्ष्मकी द्युलोक आदिके आधाररूपसे प्रशंसा की] इस ध्रुवा
से धारित पृथ्वीको लक्ष्यमें रख कर दमकते हुए उपरि भागवाले

६६२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सुखात्मक स्वर्गलोक, यज्ञ करने वाले यजमानके लिये सकल अभिलषित फलोंको दें ‡ ॥ ५ ॥

‡ पहिले मन्त्रमें “तृतीये नाके अधि विश्रयस्व” । से कहा, कि—उत्तम लोक स्वर्गमें चढ़ते हुए यजमानको अपने कर्मसे संपादित पुण्यलोक पुण्यके फलको देवें ।” अब इस मन्त्रमें यह कहा है, कि—पुण्यक्षयके अनन्तर यदि यह यजमान मृत्युलोकमें आजावे तो इस आहिताग्निको पूर्वजन्ममें एकत्रित किये हुए पुण्योंकी वासनाके बलसे इस लोकमें भी फिर स्वर्गलोकको प्राप्त कराने वाले यज्ञ आदि समीचीन कर्म प्राप्त हों । इसी बातको श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है, कि—“त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते । ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकं अश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवलोकान् ॥ ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥—ऋक् यजु साम इन तीनों वेदोंको जानने वाले पुरुष ज्योतिष्ठोम आदि यज्ञोंसे यजन कर अन्तमें सोमका पान करते हैं तब उनके पाप प्रक्षालित होजाते हैं और वे मुझसे स्वर्गप्राप्तिकी प्रार्थना करते हैं । तब वे पुण्यमय सुरेन्द्रलोकको पाकर स्वर्गमें (मनुष्योंको दुर्लभ) दिव्य भोगोंको भोगते हैं, उस विशाल स्वर्गलोकमें भोग भोग चुकने पर वह पुण्य क्षीण होजानेसे मृत्युलोकमें प्रवेश करते हैं” अध्याय ६ श्लोक २० और २१ ॥ तथा भगवद्गीताके छठे अध्यायके तैंतालीसवें श्लोक में कहा है, कि—“प्राप्य पुण्यकृतां लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः । शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् । यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥—अर्थात् योगभ्रष्ट पुरुष पुण्य करने वालोंके लोकको प्राप्त होता है और तहाँ बहुत वर्षों तक रह कर वादको श्रीमान् और पवित्रतासे रहने वालोंके घरमें उत्पन्न होता है, फिर तहाँ

षष्ठी ॥

ध्रुव आ रोह पृथिवीं विश्वभोजसमन्तरिक्षमुपभृदा
क्रमस्व ।

जुहु द्यां गच्छ यजमानेन साकं सुवेण वत्सेन दिशः
प्रपीनाः सर्वा धुक्वाहणीयमानः ॥ ६ ॥

ध्रुवे । आ । रोह । पृथिवीम् । विश्वऽभोजसम् । अन्तरिक्षम् ।
उपभृत् । आ । क्रमस्व ।

जुहु । द्याम् । गच्छ । यजमानेन । साकम् । सुवेण । वत्सेन ।
दिशः । प्रऽपीनाः । सर्वाः । धुक्वा । अहणीयमानः ॥ ६ ॥

हे ध्रुवे एतन्नामधेये सूक् । ❀ “आमन्त्रितस्य च” इति पाठि-
नम् आह्वदात्तत्वम् ❀ । विश्वभोजसम् विश्वस्य भोजयित्रीं
सस्यादिद्वारेण विश्वभोगाधिकरणभूतां वा पृथिवीम् आ रोह
अधितिष्ठ । यजमानेन साकम् इति तृतीयवाक्ये समाप्तातस्य सर्व-
त्रानुषङ्गः । यजमानोपि पृथिवीम् अधितिष्ठतु । ❀ “सहयुक्तेऽप्र-
धाने” इति तृतीया ❀ । ध्रुवा नाम सूक् बर्हिषि आसादिता यज्ञ-
परिसमाप्तिपर्यन्तम् आड्येन संपूर्णा अविचलिता वर्तते । पृथिव्यपि
स्थिरा । अतस्तस्या सा अग्निष्ठात्रीत्युच्यते ॥ हे उपभृत् अन्तरि-
क्षम् मध्यमलोकम् आ क्रमस्व आक्राम । ❀ ज्योतिरुद्गमनाभा-
वेपि “आङ् उद्गमने” इति आङ्पूर्वात् क्रमेर्व्यत्ययेन आत्मनेप-
दम् ❀ । अध्वर्युणा हि हस्ताभ्यां जुहूरुपभृच्च यागकाले धार्यते ।
पूर्वजन्मकी बुद्धिको पाता है और हे कुरुनन्दन ! फिर सिद्धि
पानेके लिये उद्योग करने लगता है”

६६४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तत्र उपभृत् सव्यहस्तेन गृहीत्वा दक्षिणेन जुहा जुहोति । अतोत्र जुहा उपभृत् अधस्तनीति मध्यमलोकाधिष्ठातृत्वेन उच्यते ॥ हे जुहु ग्राम् दिवं यजमानेन साकम् सह गच्छ । हे ध्रुवादिस्रुचः स्रुचं क्रमेण पृथिव्यादिलोकान् यजमानेन अधिष्ठापयतेत्यर्थः ॥ अथ प्रत्यक्षवदुक्तिः । एवं स्रग्भिलोकात्रयं प्रापितो यजमानस्त्वम् अहणीयमानः । ❀ “हणीङ् रोषे लज्जायाम्” इति कण्डूवादौ पठ्यते ❀ । कथम् अहं व्याप्ता दिशः अभिलषितानि दुहीयेति विचिकित्साम् अकुर्वन् स्रुवेण वत्सेन वत्सवद् वत्सः वत्सो यथा प्रथमं सन्न्यपानेन मातरं पीनोर्ध्नीं करोति तद्वत् स्रुवोपि सर्वाणि जुहादीनि पात्राणि आज्यपूरितानि करोतीति वत्सत्वेन रूपितः । वत्सरूपेण स्रुवेण प्रपीनाः प्रकर्षेण प्रवृद्धस्तनीः । प्रस्तुतस्तनीरित्यर्थः । ताः सर्वा दिशः प्राच्याद्या दश दिशः कर्म धुक्च अभिलषितानि फलानि । ❀ दुहिर्द्विकर्मकः । प्रपीना इति । प्यायते-निष्ठायां पीभावः । “ओदितश्च” इति निष्ठानत्वम् ❀ ॥

हे ध्रुवा नामक स्रक् ! तू सस्य आदि विश्वभोगकी अधिकरणभूत पृथ्वी पर आरोहण कर और यजमान भी पृथ्वी पर अधिष्ठित रहे । [ध्रुवा नामक स्रुच यज्ञमें रखी जाने पर यज्ञकी पूर्तिपर्यन्त घृतसे पूर्ण अविचलित रहती है और पृथिवी भी स्थिर होती है अत एव वह उसकी अधिष्ठात्री कहलाती है] हे उपभृत् ! तू मध्यमलोक अन्तरिक्षमें चढ़ [अध्वर्यु यागके समय दोनों हाथोंसे जुहु और उपभृत्को धारण करता है । बायें हाथसे उपभृत्को पकड़ दायें हाथसे जुहुसे होम करता है अत एव जुहु से नीचे रहनेके कारण उपभृत् मध्यमलोककी अधिष्ठात्री कहलाती है] हे जुहु ! तू अलोकको यजमानके साथ जा, तात्पर्य यह है, कि-हे ध्रुवा आदि स्रुच ! तुम इस प्रकार क्रमसे यजमानके द्वारा पृथिवी आदि लोकोंमें स्थापित की जाओ । इस

प्रकार स्रुच् आदिके द्वारा तीनों लोकोंको प्राप्त हुआ तू यजमान
“मैं किस प्रकार इन व्याप्त दिशाओंमेंसे अभिलषित वस्तुओंको
दुहूँ” इस प्रकार ऊहापोह न करता हुआ स्रुचरूपी वत्ससे †
प्रवृद्धस्तनी सब दिशाओंसे अभिलषित फलोंको दुह ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त

तीर्थैः । तरन्ति । प्रवतः । महीः । इति । यज्ञकृतः । सुकृतः ।

येन । यन्ति ।

अत्र । अदधुः । यजमानाय । लोकम् । दिशः । भूतानि । यत् ।

अकल्पयन्त ॥ ७ ॥

तीर्थैः । ❀ तरन्ति दुष्कृतानि एभिरिति करणे कथन् प्रत्ययः ❀ ।
तरणसाधनैर्यज्ञादिभिः प्रवतः । ❀ “उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे”
इति वतिप्रत्ययः । वतेः अव्ययत्वेपि अर्थग्रहणसामर्थ्यान्लिङ्गसंख्या-
योगः ❀ । प्रवतः प्रकृष्टा महीः महतीः आपदस्तरन्ति अतिक्रा-
मन्ति इति एवं यज्ञादीनि आपदुत्तरकाणि भवन्तीति बुद्ध्या यज्ञ-
कृतः यज्ञं वैदिकं स्मार्तं च कुर्वाणा अत एव सुकृतः सुकृतकर्माणो
येन पथा यन्ति प्राप्तवन्ति पुण्यलोकम् अत्र अस्मिन् पुण्यलोक-
प्राप्तिसाधने पथि तं पन्थानम् अनुसृत्य आगच्छते यजमानाय तदर्थं
लोकम् पुण्यार्जितम् अदधुः विदधतु यज्ञकृतः सुकृतकर्तारः दिशो

† जैसे बछड़ा पहिले स्तनोंका पान कर माताके ऐनोंको मोटा
कर देता है, इसी प्रकार स्रुच् भी जुहू आदि सब पात्रोंको घृतसे
पूरित करता है अतः उसको बछड़ा कहा है ।

६६६ अथवेवेदसहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

भूतानि वा । ❀ दधातेश्चान्दसोलुङ् ❀ । यत् ❀ सुपो लुक् ❀ ।
यं लोकं दिशा “सत्रेण वत्सेन दिशः प्रपीनाः सर्वा धुक्च” इति
पूर्वमन्त्रे अभिलषितफलप्रदस्त्वेन उपवर्णिता दिशः भूतानि भवन-
वन्ति सर्वदिगवस्थितप्राणिजातानि च अकल्पयन्त यजमानार्थं
समपादयन् । तं लोकम् अदधुरिति पूर्वेण संबन्धः ॥

“पापोंसे पार उतारने वाले तीर्थ यज्ञ आदिसे पुरुष बड़ी २
विशाल विपत्तियोंको लाँघ जाते हैं” इस प्रकार यज्ञ आदि
आपत्तिसे पार करने वाले होते हैं—यह विचार वैदिक और स्मार्त-
कर्मरूप यज्ञको करने वाले पुण्यात्मा पुरुष जिस मार्गसे स्वर्ग-
लोकको प्राप्त होते हैं, स्वर्गलोकप्राप्तिके मार्गसमूहमें उस मार्गको
ढूँढनेके लिये आते हुए इस यजमानके लिये यज्ञकर्ता पुण्यात्मा
दिशा वा भूत उस मार्गको और लोकको बनावें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अङ्गिरसामयनं पूर्वं अग्निरादित्यानामयनं गार्हपत्यो
दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः ।

महिमानमग्नेर्विहितस्य ब्रह्मणा समङ्गः सर्व उप याहि
शमः ॥ ८ ॥

अङ्गिरसाम् । अयनम् । पूर्वः । अग्निः । आदित्यानाम् । अयनम् ।

गार्हपत्यः । दक्षिणानाम् । अयनम् । दक्षिणऽअग्निः ।

महिमानम् । अग्नेः । विहितस्य । ब्रह्मणा । समऽअङ्गः । सर्वः ।

उप । याहि । शमः ॥ ८ ॥

परितञ्चिताम् आहिताग्नेर्गार्हपत्यादयोऽग्नयो विहृता यथाप्रदेशं

वर्तन्ते । तेऽग्नयः अभिलषितप्रदा भवन्तु इत्ययम् अर्थः इत उत्तरै-
र्मन्त्रैः प्रतिपाद्यते । अङ्गिरसाम् अयनं नाम सत्रात्मकः क्रतुविशेषः ।
स एव पूर्वः पूर्वस्यां दिशि वर्तमानोऽग्निः आहवनीयः । आदित्या-
नाम् अयनम् एतत्संज्ञकः सत्रयागः गार्हपत्योऽग्निः । ॐ “गृह-
पतिना संयुक्ते ज्यः” इति ज्यप्रत्ययः ॐ । दक्षिणानाम् दक्षा
एव दक्षिणाः दक्षाणाम् अयनं सत्रविशेषः स एव दक्षिणाग्निः
दक्षिणस्यां दिशि वर्तमानोऽग्निः ॥ एवं ब्रह्मणा मन्त्रेण मन्त्रसाध्य-
सत्रयागात्मना वा विहितस्य निर्मितस्य पृथगायतनेषु स्थापितस्य
अग्नेर्षहिमानम् आहवनीयादिसंज्ञाभिव्यञ्जयिमाणां विभूतिं समङ्गः
संहतावयवः सर्वः संपूर्णावयवः अतः शम्भः । सुखनामैतत् ।
सुखितः सन् उप याहि । सर्वैरग्निभिर्दह्यमानः प्रेत एवम् उच्यते ॥

[अब यहाँसे लेकर अगले मंत्रोंमें यह प्रतिपादन किया जाता
है, कि—] आहिताग्निकी चारों ओरसे चिनी हुई चितामें रखी
हुई गार्हपत्य आदि अग्नियों यथाप्रदेश रहती हैं । वे अग्नियों अभि-
लषित फलको देवें । पूर्वदिशामें वर्तमान आहवनीय अग्नि अंगि-
राओंका अयन नामक सत्रात्मक एक क्रतु है । गार्हपत्य अग्नि
आदित्योंका अयन नामक सत्रयाग है । दक्षिणदिशामें वर्तमान
दक्षिणाग्नि दक्षायन नामक सत्र है । इस प्रकार मन्त्रसाध्य सत्र-
यागरूपसे पृथक् २ स्थानोंमें स्थापित अग्निकी आहवनीय आदि
नामोंसे व्यवहृत विभूतिको हे प्रेत ! तू सम्पूर्णावयव होकर अत
एव सुख पाता हुआ प्राप्त हो अर्थात् तू सब अग्नियोंसे भस्म हो ८
नवमी ॥

पूर्वो अग्निष्ठां तपतु शं पुरस्ताच्छं पश्चात् तपतु गार्हपत्य
दक्षिणाग्निष्टं तपतु शर्म वर्मोत्तरतो मध्यतो अन्त-
रिक्षाद् दिशोदिशो अग्ने परि पाहि घोरात् ॥६॥

६६८

अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

पूर्वः । अग्निः । त्वा । तपतु । शम् । पुरस्तात् । शम् । पश्चात् ।
तपतु । गार्हपत्यः ।

दक्षिणऽअग्निः । ते । तपतु । शर्म । वर्म । उत्तरतः । मध्यतः ।

अन्तरिक्षात् । दिशःऽदिशः । अग्ने । परि । पाहि । घोरात् ६

हे अग्निभिर्दह्यमान प्रेत पूर्वो अग्निः पूर्वस्यां दिशि दीप्यमान
आहवनीयः पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि शम् सुखं यथा तथा त्वा
त्वां तपतु तापयतु दहतु । तथा गार्हपत्यः गृहपतिना यजमानेन
आहितः सर्वाग्नियोनिभूतोग्निः पश्चात् पश्चिमभागे शम् सुखं तपतु
त्वां दहतु । दक्षिणाग्निः दक्षिणस्यां दिशि निहितोग्निस्ते त्वदर्थं
शर्म सुखं यथा तथा वर्म कवचं पराभेद्यं यथा तथा तपतु । कवचं
यथा सर्ववारकम् यद्वा शर्म गृहम् गृहं यथा सर्वाच्छादकम् एवं
सर्वं त्वदीयशरीरम् आवृत्य दहत्वित्यर्थः ॥ अथ अग्नेः प्रत्यक्ष-
स्तुतिः । हे अग्ने । आहवनीयाद्यनुगतत्वाकारेण एकवचनम् ।
उत्तरतः । ❀ “पञ्चम्यास्तसिल” ❀ । उत्तरस्यादिशः ।
❀ “तसिलादिष्वाकृत्वसुचः” इति पुंवद्भावः ❀ । मध्यतः पूर्वा-
दीनां चतसृणां मध्यप्रदेशाद् अन्तरिक्षात् आकाशाद् दिशो दिशः
सर्वस्या अवान्तरदिशः परि पाहि परितो रक्ष ॥ न केवलं दिशो
घ्नन्ति किं तु तत्रस्थो भयंकरः पुरुषो हिनस्ति । तथा च महारण्यं
प्रस्तुत्य मन्त्रवर्णः । “न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति”
इति [ऋ० १०. १४६. ५] । अतो भीतिकारणम् आह घोरा-
दिति । घोरात् क्रूरात् हिंसकात् परि पाहि । ❀ “भीत्रार्थानां
भयहेतुः” इति सर्वत्र अपादानसंज्ञा । “अपादाने पञ्चमी” इति
पञ्चमी ❀ ॥

हे अग्नियोसे भस्म होते हुए प्रेत ! पूर्वदिशामें दमकते हुए

अग्निदेव, जिस प्रकार पूर्वदिशामें तुम्हको सुख प्राप्त हो तिस प्रकार तुम्हको भस्म करें। तथा गृहपति यजमानके द्वारा आहित स्थापित—सब अग्नियोंका कारण गार्हपत्य अग्नि तुम्हको पश्चिम दिशामें जिस प्रकार सुख प्राप्त हो तिस प्रकार भस्म करे। दक्षिण दिशामें स्थापित दक्षिणाग्नि जिस प्रकार तुम्हको सुख प्राप्त हो तिस प्रकार तथा कवचकी समान चारों ओरसे न भिदता हुआ तुम्हको भस्म करे, वा घरकी समान तुम्हको चारों ओरसे आच्छादित करके भस्म करे। हे अग्ने ! आप उत्तरदिशासे और पूर्व आदि चारों दिशाओंके मध्यभागसे आकाशसे और सब दिशाओं की अवान्तर दिशाओंसे अर्थात् उन दिशाओंके क्रूर हिंसक समुदायसे इस प्रेतकी रक्षा करिये [दिशाएँ किसीको नहीं मारती हैं किंतु उनमें स्थित भयंकर पुरुष मारते हैं अत एव यहाँ घोर—क्रूरहिंसक—कहा है। इसी बातको महावनको दिखाते हुए ऋग्वेदसंहिताके १०।१४६।५ के मन्त्रमें कहा है, कि—“न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।—यदि दूसरा न आवे तो महावन किसीको नहीं मार सकता”] ॥ ६ ॥

दशमी ॥

यूयमग्ने शंतमाभिस्तनूभिरीजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथ यत्र देवैः सधमादं
मदन्ति ॥ १० ॥

यूयम् । अग्ने । शम्स्तमाभिः । तनूभिः । ईजानम् । अभि ।

लोकम् । स्वःऽगम् ।

अश्वाः । भूत्वा । पृष्टिवाहः । वहाथ । यत्र । देवैः । सधमा-
दम् । मदन्ति ॥ १० ॥

हे अग्ने यूयम् । एकस्यैवाग्नेस्त्रेधाभवनाद् यूयम् इति बहुवचनम् । पृथगायतनेषु स्थापिता यूयम् शंतमाभिः अत्यन्तं सुखकरीभिस्तनूभिः शरीरैः । द्विविधाः खलु अग्नेस्तन्वः घोराश्च शिवाश्चेति । उभयस्तन्वस्तैत्तिरीयके श्रूयन्ते । “ये ते अग्ने शिवे तनुवौ विराट् च स्वराट् च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् । सम्राट् चाभिभूय । विभूश्च परिभूश्च । प्रभ्वी च प्रभूतिश्च । यास्ते अग्ने शिवास्तनुवः” इत्यादि [तै० ब्रा० १.१.७.३.] । “यास्ते अग्ने घोरास्तनुवः । जुञ्च तृणा च । अस्तुक् चानाहुतिश्च । अशनया च पिपासा च । सेदिश्वामतिश्च । एतास्ते अग्ने घोरास्तनुवः” इति [तै० आ० ४. २२] । तत्र शिवाभिस्तनूभिः सह ईजानम् येन यूयम् आहिता इष्टाश्च तम् इष्टवन्तं पुरुषं स्वर्गम् सुखेन गन्तव्यं सुखात्मकं लोकम् अभि वहाथ अभिगमयत । अग्नित्रयस्य गन्तव्यप्रापणे दृष्टान्तम् आह अश्वो भूत्वेति । प्रष्टिवाहः अश्वो भूत्वा । पुरस्ताद् एकः पश्चाद् द्वौ इत्येवं त्रिभिरश्वैर्युक्तो दैवो रथः प्रष्टिः । तं वहन् प्रष्टिवाहः अश्वो भूत्वा । समष्टिरूपेण एकवचनम् । एवं त्रिधाभवन्तो यूयम् एनं आहिताग्निं स्वर्गं लोकम् अभिगमयतेति । ❀ वहतर्लेटि आडागमः ❀ । यत्र यस्मिन् स्वर्गे लोके देवैः अमृतपैः सधमादम् सह मदो यस्मिन् कर्मणि तथा मदेम हृष्यास्म । उपस्तोतृन् गोत्रिणोऽपेक्ष्य उत्तमपुरुषो बहुवचनं च । ❀ “सधमादस्थयोश्छन्दसि” इति सहस्य सधादेशः । मदेमेति । माद्यतेः आशीर्लिङि “लिङ्याशिष्यङ्” इति अङ् प्रत्ययः ❀ ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

(एक ही अग्नि तीन रूपोंमें होगए हैं अत एव) हे अग्ने ! पृथक् २ स्थानोंमें स्थापित किये हुए तुम, जिसने तुम्हारा आधान और पूजन किया था उस यजमानको अपने परम कल्याण करने

वाले शरीरोंसे + आगे एक और पीछे दो घोड़े जोते जाने वाले दैव रथ पृष्ठिको खेंचने वाले घोड़ोंकी समान घोड़े बनकर स्वर्ग-लोकमें लेजाओ, उस स्वर्गलोकमें उपस्तोता वा गोत्र वालों सहित हम, देवताओंके साथ प्रसन्न होवें ॥ १० ॥ (२०)

अतुथ अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त ॥

“शमन्ने” इति द्वितीयसूक्ते आदितः पञ्चानाम् ऋचां चिति-स्थाहिताग्न्युपस्थाने विनियोग उक्तः । “ईजानश्चितमारुक्षत्” [१४] इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्यां चित्तावुत्तानम् आहितं प्रेतं कर्ता अनुमन्त्रयेत् । “अपूपवान् क्षीरवान्” [१६] इति नवभिर्ऋग्भिर्मन्त्रोक्तद्रव्ययुतान् नवसंख्याकांश्चरुन् अभिमन्त्र्य अस्थानां समीपे पश्चिमदिक्प्रभृत्यष्टसु दिक्षु एकं मध्य इति क्रमेण निदध्यात् ॥

+ अग्निके दो प्रकारके शरीर (लपटें) होते हैं एक घोर और दूसरे सुखप्रद । तैत्तिरीयकमें दोनों प्रकारके शरीरोंका वर्णन है, कि—“ये ते अग्ने शिवे तनुवौ विराट् च स्वराट् च ते मा विशतां ते मा जिन्वताम् । सम्राट् चाभिभूश्च । विभूश्च परिभूश्च । प्रभ्वी च प्रभूतिश्च । यास्ते अग्ने शिवास्तनुवः ० ।—हे अग्ने आपके जो विराट् और स्वराट् नामक कल्याणप्रद शरीर हैं वे, मुझमें प्रवेश करें मुझको प्रसन्न करें । सम्राट् अभिभू, विभू और प्रभू, प्रभ्वी और प्रभूति नामक जो आपके शरीर हैं वे मुझमें प्रवेश करें और मुझको प्रसन्न करें ०” (तैत्तिरीयब्राह्मण १ । १ । ७ । ३) । “यास्ते अग्ने घोरास्तनुवः । लुच्च तृष्णा च । अस्नुक् चानाहुतिश्च । अशनया च पिपासा च । सेदिश्चामतिश्च । एतास्ते अग्ने घोरास्तनुवः ।—जो आपके घोर शरीर हैं उनका वर्णन करता हूँ । भूख तृष्णा अस्नुक् अनाहुति, अशना पिपासा, सेदि और अमति हे अग्ने ! ये आपके घोररूप हैं” (तैत्तिरीय आरण्यक ४ । २२) ॥

७०२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

“शमग्ने” आदि द्वितीय सूक्तमें आरम्भकी पाँच ऋचाओंका चितामें स्थित आहिताग्निके उपस्थानमें विनियोग है। ‘ईजान-श्चितमारुतत्’ (१४) आदि दो ऋचाओंसे चितामें चित रक्खे हुए प्रेतका कर्ता अनुमन्त्रण करे। “अपूपवान् क्षीरवान् (१६) आदि सोलह ऋचाओंसे मन्त्रोक्त द्रव्य पढ़े नौ चरुओंको अभि-मन्त्रित करके अस्थियोंके समीपमें पश्चिम आदि आठ दिशाओं में और मध्यमें एकको रक्खे।

तत्र प्रथमा ॥

शमग्ने पश्चात् तप शं पुरस्ताच्छमुत्तराच्छमधरात्
तपैनम् ।

एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः सम्यगेनं धेहि सुकृतां सु
लोके ॥ ११ ॥

शम् । अग्ने । पश्चात् । तप । शम् । पुरस्तात् । शम् । उत्तरात् ।

शम् । अधरात् । तप । एनम् ।

एकः । त्रेधा । विहितः । जातवेदः । सम्यक् । एनम् । धेहि ।

सुकृतम् । ऊँ इति । लोके ॥ ११ ॥

हे अग्ने त्वं पश्चात् । ❀ “पश्चात्” इति निपातितोयं शब्दः ❀ । पश्चिमभागे गार्हपत्यः सन् शम् सुखं तप दह । पुर-स्तात् पूर्वभागे शम् । तपेत्यनुषङ्गः । उत्तरात् उत्तरदिक्प्रदेशे । अधरात् । अधरशब्देनात्र उत्तरप्रतियोगिनी दक्षिणा दिग् उच्यते । ❀ उभयत्र “उत्तराधरदक्षिणाद् आतिः” इति आतिप्रत्ययः ❀ । वाक्यभेदात् शंपदस्य आवृत्तिः । एनम् आहिताग्निं तप ॥ हे

जातवेदः जातानां वेदितरग्ने त्वं पूर्वम् एकोपि त्रेधा विहितः
गार्हपत्यादिरूपेण त्रिप्रकारं स्थापितः एनम् अन्वादिष्टम् अग्न्या-
हितम् प्रेतम् । उशब्दः अवधारणे । सुकृताम् सुकृतकर्तृणां लोके
स्थाने स्वर्गाख्य एव सम्यक् समीचीनं यथा तथा धेहि स्थापय ।
सम्यक्त्वं नाम अविकलं चिरकालावस्थायित्वम् ॥

हे अग्ने ! तुम पश्चिमभागमें गार्हपत्य रूपमें सुखपूर्वक भस्म
करो, पूर्वभागमें सुख प्राप्त हो तिस प्रकार भस्म करो । उत्तर
और दक्षिणा दिशामें भी हे अग्ने ! आप इस आहिताग्निको
भस्म करें, हे जातवेदा अग्ने ! यजमानने पहिले एक होनेपर भी
गार्हपत्य आदि रूपमें आपको तीन प्रकारसे स्थापित किया था
ऐसे इस अग्निहोत्रीको आप पुण्यात्माओंके लोकमें समीचीनरूप
से स्थापित करिये ॥ ११ ॥

द्वितीया ॥

शमन्नयः समिद्धा आ रभन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जात-
वेदसः ।

शृतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

शम् । अन्नयः । सम्मिद्धाः । आ । रभन्ताम् । प्राजापत्यम् ।

मेध्यम् । जातवेदसः ।

शृतम् । कृण्वन्तः । इह । मा । अव । चिक्षिपन् ॥ १२ ॥

आभ्याम् अग्नीन् संभूय प्रार्थयते । जातवेदसः जातानां वेदि-
तारोग्नयः समिद्धाः सम्यक् प्रदीपिताः सन्तः प्राजापत्यम् प्रजा-
पतिदेवत्यं मेध्यम् मेधो यज्ञः पिष्टमेधाख्यः तदर्हम् इमं प्रेतरूपं पशुं
समा रभन्ताम् संस्पृशन्तु परितो दहन्तु । इह अस्मिन् दहनकर्मणि

श्रुतम् प्राजापत्यम् इमं यज्ञार्हं पशुं पक्वं कृण्वन्तः कुर्वन्तः अवमा
चिक्षिपन् अवक्षिप्तम् अवकीर्णं मा कुर्वन्तु । यथा निरवशेषं दह्यते
तथेति । ❀ “सास्यदेवता” इत्येतस्मिन्नर्थे “०पत्युत्तरपदाण्ययः”
इति एयः । श्रुतम् इति । आ पाके इत्येतस्मात् कर्मकर्तरि निष्ठायां
“श्रुतं पाके” इति निपातनात् श्रुभावः ❀ ॥

उत्पन्न हुआ को जानने वाली अग्नियें प्रदीप्त होकर इस प्रजा-
पति देवता वाले पितृमेधके योग्य प्रेतरूप पशुका भली प्रकार
स्पर्श करें । अर्थात् इसको चारों ओरसे भस्म करें । इस दहन
कर्ममें इस प्राजापत्ययज्ञार्ह पशुको पकाती हुई अग्नियें इसको
इधर उधर न फेंके अर्थात् इसको अधिकचरा न जलावें जिस
प्रकार यह सब भस्म होजावे तिस प्रकार भस्म करडालें ॥१२॥

तृतीया ॥

यज्ञ एति विततः कल्पमान ईजानमभि लोकं स्वर्गम् ।
तमग्नयः सर्वहुतं जुषन्तां प्राजापत्यं मेध्यं जातवेदसः ।
श्रुतं कृण्वन्त इह माव चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

यज्ञः । एति । विततः । कल्पमानः । ईजानम् । अभि । लोकम् ।
स्वःऽगम् ।

तम् । अग्नयः । सर्वहुतम् । जुषन्ताम् । प्राजापत्यम् । मेध्यम् ।
जातवेदसः ।

श्रुतम् । कृण्वन्तः । इह । मा । अव । चिक्षिपन् ॥ १३ ॥

विततः प्राच्योदीच्याङ्गैर्विस्तृतः कल्पमानः इष्टं प्रदेशं प्रापयितुं
समर्थो यज्ञः पितृमेधाख्यः ईजानम् इष्टवन्तम् एनं स्वर्गम् सुखात्मकं

लोकम् अभ्येति । ❀ अन्तर्भावितण्यर्थोऽयम् एतिः ❀ । अभिग-
मयति अभिप्रापयति ॥ अतो जातवेदसः अग्नयः प्राजापत्यं मेध्यं
तम् ईजानं प्रेत रूपं पशुं सर्वहुतम् सर्वः निरवशेषः हुतो दग्धः
तं जुषन्ताम् सेवन्ताम् ॥ शृतम् इत्यादि व्याख्यातम् ॥

प्राच्य और उदीच्य अंगोंसे विस्तृत, इष्ट प्रदेशको प्राप्त कराने
की शक्ति रखने वाला यह पितृमेध नामक यज्ञ इस पूजन करने
वालेको सुखात्मक स्वर्गलोकको प्राप्त करारहा है । अत एव जात-
वेदा अग्निये इस सर्वहुत प्राजापत्य मेध्य पशुका सेवन करें और
इसको पक्व करती हुई अग्निये इसको इधर उधर फेंक कर—
छोड़ कर—अधजला न रहने दें ॥ १३ ॥

चतुर्थी ॥

ईजानश्चितमारुक्षदग्निं नाकस्य पृष्ठाद् दिवमुत्पतिष्यन्
तस्मै प्र भाति नभसो ज्योतिषीमान्स्वर्गः पन्थाः
सुकृते देवयानः ॥ १४ ॥

ईजानः । चितम् । आ । अरुक्षत् । अग्निम् । नाकस्य । पृष्ठात् ।
दिवम् । उत्पतिष्यन् ।

तस्मै । प्र । भाति । नभसः । ज्योतिषीमान् । स्वर्गः । पन्थाः ।

सुकृते । देवयानः ॥ १४ ॥

ईजानः इष्टवान् पुरुषः चितम् विषमसंख्याकाभिः शलाका-
भिरिष्टकाभिर्वा चयनेन संस्कृतम् अग्निम् प्रदेशम् । इष्टकचितः
प्रदेशः अग्निरित्युच्यते । उक्तं हि भगवता आपस्तम्बेन । “अग्नि-
ष्टोम उत्तरवेदिरुत्तरेषु क्रतुष्वग्निः” इति [आप० २५. ४] । तम्

आ अरुत्तत् आरूढवान् । ❀ रूहेर्लुङि “शल इगुपधाद् अनिटः०”
 इति कसः । कित्त्वाद् गुणाभावः ❀ । किमर्थम् नाकस्य दुःख-
 रहितस्य स्वर्गस्य पृष्ठे उपरिभागे दिवम् तृतीयकक्ष्यारूपं द्युलोकम् ।
 “त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः” इति श्रुतेः [ऐ० ब्रा० २. १७]
 एकैकस्य लोकस्य त्रिवृत्त्वाद् एकस्यापि स्वर्गलोकस्य उत्तमाधम-
 मध्यभेदेन त्रैविध्यम् । मध्यमायाः स्वर्गकक्ष्यायाः परमां तृतीय-
 कक्ष्याम् उत्पत्तिष्यन् । उत्पतनाद्धेतोरित्यर्थः । तस्मै दिवम् उत्पत्ति-
 ष्यते सुकृते सुकृतकर्मणे तदर्थं नभसः मध्याकाशस्य ज्योतिषीमान्
 ज्योतिष्मान् प्रकाशकः देवयानः देवा यान्ति अनेनेति सः स्वर्गः
 सुखेन गन्तव्यः परमः स्वर्गप्राप्तिसाधनभूतो वा पन्थाः मार्गः
 प्रभाति प्रकर्षेण दीप्यतां प्रकाशताम् । ❀ भातेः पञ्चमलकारः ❀ ॥

यह यज्ञ करने वाला पुरुष स्वर्गसे स्वर्गके तीसरे उच्च दर्जे
 पर चढ़नेके लिये विषमसंख्यक शलाका वा ईंटोंसे चिने हुए
 इस अग्निप्रदेश पर आरूढ़ होगया है । उस स्वर्गमें उत्क्रमण करते
 हुए पुण्यात्मा प्रेतके निमित्त मध्याकाशका प्रकाशक देवयान भली
 प्रकार प्रकाशित हो ॥ १४ ॥

पञ्चमी ॥

अग्निर्होता ध्वर्युष्टे बृहस्पतिरिन्द्रो ब्रह्मा दक्षिणतस्ते अस्तु

हुतोयं संस्थितो यज्ञ एति यत्र पूर्वमयनं हुतानाम् १५

अग्निः । होता । ध्वर्युः । ते । बृहस्पतिः । इन्द्रः । ब्रह्मा ।

दक्षिणतः । ते । अस्तु ।

हुतः । अयम् । सम्स्थितः । यज्ञः । एति । यत्र । पूर्वम् । अय-

नम् । हुतानाम् ॥ १५ ॥

हे चितस्थ प्रेत ते तव पितृमेधाख्ये यज्ञे अग्निर्होतारः वषट्कर्ता
 एतत्संज्ञक ऋत्विग् अस्तु । बृहस्पतिः बृहतां देवानां पतिः पालको
 देवः अध्वर्युः अध्वरं यज्ञं यजमानस्य कामयमानः एतत्संज्ञक
 ऋत्विग् अस्तु । ❀ अध्वरशब्दात् “छन्दसि परेच्छायाम्” इति
 क्यच् । “कप्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः” इति अन्त्यलोपः । “क्या-
 च्छन्दसि” इति उपत्ययः । अध्वर्युष्ट इत्यत्र “युष्मत्तत्तत्तुःषु०”
 इति सांहितिको मूर्धन्यादेशः ❀ । इन्द्रो दक्षिणस्यां दिशि आसीनो
 ब्रह्मा एतत्संज्ञक ऋत्विक् ते तव पितृमेधाख्ये यज्ञे अस्तु भवतु ।
 अस्मिन् प्रेतसंस्काररूपपितृमेधे अग्न्यादीनां होत्रादिमहर्त्विग्भावेन
 रूपणम् अस्य कर्मणो वैकल्याभावद्योतनायेति मन्तव्यम् । होत्रादि-
 कीर्तनम् अन्येषाम् ऋत्विजाम् उपलक्षणार्थम् । एवं होत्रादिरूपै-
 रग्न्यादिभिरनुष्ठितोयं यज्ञः पितृमेधाख्यः संस्थितः समापितः सन्
 एति गच्छति । गन्तव्यं स्थानं दर्शयति । यत्र यस्मिन् स्थाने हुता-
 नाम् इष्टानां यज्ञानां पूर्वम् पूर्वकालीनम् अयनम् गमनं प्राप्ति-
 र्विद्यते । यज्ञस्य उत्तमलोकप्राप्त्या तत्संस्कृतस्य पुरुषस्य स्वर्ग-
 लोकप्राप्तिरुक्त्यनुसंधेयम् ॥

हे चितामें स्थित प्रेत ! तेरे पितृमेध नामक यज्ञमें अग्निदेव
 होता नामक ऋत्विज होवें, बृहस्पति देव यजमानके यज्ञकी कामना
 करने वाले अध्वर्यु नामक ऋत्विज बनें इन्द्रदेव दक्षिण दिशामें
 बैठे हुए ब्रह्मा नामक ऋत्विज होवें । [इस प्रेतसंस्काररूप पितृ-
 मेधमें अग्नि आदिका बड़े २ ऋत्विजोंके रूपमें आरोप इस कर्मकी
 विकलताका अभाव दिखानेके लिये है । तथा होता आदिका
 कीर्तन अन्य ऋत्विजोंका भी उपलक्षण है] इस प्रकार होता
 आदि रूप वाले अग्नि आदिसे अनुष्ठित यह पितृमेध नामक यज्ञ
 समापित होकर उस स्थानमें आता है, कि-जिस स्थानमें पूर्व
 समयमें हुत यज्ञोंका स्थान है । तात्पर्य यह है, कि-यज्ञको उत्तम-

लोककी प्राप्तिसे उसमें संस्कृत पुरुषको ही स्वर्गलोककी प्राप्ति होगी ॥ १५ ॥

षष्ठी ॥

अ॒पूप॑वान् क्षी॒रवांश्च॑रु॒रेह॑ सी॒दतु॑ ।

लो॒क॒कृतः॑ पथि॒कृतो॑ य॒जाम॑हे ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ॑

अ॒पूप॑वान् । क्षी॒र॒ज्वान् । च॒रुः । आ । इ॒ह । सी॒द॒तु॒ ।

लो॒क॒ऽकृतः॑ । पथि॒ऽकृतः॑ । य॒जाम॑हे । ये । दे॒वानां॑म् । हु॒त॒ऽभा॑गाः ।

इ॒ह । स्थ॑ ॥ १६ ॥

अपूपवान् गोधूमादिपिष्टविकारा अपूपाः तद्वान् । क्षीरवान् क्षीरं गोपयः तद्वान् । चरुः कुम्भ्यां पक्व ओदनः इह अस्मिन् संचयनकर्मणि अस्थनां समीपे पश्चिमदिग्भागे आ सीदतु आसन्नो भवतु ॥ चर्वासादनमेव देवानां प्रीणनकारीति दर्शयति । लोककृतः संस्क्रियमाणस्य प्रेतस्य लोकं स्वर्गं कुर्वन्तीति लोककृतः तान् पथिकृतः गन्तव्यस्थानस्य मार्गकर्तृन् मार्गप्रदर्शकान् देवान् यजामहे प्रीणयामः । इह अस्मिन् संचयनकर्मणि अपूपक्षीरयुक्तचर्वासादने देवानां यष्टव्यानाम् इन्द्रादीनां मध्ये ये यूयं हुतभागाः हुतं हविः । भागः भजनीयोऽशः । ❀ कर्मणि घञ् ❀ । हविर्भागवन्तः स्थ भवथ तान् यजामहे ॥ एवम् उत्तरेऽष्टौ पर्याया व्याख्येयाः । विशेषस्तु वक्ष्यते ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न गोदुग्धसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु इस संचयन कर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिशाके भागमें रखवा रहे । अब यह बताते हैं, कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला

होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके लिये स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्य मार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमें से इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ १६ ॥

सप्तमी ॥

अ॒पूप॒वान् दधि॑वांश्चरु॒ह सी॑दतु ।

लो॒क॒कृतः॑ पथि॒कृतो॑ य॒जाम॑हे ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह

स्थ ॥ १७ ॥

अ॒पूप॒वान् । दधि॑वान् । चरुः । आ । इ॒ह । सी॑दतु ।

लो॒क॒कृतः॑ । पथि॒कृतः॑ । य॒जाम॑हे । ये । दे॒वानां॑ । हु॒तभा॑गाः ।

इ॒ह । स्थ ॥ १७ ॥

अपूपसाहित्यं सर्वेषां चरुणां साधारणम् । दधिवान् दधिमान् ।
❀ भूम्नि मतुप् । “छन्दसीरः” इति मतुपो वत्वम् ❀ । दधिसोमो
द्वितीयचरोर्विशेषः ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, मोदधिसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रखना जावे [अब यह दिखाते हैं, कि—चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ १७ ॥

११०

अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अष्टमी ।

अ॒पूप॒वान् द्र॒प्स॒वांश्चरु॒ह सी॒दतु ।

लो॒क॒कृतः पथि॒कृतो॑ य॒जाम॒हे ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॒गा इ॒ह स्थ

अ॒पूप॒ऽवान् । द्र॒प्स॒ऽवान् । च॒रुः । आ । इ॒ह । सी॒द॒तु ।

लो॒क॒ऽकृतः । पथि॒ऽकृतः । य॒जाम॒हे । ये । दे॒वाना॑म् । हु॒तऽभा॒गाः ।

इ॒ह । स्थ ॥ १८ ॥

द्रप्सा दधिकणाः । तद्वत्त्वम् अस्य चरोर्विशेषः ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे संपन्न, दधिकण द्रप्ससे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयन कर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ १८ ॥

नवमी ॥

अ॒पूप॒वान् घृ॒त॒वांश्चरु॒ह सी॒दतु ।

लो॒क॒कृतः पथि॒कृतो॑ य॒जाम॒हे ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॒गा इ॒ह स्थ

अ॒पूप॒ऽवान् । घृ॒त॒ऽवान् । च॒रुः । आ । इ॒ह । सी॒द॒तु ।

लो॒क॒ऽकृतः । पथि॒ऽकृतः । य॒जाम॒हे । ये । दे॒वाना॑म् । हु॒तऽभा॒गाः ।

इ॒ह । स्थ ॥ १९ ॥

घृतवान् घृतं भूयोऽस्यास्तीति घृतवान् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, गोघृतसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ १६ ॥

दशमी ॥

अपूपवान् मांसवांश्चरुह सीदतु ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपवान् । मांसवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।

इह । स्थ ॥ २० ॥

मांसवत्त्वम् अस्य विशेषः ॥

इति चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, मांससे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भाग रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देव-

७१२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

ताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओं को प्रसन्न करते हैं ॥ २० ॥ (२१)

चतुर्थ अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त

“अपूपवानन्नवांश्चरुः” इति आदितश्चतसृणाम् ऋचाम् अस्थि-
समीपे मन्त्रोक्तचरुस्थापनकर्मणि उक्तो विनियोगः ॥

“अपूपापिहितान्” [२५] इत्यनया पूर्वस्थापितान् नवचरु-
कुम्भान् अभिमन्त्रयेत् । मिश्रा धाना आदध्यात् ॥

“द्रप्सश्चस्कन्द” [२८] इत्यनया अग्निष्टोमादिक्रतुषु बहि-
ष्पवमानप्रसर्पणकाले वैपुषहोमं कुर्यात् ॥

“शतधारम्” [२६] इति द्वाभ्याम् ऋग्भ्याम् अभिमन्त्रितेन
शतच्छिद्रपात्रपतितोदकेन अस्थीनि आस्नावयेत् ॥

“अपूपवानन्नवांश्चरुः” आदिकी चार ऋचाओंका अस्थियोंके
समीपके मन्त्रोक्तचरुस्थापनके कर्ममें विनियोग कह दिया है ।

“अपूपापिहितान्” (२५) ऋचासे पहिले स्थापित किये
हुए नौ चरुओंका अभिमन्त्रण करे । मिश्र धानाओंको रखे ।

“द्रप्सश्चस्कन्द” इस अट्टाईसवीं ऋचासे अग्निष्टोम आदि
यज्ञोंमें बहिष्पवमानप्रसर्पणके समय वैपुषहोम (विन्दुहोम) को करे

“शतधारम्” इन २६ वीं और ३० वीं ऋचाओंसे अभि-
मन्त्रित शतच्छिद्र (चलमी) से गिरते हुए जलसे हड्डियोंको
आस्नावित करें ॥

तत्र प्रथमा ॥

अपूपवानन्नवांश्चरुरेह सीदतु ।

लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपवान् । अन्नवान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।

इह । स्थ ॥ २१ ॥

अन्नम् अदनीयम् ओदनम् स्थालीपत्रे चरौ पात्रान्तरपत्रम् ओदनं प्रक्षेप्तव्यम् इत्यर्थः । ओदनान्तरयुक्तश्चरुरिति यावत् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, अन्नसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ २१ ॥

द्वितीया ॥

अपूपवान् मधुमांश्चरुरेह सीदतु ।

लोकऽकृतः पथिऽकृतो यजामहे ये देवानां हुतभागा इह स्थ

अपूपऽवान् । मधुऽमान् । चरुः । आ । इह । सीदतु ।

लोकऽकृतः । पथिऽकृतः । यजामहे । ये । देवानाम् । हुतऽभागाः ।

इह । स्थ ॥ २२ ॥

मधुमान् मधु मात्तिकं तद्वान् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, मधुसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियों के समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं, कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है]

७१४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ २२ ॥

तृतीया ॥

अ॒पू॒प॒वा॒न् र॒स॒वांश्च॒रु॒रे॒ह सी॒दतु ।

लो॒क॒कृ॒तः प॒थि॒कृ॒तो य॒जाम॒हे ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ

अ॒पू॒प॒वा॒न् । र॒स॒वा॒न् । च॒रुः । आ । इ॒ह । सी॒दतु ।

लो॒क॒कृ॒तः । प॒थि॒कृ॒तः । य॒जाम॒हे । ये । दे॒वाना॑म् । हु॒तभा॑गाः ।

इ॒ह । स्थ ॥ २३ ॥

रसवान् रसाः स्वादुम्ललवणतिक्तोषणकषायाख्याः षट्सं-
ख्याकाः तद्वान् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, स्वादु अम्ल लवण तिक्त ऊषण और कषाय नामक छः रसोंसे संयुक्त, कम्भी में पका हुआ ओदमरूप चरु, इस सञ्चयनकर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे [अब यह दिखाते हैं कि-चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्गलोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंश के अधिकारी यहाँ वर्तमान देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ २३ ॥

चतुर्थी ॥

अ॒पू॒प॒वा॒नप॒वाश्च॒रु॒रे॒ह सी॒दतु ।

लो॒क॒कृ॒तः प॒थि॒कृ॒तो य॒जाम॒हे ये दे॒वानां॑ हु॒तभा॑गा इ॒ह स्थ

अ॒पूप॑ऽवान् । अ॒प॑ऽवान् । च॒रुः । आ । इ॒ह । सी॒द॒तु ।

लो॒क॒ऽकृतः । प॒थि॒ऽकृतः । य॒जाम॑हे । ये । दे॒वाना॑म् । हु॒त॑ऽभागाः ।

इ॒ह । स्थ ॥ २४ ॥

अपूपवान् । भिन्नप्रकृतिका अपूपा विवक्षिताः । तद्वान् चरुः
इह मध्यप्रदेशे आ सीदतु ॥ लोककृतः इत्यादि पूर्ववत् ॥

पिसे हुए गेहूँ आदिसे बने हुए अपूपोंसे सम्पन्न, भिन्न
प्रकारके अपूपसे संयुक्त, कुम्भीमें पका हुआ ओदनरूप चरु, इस
सञ्चयनकर्ममें अस्थियोंके समीप पश्चिम दिग्भागमें रक्खा जावे
[अब यह दिखाते हैं, कि—चरुका रखना ही देवताओंको प्रसन्न
करने वाला होता है] हम इस संस्क्रियमाण प्रेतके निमित्त स्वर्ग-
लोकका निर्माण करने वाले और गन्तव्यमार्गके प्रदर्शक इन्द्र
आदि देवताओंमेंसे इस होमे हुए अंशके अधिकारी यहाँ वर्तमान
देवताओंको प्रसन्न करते हैं ॥ २४ ॥

पञ्चमी ॥

अ॒पूपा॑पि॒हितान् कु॒म्भान् यां॑स्ते दे॒वा अ॒धारयन् ।

ते ते॑ सन्तु स्व॒धाव॑न्तो मधु॒मन्तो॑ घृत॒श्रुतः॑ ॥ २५ ॥

अ॒पूप॑ऽअ॒पि॒हितान् । कु॒म्भान् । या॒न् । ते । दे॒वाः । अ॒धारयन् ।

ते । ते । सन्तु । स्व॒धाऽव॑न्तः । मधु॒ऽमन्तः । घृत॒ऽश्रु॑तः ॥ २५ ॥

पूर्वानुवाके व्याख्यातैषा [३. ६८] । अपूपापिहितान् अपू-
पैराच्छादितान् यान् कुम्भान् चरुपूर्णान् नवकलशान् देवाः तत्त-
द्भविर्भागिनो मन्त्रोक्ता देवताः ते संचितास्थिरूप हे प्रेत त्वदी-
यान् आधारयन् स्वस्वभागत्वेन धारितवन्तः स्वीकृतवन्तः ते हुत-

७१६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

भागैर्देवैः स्वीयत्वेन परिगृहीताः कुम्भस्थाश्चरवः ते परलोक-
प्राप्तवो तुभ्यं स्वभावन्तः स्वम् आत्मानं दधाति पुष्पाति धिनो-
तीति वा स्वधा अन्नम् तद्वन्तः सन्तु । मधुमन्तः मधुसहिताः घृत-
श्चुतः बह्वाज्यक्षारिणो भवन्तु । भवदीयास्थिसमीपे स्थापिताश्च-
रवः परलोकं प्राप्तस्य तव प्रीणनाय बहन्नराशयो मधुघृतकुन्वा-
युक्ता भवन्तु इत्यर्थः ॥

हे प्रेत ! हवियोंके भागी मन्त्रोक्त देवताओंने जिन अपूपोंसे
आच्छादित चरुपूर्ण नवीन कलशोंको अपने भागरूपमें स्वीकार
करके धारण किया है वह देवताओंके द्वारा अपने मान कर ग्रहण
किये हुए कुम्भोंके चरु तुम्हको परलोकमें स्वभावान् [अपनेको
पुष्ट करने वाले अन्नसे संयुक्त, मधुसे सम्पन्न और घृत टपकते
हुए हों । तात्पर्य यह है, कि-तेरी अस्थियोंके समीपमें स्थापित
यह चरु तुम्ह परलोकको प्राप्त हुएको तृप्त करनेके लिये बहुतसी
अन्नराशि वाले और मधु तथा घृतकी नदी वाले हों ॥ २५ ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तूद्भवीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम्

याः । ते । धानाः । अनुऽकिरामि । तिलऽमिश्राः । स्वधाऽवतीः ।
ताः । ते । सन्तु । उत्ऽभ्वीः । प्रऽभ्वीः । ताः । ते । यमः ।

राजा । अनु । मन्यताम् ॥ २६ ॥

अक्षितिं भूयसीम् ॥ २७ ॥

अक्षितिम् । भूयसीम् ॥ २७ ॥

षष्ठी ॥ हे संचितास्तिरूप प्रेत ते त्वदर्थं तिलमिश्राः कृष्ण-
तिलयुक्ताः स्वधावतीः अन्नवतीर्या धानाः भृष्टयवान् अनुकिरामि

अनुक्रमेण विकिरामि अनूचीनं वा वित्तिपामि ता धानास्ते पर-
लोकं प्राप्तवतस्तव प्रीणनाय अभ्वीः । महन्नामैतत् । महत्यो
भवन्तु । प्रभ्वीः प्रभूताश्च सन्तु भवन्तु । ❀ “भुवश्च” इति ङीष् ।
प्रभ्वीरिति । “वा छन्दसि” इति पूर्वसवर्णादीर्घः ❀ । ता महतीः
प्रभूताश्च धानास्ते तव भोगाय यमः नियन्ता पितृणां राजा अनु-
मन्यताम् अनुजानातु । अनुमतेर्निरवधित्वं दर्शयति अक्षितिं भूय-
सीम् इति । भूयसीम् अत्यन्तं बहुम् अक्षितिम् अक्षयम् । बहुकाल-
पर्यन्तम् इति यावत् । ❀ “कालाध्वनोः” इति द्वितीया ❀ ।
यथा लोके नगरे तिष्ठन् पुरुषः स्वीयं बहुधनं पुरः स्वामिनो-
द्भया भुङ्क्ते एवं यमराज्यं प्राप्तवतः प्रेतस्य अन्नभोगाय पितृराजस्य
यमस्य अनुज्ञा प्रार्थ्यते ॥

हे सञ्चितास्त्विह रूप प्रेत ! मैं तेरे लिये जिन काले तिलों वाले,
स्वधान्नसे सम्पन्न भुनी हुई जौंकी स्त्रीलोकों को बखेर रहा
हूँ, वे स्त्रीले तेरे परलोकमें पहुँचने पर तुझको बड़ी २ और
विशाल परिमाणमें मिलें । और इन बड़ी २ ढेरकी ढेर स्त्रीलों
का भोग लगानेके लिये यमराज तुझको अनुमति देँ चिरकाल
तक भोग लगानेके लिये अनुमति देवें [अर्थात् जैसे नगरमें
बसता हुआ पुरुष अपने बहुतसे धनको नगराधीशकी अनुज्ञासे
भोगता है इसी प्रकार यमराज्यमें पहुँचे हुए प्रेतके अन्नभोगके
लिये पितृराज यमकी अनुज्ञाकी प्रार्थना की गई है] ॥२६॥२७॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च

पूर्वः ।

समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः २८

द्रप्सः । चस्कन्द । पृथिवीम् । अनु । द्याम् । इमम् । च । योनिम् ।

अनु । यः । च । पूर्वः ।

समानम् । योनिम् । अनु । सम्ऽचरन्तम् । द्रप्सम् । जुहोमि ।

अनु । सप्त । होत्राः ॥ २८ ॥

सप्तमी ॥ पितृत्वं प्राप्ता जना धूमादिमार्गेण पितृलोकम् आसाद्य
तत्र सोमयागजनितं सुकृतफलम् उपभुञ्जत इति अस्मिन् पित्र्ये
प्रकरणे सोमे स्थितस्य उदकस्य कणः सोमो वा अनया स्तूयते ।
द्रप्सः सोमरसस्थितोदककणः पृथिवीम् भूमिं धाम् दिवं च अनु-
लक्ष्य चस्कन्द स्कन्नो विप्रकीर्णो भवत् । ❀ लक्षणार्थे अनुः कर्म-
प्रवचनीयः । “कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया” इति द्वितीया ❀ ।
ग्रावभिरभिषवकाले भूमौ सोमरसः स्कन्दति । दशापवित्राद् द्रोण-
कलशं प्रति धारापातसमये अन्तरिक्षे सोमकणो विप्रकीर्णो भव-
तीति यावत् । एतदेव उच्यते इमं च योनिम् इति । इमं योनिम्
सर्वस्य चराचरात्मकस्य जगतः कारणं पृथिवीम् अनुलक्ष्य तथा
पूर्वः पूर्वम् उत्पन्नो यो द्यलोकस्तम् अनु । ❀ परस्परसमुच्चयांथो
चकारौ । योनिशब्दः पुंलिङ्गोपि विद्यते ❀ । समानम् एकविधं
योनिम् द्यावापृथिवीलक्षणं स्थानम् अनुलक्ष्य संचरन्तम् समन्ताद्
विप्रकीर्णं द्रप्सम् सोमरसकणं सप्त सप्तसंख्याका होत्राः । वषट्-
कर्तृणां संज्ञा होत्रा इति । सप्त होतृमैत्रावरुणब्राह्मणाच्छंसिपोतृ-
नेष्ट्राग्नीध्राच्छावाकसंज्ञकान् वषट्कर्तृन् अनुलक्ष्य कृत्य जुहोमि
अग्नौ प्रक्षिपामि । उत्तरत्र होत्रादिवषट्कारे सोमरसः अध्वर्युभि-
र्हूयते । तदर्थं स्कन्नं सोमरसं द्रप्सदेवतार्थं करोमीत्यर्थः । वाज-
सनेयब्राह्मणे खलु एष द्रप्सः आदित्यात्मना स्तुतः । तथा च
आम्नायते । “असौ वा आदित्यो द्रप्सः । स दिवं च पृथिवीं च
स्कन्दति । इमं च योनिमनु यश्च पूर्व इति । इमं च लोकम् अमुं
चेत्येतत् । समानं योनिमनु संचरन्तम् इति । समानं ह्येष एतं
योनिमनु संचरति । द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्रा इति । असौ वा

आदित्यो द्रप्सः । दिशः सप्त होत्राः । अमुं तदादित्यं दिक्षु प्रति-
ष्ठापयति” इति [श० ब्रा० ७. ४, १. २०] ॥

[पितृत्वको प्राप्त हुए पुरुष धूमादिमार्गसे पितृलोकमें पहुँच कर तहाँ सोमयागके कारण प्राप्त होने वाले पुण्यके फलको भोगते हैं । इस चालू पित्र्य प्रकरणमें सोममें स्थित उदकके कण वा सोमकी इस ऋचासे स्तुति की है, कि—] सोमरसमें स्थित जल का कण द्रप्स, पृथिवीको और द्युको लक्ष्यमें रख कर बिखर जाता है विप्रकीर्ण होजाता है। [पत्थरसे कूटते समय सोमरस भूमिमें पड़ता है । और दशापवित्र (अँगोछे) से धारापातके समय द्रोणकलश नामक पात्रमें गिरता हुआ अन्तरिक्षमें छींटोंके रूपमें उड़ने लगता है, इसी बातको कहते हैं, कि—] इस चराचर जगत्की कारण पृथ्वी को लक्ष्यमें रखकर और पूर्व उत्पन्न हुआ जो द्युलोक है उस को लक्ष्य कर और द्यावापृथिवीरूप समानयोनिक स्थानको भी लक्ष्यमें रख कर चारों ओर छिटकते हुए सोमरसकण द्रप्सको होता मैत्रावरुण ब्राह्मणाच्छंसी पोता नेष्टा अग्नीध्र और अच्छा-वाक आदि सात वषट्कर्ता होताओंको भी लक्ष्यमें रख कर मैं अग्निमें होमता हूँ । आगे होत्रादिवषट्कारमेंसे सोमरसको अध्वर्यु होमेंगे, इसलिये मैं स्कन्धन सोमरसको द्रप्स देवताके लिये करता हूँ । [वाजसनेयिब्राह्मणमें इस द्रप्सकी आदित्यरूपमें स्तुति की है, कि “असौ वा आदित्यो द्रप्सः । स दिवं च पृथिवीं च स्कन्दति । इमं च योनिमनु यश्च पूर्व इति । इमं च लोकं अमुं चेत्येतत् । समानं योनिमनुसञ्चरन्तम् इति । समानं ह्येष एतं योनिमनु सञ्चरति । द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्रा इति । असौ वा आदित्यो द्रप्सः । दिशः सप्त होत्राः । अमुं तदादित्यं दिक्षु प्रतिष्ठापयति ।” शतपथब्राह्मण ७ । ४ । १ । २०] ॥ २८ ॥

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते
रयिम् ।

ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सर्वदा ते दुहते दक्षिणां
सप्तमातरम् ॥ २६ ॥

शतऽधारम् । वायुम् । अर्कम् । स्वःऽविदम् । नृऽचक्षसः । ते ।
अभि । चक्षते । रयिम् ।

ये । पृणन्ति । प्र । च । यच्छन्ति । सर्वदा । दुहते । दक्षिणाम् ।
सप्तऽमातरम् ॥ २६ ॥

अष्टमी ॥ शतधारम् शतसंख्याकच्छिद्रपतितोदकप्रवाहयुक्तम्
अत एव वायुम् । ❀ लुप्तमत्वर्थीयः ❀ । वायुमन्तम् । सच्छिद्रे
वस्तुनि वायुर्वाति । यद्वा वायुम् वातारं चरन्तं वायुवदेव कुम्भोपि
हस्ताद्धस्तप्रापणेन सर्वदा चरति तम् अर्कम् अर्चनीयं स्वर्विदम् स्वः
स्वर्गस्य लम्भकम् एतं कुम्भं नृचक्षसः नृणां द्रष्टारो देवास्ते त्वद-
र्थम् । ❀ युष्मच्छब्दस्य “तेमयावेकवचनस्य” इति ते इत्यादेशो
व्यत्ययेन उदात्तः ❀ । हे प्रेत त्वदर्थं रयिम् धनम् अभि चक्षते
पश्यन्ति जानन्ति । एतं कुम्भं तव धनम् इत्येव जानन्ति । ये
गोत्रिणः संस्कर्तारः पृणन्ति अस्थिरूपं त्वां कुम्भोदकेन प्रीणयन्ति
प्र यच्छन्ति च कुम्भोदकं ते सप्तमातरम् सप्तसंख्याका मातृभूता
अग्निष्टोमादिसंस्था यस्यास्ताम् यद्वा सप्तसंख्याका मातारः कर्मणां
निर्मातारः कर्तारो होत्रादयः सन्ति यस्याः तादृशीम् । अथ वा
मातारः परिच्छेत्तारो यस्याम् एकधा दत्तां सप्तधा मान्ति परि-
च्छिन्दन्ति ताम् । ❀ “अतश्छन्दसि” इति कपः प्रतिषेधः ❀ ।

तथाविधां दक्षिणां सर्वदा दुहते दुहते । उदकेन आसावनं नाम
दक्षिणादोहनम् इत्यर्थः । ❀ दुहेर्लटि भस्य “बहुलं छन्दसि”
इति रुडागमः ❀ ॥

मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले देवता, सैकड़ों छिद्रोंसे टपकते
हुए जलप्रवाहसे सम्पन्न और वायुकी समान एक हाथसे दूसरे
हाथमें चलते हुए, अर्चनीय और स्वर्गको प्राप्त कराने वाले इस
कुम्भको हे प्रेत ! तेरे लिये धनरूप ही सम्भूत हैं । और जो तेरे
गोत्र वाले तुझ अस्थिरूपको कुम्भोदकसे तृप्त कर रहे हैं और
कुम्भोदकको दे रहे हैं वे होता आदिके कारण सप्तमातृक उदक-
धारारूप दक्षिणाको सर्वदा दे रहे हैं ॥ २६ ॥

कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्विलमिदां धेनुं मधुमतीं
स्वस्तये ।

ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्
कोशम् । दुहन्ति । कलशम् । चतुर्विलम् । इडाम् । धेनुम् ।
मधुमतीम् । स्वस्तये ।

ऊर्जम् । मदन्तीम् । अदितिम् । जनेषु । अग्ने । मा । हिंसीः ।
परमे । विओमन् ॥ ३० ॥

नवमी ॥ चतुर्विलम् । शतसंख्याकच्छिद्रस्य कुम्भस्य चतुर्णां
छिद्राणाम् अवयुत्य स्तुतिः । चतुश्छिद्रं चतुस्तनं कोशम् कोश-
वत् कोशः । कोशो यथा धनकनकादिसंपूर्णस्तद्वत् पयःपूर्णं कल-
शम् कुम्भं कुम्भोपमम् ऊधः मधुमतीम् मधुररसक्षीरयुक्ताम् इडाम् ।
धेनुनामैतत् । एतत्संज्ञकां धेनुम् । यद्वा इडा भूमिः । भूमिरूपां
धेनुं दुहन्ति । ❀ दुहिर्द्विकर्मकः ❀ । किमर्थम् । स्वस्तये । स्व-

स्तीत्यविनाशिनाम । प्रेतस्य सर्वदा परलोकनिवासाय । चतुश्चिद्र-
कलशोदकेन आस्नावनं नाम चतुःस्तनधेनुदोहनमेवेत्यर्थः । मद-
न्तीम् मदयन्तीं तोषयन्तीम् अदितिम् अखण्डनीयाम् ऊर्जम् बल-
करम् अन्नं जनेषु पितृत्वं प्राप्तेषु मध्ये हे अग्ने मा हिंसीः पितॄणां
मध्ये एतस्य प्रेतस्य भोगाय अन्नं मा च्छेत्सीः । परमे व्योमन्निति
पदद्वयं कलशं दुहन्तीत्यनेन संबन्धनीयम् । परमे उत्कृष्टे व्योमन् ।
❀ सप्तम्या लुक् । “न ङिसंबुद्धयोः” इति नलोपाभावः ❀ ।
व्योमनि आकाशे शतच्छिद्रं कलशं दुहन्तीति ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

[सैंकड़ों छिद्र वाले कुम्भके चार छिद्रोंको अलग करके यहाँ
स्तुति की है, कि—] धन सुवर्ण आदिसे सम्पन्न कोशकी समान
पयःपूर्ण स्तनोंकी समान चार छिद्र वाले कलशको इस प्रकार
दुहते हैं जैसे मधुर रस क्षीरसे सम्पन्न धेनुको, दुहते हैं । अर्थात्
चार छिद्र वाले कलशसे जल छिड़कना चार स्तन वाली धेनुको
दुहना ही है । हे अग्ने ! पितरोंमें पहुँचे हुए इस प्रेतके लिये
आप सन्तुष्ट करने वाली अखण्डनीया अदिति देवीको और
बलकर अन्नको छिन्न मत करना अर्थात् तहाँ पर इसको सदा
तुष्टि और अन्न प्राप्त होता रहे ॥ ३० ॥ (२२)

चतुर्थ अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त ॥

“एतत् ते देवः” इति सूक्तस्य आद्यया ऋचा वासोऽभिमन्त्र्य
प्रेतं प्रच्छादयेत् ॥

“धाना धेनुरभवत्” [३२] “एतास्ते असौ धेनवः” [३३]
“एनीर्धाना हरिणीः” [३४] इति तिसृभिर्ऋग्भिः अस्थनाम्
उपरि तिलमिश्रा धाना आदध्यात् ॥

पितृमेधे द्वितीयेऽहनि “वैश्वानरे हविः” [३५] इत्यनया दहनस्थान
संनिधौ अन्यवत्साया गोः पयः पयसि शृतं स्थालीपाकं वा जुहुयात्

“सहस्रधारम्” [३६] इत्यनया अभिमन्त्रितेन सहस्रच्छिद्र-
पात्रपतितोदकेन अस्थीन्वासावयेत् ॥

“इदं कसाम्बु” [३७] इत्यनया गर्ते स्थापितानि अस्थीनि
गोत्रिणः सर्वे वा ईक्षेरन् । कर्ता मन्त्रं ब्रूयात् ॥

“इहैवैधि” इत्यनया पिण्डपितृयज्ञे दीप्तयोः काष्ठयोरेकं हत्वा
पांसुषु प्रक्षिपेत् । सूत्रितं हि । “द्वे काष्ठे गृहीत्वा उशन्तः [१८. १. ५६]
इत्यादीपयति । आदीप्तयोरेकं प्रतिनिदधाति । इहैवैधि धनसनिः
[१८. ४. ३८] इत्येकं हत्वा पांसुष्वधाय” इति [कौ० ११. ८] ॥

“पुत्रं पौत्रम्” [३६] इत्यृचा पिण्डपितृयज्ञे पिण्डदानानन्त-
रम् आचामेत् ॥ “आपो अग्निम्” [४०] इत्युत्तरया अद्भि-
रग्निम् अवसिञ्चेत् ॥

सूत्रितं हि । “आपो अग्निम् इत्यद्भिरग्निम् अवसिञ्च्य पुत्रं पौत्रम्
अभितर्पयन्तीरित्याचामति” इति [कौ० ११. ६] ॥

“एतत् ते देवः” सूक्तकी पहिली ऋचासे वस्त्रको अभिमन्त्रित
करके श्रेतको ढक देय ।

“धाना धेनुरभवत्” (३२) एतास्ते असौ धेनवः (३३)
एतार्थाना हरिणीः (३४) इन तीन ऋचाओंसे अस्थियोंके
ऊपर तिलमिश्रित जौंकी खीलोंको रक्खे ।

पितृमेधके दूसरे दिन “वैश्वामरे हविः” (३५) ऋचासे
दहनस्थानके पासमें अन्यवत्सा (जिसका अपना बछड़ा न होकर
दूसरी गौका बछड़ा हो उस) गौके दूधको वा दूधमें आँटे हुए
स्थालीपाकको होम देव ।

“सहस्रधारम्” (३६) ऋचासे अभिमन्त्रित सहस्रच्छिद्रपात्र
से गिरते हुए जलसे अस्थियोंको आसावित करे ।

“इदं कसाम्बु” (३७) ऋचासे गढ़ोंमें रखी हुई हड्डियोंको
गोत्र वाले वा सब पुरुष देखें । कर्ता मन्त्रको कहे ।

“इहैवेधि” ऋचासे पिण्डपितृयज्ञमें प्रज्वलित दो काष्ठोंमेंसे एकको ग्रहण करके धूलमें फेंक देय । सूत्रमें भी कहा है, कि—
 “द्वे काष्ठे गृहीत्वा उशन्तः (१८ । १ । ५६) इत्यादीपयति ।
 आदीक्षयोरेकं प्रति निदधाति । इहैवेधि धनसनिः (१८ । ४ ।
 ३८) इत्येकं हत्वा पांसुष्वाधाय” (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

“पुत्रं पौत्रम्” (३६) ऋचासे पिण्डपितृयज्ञमें पिण्डदानके अनन्तर आचमन करे । “आपो अग्निम्” इस चालीसवीं ऋचा से जलसे अग्निको सिक्त करे ।

इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“आपो अग्निं इत्यह-
 भिरग्निं अवसिच्य पुत्रं पौत्रं अभितर्पयन्ति इत्याचामयति” (कौ-
 शिकसूत्र ११ । ६) ॥

तत्र प्रथमा ॥

एतत् ते देवः सविता वासो ददाति भर्तवे ।

तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्ताप्यं चर ॥ ३१ ॥

एतत् । ते । देवः । सविता । वासः । ददाति । भर्तवे ।

तत् । त्वम् । यमस्य । राज्ये । वसानः । ताप्यम् । चर ॥ ३१ ॥

हे प्रेत ते तव सविता सर्वस्य प्रेरको देवः एतत् इदं वासः
 वस्त्रं भर्तवे भरणाय आच्छादनाय ददाति प्रयच्छति । त्वं च तत्
 ताप्यम् तर्पणार्हं प्रीतिकरम् । यद्वा तृपा नाम तृणविशेषः । तन्नि-
 भितं घृताक्तं वस्त्रं ताप्यम् इति अन्ये वदन्ति । तद् वस्त्रं वसानः
 आच्छादयन् । ❀ वस आच्छादने । आदादिकः अनुदात्तेत् ❀ ।
 यमस्य प्रेताधिराजस्य राज्ये चर परिभ्राम्य ॥

हे प्रेत ! सर्वप्रेरक सविता देवता इस वस्त्रको आच्छादन करने
 के लिये तुझे देते हैं, तू भी इस तृप्ति देने वाले वस्त्रको ओढ़कर
 प्रेताधिराज यमके राज्यमें विचरण कर ॥ ३१ ॥

द्वितीया ॥

धाना धेनुरभवद् वत्सो अस्यास्तिलोभवत् ।

तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ३२ ॥

धानाः । धेनुः । अभवत् । वत्सः । अस्याः । तिलः । अभवत् ।

ताम् । वै । यमस्य । राज्ये । अक्षिताम् । उप । जीवति ॥ ३२ ॥

धाना भृष्टयवः धेनुः प्रीणयित्री गौरभवत् । अस्या धेनुरूपाया
धानायास्तिलः वत्सोऽभवत् । तां वत्सरूपतिलसहितां धेनुरूपां
धानां यमस्य राज्ये अक्षिताम् क्षयरहिताम् उप जीवति उपजी-
वेद् अयं प्रेतः । ❀ जीवतेर्लेटि आडागमः ❀ । वैशब्दः प्रसिद्धि-
द्योतनार्थः । यद्वा । ❀ तिङां तिङो भवन्तीति हेस्तिबादेशः ❀ ।
उपजीव हे प्रेत त्वम् इति । ❀ अक्षिताम् । क्षि क्षये । “निष्ठा-
याम् अण्यदर्थे” इति पर्युदासाद् दीर्घाभावः । अण्यदर्थो भाव-
कर्मणी । अत एव दीर्घाभावाद् नत्वाभावः ❀ ॥

यह धुने हुए जौंकी खील धेनु बनेगी और तिल इसका बछड़ा
बनेगा, हे प्रेत ! तू इस वत्सरूप तिलसहित अक्षीणा धेनुरूपा खील
से उपजीवन कर ॥ ३२ ॥

तृतीया ॥

एतास्ते असौ धेनवः कामदुघा भवन्तु ।

एनीः श्येनीः सरूपा विरूपास्तिलवत्सा उप तिष्ठन्तु

त्वात्र ॥ ३३ ॥

एताः । ते । असौ । धेनवः । कामदुघाः । भवन्तु ।

एनीः । श्येनीः । सरूपाः । विरूपाः । तिलवत्साः । उप ।

तिष्ठन्तु । त्वा । अत्र ॥ ३३ ॥

असौ इति प्रेतस्य संबोधनम् । हे असौ अमुकनामधेय प्रेत ते तव एता धानाः कामदुघाः कामं काम्यमानं फलं दुहन्तीति काम-
दुघाः । ❀ “दुहः कब्धश्च” इति कप् प्रत्ययो घञ् अन्तादेशः❀ ।
इष्टफलदा धेनवो भवन्ति । ता एव विशिनष्टि । एनीः । एताः
संध्यावर्णाः । श्येतः शुभ्रवर्णाः । ❀ उभयत्र “वर्णाद् अनुदा-
त्तात्” इति ङीञ्कारौ । “वा छन्दसि” इति पूर्वसवर्णदीर्घः❀ ।
एन्यः संध्यावर्णाः शुभ्राणवर्णाः श्येन्यो धवलवर्णाः सरूपाः
समानरूपाः विरूपाः विविधरूपाः तिलवत्साः तिलात्मकवत्स-
सहिता धेनुरूपा धानाः अत्र अस्मिन् यमराज्ये हे प्रेत त्वा त्वाम्
उप तिष्ठन्तु अभिमतफलदोहनार्थं समीपे सेवन्ताम् परिचरन्तु ॥

हे अमुक नाम वाले प्रेत ! यह लाल श्वेत बछड़ेकी समान
और बछड़ेसे भिन्न रूपवाली तिलात्मक बछड़े वाली धेनुरूपा
खीलें तेरे लिये कामधेनु होवें और इस यमलोकमें अभिमत फल
देनेके लिये तेरे पास उपस्थित रहें ॥ ३३ ॥

चतुर्थी ॥

एनीर्धाना हरिणीः श्येनीरस्य कृष्णा धानारोहिणी-
धेनवस्ते ।

तिलवत्सा ऊर्जमस्मै दुहाना विश्वाहा सन्त्वनप-
स्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥

एनीः । धानाः । हरिणीः । श्येनीः । अस्य । कृष्णाः । धानाः ।
रोहिणीः । धेनवः । ते ।

तिलवत्साः । ऊर्जम् । अस्मै । दुहानाः । विश्वाहा । सन्तु ।

अनपस्फुरन्तीः ॥ ३४ ॥

पूर्वमन्त्रोक्तोर्थः अनया विव्रियते । एनीश्येनीशब्दौ व्याख्यातौ ।
हरिणीः हरिण्यः हरितवर्णाः । कृष्णाः अतिभर्जनात् कृष्णवर्णाः ।
रोहिणीः रोहितवर्णा अरुणवर्णाः । ❀ सर्वत्र पूर्ववद् डीम्नका-
रदीर्घाः ❀ । धेनुरूपा धानाः अस्य ते तव भवन्ति । तास्तिल-
वत्सा धेनवो विश्वाहा सर्वेषु अहःसु । ❀ “कालाध्वनोः०” इति
द्वितीया ❀ । अनपस्फुरन्तीः अनपस्फुरन्त्यः । अपस्फुरणं नाम
नाशः । अविनश्यर्यः अक्षीणाः सत्यः अस्मै अस्थिरूपाय ते तव
ऊर्जम् बलकरम् अन्नं दुहानाः प्रयच्छन्त्यः सन्तु भवन्तु ॥

लाल और श्वेत वर्ण वालीं, हरित वर्णकी, अधिक भूनेसे
काले वर्णकी, अरुण वर्णकी ये खीलें तेरे लियें धेनुरूप होरही
हैं ये तिलरूपी बछड़े वालीं धेनुएँ प्रतिदिन अट्टरूपसे इसके लिये
बलपद अन्नको देती रहें ॥ ३४ ॥

पञ्चमी ॥

वैश्वानरे हविरिदं जुहोमि साहस्रं शतधारमुत्सम् ।
स विभर्ति पितरं पितामहान् प्रपितामहान् विभर्ति
पिन्वमानः ॥ ३५ ॥

वैश्वानरे । हविः । इदम् । जुहोमि । साहस्रम् । शतधारम् ।
उत्सम् ।

सः । विभर्ति । पितरम् । पितामहान् । प्रपितामहान् । विभर्ति ।

पिन्वमानः ॥ ३५ ॥

वैश्वानरे विश्वनरहितो विश्वानरः । ❀ “नरे संज्ञायाम्”
इति पूर्वपदस्य दीर्घः ❀ । विश्वानर एव वैश्वानरः । तस्मिन्
अग्नौ इदं पयोरूपं स्थालीपाकरूपं वा हविः जुहोमि प्रक्षिपामि ।

हविर्विशिनष्टि । साहस्रम् सहस्रविधोदकप्रवाहयुक्तम् । ❀ “तपः
सहस्राभ्यां विनीनी” । “अण् च” इति मत्वर्थीयः अण् प्रत्ययः ❀ ।
शतधारम् शतप्रवाहोपेतम् । अवयुत्य स्तुतिः । उत्सम् प्रसवणम् ।
यथा एवंविध उत्सः स्वोपजीविनः प्राणिनः प्रीणयति एवम् इदं
हविः नानाविधं सत् पितृन् पुष्पातीति उत्सात्मना रूपितम् ॥
पिन्वमानः । ❀ पिविरिदन्तः प्रीणनार्थो भौवादिकः । इदित्वा-
न्नुम् ❀ । हविषा प्रीतः स वैश्वानरोऽग्निः पितरम् पितृत्वं प्राप्तं
स्वजनकं प्रेतं पितामहान् पितुः पितृन् बिभर्ति प्रीणयति ।
तथा प्रपितामहान् प्रकृष्टान् पितामहान् स्वपितुः पितामहान् ।
बहुवचनेन पितामहादीन् सर्वान् स्ववंश्यान् । बिभर्ति पुष्पा-
तीति । ❀ “पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः” इति पितामहशब्दो
निपातितः ❀ ॥

मैं इन वैश्वानर अग्निदेवमें इस दुग्धात्मक वा स्थालीपाकरूप
हविको होमता हूँ । यह हवि अनेक प्रकारके जलप्रवाहसे सम्पन्न
है सैकड़ों प्रवाहों वाली है, और वर्षा करके मेघकी समान अपने
उपजीवी पितरोंको तृप्त करने वाली है । इस हविसे प्रसन्न हुए
वैश्वानर अग्नि पितृत्वको प्राप्त हमारे प्रेत पिताको, पिताके पिताओं
(चचेरे तरेरे सगे दादाओं) को और प्रपितामहोंको अर्थात् मेरे
वंशमें उत्पन्न हुए सब पुरुषोंको पुष्ट करे ॥ ३५ ॥

षष्ठी ॥

सहस्रधारं शतधारमुत्समक्षितं व्यच्यमानं सलि-
लस्य पृष्ठे ।

ऊर्जं दुहानमनपस्फुरन्तमुपासते पितरः स्वधाभिः ३६

सहस्रधारम् । शतधारम् । उत्सम् । अक्षितम् । विऽअच्यमा-

नम् । सलिलस्य । पृष्ठे ।

ऊर्जम् । दुहानम् । अनपस्फुरन्तम् । उप । आसते । पितरः ।

स्वधाभिः ॥ ३६ ॥

सहस्रधारम् सहस्रसंख्याकच्छिद्रपतितोदक-वाहयुक्तं शतधारम् ।
अवयुत्यैव स्तुतिः । उत्सम् । उत्सवद् उत्सः । उत्सोपमं कलशम्
अक्षितम् क्षयरहितम् उदकपूर्णं सलिलस्य अन्तरिक्षस्य पृष्ठे उपरि-
भागे व्यच्यमानम् । ❀ व्यचतिव्याप्तिकर्मा ❀ । व्याप्नुवन्तम् ।
आकाशे धार्यमाणम् इति यावत् । ऊर्जम् बलकरम् अन्नम् ।
अन्नसाधनोदकम् इति यावत् । दुहानम् क्षारयन्तम् अनपस्फुरन्तम्
बहुच्छिद्रसाहित्येपि अविदीर्यमाणं सम्यक् शोभमानं वा सहस्र-
च्छिद्रं कुम्भं पितरः प्रेतभूताः । ❀ पूजायां बहुवचनम् ❀ ।
स्वधाभिः । ❀ हेतौ तृतीया ❀ । स्वपीणनसाधनैरन्नैर्हेतुभिः
उपासते सेवन्ते उपगच्छन्ति ॥

प्रेतभूत पितरः, सहस्र छिद्रोंसे गिरते हुए जलप्रवाहसे सम्पन्न
अत एव मेघही समान क्षयरहित उदकपूर्ण अन्तरिक्षके ऊपरके
भागमें व्याप्त-आकाशमें धरे हुए-अन्नके साधन जलको टप-
काते हुए बहुतसे छिद्र होने पर भी न टूटते हुए कुंभकी उपा-
सना करते हैं ॥ ३६ ॥

सप्तमी ॥

इदं कसाम्बु चयनेन चितं तत् सजाता अव पश्यतेत ।

मर्त्योयममृतत्वमेति तस्मै गृहान् कृणुत यावत्सबन्धु

इदम् । कसाम्बु । चयनेन । चितम् । तत् । सजाताः । अव ।

पश्यत । मा । इत् ।

७३० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

मर्त्यः । अयम् । अमृतत्वम् । एति । तस्मै । गृहान् । कृणुत ।

यावत्सबन्धु ॥ ३७ ॥

हे सजाताः सहजन्मानः समानकुले जाता गोत्रिणः यूयं चय-
नेन संचयनकर्मणा चितम् संचितम् एकत्र समूहीकृतं तद् इदं
कसाम्बु कसाः कीकसाः अस्थीनि । ❀ आदिवर्णलोपश्छान्दसः ❀ ।
कसाश्च अम्बूनि च कसाम्बु । ❀ द्वन्द्वैकवद्भावः ❀ । पूर्वमन्त्रेण
अस्थनाम् उदकेन आसावनम् उक्तम् । उदकासावितान्यस्थीनि
अव पश्यत अवधानेन ईक्षध्वम् । एत आगच्छत ॥ अयं मर्त्यः
मरणधर्मा प्रेतः अमृतत्वम् एति अमरणधर्मं प्राप्नोति । तस्मै तदर्थं
गृहान् स्थानानि कृणुत कुरुत । यावत्सबन्धु यावन्तः सबन्धवः
समानगोत्रा भवथ ते सर्वे यूयं तस्मै प्रेताय गृहान् कुरुतेति ।
तस्यास्थिनिरीक्षणमेव परलोके स्थानकरणम् इत्यर्थः ॥

हे समान कुलमें उत्पन्न हुए गोत्र वालों ! तुम सञ्चयन कर्म
से एकत्रित किये हुए इस जलसावित अस्थिसमूहको सावधानी
से देखो । आओ । यह अमरणधर्मप्रेत अमरणधर्मको प्राप्त हो
रहा है उसके लिये घर बनाओ, जितने तुम एक गोत्र वाले हो
उतने तुम सब प्रेतके लिये घरोंको बनाओ तात्पर्य यह है, कि—
इसकी अस्थियोंका देखना ही इसके लिये घर बनाना है ॥ ३७ ॥

अष्टमी ॥

इहैवैधि धनसनिरिहचित्त इहक्रतुः ।

इहैधि वीर्यवत्तरो वयोधा अपराहतः ॥ ३८ ॥

इह । एव । एधि । धनऽसनिः । इहऽचित्तः । इहऽक्रतुः ।

इह । एधि । वीर्यवत्स्तरः । वयऽधाः । अपराऽहतः ॥ ३८ ॥

हे दीप्तपांसुष्वहित उल्मुक त्वम् इहैव पांसुलक्षणे प्रदेश एव
एधि भव । धनमनिः अस्माकं धनस्य दाता भव । ❀ “छन्दसि
वनसनरक्षिमथाम्” इति सनोतेः इन् प्रत्ययः ❀ । इह अस्मिन्
प्रदेशे चित्तः प्रज्ञातो भव । ❀ चित्ती संज्ञाने । कर्मणि निष्ठा ।
“श्वीदितो निष्ठायाम्” इति इडभावः ❀ । इह क्रतुः कर्म अस्म-
दीयकर्म संपादको भव । तथा इहैव प्रदेशे वीर्यवत्तरः अत्स्वन्तं बल-
वान् वयोधाः । वय इति अन्ननाम । तस्य धाता विधाता अप-
राहतः शत्रुभिरपराजितश्च सन् एधि भव । ❀ अस्तेर्लोटि हौ
रूपम् ❀ ॥

हे उल्मुक ! तू यहाँ ही धूलिमय देशमें रह हमको धनदान
करने वाला हो, इस देशमें ही प्रज्ञात हो, यहाँ हमारे कर्मका
सम्पादक हो, तथा इसी प्रदेशमें परम बली, अन्नको पुष्ट करने
वाला और शत्रुओंसे अप्रभृष्य रहता हुआ बढ़ ॥ ३८ ॥

नवमी ॥

पुत्रं पौत्रमभितर्पयन्तीरापो मधुमतीरिमाः ।

स्वधां पितृभ्यो अमृतं दुहाना आपो देवीरुभयास्त-
र्पयन्तु ॥ ३६ ॥

पुत्रम् । पौत्रम् । अभिस्तर्पयन्तीः । आपः । मधुमतीः । इमाः ।
स्वधाम् । पितृभ्यः । अमृतम् । दुहानाः । आपः । देवीः । उभयान् ।
तर्पयन्तु ॥ ३६ ॥

मधुमतीः मधुररसोपेता इमा आचमनार्हा आपः पुत्रम् अग्न्य-
वहितं पुमपत्यं पौत्रम् पुत्रस्य पुमपत्यम् । ❀ उभयत्र एकवचनम्
अतन्त्रम् । लिङ्गं तु विवक्षितम् ❀ । पुत्रान् पौत्रांश्च अभितर्प-

यन्तीः अभितः सर्वतस्तर्पयन्त्यः प्रीणयन्त्यो भवन्ति यतः अतः
 पितृभ्यः स्वीयेभ्यः पिण्डोपजीविभ्यः अमृतम् अमरणसाधनं स्व-
 धाम् आत्मप्रीणनकरम् अन्नं दुहानाः प्रयच्छन्त्यो देवीः देव्यो
 द्योतमाना आपः आचमनीया उभयान् पुत्रान् पौत्रांश्च उभयविधान्
 तर्पयन्तु वर्धयन्तु । अथ वा उभयशब्देन स्वीया मातृपितामहा-
 दयः पितृवंश्याश्च विवक्ष्यन्ते । तान् उभयविधांस्तर्पयन्तु । पिण्ड-
 दानान्तरं क्रियमाणेन अनेन आचमनकर्मणा तृप्तान् कुर्वन्तु । ❀
 अस्मिन् पक्षे पितृभ्य इत्यत्र “पिता मात्रा” इति एकशेषो द्रष्टव्यः ❀॥

यह मधुर रस वाला आचमनके योग्य जल पुत्र और पौत्रोंको
 तृप्त करता रहता है और पिण्डोपजीवी पितरोंके लिये अमरण-
 साधन अपनेको प्रसन्न करने वाली स्वधाको देता रहता है ।
 ऐसा यह जल आचमन करने पर मातृकुलके और पितृकुलके
 इस प्रकार दोनों ओरके पितरोंको तृप्त करे ॥ ३६ ॥

दशमी ॥

आपो अग्निं प्रहिणुत पितॄरुपेमं यज्ञं पितरो मे जुषन्ताम्
 आसीनामूर्जमुप ये सचन्ते ते नो रयिं सर्ववीरं नि
 यच्छान् ॥ ४० ॥

आपोः । अग्निम् । प्र । हिणुत । पितॄन् । उप । इमम् । यज्ञम् ।

पितरः । मे । जुषन्ताम् ।

आसीनाम् । ऊर्जम् । उप । ये । सचन्ते । ते । नः । रयिम् । सर्व-
 वीरम् । नि । यच्छान् ॥ ४० ॥

हे आपः अवसेचनसाधनभूता यूयम् अग्निम् युष्माभिरवसि-
 च्यमानं दक्षिणाग्निं पितॄन् पितृपितामहादीन् उप । उपशब्दः समी-

पञ्चचनः । पितॄणां समीपं प्र हिणुत प्रेषयत । बर्हिर्दत्तान् पिण्डान् दातुम् इति शेषः ॥ मे मदीयम् इमम् इदानीम् अनुष्ठीयमानं यज्ञम् पिण्डपितृयज्ञाख्यं पितरः मदीया जुषन्ताम् सेवन्ताम् । पिण्डान् आस्वादयन्तु । ये पितरः आसीनाम् उपविष्टाम् । ❀ आस उपवेशने । “ईदासः” इति ईकारः ❀ । बर्हिषि आसादिताम् ऊर्जम् बलकरपिण्डलक्षणम् अन्नम् उप सचन्ते स्वीकर्तुं समीपे समवयन्ति ते पितरो नः अस्मभ्यं सर्ववीरम् । वीराः कर्मणि कुशलाः पुत्रपौत्रादयः । बहुपुत्रादिसहितं रयिम् धनं नि यच्छान् नियच्छन्तु प्रयच्छन्तु । नियमनं नाम स्थैर्येण अवस्थापनम् । ❀ यमेल्लेति “इतश्च लोपः परस्मैपदेषु” इति इकारलोपः ❀ ॥

इति चतुर्थेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे जलों ! अबसेचनके साधनरूप तुम अपने द्वारा अवसिक्त दक्षिणाग्निको यज्ञमें दिये हुए पिण्डोंको पहुँचानेके लिये पिता पितामह आदि पितरोंके समीप पहुँचाओ । मेरे पितर इस पिण्ड-पितृयज्ञ नामक यज्ञका सेवन करें—पिण्डोंका आस्वादन करें । और जो पितर यज्ञमें रखे हुए बलप्रद पिण्डरूप अन्नका सेवन करनेके लिये समीपमें आते हैं, वे पितर हमको सब कर्मोंमें कुशल पुत्र पौत्र आदि सहित बहुतसे धनको देवें ॥ ४० ॥ (२३)

चतुर्थं अनुवाकम् चतुर्थं सूक्तं समाप्त ।

“समिन्धते” इति आद्यया ऋचा पिण्डपितृयज्ञे समिधम् आदध्यात् । सूत्रितं हि । “उपसमादधाति ये निखाताः [१८. २. ३४] समिन्धते [१८. ४. ४१] ये तावृषुः [१८. ३. ४७] ये सत्यासः [१८. ३. ४८] इति [कौ० ११. ८]

“यास्ते धानाः” [४३] इत्यस्या अस्थिषु तिलमिश्रधानाविकिरणे विनियोग उक्तः ॥

“इदं पूर्वम्” [४४] इत्यनया दहनार्थं प्रेतम् उत्थाप्य शकटे निदध्यात् ॥

(७३४) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

“सरस्वतीं देवयन्तः” [४५] इति तिसृणां प्रेतशरीरे अग्नि-
दानानन्तरं सारस्वतहोमे विनियोग उक्तः ॥

“पृथिवीं त्वा” [४८] इत्यनया सवयज्ञेषु मृद्रोमयादिना चरु-
स्थालीम् आलिम्पेत् । “पृथिवीं त्वा पृथिव्याम् इति कुम्भीम्
आलिम्पति” इति [कौ० ८. २] सूत्रं प्रागेव प्रदर्शितम् ॥

“आ प्रच्यवेथाम्” [४६] इति ऋचा प्रेतवाहनवृषभौ अभि-
मन्त्र्य कर्ता गृह्णीयात् ॥

पितृमेष एव चतुर्थेऽहनि “एयमगन्” [५०] इति ऋचा
दक्षिणारूपां गाम् अभिमन्त्र्य प्रतिगृह्णीयात् ॥

“समिन्धते” इस पहिली ऋचासे पिण्डपितृयज्ञमें समिधाको
रक्खे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“उपसमादधाति ये
निखाताः (१८ । २ । ३४) समिन्धते (१८ । ४ । ४१) ये
तातृषुः (१८ । ३ । ४७) ये सत्यासः (१८ । ३ । ४८)”
(कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

“यास्ते धानाः” इस (४३ वीं) ऋचाका अस्थियों पर तिल-
मिश्रित भुने हुए जौंकी खोलोंके प्रक्षेपमें विनियोग कह दिया ।
“इदं पूर्वम्” इस चौबालीसवीं ऋचासे भस्म करनेके लिये प्रेत
को उठा कर शकटमें रक्खे ।

“सरस्वतीं देवयन्तः” आदि (४५ । ४६ । ४७) तीन ऋचाओं
का प्रेतशरीरमें अग्निदानके अनन्तर सारस्वतहोममें विनियोग
कहा है

“पृथिवीं त्वा” इस अड़तालीसवीं ऋचासे सव यज्ञोंमें मही गोबर
आदिसे चरुस्थालीको लीप देय । इस विषयका कौशिकसूत्र ८ । २
“पृथिवीं त्वा पृथिव्याम् इति कुम्भीं आलिम्पन्ति” पहिले ही कह
दिया है ।

“आ प्रच्यवेथां” इस ४६ वीं ऋचासे प्रेतको सवारी देनेवाले बैलोंको अभिमन्त्रित करके कर्ता ग्रहण करे ।

पितृमेघमें ही चौथे दिन “एयमगन्” इस ५० वीं ऋचासे दक्षिणाकी गौको अभिमन्त्रित करके ग्रहण करे ॥

तत्र प्रथमा ॥

समिन्धते अमर्त्यं हव्यवाहं घृतप्रियम् ।

स वेद निहितान् निधीन् पितृन् परावतो गतान् ४१

सम् । इन्धते । अमर्त्यम् । हव्यवाहम् । घृतप्रियम् ।

सः । वेद । निऽहितान् । निऽधीन् । पितृन् । पराऽवतः । गतान्

अमर्त्यम् अमरणधर्माणं घृतप्रियम् प्रियं प्रीतिकरं घृतम् आज्यं यस्य । ❀ “वा प्रियस्य” इति प्रियशब्दस्य पूर्वनिपातविकल्पनाद् अत्र परनिपातः ❀ । आज्येन अग्निः प्रवृद्धज्वालो भवतीति घृतप्रियत्वम् । हव्यवाहम् हव्यस्य हविषो वोढारम् अग्निं समिन्धते समिन्धनसाधनैः काष्ठैः सम्यग् दीपयन्ति कर्तारः । ❀ इन्धेर्लटि बहुवचने रूपम् ❀ । यद्वा ❀ तस्मादेव धातोर्लेटि अडागमः ❀ । समिद्धिः समिन्धीत । यतः सोग्निः निहितान् भूमौ स्थापितान् निधीन् निक्षेपान् । लुप्तोपमम् एतत् । यथा भूम्यां निगूढा निधयः प्रदर्शकेन बिना न प्रकाशन्ते एवं पितरोपि पुरःस्फूर्तिका न भवन्ति । निधीनिव स्थितान् परावतः । परावच्छब्दो दूरवाची । ❀ पराशब्दाद् “उपसर्गाच्छन्दसि०” इति वतिप्रत्ययः ❀ । अतिदूरान् देशान् गतान् प्राप्तान् पितृन् वेद जानाति । अस्य पितरः अत्र देशे वर्तन्त इति सम्यग् जानाति । ❀ वेत्तेः “विदो लटो वा” इति तिपो णल् आदेशः ❀ । अतः समिन्धत इति संबन्धः ॥

कर्ता पुरुष मरणधर्मरहित, घृतसे बढ़ने वाले अत एव घृतमिय, हवियोंका वहन करने वाले अग्निको काष्ठोंसे प्रदीप्त करते हैं । क्योंकि-जैसे भूमिमें छिपे हुए खजानेको किसी दिखाने वालेके बिना कोई नहीं जान सकता, इसी प्रकार पितर भी अपने आप ही प्रकाशित होने वाले नहीं होते । और यह अग्निदेव निधिकी समान परम दूर देशमें स्थित पितरोंको जानते हैं, कि-इसके पितर यहाँ इस देशमें रहते हैं, अत एव कर्ता इस अग्निको प्रदीप्त करते हैं ॥ ४१ ॥

द्वितीया ॥

यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामि ते ।

ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्रुतः ॥ ४२ ॥

यम् । ते । मन्थम् । यम् । ओदनम् । यत् । मांसम् निपृणामि । ते ।

ते । ते । सन्तु । स्वधावन्तः । मधुमन्तः । घृतश्रुतः ॥ ४२ ॥

प्रेतस्य हि प्रीणनाय सक्तमन्थादयः प्रदीयन्ते । “ये अग्नयः [३. २१.१] इति दशर्चेन पलाशपर्णैः सक्तुमन्थं विकिरेत्” इति हि सूत्रम् [कौ० ११.३] । “अपूपवान् मांसवान्” इति [२०] “० अन्नवान्” [२१] इति च मन्त्रयोर्मांसान्नदानं विहितम् । उपलक्षणम् एतत् क्षीरौदनदध्योदनतिलमिश्रधानादेः । यन्मन्थादिकम् हे प्रेत ते तुभ्यं निपृणामि ददामि । निपरणं नाम पित्र्योपवीतिना पराचीन पाणिना पित्रर्थं चोदितद्रव्यस्य प्रक्षेपः । ते मन्थादयः ते तव स्वधावन्तः बहन्ना मधुमन्तः मधुयुक्ता घृतश्रुतः घृतसहिताश्च सन्तु भवन्तु ॥

[प्रेतको तृप्त करनेके लिये सक्तुमन्थ आदि दिये जाते हैं इस विषयमें कौशिकसूत्र ११ । ३ का प्रमाण है, कि-“ये अग्नयः ३ । २१ । १ इति दशर्चेन पलाशपर्णैः सक्तुमन्थं विकिरेत् ।-ये

अग्नयः (३ । २१ । १) आदि दश ऋचाओंसे पलाशपत्रोंके द्वारा मन्थको देवे" अत एव इन मन्त्रोंसे] जो मन्थ आदि हे प्रेत ! तुझको देरहा हूँ । वे मन्थ आदि तेरे लिये स्वधा वाले और घृत वाले हों ॥ ४२ ॥

तृतीया ॥

यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः ।
तास्ते सन्तुद्भ्वीः प्रभ्वीस्तास्ते यमो राजानु मन्यताम्
याः । ते । धानाः । अनुऽकिरामि । तिलऽमिश्राः । स्वधाऽवतीः ।
ताः । ते । सन्तु । उत्स्र्भ्वीः । प्रऽभ्वीः । ताः । ते । यमः ।
राजा । अनु । मन्यताम् ॥ ४३ ॥

“यास्ते धानाः” इति तृतीया ऋग् अस्मिन्नेनुवावाके तृतीय-
सूक्ते व्याख्याता [२६] ॥

हे प्रेत ! मैं तेरे लिये जिन काले तिलों वाजी स्वधान्नसे संपन्न
शुनी हुई जौंकी खीलोंको देरहा हूँ, वे खीलें तेरे परलोकमें पहुँचने
पर तुझको बड़ी २ और विशाल परिमाणमें मिलें । और इन
खीलोंका भोग लगानेके लिये यमराज तुझको अनुमति दें ४३

चतुर्थी ॥

इदं पूर्वमपरं नियानं येना ते पूर्वे पितरः परेताः ।
पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य ते त्वा वहन्ति सुकृ-
तामु लोकम् ॥ ४४ ॥

इदम् । पूर्वम् । अपरम् । निऽयानम् । येन । ते । पूर्वे । पितरः ।
पराऽइताः ।

पुरःऽगवाः । ये । अभिऽशाचः । अस्य । ते । त्वा । वहन्ति ।

सुकृताम् । ॐ । इति । लोकात् ॥ ४४ ॥

इदं नियानम् । नीचीनं पराङ्मुखं यान्ति अनेन प्रेता इति नियानं शकटम् । इदं पुरोवर्ति प्रेतवहनाय संनद्धं नियानं शकटं पूर्वम् पुरातनम् अपरम् अद्यतनं च । पूर्वेषां प्रेतानां वहनाय एतदेव शकटम् अपरेषाम् इदानींतनानामपि इदमेव शकटम् इति पूर्वम् अपरं चेत्युच्यते । पूर्वत्वमेव उपपादयति । येन शकटेन ते तव पूर्वं पुरातनाः पितरः परेताः इतः पराङ्मुखं यताः ॥ अस्य अपरस्य इदानीं संनह्यमानस्य शकटस्य अभिषाचः अभितः पार्श्वद्वये सचमानाः संगच्छमानाः पुरोगवाः शकटस्य पुरस्ताद्भागे धुरि युज्यमानाः अनङ्बाहो ये सन्ति । ❀ “गोरतद्धितलुकि” इति टच् समासान्तः ❀ । ते पुरोगवास्त्वा त्वां सुकृताम् सुकृतकर्मणाम् । उशब्दः अवधारणे । लोकमेव वहन्तु प्रापयन्तु । ❀ बहिर्द्विकर्मकः ❀ ॥

जिसके द्वारा प्राणी इस लोकसे पराङ्मुख होकर जाते हैं वह यह प्रेतको ढोनेके लिये तयार नियान (शकट) प्राचीन भी है और नवीन भी है । [अर्थात् पहिलेके प्रेतोंको ढोनेके लिये भी ऐसा ही शकट था और अब भी ऐसा ही शकट है अत एव यह प्राचीन भी है और नवीन भी है] इसके द्वारा तेरे पूर्व प्रेत गए थे । इस समय जोड़े जाते हुए इस शकटके दोनों आर जो दो बैल हैं वह तुम्हको पुण्यात्माओंके लोकमें लेजावें ॥४४॥

पञ्चमी ॥

सरस्वतीं देवयन्तां हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतां हवन्ते सरस्वती दाशुषे वार्यं दातु

सरस्वतीम् । देवऽवन्तः । हवन्ते । सरस्वतीम् । अध्वरे । त्रायमाने ।

सरस्वतीम् । सुऽकृतः । हवन्ते । सरस्वती । दाशुषे । वार्यम् । दातु

“सरस्वतीं देवयन्तः” [१८. १. ४१] इति पञ्चमवाद्यास्तिस्र
ऋचः अस्मिन्नेव काण्डे प्रथमेनुवाके पञ्चमे सूक्ते व्याख्याताः ॥

मृतशरीरके संस्कारक अग्निदेवको चाहते हुए पुरुष वाग्देवता
सरस्वतीका आवाहन करते हैं और ज्योतिष्ठोम आदि यज्ञके समय
भी सरस्वतीका आवाहन करते हैं और पुण्यात्मा पुरुषोंने भी
सरस्वतीका आवाहन किया है । वह सरस्वती हविः प्रदान करने
वाले यजमानके लिये वरणीय पदार्थको देवे ॥ ४५ ॥

षष्ठी ॥

सरस्वतीं पितरो हवन्त दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।

आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे

सरस्वतीम् । पितरः । हवन्ते । दक्षिणा । यज्ञम् । अभिऽनक्षमाणाः ।

आऽसद्य । अस्मिन् । बर्हिषि । मादयध्वम् । अनमीवाः । इषः ।

आ । धेहि । अस्मे इति ॥ ४६ ॥

वेदीके दक्षिणभागमें बैठे हुए पितर भी सरस्वतीदेवीका आवाहन
करते हैं [सर्वकर्माणि तां दिशम्—सब कर्म दक्षिण दिशाकी
ओर किये जावें] इस आश्वलायनसूत्र २ । ६ । ३ के अनुसार
वेदीके दक्षिणभागमें सब पित्र्य कर्म किये जाते हैं और पितरोंको
भी स्वधाप्राप्तिके लिये सन्त्ररूपा सरस्वतीकी अपेक्षा होती ही
है] हे पितरों ! तुम इस यज्ञमें बैठ कर प्रसन्न होओ । सरस्वती
को तृप्त करो और आकर हमारी दी हुई हविसे तृप्त होओ ।

७४० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

और हे सरस्वति ! पितरोंसे बुलाई हुई तुम व्याधिशून्य अभि-
लषित अन्नको हममें स्थापित करो ॥ ४६ ॥

सप्तमी ॥

सरस्वति या सरथं ययाथोक्थैः स्वधाभिर्देवि पितृभि-
र्मदन्ती ।

सहस्रार्घमिडो अत्र भागं सयस्पोषं यजमानाय धेहि

सरस्वति । या । सरथम् । ययाथ । उक्थैः । स्वधाभिः । देवि ।

पितृभिः । मदन्ती ।

सहस्रऽर्घम् । इडः । अत्र । भागम् । रावः । पोषम् । यजमानाय ।
धेहि ।

हे सरस्वती देवि ! आप उक्थ शस्त्र तथा स्वधान्नसे पितरों-
सहित अपनेको तृप्त करती हुई एक ही रथ पर आती हैं आप
यहाँ पुत्र आदि अनेकों व्यक्तियोंको तृप्त करने वाले अन्नके भाग
को और धनकी पुष्टिको मुझ यजमानके लिये दीजिये ॥ ४७ ॥

अष्टमी ॥

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि देवो नो धाता प्र
तिरात्यायुः ।

परांपरैता वसुविद् वो अस्त्वधा मृताः पितृषु सं भवन्तु

पृथिवीम् । त्वा । पृथिव्याम् । आ । वेशयामि । देवः । नः । धाता ।

प्र । तिराति । आयुः ।

पराऽपरेता । वसुऽवित् । वः । अस्तु । अध । मृताः । पितृषु ।

सम् । भवन्तु ॥ ४८ ॥

पृथिव्याम् पृथिवीविकारभूतायां कुम्भ्यां पृथिवीम् हे मृत्तिके
त्वा त्वां मृदम् आ देशयामि आलिम्पामि । मृद्गोमयादिलेपनेन
चरुस्थालीं त्वा ईषद् दृढां करोमि । धाता विधाता सर्वस्य देवो
नः अस्माकं सवयज्ञानुष्ठातणाम् आयुः जीवनं प्र तिराति ।
❀ प्रपूर्वस्तिरतिर्वर्धनार्थः ❀ । प्रतिरतु प्रवर्धयतु । ❀ प्रपूर्वात्
तिरतेर्लेटि आडागमः ❀ । हे परापरेताः परावतं दूरदेशं पराङ्-
मुखम् इतो गता हे पितरः वः युष्माकं वसुवित् वसु अन्नलक्षणं
धनम् तस्य लम्भयित्री प्रापयित्री अस्तु भवतु । एषा मृदालिप्ता
चरुकुम्भीति लभ्यते ॥ अथ परोक्षस्तुतिः । अध अथ चरुस्वाहा-
कारानन्तरं पितृषु पितृत्वं प्राप्तेषु पुरातनेषु स्वपूर्वजेषु अमृताः
अमरणधर्माणः सन्तः सं भवन्तु संप्राप्ताः संयुक्ता भवन्तु । इदा-
नीतनाः पितरः स्वपूर्वजान् पितृन् संयुञ्जन्तु । ❀ भवतिरत्र
प्राप्त्यर्थः ❀ ॥

पृथिवीकी विकार कुंभीमें हे पृथिवि (मृत्तिके) ! मैं तुम्हको
प्रवेश कराता हूँ अर्थात् मट्टी गोबर आदिके लेपसे तुम्ह चरुस्थाली
को कुछ दृढ़ करता हूँ । धाता देवता हम सब सवयज्ञका अनुष्ठान
करने वालोंकी आयुको बढ़ावें । हे दूर देशमें गए हुए पितरों !
यह मट्टीगोबरसे लिपी हुई चरुकुंभी तुम्हको अन्नरूपी धनकी
प्राप्ति कराने वाली होवे । चरुस्वाहाकारके अनन्तर यह मृत
पुरुष अपने पूर्वज पितरोंसे संयुक्त होजावें ॥ ४८ ॥

नवमी ॥

आ प्र च्यवेथामप तन्मृजेथां यद् वामभिभा अत्रोचुः ।

७४२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अस्मादेतमध्न्यौ तद् वशीयो दातुः पितृष्विहभोजनौ

मम ॥ ४६ ॥

आ । प्र । च्यवेथाम् । अप । तत् । मृजेथाम् । यत् । वाम् ।

अभिऽभाः । अत्र । ऊचुः ।

अस्मात् । आ । इत्म् । अध्न्यौ । तत् । वशीयः । दातुः । पितृषु ।

इहभोजनौ । मम ॥ ४६ ॥

हे प्रेतवाहनवृषभौ युवाम् आ अस्मदभिमुखं प्र च्यवेथाम् शक-
टात् प्रच्युतौ वियुक्तौ भवेतम् । ❀ च्युङ् प्लुङ् गतौ । भौवादिक
आत्मनेपदी ❀ । तत् वक्ष्यमाणं निन्दारूपं वाक्यम् अप मृजे-
थाम् अपमार्जेयतं शोभयतम् । ❀ मृजेर्लोटि व्यत्ययेन शः ।
“आतो ङितः” इति इयादेशः ❀ । किं तद् अपमार्जनीयं तद्
आह । अभिभाः अभिभावका दूषकाः पुरुषाः । ❀ अभिपूर्वाद्
भवते: “ढोन्यत्रापि दृश्यते” इति ङः ❀ । अत्र अस्मिन् प्रेतवहन-
कर्मणि वाम् युवां यद् ऊचुः पुंगवौ किल अस्पृश्यम् अनिरीक्ष्यं
प्रेतम् ऊढवन्तौ इत्यादिनिन्दारूपं यद् वाक्यम् उदितवन्तस्तच्छो-
भयतम् इति । अतो हेतोः हे अध्न्यौ अहन्तव्यौ हे वृषभौ युवाम्
अस्मात् निन्दानिमित्ताच्छकटाद् एतम् आगच्छतम् । तत् आग-
मनं वशीयः श्रेष्ठं भवति युवयोः । ततः इह अस्मिन् पितृमेधे
पितृषु । ❀ विषयसप्तमी ❀ । पितृविषये पितृन् उद्दिश्य दातुः
अग्निं प्रदातुः हविः प्रदातुर्वा मम भोजनौ भोजयितारौ पालयितारौ
भवतम् इति ॥

हे प्रेतको सवारी देने वाले वृषभों ! तुम दोनों हमारे सामने
इस शकटसे अलग होओ, और जो तुम्हारे निन्दक यह कह रहे

हैं, कि इन्होंने अस्पृश्य प्रेतको सवारी दी है उस निन्दावाक्यसे मुक्त होओ । अतएव हे अवध्य वृषभों ! तुम इस निन्दानिमित्तक शकटसे आओ । तुम्हारा यह आगमन श्रेष्ठ हो और इस पितृमेघ में पितरोंके निमित्त हवि देने वाले मेरे पालक बनो ॥ ४६ ॥

दशमी ॥

एयमगन् दक्षिणा भद्रतो नो अनेन दत्ता सुदुघाः
वयोधाः ।

यौवने जीवानुपपृञ्चती जरा पितृभ्यं उपसंपराणयादि-
मान् ॥ ५० ॥

आ । इयम् । अगन् । दक्षिणा । भद्रतः । नः । अनेन । दत्ता ।

सुदुघा । वयःधाः ।

यौवने । जीवान् । उपपृञ्चती । जरा । पितृभ्यः । उपसंपराण-
यात् । इमान् ॥ ५० ॥

इयं दक्षिणा गोरूपा नः अस्मान् संस्कर्तुं भद्रतः कन्याणात् प्रदेशाद् आ अगन् आगच्छति ॥ ❀ गमेलुं कि “मन्त्रे वस०” इति चलेलुं क् । “हल्ङ्या०” इत्यादिना तिपो लोपे “मो नो धातो” इति नत्वम् ❀ । अनेन प्रेतेन दत्ता वितीर्णा सुदुघा सुष्ठु दोग्ध्री वयोधाः । वय इति अन्ननाम । अन्नस्य क्षीरलक्षणस्य विधात्री प्रदात्री गोरूपा दक्षिणा यौवने । युवस्या भावो यौवनम् । ❀ “हायः नान्तयुवादिभ्योल्” इति अण् प्रत्ययः ❀ । यौवनं नाम शरीरस्य मध्यावस्था तस्याम् । लुप्तोपमम् एतत् । यौवन इव वार्धके जरा उपपृञ्चती आत्मानं जरया संपर्चयन्ती संयोजयन्ती । अवि-

शब्दः अध्याहार्यः । संयोजयन्त्यपि यौवने वर्तमानेव जीवा जीवतु ।
किं च गोरूपा दक्षिणा पितृभ्यः पूर्वजेभ्यः । ❀ तादर्थ्ये चतुर्थी ❀ ।
इमान् अधुना संस्क्रियमाणान् पितॄन् उप समीपं संपराणयात्
सम्यक् पराङ्मुखं नयतु पूर्वजान् प्रापयतु । ❀ उभयत्र लेटि
आडागमः ❀ ॥

इति चतुर्थेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

यह गोरूपा दक्षिणा हम संस्कर्ताओंके पास कल्याणमय
स्थानसे आरही है । यह इस प्रेतके द्वारा दी हुई सुन्दर फलोंको
देती हुई और क्षीरलक्षण अन्नको देती हुई गोरूपा दक्षिणा
यौवनकी समान ही बुढ़ापेमें युवती रहे और यह गोरूपा दक्षिणा
पूर्वज पितरोंके पास इस संस्क्रियमाण पितरको पहुँचावे ५० (२४)

चतुर्थ अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त ॥

“इदं पितृभ्यः” इति [५१] प्रथमायाः प्रथमार्धेन चितिकाष्ठा-
नाम् उपरि दर्भान् स्तृणाति । उत्तरार्धेन आस्तीर्णदर्भायां चितौ
प्रेतम् उत्तानशयं कुर्यात् ॥

तथा श्मशानचयनकर्मणि “इदं पितृभ्यः” इत्यर्धर्चेन गर्ते दर्भान्
स्तृणीयात् । “तदा रोह” इत्युत्तरार्धेन अस्थीनि तस्मिन् गर्ते
निदध्यात् ॥

“एदं बहिः” इति [५२] ऋचा कुले ज्येष्ठः अस्थीनि यथा-
परु संचिनुयात् ॥

“पर्णो राजा” इति [५३] ऋचा “अपूपवान् क्षीरवान्”
इति मन्त्रोक्तान् प्रतिदिशं मध्ये च स्थापितान् नव चरुन् शत-
च्छिद्रसहस्रच्छिद्रादिपात्राणि च मध्यपलाशपत्रैराच्छादयेत् ॥

“ऊर्जो भागः” इति [५४] ऋचा चरुन् पात्राणि च पाषाणै-
रिष्टकाभिर्वा पिदध्यात् ॥

“यथा यमाय” इति [५५] ऋचा शलाकाभिरिष्टकाभिर्वा

प्रसव्यं चितं श्मशानप्रदेशं कुट्टयेयुः । सर्वत्र कर्तुरेव मन्त्रवचनम् । तत्र पितृगृहम् उन्नतं कुर्यात् “उन्नतं स्वर्गकामस्य” इति श्रुतेः ॥

“इदं हिरण्यम्” इति [५६] प्रथमार्धेन प्रेतहस्ते विद्यमानं हिरण्यम् आज्येन अभिघार्य ज्येष्ठपुत्रेण अग्रावादीपयेत् । “स्वर्गं यतः” इत्युत्तरार्धेन पुत्रः प्रेतहस्तं मार्जयेत् ॥

“ये च जीवाः” इति [५७] ऋचा सर्पिर्मधुसहितं चरुद्वयम् अभिमन्त्र्य अस्थिसमीपे निदध्यात् ॥

पिण्डपितृयज्ञे अनया बर्हिषि पित्रर्थं दत्तान् पिण्डान् घृतेन अभिघारयेत् ॥

“वृषा मतीनाम्” [५८] इत्यादीनां तिसृणां पितृमेध एव काण्डोक्तो विनियोगोऽनुसंधेयः ॥

“इदं पितृभ्यः” (५९) इस प्रथम ऋचाके प्रथमार्धसे चिता के काष्ठोंके ऊपर दमोंको फैलावे । उत्तरार्धसे कुशा बिछी हुई चिता पर प्रेतको चित्त करके लिटावे ।

तथा श्मशानचयन-कर्ममें “इदं पितृभ्यः” इस आधी ऋचा से गड़हेमें कुशाओंको बिछावे । “तदारोह” इस उत्तरार्धसे उन अस्थियोंको गड़हेमें रखे ।

“एदं बर्हिः” इस बावनवीं ऋचासे कुलमें ज्येष्ठ पुरुष अस्थियों को गाँठोंके अनुक्रमसे एकत्रित करे ।

“पर्णो राजा” इस तरेपनवीं ऋचासे “अपूपवान् क्षीरवान्” आदि मन्त्रमें कहे हुए प्रत्येक दिशामें स्थापित नौ चरुओंको और सौ तथा सहस्र छिद्र वाले पात्रोंको भी मध्यपलाशपात्रोंसे आच्छादित कर देय ।

“ऊर्जो भागः” इस चौअनवीं ऋचासे चरुओंको और पात्र को भी पाषाणों वा ईंटोंसे ढक देय ।

७४६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

“यथा यमाय” इस पचपनवीं ऋचासे शलाका वा ईंटोंसे प्रसव्य चुने हुए श्मशान प्रदेशको कूटें। तहाँ पिताके घरको उन्नत बनावे। श्रुतिमें भी कहा है, कि—“उन्नतं स्वर्गकामस्य।—स्वर्गकी अभिलाषा वालेका उत्तम घर होना चाहिये”।

“इदं हिरण्यम्” इस छप्पनवीं ऋचाके प्रथमार्धसे प्रेतके हाथ में रखे हुए सुवर्णको घृतसे अभिघारित करके ज्येष्ठपुत्रके द्वारा अग्निमें भस्म करा देय। “स्वर्गं यतः” इस उत्तरार्धसे पुत्र प्रेत के हाथका मार्जन करे।

“ये च जीवाः” इस सत्तावनवीं ऋचासे घी शहद पड़े हुए दो चरुओंको अभिमन्त्रित करके अस्थियोंके समीपमें धर देय।

पिएडपितृयज्ञमें इस ऋचासे कुशाओं पर पिताके लिये दिये हुए पिएडोंको घृतसे अभिघारित करे।

“वृषा मतीनाम्” (५८ । ५९ । ६०) इन तीन ऋचाओंका पितृमेधमें ही काण्डोक्त विनियोग सम्पन्नना चाहिये ॥

तत्र प्रथमा ॥

इदं पितृभ्यः प्र भरामि बर्हिर्जीवं देवेभ्य उत्तरं स्तृणामि ।
तदा रोह पुरुष मेध्यो भवन् प्रति त्वा जानन्तु पितरः
परेतम् ॥ ५१ ॥

इदम् । पितृभ्यः । प्र । भरामि । बर्हिः । जीवम् । देवेभ्यः ।

उत्तरम् । स्तृणामि ।

तत् । आ । रोह । पुरुष । मेध्यः । भवन् । प्रति । त्वा । जानन्तु ।

पितरः । पराऽतम् ॥ ५१ ॥

पितृभ्यः पित्रर्थम् इदं बर्हिः प्र भरामि प्रहरामि आस्तृणामि ।
तस्मिन्नास्तीर्णे बर्हिषि देवेभ्यः देवार्थं जीवन् जीवनवान् अहं
संस्कर्ता उत्तरम् उपरितनं बर्हिः स्तृणामि । ❀ स्तृञ् आच्छा-
दने ❀ । हे पुरुष त्वं मेध्यः । मेधो यज्ञः पितृमेधाख्यः । तदर्हो
भवन् तत् बर्हिः आ रोह आतिष्ठ । ❀ भवतेः शत्रन्तं पदं भव-
न्निति ❀ । पितरः पूर्वजाः परेतम् इतः पराङ्मुखं गतं त्वा त्वां
प्रति जानन्तु अनुजानन्तु । बर्हिरारोहणाय अस्मदीयोयं पितृलोकं
प्राप्नोत्विति स्मरन्तु इत्यर्थः । ❀ “संप्रतिभ्याम् अनाध्याने” इति
आध्यानपर्युदासाद् आत्मनेपदाभावः ❀ ॥

मैं इन कुशाओंको पितरोंके लिये विद्याता हूँ और इन विद्धे
हुए कुशाओंके ऊपर मैं संस्कर्तापुरुष देवताओंके लिये जीवित
रहना चाहता हुआ कुशाओंको विद्याता हूँ । हे पुरुष ! तू पितृ-
मेधके योग्य होता हुआ इन कुशाओं पर आरोहण कर, पूर्वज
पितर तुझको प्रेत हुआ जानें ॥ ५१ ॥

द्वितीया ॥

एदं बर्हिरसदो मेध्योभूः प्रति त्वा जानन्तु पितरः परेतम्
यथापरु तन्वं १ सं भरस्व गात्राणि ते ब्रह्मणा कल्पयामि

आ । इदम् । बर्हिः । असदः । मेध्यः । अभूः । प्रति । त्वा ।

जानन्तु । पितरः । पराऽइतम् ।

यथाऽपरु । तन्वम् । सम् । भरस्व । गात्राणि । ते । ब्रह्मणा ।

कल्पयामि ॥ ५२ ॥

हे प्रेत त्वम् इदं चितावास्तीर्णं बर्हिः असदः आरुक्षः ।
❀ सदेर्लूदित्वात् च्लेः अङ् ❀ ॥ अतो मेध्यः पितृमेध्यज्ञार्हः

अभूः । दहनेन संस्कृतोभूरिति यावत् ॥ प्रति त्वेति पादो व्याख्यातः । जानन्त्विति लोटन्तं पदं भूतकालपरतया व्याख्येयम् । अथ वा क्रियमाणास्थिसंचयनार्थम् अनुजानन्त्विति यथास्थितम् अस्तु ॥ तन्वम् तनूम् अस्थिरूपां यथापरु । परुशब्दः पर्ववाची । यथापर्व जीवदवस्थायां येन संनिवेशेन अस्थीनि संहितानि तं निवेशम् अनतिक्रम्य । ❀ पदार्थानतिवृत्तौ अव्ययीभावः ❀ । सं भरस्व संहरस्व । ❀ “हृग्रहोर्भः०” ❀ । संधेहि ॥ अहमपि कुले ज्येष्ठः ते तव गात्राणि अङ्गानि अस्थिरूपाणि ब्रह्मणा मन्त्रेण कल्पयामि पूर्वस्थितपर्वानतिक्रमेण समर्थानि संहितानि करोमि ॥

हे प्रेत ! तू इस चिता पर बिछी हुई कुशा पर चढ़ गया है अतः पितृमेधके योग्य पवित्र होगया है, पितर तुझको प्रेत हुआ जानें अर्थात् यह हमारा पुरुष कुशाओं पर चढ़नेसे पितृलोकको प्राप्त हो यह जानें । जीवित अवस्थामें जिस प्रकार तेरी अस्थिरूपां वैसी ही रहें । कुलमें ज्येष्ठ मैं भी तेरे अस्थिरूप अंगोंको मन्त्रसे संहित करता हूँ ॥ ५२ ॥

तृतीया ॥

प॒र्णो॑ रा॒जापि॑धानं च॒रु॒णामूर्जो॑ बलं सह ओजो न॒
आ॒गन् ।

आयु॑र्जीवेभ्यो वि॒दध॑द् दी॒र्घायु॑त्वाय श॒तशार॑दाय ५३
प॒र्णः । रा॒जा । अपि॑धानम् । च॒रु॒णाम् । ऊ॒र्जः । बल॑म् । सहः ।
ओजः । नः । आ । अ॒गन् ।

आयुः । जीवेभ्यः । विदधत् । दीर्घायुत्वाय । शतशारदाय ५३
चरुणाम् “अपूपवान् क्षीरवान्” [१६] इति मन्त्रोक्तद्रव्य-
युतानां नवानां चरुणां पिधानम् आच्छादनभूतः । ❀ “वष्टि

भागुरिरल्लोपम् अवाप्योरुपसर्गयोः” इति अपिशब्दस्य आदिवर्ण-
लोपः ❀ । पर्णः पलाशवृक्षः पलाशो राजा यज्ञियत्वात् सर्व-
वृक्षाणाम् अधिपतिः नः अस्माकम् ऊर्जः ऊर्जयति बलवन्तं करो-
तीति ऊर्जः अन्नरसः । ❀ ऊर्ज बलप्राणने । अस्मात् एयन्तात्
पचाद्यच् ❀ । बलम् शारीरं बाह्यं च मनुष्यसंपत्त्यादितत्क्षणं
द्विविधं बलं सहः शत्रुधर्षणसामर्थ्यम् । ❀ सहतेरभिभवार्थाद्
असुन् ❀ । ओजः तेजः शरीरकान्तिः सर्वधात्वान्तरभूतः शरी-
रधारकोष्ठमधातुर्वा आ अगन् । सकलचरुपिधायकः पलाशपर्णः
अस्माकम् ऊर्जबलाद्यात्मक एव आगच्छतु । यद्वा ऊर्जो बलम्
इत्यादीनि द्वितीयान्तानि पदानि । अन्नादीनि दातुम् आगच्छतु
इति क्रियाध्याहारेण योज्यम् । ❀ गमेर्लुङि च्लेर्लुक् ❀ ॥ न
केवलम् अन्नादिदानं किं तु जीवेभ्यः जीवनवद्भयः अस्मभ्यम्
आयुः जीवनं विदधत् विदध्यात् प्रयच्छतु । ❀ दधातेर्लेटि
श्लुः । “घोर्लोपो लेटि वा” इति धातोः आकारलोपः । “लेटो-
डाटौ” इति अडागमः ❀ । शतशारदाय । शरच्छब्दः संवत्सर-
वाची । शतसंवत्सरपरिमिताय । ❀ उत्तरपदवृद्धिरश्चान्दसी ❀ ।
दीर्घायुत्वाय दीर्घायुष्टाय । ❀ पृषोदरादित्वाद् अन्त्यलोपः ❀ ।
विरकालजीवनाय ॥

चरुओंका ढक्कनरूप, सब वृक्षोंके अधिपति पलाशका पत्र हम
को अन्नरस, भीतरी बाहरी शारीरक बल, शत्रुको दबानेकी
शक्ति, तेजको देनेके लिये आवे, हम जीवित पुरुषोंको सौ वर्षकी
दीर्घायु देता हुआ हमको प्राप्त हो ॥ ५३ ॥

चतुर्थी ॥

ऊर्जो भागो य इमं जजानाश्मान्नानामाधिपत्यं
जगाम ।

७५० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

तमर्चत विश्वमित्रा हविर्भिः स नो यमः प्रतरं जीवसे
धात् ॥ ५४ ॥

ऊर्जः । भागः । यः । इमम् । जजान । अश्मा । अन्नानाम् ।

आधिपत्यम् । जगाम ।

तम् । अर्चत । विश्वमित्राः । हविःभिः । सः । नः । यमः ।

प्रतरम् । जीवसे । धात् ॥ ५४ ॥

ऊर्जः अन्नस्य अस्थिसमीपस्थापितचरुलक्षणस्य भागः संभक्ता ।
❀ कर्तरि व्यत्ययेन घञ् ❀ । यो यमः इमं प्रेतं जजान जनया-
मास । येन च यमेन अश्मा यमदेवत्यचरुपिधायकः पाषाणः
अन्नानां चरुणाम् आधिपत्यम् अधिपतित्वम् उपर्यवस्थायित्वं
जगाम प्राप्तवान् । हे विश्वमित्राः विश्वं मित्रं येषां ते सकलोप-
कारिजनवन्तो हे बान्धवाः तं यमं हविर्भिरर्चत प्रीणयत । ❀ अर्च-
तिभौवादिकः ❀ । स यमः नः अस्मान् प्रतरम् प्रकृष्टं जीवसे
जीवनाय धात् विदधातु । अयम् अर्धर्चः पूर्वानुवाके व्याख्यातः
[१८. ३. ६३] ॥

अस्थियोंके समीपमें स्थित किये हुए चरुरूप अन्नके पात्र
जिन यमदेवने इसको प्रेतरूपमें प्रकट किया है और जो यम इन
चरुओंको ढकने वाले पाषाणोंके अधिपतित्वको प्राप्त हैं । हे सब
का उपकार करने वाले बांधवों ! उन यमदेवको तुम हवियोंसे
तृप्त करो वह यमदेव हमको चिरजीवनके लिये पुष्ट करें ॥५४॥

पञ्चमी ॥

यथा यमाय हर्म्यमवपन् पञ्च मानवाः ।

एवा वपामि हर्म्यं यथा मे भूर्योसत ॥ ५५ ॥

यथा । यमाय । हर्म्यम् । अवपन् । पञ्च । मानवाः ।

एव । वपामि । हर्म्यम् । यथा । मे । भूरयः । असत ॥ ५५ ॥

पञ्च पञ्चसंख्याका मानवाः मनोरपत्यादिजनाः । निपादपञ्च-
माश्रित्वारो वर्णाः पञ्च जना इति हि यास्कः [नि० ३. ८] ।
अथ वा देवमनुष्यादयः पञ्च जनाः । तथा च ऐतरेयकब्राह्मणे
समाश्रयते । “सर्वेषां वा एतत् पञ्चजनानाम् उक्थं देवमनुष्याणां
गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितॄणां च । एतेषां वा एतत् पञ्चजना-
नाम् उक्थम्” इति [ऐ० ब्रा० ३. ३१] । एते पञ्च जना यथा
येन प्रकारेण यमाय प्रेताधिपतये हर्म्यम् निवासस्थानं सौधम्
अवपन् निर्मितवन्तः एव एवं हर्म्यम् स्थानम् उन्नतं पितृगृहम्
आवपामि मृत्तिकया संपादयामि प्रेतनिवासार्थं विदधामि । यथा
येन प्रकारेण मे मदीया बान्धवा यूयं भूरयः बहवः असत स्यात ।
प्रेतोन्नतस्थानाकरणे बान्धवानां प्रत्यवायो भवतीति उन्नतपितृ-
गृहकरणम् । ❀ अस्तेर्लेटि अडागमः ❀ ॥

पञ्चजनोंने जिस प्रकार यमदेवके लिये निवासस्थानको
(उन्नत) बनाया है, इसी प्रकार मैं प्रेतनिवासके लिये इस पितृगृह
को ऊँचा बनाता हूँ । क्योंकि—ऐसा करनेसे हे मेरे बान्धवों !
तुम बहुतसे रहोगे । (प्रेतका स्थान उन्नत न बनानेसे बांधवों
को प्रत्यवाय लगता है अतएव पितृगृहको उन्नत किया गया है) ५५

षष्ठी ॥

इदं हिरण्यं विभृहि यत् ते पिताविभः पुरा ।

स्वर्गं यतः पितुर्हस्तं निर्मृद्दति दक्षिणम् ॥ ५६ ॥

इदम् । हिरण्यम् । विभृहि । यत् । ते । पिता । अविभः । पुरा ।

स्वःऽगम् । यतः । पितुः । हस्तम् । निः । मृद्दु । दक्षिणम् ५६

हे प्रेत इदं हिरण्यम् सुवर्णनिर्मितम् अंगुलीयं पिपृहि पूरय ।
 आज्येन अभिघारयेत्थर्थः । ❀ पृ पालनपूरणयोः । जौहोत्या-
 दिकः । “अतिपिपत्योश्च इति अभ्यासस्य इत्त्वम् ❀ । यत् हिर-
 ण्यं ते तव पिता पुरा पूर्वम् अविभः भृतवान् हस्ते धारितवान् ।
 ❀ दुभृज् धारणपोषणयोः । शपः श्लुः । “भृजाम् इत्” इति
 अभ्यासस्य इत्त्वम् । तिपि धातोर्गुणे “हल्ङ्या०” इत्यादिना
 तिपो लोपे विसर्जनीयः ❀ । स्वर्गम् सुखेन गन्तव्यं कर्माजितं
 लोकं यतः गच्छतः पितुः जनकस्य दक्षिणं हस्तं निमृड्ढि निर्मा-
 र्जय शोधय । हिरण्यस्य दक्षिणहस्ते धारणात् तस्य प्रमार्जनम् ।
 ❀ मृजेः आदादिकात् लोटि हित्वधित्वादिकार्याणि ❀ ॥

हे प्रेत ! तू इस सुवर्णकी बनी हुई अंगूठीको घृतसे अभि-
 धारित कर । तेरे पिताने जिस सुवर्णको पहिले धारण कर रखा
 था तेरे पिताका जो स्वर्गप्राप्त हाथ है पिताके उस दक्षिण हाथ
 का तू मार्जन कर (सुवर्णका दक्षिण हाथमें धारण करना ही
 मार्जन है) ॥ ५६ ॥

सप्तमी ॥

ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
 तेभ्यो घृतस्य कुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥ ५७ ॥

ये । च । जीवाः । ये । च । मृताः । ये । जाताः । ये । च । यज्ञियाः ।
 तेभ्यः । घृतस्य । कुल्या । एतु । मधुधारा । व्युन्दती ॥ ५७ ॥

ये जीवाः जीवन्तः ये मृताः परासवः । समुच्चयार्थाश्चकाराः ।
 ये जाताः जनिमन्तः उत्पन्नाः ये यज्ञियाः जनिष्यमाणाः यज्ञिम्
 उत्पत्तिं यान्ति गच्छन्तीति यज्ञियाः । ❀ जनी प्रादुर्भावे । “आह-
 गमहनजनः०” इति क्प्रत्ययः । लिङ्प्रज्ञावाद् द्विवचनादि कार्यम् ।
 यज्ञिपदोपपदाद् यातेर्विच् प्रत्ययः ❀ । तेभ्यः जीवादिभ्यः सर्वेभ्यस्त-

दर्थं मधुधाराः मधुप्रवाहान् व्युन्दती विशेषेण सिञ्चती अभिवर्षन्ती
घृतस्य आज्यस्य कुन्या कृत्रिमा सरित् एतु तत्प्रीणनाय गच्छतु ॥

जो जीवित हैं, जो मर गए हैं, जो उत्पन्न होगए हैं, जो
उत्पन्न होने वाले हैं, उन जीवित आदि सबके लिये, मधुके
प्रवाहका अभिवर्षण करती हुई घृतकी नदी प्राप्त हो ॥ ५७ ॥

अष्टमी ॥

वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूर्यो अह्नां प्रतरातोषसां
दिवः ।

प्राणः सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमावि-
शन्मनीषया ॥ ५८ ॥

वृषा । मतीनाम् । पवते । विऽचक्षणः । सूरः । अह्नाम् । प्रऽत-
रीता । उषसाम् । दिवः ।

प्राणः । सिन्धूनाम् । कलशान् । अचिक्रदत् । इन्द्रस्य । हार्दिम् ।
आऽविशन् । मनीषया ॥ ५८ ॥

पितृत्वं प्राप्ताः पुरुषा धूमादिमार्गेण पितृलोकं प्राप्य सोमया-
गादिजनितसुकृतफलम् उपभुञ्जते । अतः अनया पित्र्यप्रकरणे
सोमः स्तूयते । मतीनाम् मन्तृणां स्तोतृणां वृषा वर्षिता अभिमत-
फलवर्षकः मतीनाम् स्तुतीनां वा वर्षकः स्तुतिविषये विचक्षणः
विशेषेण द्रष्टा सर्वस्य सर्वैर्वा द्रष्टव्यः सोमः पवते । ❀ पवतिर्गति-
कर्मा ❀ । गच्छति दशापवित्रात् स्यन्दते । यद्वा । ❀ पूञ् पवने ।
व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः शप् ❀ । पूयते शोधयते अध्वयुभिः ।
अह्नाम् । अहोरात्राणाम् इत्यर्थः । सूरः प्रेरयिता निष्पादयिता ।

❀ षू मेरेणौ । औणादिको रक् प्रत्ययः ❀ । उषसाम् उषःका-
लानां दिवः द्युलोकस्य च प्रतरीता प्रवर्धयिता । ❀ तरतेस्तृचि
“वृतो वा” इति इडागमस्य दीर्घः ❀ । सिन्धूनाम् स्यन्दमानानां
वसतीवरीणाम् अपां प्राणः प्राणभूतः स्वात्मरूपत्वेन कर्ता सोमः
कलशान् द्रोणकलशपूतभृदाधवनीयान् ऐन्द्रवायवादिग्रहान् वा ।
अभिलक्ष्य इत्यध्याहारः । अचिक्रदत् अत्यन्तं शब्दायते । अथ
वा कलशान् अचिक्रदत् धारापातध्वनिना तद्वतः करोति । यद्वा
कलशान् अचिक्रदत् कामयते ॥ ततः इन्द्रस्य सवनत्रये यष्टव्यस्य
हार्दिम । हृदयम् इत्यर्थः । हृदयमेव हार्दिम । ❀ पृथ्वादिषु पाठो
द्रष्टव्यः । स्वार्थिकश्चेमनिच अवगन्तव्यः ❀ । हृदययुक्तं जठरं वा
मनीषया मनस ईषया यथामनोभिलाषम् अविशत् प्रविशति ।
यद्वा मनीषया मननीयया इष्यमाणया धारया अविशत् ॥

[पितृत्वको प्राप्त हुए पुरुष धूमादिमार्गसे पितृलोकको प्राप्त
होकर सोमयाग आदिसे मिलने वाले पुण्यके फलको भोगते हैं ।
अत एव पितृप्रकरणमें इस ऋचासे सोमकी स्तुति की गई है,
कि-] स्तोताओंको अभिमत फल देने वाला, सबके देखने योग्य
सोम दशापवित्रसे गमन करता है यह सोम दिन और रात्रिको
निष्पन्न करने वाला है । उषःकाल और द्युलोकका बढ़ाने वाला
है, स्यन्दित होने वाले वसतीवरी जलोंका प्राणरूप है ऐसा सोम
द्रोणकलश पूतभृत् आधवनीय आदि कलशोंको लक्ष्य कर बढ़ा
शब्द कर रहा है । और फिर अपनी अभिलाषाके अनुसार,
सवनत्रयमें द्रष्टव्य इन्द्रके जठरमें प्रवेश कर रहा है ॥ ५८ ॥

नवमी ॥

त्वेषस्ते धूम ऊर्णोतु दिवि षंडुक आततः ।

सूये न हि दुता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ५९ ॥

त्वेषः । ते । धूमः । ऊर्णोतु । दिवि । सन् । शुक्रः । आस्ततः ।
सूरः । न । हि । द्युता । त्वम् । कृपा । पावक । रोचसे ॥५६॥

अत्र प्रेताग्निः स्तूयते । हे प्रेताग्ने ते तव त्वेषः दीप्तो धूमः
ऊर्णोतु आच्छादयतु अन्तरिक्षं कर्म सर्वत्र मेघात्मना परिणतः ।
अथ वा त्वेषः । ❀ त्वेष दीप्तौ । “अन्येभ्योपि दृश्यते” इति
विच् प्रत्ययः । लघूपधगुणः । द्वितीयाबहुवचनम् शस् । व्यत्ययेन
अन्तोदात्तत्वम् ❀ । दीप्तौः सूर्यस्य त्वदीयो धूम ऊर्णोतु । दिवि
अन्तरिक्षे सन् भवन् शुक्रः शोचिष्मान् आततः विस्तीर्णः ॥ किं
च हे पावक शोधक दाहक प्रेताग्ने त्वं सूर्यो न सूर्य इव हि । इति
पूरणः । द्युता दीप्त्या रोचसे दीप्यसे कृपा । ❀ तृतीयायाः पूर्व-
सवर्णदीर्घः ❀ । कृपया स्तुत्या सहितः । स्तूयमान इत्यर्थः ॥

[इस ऋचामें प्रेताग्निकी स्तुति की गई है, कि—] हे प्रेताग्ने !
तेरा दमकता हुआ धूम मेघरूपसे अन्तरिक्षको आच्छादित
कर देय । अथवा—तेरा धुआँ सूर्यकी कान्तिको ढक देय ।
आकाशमें जब तू घाला होकर फैल जावे । हे शोधक
दाहक प्रेताग्ने ! आप स्तुतिके कारण अपनी कान्तिसे सूर्यकी
समान दमकते हैं ॥ ५६ ॥

दशमी ॥

प्रचा एतीन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतिं सखा सख्युर्न प्रमिनाति
संगिरः ।

मर्यं इव योषाः समर्षसे सोमः कत्वशं शतयामना पथा
प्र । वै । एति । इन्दुः । इन्द्रस्य । निःऽकृतिम् । सखा । सख्युः ।
च । प्र । मिनाति । सम्ऽगिरः ।

७५६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

मर्यःऽइव । योषाः । सम् । अर्षसे । सोमः । कलशे । शतऽयाम्ना ।
पथा ॥ ६० ॥

पितृलोकाधिपतिः सोमः स्तूयते । इन्दुः स्यन्दमानः सोमः
इन्द्रस्य निष्कृतिम् । जठरलक्षणं स्थानम् इत्यर्थः । वै प्रैति प्रग-
च्छति । वैशब्दः प्रसिद्धौ । “अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेयं
जठर इन्दुम् इन्द्र” इति हि मन्त्रवर्णः [ऋ० ३. ३५. ६] ॥
सखा सखेव हितकारी सोमः सख्युः अभिषवस्तोत्रादिना सखि-
भूतस्य यदुः संगिरः संगीर्यमाणानि इदमेव फलं सोमादेव लभेय
इत्येवं प्रतिज्ञायमानानि काम्यमानानि वस्तूनि न प्र मिनाति न
हिनस्ति मोघानि न करोति किं तु प्रयच्छति । यद्वा सखा सोमः
सख्युः इन्द्रस्य संगिरः । ❀ एकवचनस्य बहुवचनम् आदेशः ❀ ।
संगिरम् । उदरम् इत्यर्थः । संगिरति निगिरति अत्र ओदनादि
कम् इति व्युत्पत्तेः । न प्र हिनस्ति शून्यं न करोति । सर्वदा स्वेन
पूर्णं करोतीत्यर्थः । ❀ मीनं हिंसायाम् । “मीनातेर्निगमे” इति
ह्रस्वत्वम् ❀ ॥ मर्य इव मर्यो मरणधर्मा मनुष्यः यथा योषा ।
❀ तृतीयाया आकारः ❀ । योषया युवत्या संगच्छते एवं सोमः
कलशे सोमाधारे द्रोणकलशे शतयाम्ना शतयानेन पथा मार्गेण
समर्षसे । ❀ पुरुषव्यत्ययः ❀ । समर्षते संगच्छते । ❀ ऋषी
गता । भौवादिकः । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् ❀ । उदकमिश्रि-
तस्य सोमरसस्य दशापवित्रात् स्यन्दनसमये बहुधारासद्भावात्
शतयाम्नेत्युक्तम् ॥

इति चतुर्थेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

[इस ऋषामें पितृलोकके अधिपति सोमकी स्तुति की गई
है, कि—] यह निचड़ता हुआ सोम इन्द्रदेवके उदरमें ही जाता
है + । यह मित्रकी समान हितकारी सखा सोम, निचोड़ने और

+ ऋग्वेदसंहिता ३ । ३५ । ६ में भी इसी बातका प्रति-

स्तोत्र आदिके कारण मित्र बने हुए यष्टाकी विचारी हुई “मैं सोम से इस फलको अवश्य पाऊँगा” आदि कामनाओंको निष्फल नहीं करता है, किन्तु प्रदान ही करता है। अथवा—यह स्तुति आदिके कारण यजमानका मित्र बना हुआ सोम अपने मित्र इन्द्र के उदरको शून्य नहीं रखता है किन्तु अपने द्वारा सर्वदा पूर्ण रखता है। और मनुष्य जैसे स्त्रीसे मिलता है इसी प्रकार यह सोम द्रोणकलशमें सहस्रों मार्गोंसे मिलता है। अर्थात् जल ढाल कर अँगोठेसे निचोड़ते समय बहुतसी धारोंसे मिलता है ६० (२५)

चतुर्थ अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त ।

पिण्डपितृयज्ञे “अक्षन्नपीमदन्त” इति प्रथमया ऋचा पिण्डो-
पस्थानानन्तरम् उत्तरपरिषेकं कुर्यात् ॥

“आ यात पितरः” इति [६२] ऋचा पिण्डदानार्थं स्तीर्णे
बर्हिषि तिलान् प्रकिरेत् ॥

“परा यात” [६३] ऋचा पितृन् विसर्जयेत् ॥

पिण्डपितृयज्ञ एव अनया सांयचनांस्तण्डुलान् जुहुयात् ॥

पिण्डपितृयज्ञे “अभूद् दूतः” इति [६५] ऋचा समिदाधा-
नानन्तरं सर्वप्रणीतम् अग्निं प्रत्यानयेत् । सूत्रितं हि । “अभूद्
दूत इत्यग्निं त्रिः प्रत्यानयति यदि सर्वः प्रणीतः स्यात् । दक्षि-
णाग्नौ त्वेतद् आहिताग्नेः । गृहोऽप्यनाहिताग्नेः” इति [कौ० ११.१०]

“असौ हा इह ते” इति [६६] द्वाभ्यां श्मशानदेशं विषम-
संख्याकाभिः शलाकाभिरिष्टकाभिर्वा प्रसव्यं चिनुयात् ॥

पादन किया गया है, कि—“अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिर्वेमं
जठर इन्दुम् इन्द्र ।—हे इन्द्र ! इस यज्ञमें इन कुशाओं पर बैठकर
इस सोमको अपने उदरमें स्थापित करिये” ।

७५८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

“येऽस्माकं पितरः” इति [६८] अर्धर्चेन पिण्डप्रदानार्थं बर्हिः स्तृणीयात् ॥

“उदुत्तमम्” इति [६९] ऋचा शवदाहानन्तरं सर्वे ब्राह्मणाः स्नानं कुर्युः ॥

“प्रास्मत् पाशान्” इति [७०] ऋचं पितृमेधे दशरात्रपर्यन्तं सायंप्रातः स्वस्त्ययनार्थं पठेयुः ॥

पिण्डपितृयज्ञमें “अन्नन्नमीमदन्त” इस पहिली ऋचासे पिण्डोपस्थानके अनन्तर उत्तरपरिषेकको करे ।

“आयात पितरः” इस बासठवी ऋचासे पिण्डदानके लिये बिछाई हुई कुशाओं पर तिल डाले ।

“परा यात” इस तरेसठवीं ऋचासे पितरोंका विसर्जन कर देय ।

और पिण्डपितृयज्ञमें इस ऋचासे सायंवन तण्डुलोंकी आहुति देय ।

पिण्डपितृयज्ञमें “अभूद् दूतः” इस पैसठवीं ऋचासे समिदाधानके अनन्तर सर्वप्रणीत अग्निका प्रत्यानयन करे । इस विषय में सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“अभूद् दूत इत्यग्निं त्रिः प्रत्यानयति यदि सर्वः प्रणीतः स्यात् । दक्षिणाग्नौ त्वेतद् आहिताग्नेः । गृहेऽप्यनाहिताग्नेः” । (कौशिकसूत्र ११ । १०) ॥

“असौ हा इह ते” इन द्वियासठवीं और सरसठवीं दो ऋचाओं से श्मशानदेशको विषमसंख्यक शलाकावा ईंटोंसे प्रसव्य चुने ।

“येऽस्माकं पितरः” इस अड़सठवीं ऋचाके पूर्वार्धसे पिण्डप्रदानके लिये कुशाओंको बिछावे ।

उदुत्तमम्” इस उनहत्तरवीं ऋचासे शवदाहके अनन्तर सब ब्राह्मण स्नान करें ।

और “प्रास्मत् पाशान्” इस सत्तरवीं ऋचाका स्वस्त्ययनके लिये पितृमेधमें दश रात तक सायंकाल और प्रातःकालके समय सबको पाठ करना चाहिये ॥

तत्र प्रथमा ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूपत ।

अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ॥ ६१ ॥

अक्षन् । अमीमदन्त । हि । अव । प्रियाम् । अधूपत ।

अस्तोषत । स्वभानवः । विप्राः । यविष्ठाः । ईमहे ॥ ६१ ॥

अत्र पितरः स्तूयन्ते । अक्षन् अधमन् बहिषि दक्षान् पिएडान् ।
 ❀ अद भक्षणे । “लुङ्मनोर्घस्त्” इति घस्लादेशः । “मन्त्रे घस०”
 इति च्लेलुक् । “गघहन०” इति उपधात्तोषः । “शासिबसिघ-
 सीनां च” इति षत्वम् । “खरि च” इति चत्वेन घकारस्य
 ककारः । कषयोगे क्षः । “लुङ्लङ्” इति अडागम उदाचः ।
 पादादिस्वाद् अनिघातः ❀ । अमीमदन्त । हिशब्दश्चार्थः । ❀ तिङ्
 उचरत्वाद् निघाताभावः ❀ । पिएडभक्षणेन तृप्ताश्च अभूवन् ।
 ❀ मद वृत्तियोगे । चुरादेरात्मनेपदिनश्चङि रूपम् ❀ । यद्वा
 हिशब्दो हेत्वर्थः । यतस्तृप्ता अतः प्रियान् स्वकीयान् देवान् अवा-
 धूपत अकम्पयन् । अतिशयितरसास्वादनेन गन्तुम् अशक्नुवन्तः
 शरीराण्येव अकम्पयन् । ❀ धूविधूनने । कुदादिः । लुङि सिच् ।
 “गाङ्कुटादिभ्यः०” इति सिचो ङित्वाद् गुणाभावः । व्यत्ययेन
 आत्मनेपदम् ❀ । अनन्तरं स्वभानवः स्वायत्तदीप्तयः पितरः
 अस्तोषत अस्ताविष्टुरस्मान् साधु कृतम् इति । ❀ षुङ् स्तुतौ ।
 लुङि सिच् । “सार्वधातुकार्धधातुकयोः” इति गुणः ❀ । एवं
 पिएडभक्षणेन तृप्तान् पितृन् विप्राः मेधाविनो यविष्ठाः युवतमा
 वयम् ईमहे । ❀ याच्वाकर्म ❀ । याचामहे स्वेषानि फलानि ।
 ❀ ईङ् गतौ । दैवादिक आत्मनेपदी । श्यनोलुक् बाहुलकात् ❀ ॥

७६० अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

पितरोंने पिण्डोंका भक्षण कर लिया और वे पिण्डभक्षण करके तृप्त होगए, तृप्त होनेके कारण वे अपने शरीरोंको कँपा रहे हैं अर्थात् परम स्वादु रसका आस्वादन कर जानेकी शक्ति न रहनेसे अपने शरीरको ही कँपा रहे हैं । फिर ये पितर स्वायत्त-दीप्तिक होकर हमारी स्तुति करते हैं, कि-इन्होंने अच्छा किया । इस प्रकार पिण्डभक्षणसे तृप्त हुए पितरोंसे हम विद्वान् और तरुण पुरुष अपने अभिलषित फलोंकी याचना करते हैं ॥ ६१ ॥

द्वितीया ॥

आ यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पितृयाणैः ।

आयुस्मभ्यं दधतः प्रजां च रायश्च पोषैरभिः नः

सचध्वम् ॥ ६२ ॥

आ । यात । पितरः । सोम्यासः । गम्भीरैः । पथिभिः । पितृ-
ज्याणैः ।

आयुः । अस्मभ्यम् । दधतः । प्रजाम् । च । रायः । च । पोषैः ।

अभि । नः । सचध्वम् ॥ ६२ ॥

हे पितरः सोम्यासः सोमार्हा यूयम् आ यात आगच्छत गम्भीरैः दुर्गमैः पितृयाणैः पितरो यान्ति एभिरिति तैः पथिभिः मार्गैः । आगत्य च अस्मभ्यं पिण्डदानार्थं स्तीर्णं बर्हिषि तिलान् विकिरद्भ्यः आयुः बहुकालजीवनं प्रजाम् प्रकर्षेण जायमानां पुत्रपौत्रादिलक्षणां संततिं च दधत धत्त प्रयच्छत । ❀ दधातेर्लेटि “घोर्लोपो लेटि०” इति धातोराकारलोपः । अडागमः । यद्वा दध धारणे । भौवादिक आत्मनेपदी । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् । अथ वा श्लुश्च शश्चेति विकरणद्वयम् । शस्यङित्वात् “श्राभ्य-

स्तयोरातः” इति आकारलोपः ❀ । किं च नः अस्मान् रायः
धनस्य पोषैः समृद्धिभिः अभि सचध्वम् अभितः समवेत । रयि-
पोषेण अस्मान् संयोजयतेति ॥

हे सोमके योग्य पितरों ! तुम गंभीर पितृयानोंसे आओ और
आकर पिण्डदान करनेके लिये कुशा विद्या कर तिल देने वाले
हमको आयु और प्रजा दो और धनकी पुष्टियोंसे हमको संयुक्त
करो ॥ ६२ ॥

तृतीया ॥

परा यात पितरः सोम्यासो गम्भीरैः पथिभिः पूर्याणैः ।
अधा मासि पुनरा यात नो गृहान् हविरत्तु सुप्रजसः
सुवीराः ॥ ६३ ॥

परा । यात । पितरः । सोम्यासः । गम्भीरैः । पथिभिः ।

पूऽयानैः ।

अध । मासि । पुनः । आ । यात । नः । गृहान् । हविः । अत्तुम् ।
सुप्रजसः । सुवीराः ॥ ६३ ॥

हे पितरः सोम्यासो गृहं पूर्याणैः पू पुरं स्वीयः पितृलोकस्तं
यान्ति एभिरिति पूर्याणास्तैः स्वपुरप्राप्तिसाधनैः गम्भीरैः पथिभिः
परा यात इतः पराङ्मुखा यात स्वस्थानं गच्छत ॥ अध अथ
अनन्तरं मासि मासे पूर्णे । अमावास्यायाम् इत्यर्थः । हविरत्तुन्
हविरदन्ति एषु गृहेष्विति ते हविरत्नवः तान् हविर्भक्षस्थानभूतान्
नः अस्मदीयान् गृहान् पुनरा यात आगच्छत । किंविशिष्टान् ।
सुप्रजसः । प्रजा संततिः पुत्रलक्षणा । शोभनपुत्रयुक्तान् ।
❀ “नित्यम् असिच् प्रजामेधयोः” इति असिच् समासान्तः ❀ ।

७६२ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

सुवीराः । वीरः कर्मणि कुशलः पौत्रादिशोभनपौत्रादिसमे-
तान् । ❀ शसो जसादेशः ❀ । एवंविधान् गृहान् आ यात ।
पितॄणां वा विशेषणम् । शोभनप्रजसः सुवीराः सन्तः अस्मभ्यं
पुत्रपौत्रादिलक्षणां संततिं दातुं पुनरायातेति संबन्धः ॥

हे सोमके पात्र पितरों ! तुम अपने लोकको जाने वाले पितृ-
लोकके गंभीर मार्ग पितृयानोंके द्वारा अपने लोकको जाओ और
मासके पूर्ण होने पर अमावास्याके दिन हविका भक्षण करनेके
स्थानरूप हमारे घरोंमें फिर आजाना । हे पितरों ! तुम सुन्दर प्रजा
और पौत्र आदि देनेमें समर्थ हो ॥ ६३ ॥

“यद् वो अग्निः” इत्यनया चित्तिस्थानाद् विप्रकीर्णं प्रेतावयवं
पुनरग्नौ प्रक्षिपेत् । सैषा सूक्ते

“यद् वो अग्निः” इस ऋचाके द्वारा चितास्थलसे गिरे हुए
प्रेतके अवयवको फिर अग्निमें डाले ।

चतुर्थी ॥

यद् वो अ॒ग्निरज॑हादेक॒मङ्गं॑ पित॒रु॒लोकं॑ ग॒मयं॑ जा॒तवे॑दाः ।

तद् व॑ ए॒तत् पुन॑रा प्या॒ययामि॑ सा॒ङ्गाः स्व॒र्गे पि॒तरो॑

मादय॑ध्वम् ॥ ६४ ॥

यत् । वः । अ॒ग्निः । अज॑हात् । एक॒म् । अङ्ग॑म् । पि॒तृ॒लोक॑म् ।

ग॒मयन् । जा॒तवे॑दाः ।

तत् । वः । ए॒तत् । पुनः॑ । आ । प्या॒ययामि॑ । सा॒ङ्गाः । स्वः॑ ।

पि॒तरः । मादय॑ध्वम् ॥ ६४ ॥

हे प्रेताः वः युष्मान् पितृलोकम् पितृभिरधिष्ठितं स्थानं गम-
यन् प्रापयन् जातवेदाः जातानां वेदिता पुण्यापुण्यकर्मणः यद्वा

जातानां कर्मफलस्य लम्भयिता प्रापयिता अग्निः प्रेवदाहकः यद्
युष्मदीयम् एकम् अङ्गम् अजहात् त्यक्तवान् । चितेर्विप्रकीर्णम्
अवयवं नाददद् इत्यर्थः । ❀ ओहाक् त्यागे । जीहोत्यादिकः ❀ ।
वः युष्माकं तद् एतत् पुरोवर्ति अङ्गम् अवयवं पुनरा प्याययामि
अग्नौ प्रक्षेपेण प्रवर्धयामि । यूयं साक्षाः संपूर्णावयवाः पितरो भूत्वा
स्वर्गे मादयध्वम् मोदध्वम् ॥

हे प्रेत ! तुमको पितृलोकमें पहुँचाते हुए जातवेदा अग्निने जो
तुम्हारे एक अंगको त्याग दिया है अर्थात् चितासे छिटका कर
भस्म नहीं किया है उस अंगको मैं अग्निमें डाल कर फिर तुमको
बढ़ाता हूँ । तुम पूरे अवयवों वाले पितर बन कर स्वर्गलोकमें
प्रसन्न होओ ॥ ६४ ॥

पञ्चमी ॥

अभूद् दूतः प्रहितो जातवेदाः सायं न्यह उपवन्द्यो
नृभिः ।

प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता
हवींषि ॥ ६५ ॥

अभूत् । दूतः । प्रहितः । जातवेदाः । सायम् । निःअन्हे ।
उपवन्द्यः । नृभिः ।

प्र । अदाः । पितृभ्यः । स्वधया । ते अक्षन् । अद्धि । त्वम् ।
देव । प्रयता । हवींषि ॥ ६५ ॥

सायं न्यहो सायं प्रातः नृभिरुपवन्द्यः मनुष्यैरुपासनीयो जात-
वेदाः जातानां वेदिताग्निः दूतः प्रहितोभूत् दूतत्वे नियुक्तः सन्

७६४ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

प्रेषितोभूत् अस्माभिः पितॄन् प्रति ॥ अथ प्रत्यक्षनिर्देशः । हे अग्ने
एतादृशस्त्वं पितृभ्यः प्रादाः अस्माभिः प्रयतानि हवींषि प्रयच्छ ।
ते पितरः स्वधया अक्षन् स्वधाकारेण दत्तानि हवींषि भक्षयन्तु ।
अनन्तरम् हे देव अग्ने त्वमपि प्रयता प्रयतानि तुभ्यमेव दत्तानि
हवींषि अद्धि भक्षय । अद् भक्षणे । प्राप्तकाले लोट् ॐ । पित्रर्थं
त्वर्थं च अस्माभिस्त्वयि हुतानां हविषां पितृभ्यः प्रदानानन्तरं
पावकीनहविर्भक्षणस्य कालः प्राप्त इति यावत् ॥

सायङ्काल और प्रातःकालके समय मनुष्योंसे बन्दनीय अग्नि-
देवको हमने दूत बना कर पितरोंके पास भेजा है । हे अग्ने !
आप हमारी दी हुई हवियोंको पितरोंके अर्पण करिये । और वे
पितर स्वधाकारसे दी हुई हवियोंका भक्षण करें । हे अग्निदेव !
इसके अनन्तर आप भी अपने लिये ही दी हुई हवियोंका भक्षण
करिये ॥ ६५ ॥

षष्ठी ॥

असौ हा इह ते मनः ककुत्सलमिव जामयः ।

अभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

असौ । है । इह । ते । मनः । ककुत्सलम् इव । जामयः ।

अभि । एनम् । भूमे । ऊर्णुहि ॥ ६६ ॥

असौ इति प्रेतस्य संबोधनम् । हे अमुकनामधेय प्रेत ते तव
मनः इह अस्मिन् प्रसव्यम् इष्टकचिते प्रदेशे वर्तते । हा संतोषे ॥
हे भूमे चितश्मशानदेश एनम् अन्वादिष्टम् अत्रैव अवतिष्ठमानं प्रेतम्
अभ्यूर्णुहि अभितः सर्वत आवृणु आच्छादय । तत्र दृष्टान्तः ।
जामयः भगिन्यः । उपलक्षणम् एतत् । आप्ता बान्धवाः ककुत्स्थल-
मिव । ककुच्छब्दः प्रधानवाची । प्रधानावयवप्रदेशमिव । यथा

मात्रादय आप्ता बान्धवाः पुत्रादीनां शिरःप्रभृतीन्यङ्गानि शीतात-
पवातनिवारणाय वाससाच्छादयन्ति एवम् । यद्वा जापिशब्दः
स्त्रीमात्रपरः । यथा स्त्रियः ककुत्स्थलम् । ग्रीवापरभागः ककुत् ।
स्वकन्धरप्रदेशंवाससा प्रोणुवन्ति तद्वत् ॥

हे अमुक नामवाले प्रेत ! तेरा मन इस ईंटोंसे चिने हुए स्थान
में है यह सन्तोषकी बात है । हे चिनी हुई श्मशानदेशरूप भूमे !
तू यहाँ पर स्थित प्रेतको इस प्रकार आच्छादित कर जिस प्रकार
स्त्रियों अपने कंधेको वस्त्रसे ढक लेती हैं ॥ ६६ ॥

सप्तमी । द्विपदा ॥

शुम्भन्तां लोकाः पितृसदनाः पितृसदने त्वा लोक
आ सादयामि ॥ ६७ ॥

शुम्भन्ताम् । लोकाः । पितृसदनाः । पितृसदने । त्वा । लोके ।
आ । सादयामि ॥ ६७ ॥

हे प्रेत तव पितृसदनाः पितरः सीदन्ति अत्र इति पितृसदना
लोकाः शुम्भन्ताम् प्रकाशन्ताम् । ❀ शुभ शुम्भ शोभायाम् ।
तौदादिकः ❀ । अहं संस्कर्ता पितृसदने पितृभिरधिष्ठिते लोके
त्वा त्वाम् आ सादयामि स्थापयामि ॥

हे प्रेत ! जिनमें पितर बैठते हैं वे लोक तेरे लिये प्रकाशित
हों, मैं संस्कर्ता पुरुष पितरोंसे अधिष्ठित लोकमें तुम्हको स्थापित
करता हूँ ॥ ६७ ॥

एकपदाष्टमी ऋक् एवम् आम्नायते ।

अष्टमी ॥

येऽस्माकं पितरस्तेषां बहिरसि ॥ ६८ ॥

ये । अस्माकम् । पितरः । तेषाम् । बहिः । असि ॥ ६८ ॥

ये अस्माकं पितरः पितृत्वं प्राप्ताः पूर्वजास्तेषां बर्हिः आसदन-
स्थानम् असि भवसि। इति पिएडदानार्थं स्तीर्यमाणं बर्हिः संबोध्यते
(इस ऋचामें पिएडदानके लिये विछाई हुई कुशको सम्बो-
धित करके कहा है, कि—) हे बर्हिः ! जो हमारे पितृत्वको प्राप्त हुए
पूर्वज पितर हैं तू उनके बैठनेका स्थान बनती है ॥ ६८ ॥

नवमी ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अधा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ६९
उत् । उत्तमम् । वरुण । पाशम् । अस्मत् । अव । अधमम् ।
वि । मध्यमम् । श्रथय ।

अध । वयम् । आदित्य । व्रते । तव । अनागसः । अदितये । स्याम
एषा पुरस्ताद् व्याख्याता [७. ८८, ३] । वरुणपाशास्त्रिविधा
उत्तमाधममध्यमभेदेन । तत्र हे वरुण त्वदीयम् उत्तमं पाशम्
अस्मत् अस्मत्तः उत् श्रथाय ऊर्ध्वम् उन्मोचय । अधमम् निकृष्टं
पाशम् अव श्रथाय अवस्ताद् मोचय । मध्यमं तु पाशं वि
श्रथाय विश्लेषय । ❀ श्रन्थ प्रतिहर्षविमोचनयोः । क्रैयादिकः ।
“छन्दसि शायजपि” इति हौ शायजादेशः ❀ ॥ अथ अनन्तरं
विमुक्तपाशा वयम् हे आदित्य अदितेः पुत्र वरुण तव व्रते कर्मणि
परिचरणरूपे अनागसः निर्दोषाः प्रत्यवायरहिताः सन्तः अदितये
अखण्डनाय अहिंसार्यै स्याम इति संग्रहार्थः । ❀ दो अवखण्डने ।
क्तिनि “अतिस्वतिमास्थामित् ति किति” इति इत्त्वम् ❀ ॥

हे वरुण ! आप अपने उत्तम पाशको हमसे उन्मुक्त करिये,
अपने निकृष्ट पाशको उन्मुक्त करिये, अपने मध्यम पाशको
अलग करिये । पाशोंसे छूटनेके अनन्तर हम हे अदितिके पुत्र

वरुण ! आपकी सेवामें लगने पर निष्पाप होनेके कारण अहि-
सित रहें ॥ ६६ ॥

दशमी ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् यैः समामे बध्यते
यैर्व्यामि ।

अथा जीवेम शरदं शतानि त्वया राजन् गुपिता
रक्षमाणाः ॥ ७० ॥

प्र । अस्मत् । पाशान् । वरुण । मुञ्च । सर्वान् । यैः । सम्ऽआमे ।
बध्यते । यैः । विऽआमे ।

अथ । जीवेम । शरदम् । शतानि । त्वया । राजन् । गुपिताः ।
रक्षमाणाः ॥ ७० ॥

हे वरुण बारक देव पाशान् वक्ष्यमाणान् बन्धनसाधनभूतान्
सर्वान् अस्मत् अस्मत्तः प्र मुञ्च प्रमोचय । यैः पाशैः समामे बध्यते
पुरुषः व्यामे च यैर्वध्यते । व्यामो नाम “व्यामो बाहोः सकरयो-
स्ततयोस्तिर्यगन्तरम्” इत्येवंविहितप्रमाणकः प्रदेशः । पञ्चारत्रि-
व्याम इति याज्ञिकाः । समामो नाम व्यामसंज्ञितप्रदेशात् संकुचित-
प्रमाणको देशः । संनिहिते प्रदेशे दूरे प्रदेशे च इति यावत् ॥
अथ अथ पाशमोचनानन्तरम् हे राजन् वरुण त्वया गुपिताः
रक्षिताः पूर्वं पालिता रक्षमाणाः । ❀ यगभावशब्दान्दसः ❀ ।
रक्ष्यमाणा इतः परमपि पाल्यमाना वयं शतानि शरदम् शरदः ।
❀ “कालाध्वनोः” इति द्वितीया ❀ । बहुवर्षपर्यन्तं जीवेम
जीवनवन्तः स्याम ॥

इति चतुर्थेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे वारक वरुणदेव ! जिन पाशोंसे पुरुष कौलियामें जकड़ा हुआ होजाता है और जिससे उससे भी संकुचित स्थानमें जकड़ा हुआ होजाता है उन सब पाशोंको हमसे दूर करिये । फिर हे राजन् वरुण ! इस प्रकार आपसे रक्षित और भविष्यमें भी रक्षा पाते हुए हम सौ वर्ष तक जीवित रहें ॥ ७० ॥ (२६)

चतुर्थ अनुवाकमें सप्तम सूक्त समाप्त

पिण्डपितृयज्ञे “अग्नये कव्यवाहनाय” इति त्रिभिर्मन्त्रैः “स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः” इति अष्टमनवमदशमैश्च त्रिभिः स्थालीपाकं जुहुयात् । सूत्रितं हि । “ये रूपाणि” इति प्रक्रम्य “कुम्भीपाकम् अभिघारयति । अग्नये कव्यवाहनायेति । जुहोति । यथा निरुप्तं द्वितीयां यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्य इति तृतीयाम्” इति [कौ० ११. ६] ॥ निर्वापप्रकारस्तु एवं कौशिकेन उक्तः । “यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्वम् अन्तर्देशम् अभिमुखः शूर्प एकपवित्रान्तर्हितान् हविष्यान् निर्वपति इदम् अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः इति । इदं सोमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यः सोमवद्भ्यः । पितृभ्यो वान्तरिक्षसद्भ्यः इति । इदं यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यश्च दिविषद्भ्यः” इति [कौ० ११. ८.] ॥

पिण्डपितृयज्ञ एव “एतत् ते प्रततामह स्वधा” इति पञ्चमषष्ठसप्तमैर्मन्त्रैर्बर्हिषि त्रीन् पिंडान् संहितान् निदध्यात् । सूत्रितं हि । “उद्धृत्याज्येन संनीय त्रीन् पिण्डान् संहितान् निदधाति एतत् ते प्रततामहेति” [इति कौ० ११. ६.] ॥

एतत् सूक्तं सर्वं यजुर्मन्त्रात्मकम् ॥

पिण्डपितृयज्ञमें “अग्नये कव्यवाहनाय” आदि तीन मन्त्रोंसे और “स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः” इन आठवें नवें और दशम मन्त्रोंसे भी स्थालीपाककी आहुति देय । सूत्रमें भी “ये रूपाणि” का आरम्भ करके कहा है, कि—“कुम्भीपाकं अभिघारयति ।

अग्नये कव्यवाहनायेति जुहोति । यथा निरुप्तं द्वितीयां यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्य इति तृतीयाम् ।—कुम्भीपाकका अभिघारण करता है । अग्नये कव्यवाहनाय—से आहुति देवे, और आहुति देनेसे पहिले यमाय पितृमते कह कर दूसरी आहुति देय और स्वधा पितृभ्यः—से तीसरी आहुतिदेय ।” (कौशिकसूत्र ११।६) निर्वापकी रीति कौशिकने इस प्रकार कही है, कि—“यज्ञोपवीती दक्षिणपूर्व अन्तर्देशं अभिमुखः शूर्प एकपवित्रान्तर्हितान् हविष्यान् निर्वपति इदं अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः इति । इदं सोमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यः सोमवद्भ्यः पितृभ्यो बान्तरिक्षसद्भ्यः इति । इदं यमाय पितृमते स्वधा पितृभ्यश्च दिविषद्भ्यः ।—यज्ञोपवीती पुरुष दक्षिण और पश्चिमके कोणकी ओर मुख कर छाजमें एक पवित्री पड़े हुए इन मन्त्रोंसे हविष्योंको डाले । इदं०” । (कौशिकसूत्र ११ । ८) ॥

पिण्डपितृयज्ञमें ही “एतत् ते प्रततामह स्वधा” आदि पाँचवें छठे और सातवें मन्त्रोंसे कुशाओं पर तीन पिण्डोंको मिलाकर रखे । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—उद्घृत्याज्येन संनीय त्रीन् पिण्डान् संहितान् निदधाति एतत् ते प्रततामहेति” (कौशिकसूत्र ११ । ६) ।

तत्र प्रथमादितो मन्त्रचतुष्टयपाठस्तु

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः ॥ ७१ ॥

अग्नये । कव्यवाहनाय । स्वधा । नमः ॥ ७१ ॥

सोमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७२ ॥

सोमाय । पितृमते । स्वधा । नमः ॥ ७२ ॥

पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः ॥ ७३ ॥

पितृभ्यः सोमवत्भ्यः । स्वधा नमः ॥ ७३ ॥

यमाय पितृमते स्वधा नमः ॥ ७४ ॥

यमाय । पितृमते । स्वधा । नमः ॥ ७४ ॥

दैवहविः प्रापकोग्निः हव्यवाहनः । पित्र्यहविः प्रापकोग्निः कव्य-
वाहनः । तत्र कव्यवाहनाय कव्यं पित्र्यं हविः । तद्वहते पितृन्
प्रापयते । ❀ कव्योपपदाद् बहेज्युट् प्रत्ययः । अस्वाद् उपधा-
वृद्धिः ❀ । तस्मै अग्नये स्वधा स्वधाकारेण इदं हविः हुतम्
अस्तु नमः नमस्कारोस्तु । स्वाहाकारवषट्कारप्रदाना हि देवाः ।
स्वधाकारनमस्कारप्रदानाः खलु पितरः । स्वाहाकारवषट्कारौ
विकल्पितौ । स्वधानमःशब्दौ समुच्चितौ । “स्वधा नम इति वषट्-
करोति । स्वधाकारो हि पितॄणाम्” इति तैत्तिरीयकश्रुतेः [तै०
ब्रा० १. ६. ६. ५.] । ❀ “नमःस्वस्तिस्वाहा०” इति अग्नये
इति चतुर्थी ❀ ॥ एवम् उत्तरे मन्त्रा योज्याः । सोमस्य पितरो
विशेषणभूताः सोमो वा पितॄणां विशेषणम् ॥

यह पूर्ण सूक्त यजुर्वेदके मन्त्रोंमें भी आता है । [देवताओंको
हवि पहुँचाते समय अग्नि हव्यवाहन कहलाते हैं और पितरोंको
हवि पहुँचाते समय अग्नि कव्यवाहन कहलाते हैं उन] कव्य-
वाहन अग्निके लिये स्वधा-शब्दसे यह हवि आहुत हो और
यह नमस्कार उनको प्राप्त हो । पितृमान् सोमके लिये स्वधा
शब्दसे यह आहुति आहुत हो और यह नमस्कार उनको प्राप्त
हो । सोम वाले पितरोंको वह स्वधा शब्दसे आहुत आहुति प्राप्त
हो और यह प्रणाम उनको प्राप्त हो । पितरोंके अधिपति यमदेव
के लिये स्वधा शब्दसे यह आहुति आहुत होकर प्राप्त हो और
यह प्रणाम उनको प्राप्त हो । [स्वाहा या वषट् कह कर देवताओं
को हवि दी जाती है और स्वधा सहित नमः शब्द कह कर पितरों

को हवि दी जाती है । तैत्तिरीयब्राह्मण १. ६. ६. ५ में कहा है, कि—“स्वधा नम इति वषट्करोति । स्वधाकारो हि पितृणाम्”] ॥ ७१—७४ ॥

पिण्डप्रदानमन्त्रा एवम् आम्नायन्ते ।

एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥

एतत् । ते । प्र॒त॒ता॒म॒ह । स्व॒धा । ये । च । त्वा॒म् । अ॒नु ॥ ७५ ॥

एतत् ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ५६ ॥

एतत् । ते । त॒ता॒म॒ह । स्व॒धा । ये । च । त्वा॒म् । अ॒नु ॥ ७६ ॥

एतत् ते तत स्वधा ॥ ७७ ॥

एतत् । ते । त॒त । स्व॒धा ॥ ७७ ॥

हे प्रततामह प्रपितामह । ततशब्दः पितृवचनः । सृष्ट्यादौ हि प्रजापतिना स्वजनकाह्वानार्थं ततेति तातेति व्याहृतम् । तथा च ऐतरेयकम् “एतां वाच प्रजापतिः प्रथमां वाचं व्याहरद् एकाक्षर-
अक्षरां ततेति तातेति । तथैव तत् ततवत्या वाचा प्रतिपद्यते” इति [ऐ० आ० १. ३. ३] । अतः प्रशस्तत्वात् ततेति आम्नातम् । आश्वलायनेन तु स्वपित्रादीनां नामधेयान्यजानानः पुत्रस्ततशब्दं प्रयुञ्जीतेति सूत्रितम् । “नामान्यविद्वांस्ततपितामहप्रपितामहेति” [इति । आश्व० २. ६] । ततामहप्रततामहेत्यर्थः । यद्वा देवानां परोक्षनामप्रियत्वात् ततेत्यादिना परोक्षनाम्ना व्यवहारः । अथ वा पितृलोकं प्राप्ताः सर्वेपि पितरः । तत्र शृङ्गग्राहिकया स्वजनकादीनाम् आह्वानाय ततेतिशब्दप्रयोगः । हे प्रततामह प्रपितामह ते तुभ्यम् एतत् पिण्डलक्षणं हविः स्वधाकारेण दत्तम् अस्तु । ये च पितरः भार्यापुत्रादयः पितरस्त्वाम् अनुसृत्य वर्तन्ते तेभ्योपि

स्वधास्तु । ते च अत्र अंशभागिनो भवेयुरिति ॥ एवम् उत्तरी मन्त्रौ व्याख्येयौ । हे ततामह पितामह । हे तत पितः । अत्र तृतीये मन्त्रे पिण्डप्रदातरि पुत्रे जीवति सति अनुगामिनाम् अन्येषाम् अभावाद् ये च त्वाम् अनु इति मन्त्रशेषो नाम्नातः ॥

पिण्डप्रदानके मन्त्र इस प्रकार हैं—

[तत शब्द पितृका वाचक है। सृष्टिकी आदिमें प्रजापतिने अपने जनकका आवाहन करनेके लिये तत तात कहा था । इसी बात को ऐतरेयकमें लिखा है, कि—“एतां वाच प्रजापतिः प्रथमां वाचं व्याहरद् एकाक्षरद्वयान्तरां ततेति तातेति । तथैव तत् ततवत्या वाचा प्रतिपद्यते ॥—प्रजापतिने पहिले एक ही अक्षरके दो अक्षर वाली तत तात इस वाणीको कहा । उस ततवती वाणीसे ही पिता आदि को बुलाया जाता है” [ऐतरेय आरण्यक १ । ३ । ३] । अतः प्रशस्त होनेसे यहाँ मन्त्रमें पिताके शब्दके स्थानमें तत शब्दका प्रयोग किया है । आश्वलायनमुनिने अपने सूत्रोंमें यह कहा है, कि—अपने पिता आदिके नामसे अपरिचित पुरुष तत शब्दका प्रयोग करे । यथा—“नामान्यविद्वान् तत पितामह प्रपितामहेति ।—नामसे अपरिचित पुरुष तत पितामह प्रपितामह आदि कहे” आश्वलायनसूत्र २ । ६ ॥ अथवा—देवता छिपे हुए (परोक्ष) नामसे प्रसन्न होते हैं अत एव तत इस नामसे व्यवहार किया है । अथवा—पितृलोकमें गए हुए सब पितरोंको तत शब्दसे कह सकते हैं । अत एव शृंगग्राहिकारीतिसे अर्थात् सींग पकड़ लिये तो सारे ढोरको पकड़ लिया रीतिसे अपने जनक आदिका आवाहन करनेके लिये तत शब्दका प्रयोग किया है] हे ततामह अर्थात् प्रपितामह ! आपके लिये यह पिण्डलक्षणहवि स्वधाकार से दी हुई हो और जो भार्या पुत्र आदि पितर आपके अनुकूल होकर रहते हों उनको भी यह स्वधा प्राप्त हो । हे ततामह अर्थात्

पितामह ! आपके लिये यह पिण्डरूप हवि स्वधाकारसे प्राप्त हो और जो भार्यापुत्र आदि पितर आपके कारण भाग पासकते हैं उनको भी स्वधासे हविकी प्राप्ति हो । हे तत अर्थात् पितः ! आपके लिये स्वधाकारसे यह हवि प्राप्त हो [तृतीयमन्त्रमें पिण्डदान करने वाले पुत्रके जीवित रहनेके कारण “ये च त्वामनु” भाग नहीं कहा है] ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

अष्टमादिमन्त्रास्त्रय एवम् आम्नायन्ते ।

स्वधा पितृभ्यः पृथिविषद्भ्यः ॥ ७८ ॥

स्वधा । पितृभ्यः । पृथिविसत्भ्यः ॥ ७८ ॥

स्वधा पितृभ्यो अन्तरिक्षसद्भ्यः ॥ ७९ ॥

स्वधा । पितृभ्यः । अन्तरिक्षसत्भ्यः ॥ ७९ ॥

स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः ॥ ८० ॥

स्वधा । पितृभ्यः । दिविसत्भ्यः ॥ ८० ॥

पृथिविषद्भ्यः पृथिव्यां सीदद्भ्यः । ❀ पूर्वपदस्य ह्रस्वत्वं छान्दसम् । “पूर्वपदात्” इति पत्वम् ❀ । पितृभ्यः स्वधा । इदं हविः स्वधाकारेण हुतम् अस्तु ॥ एवम् उत्तरौ व्याख्येयौ । दिविषद्भ्यः दिवि द्युलोके सीदद्भ्यः । ❀ “तत्पुरुषे कृति बहुलम्” इति सप्तम्या अलुक् । पूर्ववद् उत्तरपदस्य मूर्धन्यादेशः ❀ ॥

इति चतुर्थे अनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

पृथिवीमें रहने वाले पितरोंके लिये यह हवि स्वधासे प्राप्त हो । अन्तरिक्षमें रहने वाले पितरोंके लिये यह हवि स्वधासे प्राप्त हो । द्युलोकमें रहने वाले पितरोंके लिये यह हवि स्वधाशब्दसे प्राप्त हो ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ (२७)

चतुर्थ अनुवाकमें अष्टम सूक्त समाप्त

७७४ अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादसहित

“नमो वः पितरः” इति अष्टभिर्यजुर्मन्त्रैर्वर्हिषि पिण्डेषु आवा-
हितान् पितॄन् उपतिष्ठेत । सूत्रितं हि । “नमो वः पितरः [८१]
इत्युपतिष्ठते । अक्षन् [६१] इत्युत्तरसिचम् अवधूय परा यात
[६३] इति “परायापयति” इति [कौ० ११. ६] ॥

तत्रैव कर्मणि “आ त्वाग्ने” इत्यनया समिधम् आदध्यात् ।
“समिधोभ्यादधाति” इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । “त्वमग्न ईलितः
[१८. ३. ४२] आ त्वाग्न इधीमहि [१८. ४. ८८]” इति
[कौ० ११. १०] ॥

“वारुणीं जलभये जलसंक्षये च” इति [न० क० १७.]
विहितायां वरुणदेवत्यायां महाशान्तौ “चन्द्रमा अप्स्वन्तरा” इत्ये-
नाम् ऋचम् आचरेत् । उक्तं हि नक्षत्रकल्पे । “यद् देवा देवहेल-
नम् [६. ११४. १] इति याम्याया चन्द्रमा अप्स्वन्तरा [१८.
४. ८६] इति वारुण्याम्” इति [न० क० १८] ॥

“नमो वः पितरः” इन आठ यजुर्मन्त्रोंसे कुशाओं पर रखे हुए
पिण्डों पर आवाहित पितरोंका उपस्थान करे । इस विषयमें सूत्र
का प्रमाण है, कि—“नमो वः पितरः (८१) इत्युपतिष्ठते ।
अक्षन् (६१) इत्युत्तरसिचम् अवधूय परायात (६३) इति
परायापयति” (कौशिकसूत्र ११ । ६) ॥

तहाँ ही कर्ममें “आ त्वाग्ने” ऋचासे समिधाको रखे ।
“समिधोभ्यादधाति” को कह कर सूत्रमें कहा है, कि—“त्वमग्न
ईलितः (१८ । ३ । ४२) आ त्वाग्न इधीमहि (१८ । ४ । ८८ ”
(कौशिकसूत्र ११ । १०)

वारुणीं जलभये जलसंक्षये च।-जलका भय वा जलका क्षय
होने पर वारुणीशान्तिको करे” इस नक्षत्रकल्प १७ से विहित
वरुणदेवकी महाशान्तिमें “चन्द्रमा अप्स्वन्तरा” ऋचाको पढ़े ।
इसी बातको नक्षत्रकल्पमें कहा है, कि—“यद् देवा देवहेलनम्

(६ । ११४ । १) इति यास्याया चन्द्रमा अप्स्वन्तरा (१८ । ४ । ८६) इति वारुण्याम्” (नक्षत्रकल्प १८) ॥

मन्त्रपाठस्तु

नमो॑ वः पितर॑ ऊ॒र्जे नमो॑ वः पितरो॑ रसा॒य ॥ ८१ ॥

नमः॑ । वः॑ । पि॒तरः॑ । ऊ॒र्जे । नमः॑ । वः॑ । पि॒तरः॑ । रसा॒य ८१

नमो॑ वः पितरो॑ भा॒माय॑ नमो॑ वः पितरो॑ म॒न्यवे॑ ८२

नमः॑ । वः॑ । पि॒तरः॑ । भा॒माय॑ । नमः॑ । वः॑ । पि॒तरः॑ । म॒न्यवे॑ ८२

नमो॑ वः पितरो॑ यद् घो॒रं तस्मै॑ नमो॑ वः पितरो॑ यत्

क्रू॒रं तस्मै॑ ॥ ८३ ॥

नमः॑ । वः॑ । पि॒तरः॑ । यत् । घो॒रम् । तस्मै॑ । नमः॑ । वः॑ । पि॒तरः॑ ।

यत् । क्रू॒रम् । तस्मै॑ ॥ ८३ ॥

नमो॑ वः पितरो॑ यच्छि॒वं तस्मै॑ नमो॑ वः पितरो॑ यत्

स्यो॒नं तस्मै॑ ॥ ८४ ॥

नमः॑ । वः॑ । पि॒तरः॑ । यत् । शि॒वम् । तस्मै॑ । नमः॑ । वः॑ । पि॒तरः॑ ।

यत् । स्यो॒नम् । तस्मै॑ ॥ ८४ ॥

नमो॑ वः पितरः॑ स्व॒धा वः पितरः॑ ॥ ८५ ॥

नमः॑ । वः॑ । पि॒तरः॑ । स्व॒धा । वः॑ । पि॒तरः॑ ॥ ८५ ॥

एते मन्त्रा निगदव्याख्याताः । एतैर्मन्त्रैः पितॄणां नमस्कारः

७७६ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

प्रतिपाद्यते । “नमस्करोति । नमस्कारो हि पितॄणाम्” इति श्रुतेः
 [तै० ब्रा० १. ३. १०. ८] । नमस्कारस्य फलप्रतिपादकानि ऊर्जे
 इत्यादीनि । यद्वा पितृभिर्युष्माभिर्दीयमानाय ऊर्जे नमः इति ।
 एवम् उत्तरत्र । ऊर्जे अन्नाय रसाय अन्नरसाय ॥ भामाय ।
 ❀ भाम क्रोधे । अस्माद् घञ् ❀ ॥ क्रोधाय । अत्र पितृसंबन्धी
 क्रोध एव नमस्कार्यः । तथा अन्यत्र समाम्नायते । “नमस्ते रुद्र
 मन्यवे” इति [तै० सं० ४. ५. १. १] । मन्युः मानसः क्रोध-
 विशेषः ॥ घोरम् अहितकारिणां भयंकरं रूपं तस्मै नमः । क्रूरम्
 हिंस्रं रूपं तस्मै नमः ॥ शिवम् मङ्गलं रूपं स्योनम् सुखप्रदं तस्मै
 च नमः नमस्करोस्तु ॥ हे पितरः वः युष्मभ्यं नमः । हे पितरः
 वः युष्मभ्यं स्वधा स्वधाकारेण इदं हविर्हुतम् अस्तु ॥

[इन मन्त्रोंसे पितरोंको नमस्कार किया गया है तैत्तिरीय-
 ब्राह्मण १ । ३ । १० । ८ की श्रुतिमें भी कहा है, कि—“नम-
 स्करोति । नमस्कारो हि पितॄणाम् ।—नमस्कार करे ! नमस्कार-
 पितरोंके लिये आवश्यक है ।”] हे पितरों ! मैं अन्न और रस
 पानेके लिये आपको प्रणाम करता हूँ वा आपके अन्न और
 रसके लिये प्रणाम है । हे पितरों ! आपके क्रोधके लिये प्रणाम
 है । [यहाँ पितरोंके क्रोधको ही प्रणाम करना चाहिये । तैत्ति-
 रीयसंहिता ४ । ५ । १ । १ में भी कहा है, कि—“नमस्ते रुद्र
 मन्यवे” ।] हे पितरों ! आपके मानसक्रोध मन्युके लिये प्रणाम
 है । हे पितरों ! अहितकारियोंके लिये भयंकर आपके भयंकर
 रूपके लिये नमस्कार हो । हे पितरों ! आपके हिंसक रूपके लिये
 प्रणाम हो हे पितरों ! आपके मङ्गलकारी रूपके लिये भी नम-
 स्कार है । हे पितरों ! आपके सुखप्रद रूपके लिये भी नमस्कार
 है । हे पितरों ! तुम्हारे लिये प्रणाम है । हे पितरों ! आपके
 लिये यह हवि हुत हो ॥ ८१-८५ ॥

षष्ठादिमन्त्रपाठस्तु

येत्र॑ पि॒तरः॑ पि॒तरो॑ येत्र॑ यू॒यं स्थ॑ यु॒ष्मांस्तेनु॑ यू॒यं तेषां॑
श्रेष्ठा॑ भूया॒स्थ ॥ ८६ ॥

ये । अत्र॑ । पि॒तरः॑ । पि॒तरो॑ । ये । अत्र॑ । यू॒यम् । स्थ॑ । यु॒ष्मान् ।

ते । अनु॑ । यू॒यम् । तेषा॑म् । श्रेष्ठाः॑ । भूया॒स्थ ॥ ८६ ॥

य इ॒ह पि॒तरो॑ जी॒वा इ॒ह व॒यं स्मः॑ । अ॒स्मांस्तेनु॑ व॒यं
तेषां॑ श्रेष्ठा॑ भूया॒स्म ॥ ८७ ॥

ये । इ॒ह । पि॒तरः॑ । जी॒वाः । इ॒ह । व॒यम् । स्मः॑ ॥ अ॒स्मान् । ते ।

अनु॑ । व॒यम् । तेषा॑म् । श्रेष्ठाः॑ । भूया॒स्म ॥ ८७ ॥

अत्र अस्मिन् पिण्डपितृयज्ञे ये पितरो यूयं स्थ देवतात्वं प्राप्ताः
स्थ । आदरार्थं व्यतिहारेण पुनर्वचनम् । युष्मान् अनुसृत्य
ते अधिकत्वेन प्रसिद्धाः पितरो वर्तन्ते । तेषां यूयं श्रेष्ठाः प्रशस्य-
तमा उपजीव्या भूयास्थ भवत । युष्मत्प्रसादात् तेषां पिडांशभा-
गित्वात् ॥ इह अस्मिन् यज्ञे ये पितरः पितृत्वेन संभावितास्तेषां
श्रेष्ठा भूयास्थेति संबन्धः । इह अस्मिन् लोके वयं पिण्डदातारो
जीवाः जीवनवन्तः आयुष्मन्तः स्मः । अस्मान् अनुसृत्य ते प्रसिद्धाः
समानवयोवंशविद्याधना वर्तन्ते । तेषां श्रेष्ठा भूयास्म । इति पिण्डे-
ष्वावाहितान् पितॄन् उपतिष्ठेत ॥

[इस ऋचामें आदरके लिये बहुवचनका प्रयोग किया गया
है] हे पितरों ! इस पिण्डपितृयज्ञमें जो तुम देवतारूपमें बैठे हुए
हो । तुम्हारे आश्रयसे जो और पितर रहते हैं उनमें तुम श्रेष्ठ
होओ वे तुमसे आजीविका चलावें तुम उनमें श्रेष्ठ उपजीव्य

७७८ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

होओ । क्योंकि-वे आपके प्रसादसे पिण्डके अंशके भागी हो सकते हैं । इस यज्ञमें जो पितर पितृत्वसे संभावित हैं उनमें तुम श्रेष्ठ बनो । और इस लोकमें पिण्ड देने वाले हम भी जीवन-सम्पन्न आयु वाले हों । और हमारे पास जो हमारी ही समान अवस्था वंश विद्या और धन वाले हैं उनमें हम श्रेष्ठ हों [इस प्रकार पिण्डोंमें आवाहित पितरोंका उपस्थान करे] ॥८६॥८७॥
 आ त्वा॑ग्न इ॒धीम॑हि द्यु॒मन्तं॑ दे॒वाज॑रम् ।

यद् घ॒ सा ते॒ पनी॑यसी॒ समिद् दी॒दय॑ति द्यवि॑ ।

इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भर॑ ॥ ८८ ॥

आ । त्वा । अग्ने । इ॒धीम॑हि । द्यु॒मन्तम् । दे॒व । अ॒जरम् ।

यत् । घ । सा । ते । पनी॑यसी । समु॒दय॑ति । दी॒दय॑ति । द्यवि॑ ।

इषं॑ । स्तो॒तृभ्यः॑ । आ । भर॑ ॥ ८८ ॥

नवमी ॥ हे देव द्योतमान हे अग्ने द्युमन्तम् दीप्तिमन्तम् अजरम् जरारहितं त्वा त्वाम् आ इधीमहि समिधा अभिमुखं समिधीमहि दीपयामः । ❀ इन्धेलिङि बाहुलकात् श्रमो लुक् । “अनिदिताम्०” इति धातुनकारलोपः ❀ । यत् । ❀ सुपो लुक् ❀ । यस्य ते तव । घेति पूरणः । सा प्रसिद्धा पनीयसी । ❀ पनतिः स्तुतिकर्मा ❀ । स्तुत्यतरा समित् सम्यक् प्रकाशिका दीप्तिः द्यवि । ❀ द्योशब्दाद् ओकारान्तात् सप्तम्येकवचनम् ❀ । दिवि अन्तरिक्षे दीदयति दीप्यते । ❀ दीदेतिर्दीप्तिकर्मा ❀ । हे अग्ने समिधा समिध्यमानस्त्वं स्तोतृभ्यः स्तुतिकारिभ्यः अस्मभ्यम् इषम् इष्यमाणम् अन्नम् इष्टं फलं वा आ भर आहर देहि । ❀ “हृग्रदोर्मः०” ❀ ॥

हे दमकते हुए अग्निदेव ! दीप्तिमान् जरारहित आपको हम
अपने सन्मुख समिधाओंसे प्रदीप्त करते हैं । आपकी जो स्तुत्य
कान्ति है वह आकाशमें भली प्रकार दमकती है । हे समिधाओं
से दमकते हुये अग्निदेव ! आप हम स्तुति करने वालोंको अभि-
लषित अन्न वा फल दें ॥ ८८ ॥

चन्द्रमा अप्सुः१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।

न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विदुतो वित्तं मे
अस्य रोदसी ॥ ८९ ॥

चन्द्रमा । अप्सु । अन्तः । आ । सुपर्णः । धावते । दिवि ।
न । वः । हिरण्यनेमयः । पदम् । विन्दन्ति । विदुतः । वित्तम् ।
मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ८९ ॥

दशमी ॥ अत्र शाठ्यायनिन इतिहासम् आचक्षते । एकतो
द्वितस्त्रित इति पुरा त्रय ऋषयो बभूवुः । एते कदाचिद् मरुभूमौ
अरण्ये वर्तमानाः पिपासया संतप्तगात्राः सन्तः एकं कूपम् अवि-
न्दन् । तत्र त्रितारुय एको जलपानाय कूपं प्राविशत् । प्रविश्य
स्वयम् अपः पीत्वा इतरयोश्च कूपाद् उदकम् उद्धृत्य प्रादात् ।
तावुभौ तद् उदकं पीत्वा तं त्रितं कूपे पातयित्वा तदीर्य धनं सर्वम्
अपहृत्य कूपं च रथचक्रेण पिधाय प्रास्थिषाताम् । ततः कूपे पतितः
स त्रितः कूपाद् उत्तरीतुम् अशक्नुवन् सर्वे देशा माम् उद्धरन्तु
इति मनसा सस्मार । अथ स त्रितो रात्रौ कूपस्य अन्तश्चन्द्रमसो
रश्मीन् अपश्यन् अनया ऋचा परिदेवयत इति ॥ अस्या ऋचः
अयम् अर्थः । अप्सु आन्तरिक्षासु उदकमये मण्डले अन्तः मध्ये ।
यद्वा आप इति अन्तरिक्षनाम । तत्र मध्ये वर्तमानः सुपर्णः शोभन-
पतनः । यद्वा सुपर्ण इति रश्मिनाम् । सुषुम्नारूपेण सूर्यरश्मिना

युक्तश्चन्द्रमाः चन्द्रम् आह्लादं सर्वस्य जगतो निर्मिमीत इति चन्द्रमाः ।
 ❀ “चन्द्रे माङ्गो डित् [उ० ४. २२७] इति असुन् । दासी-
 भारादिषु पाठात् पूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वम् ❀ । आह्लादकारी सोमो
 दिवि द्युलोके आ धावते शीघ्रं गच्छति । ❀ स्र गतौ । “पाघ्रा०”
 इत्यादिना वेगितायां गतौ धाव् आदेशः । व्यत्ययेन आत्मनेप-
 दम् ❀ । तादृशस्य चन्द्रमसः संबन्धिनो हे हिरण्यनेमयः सुवर्ण-
 सदृशपर्यन्ता हितरमणीयमान्ता वा हे विद्युतः विद्योतमाना रश्मयः
 वः युष्माकं पदं पादस्थानीयम् अग्रं न विन्दन्ति मदीयानि इन्द्रि-
 याणि कूपेन आवृतत्वाद् न लभन्ते । न पश्यन्तीत्यर्थः । अतः
 इदम् अनुचितम् । तस्मात् कूपाद् माम् उत्तारयतेत्यर्थः ॥ अपि
 च हे रोदसी द्यावापृथिव्यौ मे मदीयम् अस्य इदं स्तोत्रं वित्तम्
 जानीतम् । ❀ विद ज्ञाने । लोटि अदादित्वात् शपो लुक् । पादा-
 दित्वात् “तिङ्ङितिङ्ङः” इति निघाताभावः ❀ । यद्वा मे मदीयं
 कूपपतनरूपं यद् इदं दुःखं तद् अवगच्छतम् । मदीयं स्तोत्रं श्रुत्वा
 मदीयं दुःखं ज्ञात्वा अस्मात् कूपाद् माम् उत्तारयतम् इत्यर्थः ।
 ❀ अस्याति । “क्रिशग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदान-
 त्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । “ऊडिदम्०” इति विभक्तेरुदात्तत्वम् ॥

चतुर्थेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

अनुवाकश्च समाप्तः ॥

श्रीमद्राजाधिराजराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरहरि-

हरमहाराजकारिते सायणाचार्यविरचिते अथर्व-

वेदार्थप्रकाशे अष्टादशकाण्डं समाप्तम् ॥

[शाट्यायनियोने यहाँ एक इतिहास लिखा है, कि-पूर्व-
 समयमें एकत द्वित और त्रित नामक तीन ऋषि थे । वे एक
 समय रेगिस्तानके जंगलमें घूम रहे थे । विचरते २ उनको पिलास
 लगी और उनका मुख सूखने लगा, इतनेमें उन्होंने एक कूप

देखा । तब त्रित नामक ऋषि कूपमें घुसे तहाँ जाकर उन्होंने अपने आप जल पिया और कुएँसे उसार कर उन दोनोंको भी पिलाया । उन दोनोंने जल पी कर त्रितको कुएँमें ढकेल दिया और कुएँ पर रथका पहिया धर दिया और उसके सारे धनको लेकर चल दिये । तब कूपमें पड़े हुए और कूपसे न निकल सकते हुए त्रितने मनसे यह प्रार्थना की, कि—सब देवता इस कूपसे मेरा उद्धार करें । इसके अनन्तर रात्रिमें कूपके भीतर चन्द्रमाकी किरणोंको देख कर ऋषिने इस ऋचामें विलाप किया है, कि—] उदकमय मण्डलमें वर्तमान, सुषुम्ना नामक सूर्यरश्मिसे संयुक्त चन्द्रमा अलोकमें शीघ्रतासे चल रहे हैं । ऐसे चन्द्रमाकी हे सुवर्णकी समान दमकते हुए प्रान्त वाली किरणों ! मेरी इन्द्रियें कुएँमें बन्द होनेसे तुम्हारे रूपको नहीं देख पातीं [अत एव मुझे इस कूपसे निकालो] और हे द्यावापृथिवी ! तुम मेरे इस स्तोत्रको जानो अर्थात् मेरे स्तोत्रको सुन मेरे दुःखको जान कर इस कूपसे मुझको निकालिये ॥ ८६ ॥ (२८)

चतुर्थ अनुवाकमे नवम सूक्त समाप्त ।

चतुर्थ अनुवाक समाप्त (५४४)

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका अष्टादशकाण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपतकाका

सम्पादक कु० ऋ० प० रामचन्द्र

शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल

भाषानुवाद सहित

समाप्त.

॥ अष्टादशः काण्डः समाप्तः ॥

४०६१

पुस्तकालय नमूना	
क्र.सं.	
पुस्तक नाम	
लेखक	
प्रकाशक	
वर्ष	
मूल्य	
स्थिति	

पुस्तकालय

पुस्तकालय

पुस्तकालय

पुस्तकालय

पुस्तकालय

GURUKUL KANGRI LIBRARY	
S	Date
Access	<i>March 18-3-88</i>
Class	<i>Samant</i>
Cat	<i>Samant</i>
Tag	<i>Samant</i>
Filing	
EAT	<i>Samant</i>
checked	<input type="checkbox"/>

Recommended By... *प्रो. मा. लकाश शास्त्री*

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

Entered in Database

Signature with Date

25/3/88

वैदिक-संहिता

- ☆ ऋग्वेद संहिता। मूलमात्र (गुटका)
- ☆ ऋग्वेद संहिता। मूलमात्र।
- ☆ ऋग्वेद संहिता। भाषामात्र। रामगोविन्द त्रिवेदी
- ☆ ऋग्वेद संहिता। सायणाचार्य कृत भाष्य एवं हिन्दी व्याख्या सहित। 1-8 भाग सम्पूर्ण
- ☆ ऋग्वेद संहिता। (प्रथम अध्याय, सूक्त 1-19)
हिन्दी व्याख्या तथा हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद। सम्पादक-प्रो. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
- ☆ शुक्लयजुर्वेद संहिता। मूलमात्र (गुटका)
- ☆ शुक्लयजुर्वेद संहिता। सम्पा. श्री दौलतराम गौड़
- ☆ शुक्लयजुर्वेद संहिता। मूलमात्र। (निर्णयसागर संस्करण)
- ☆ शुक्लयजुर्वेद संहिता। पदपाठ-उज्ज्वट-महीधरभाष्य संवलित तत्त्वबोधिनी हिन्दी व्याख्या सहित। डॉ. रामकृष्ण शास्त्री
- ☆ सामवेद संहिता। मूलमात्र (गुटका)
- ☆ सामवेद संहिता। सायणभाष्य तथा पं. रामस्वरूप शर्मा 'गोड़' कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित।
- ☆ अथर्ववेद संहिता। मूलमात्र (गुटका)
- ☆ अथर्ववेद संहिता। सायणभाष्य तथा पं. रामस्वरूप 'गोड़' कृत हिन्दी भाषानुवाद सहित। 1-8 भाग



चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी